परमात्म प्रकाश
प्रवचन भाग-८

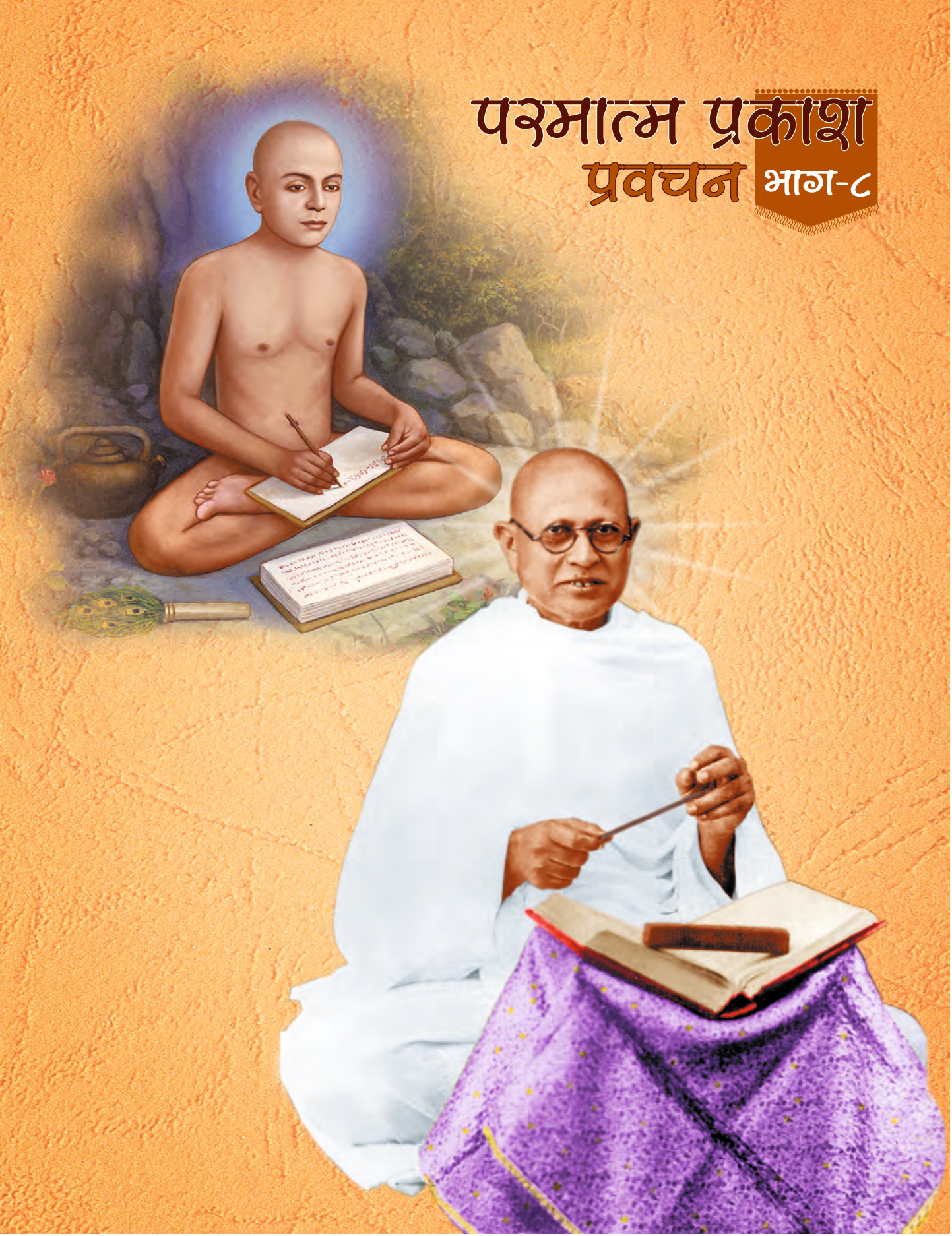

ॐ

श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग–8

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन (द्वितीय अधिकार)
गाथा 164 से 214, प्रवचन क्रमांक 215 से 245

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2079	2549	2023

—: प्रकाशन :—

शाश्वत् पर्व फाल्गुन अष्टाह्निका
दिनांक 27 फरवरी से 07 मार्च 2023
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए है। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विविक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्रायः अखण्ड मोक्षमार्ग को पुनः जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं। और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दशः ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत आठवाँ भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना, वह अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक

जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरश: प्रवचनों को सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित करने की भावना है। प्रवचनों को सर्व प्रथम सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक भरा जाता है। इन प्रवचनों के प्रथम प्रूफ को जाँचते समय फिर से उन्हें सुनकर चैक किया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भाव यथावत् बने रहें, इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्त:करण से क्षमायाचना करते हैं। पाठकवर्ग से भी अनुरोध है कि यदि कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करें, जिससे अपेक्षित संशोधन किया जा सके।

परमात्मप्रकाश के इस आठवें भाग के प्रवचनों का गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का कार्य श्री निलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा तथा प्रत्येक प्रवचनों को सुनकर-पढ़कर चैक करने का कार्य आत्मार्थी स्व० श्री चेतनभाई मेहता राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

यह पुस्तक vitragvani.com में शास्त्रभण्डार के अन्तर्गत पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचन और vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्‌या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्‌यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्‌यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा

पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
२१५	१६४	१३-०२-१९७७	००१
२१६	१६५, १६६	१४-०२-१९७७	०१८
२१७	१६६, १६७	१५-०२-१९७७	०३७
२१८	१६८ से १७०	१६-०२-१९७७	०५४
२१९	१७०, १७१	१७-०२-१९७७	०७४
२२०	१७४, १७५	१८-०२-१९७७	०९१
२२१	१७२, १७३	१९-०२-१९७७	११०
२२२	१७३ से १७५	२०-०२-१९७७	१२८
२२३	१७५	२१-०२-१९७७	१४६
२२४	१७६ से १८१	२२-०२-१९७७	१६२
२२५	१७८ से १८२	२३-०२-१९७७	१८३
२२६	१८३, १८४	१९-०३-१९७७	१९९
२२७	१८५	२०-०३-१९७७	२१८
२२८	१८५ से १८७	२१-०३-१९७७	२३५
२२९	१८७, १८८	२२-०३-१९७७	२५५
२३०	१८९, १९०	२३-०३-१९७७	२७३
२३१	१९०, १९१	२४-०३-१९७७	२९२
२३२	१९२	२५-०३-१९७७	३१०
२३३	१९३	११-०४-१९७७	३२९
२३४	१९४	१०-०५-१९७७	३४६
२३५	१९५, १९६	११-०५-१९७७	३६२
२३६	१९७	१२-०५-१९७७	३८०
२३७	१९७ से १९९	१३-०५-१९७७	३९५
२३८	१९९ से २०१	१४-०५-१९७७	४१२
२३९	२०२, २०३	१५-०५-१९७७	४३१
२४०	२०३, २०४	१६-०५-१९७७	४४९
२४१	२०५, २०६	१८-०५-१९७७	४६५
२४२	२०७, २०८	१९-०५-१९७७	४८२
२४३	२०९, २१०	२०-०५-१९७७	५००
२४४	२११ से २१३	२१-०५-१९७७	५१८
२४५	२१३, २१४	२२-०५-१९७७	५३७

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग - ८)

गाथा - १६४

अथ-

२८७) जो आयासइ मणु धरइ लोयालोय-पमाणु।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तसु पावइ परहँ पवाणु।।१६४।।

यः आकाशे मनो धरति लोकालोकप्रमाणम्।
त्रुट्यति मोहो झटिति तस्य प्राप्नोति परस्य प्रमाणम्।।१६४।।

जो इत्यादि। जो यो ध्याता पुरुषः आयासइ मणु धरइ यथा परद्रव्यसंबन्ध-रहितत्वेनाकाशमम्बरशब्दवाच्यं शून्यमित्युच्यते तथा वीतरागचिदानन्दैकस्वभावेन भरितावस्थोडपि मिथ्यात्वरागादिपरभावरहितत्वन्निर्विकल्पसमाधिराकाशमम्बरशब्दवाच्यं शून्यमित्युच्यते। तत्राकाशसंज्ञे निर्विकल्पसमाधौ मनो धरति स्थिरं करोति। कथंभूत मनः। लोयालोयपमाणु लोकालोकप्रमाणं लोकालोकव्याप्तिरुपं अथवा प्रसिद्धलोकालोकाकाशे व्यवहारेण ज्ञानापेक्षया न च प्रदेशपेक्षया लोकालोकप्रमाणं मनो [१]मानसं धरति तुट्टइ मोहु तडत्ति तसु त्रुट्यति नश्यति। कोडसौ। मोहु मोहः। कथम्। झटिति तस्य ध्यानात्। न केवलं मोहो नश्यति। पावई प्राप्नोति। किम्। परहं पवाणु परस्य परमात्मस्वरुपस्य प्रमाणम्। कीदृशं तत्प्रमाणमिति चेत्। व्यवहारेण रुपग्रहणविषये चक्षुरवि सर्वगतः। यदि पुनर्निश्चयेन सर्वगतो भवति तर्हि चक्षुणो [२]अग्निस्पर्शात्दाहः

१. पाठान्तर - मानसं=मानसं ज्ञानं

२. पाठान्तर - अग्निस्पर्शात् दाहः=अग्निस्पर्शदाह

प्राप्नोति न च तथा। तथात्मनोऽपि परकीयसुखदुःखविषये तन्मयपरिणामत्वेन परकीयसुख-दुःखानुभवं प्राप्नोति न च तथा। निश्चयेन पुनर्लोकमात्रासंख्येयप्रदेशोऽपि सन् व्यवहारेण पुनः शरीरकृतोपसंहारविस्तार-वशाद्विवक्षितभाजनस्थप्रदीपवत् देहमात्र इति भावार्थः।।१६४।।

आगे फिर निर्विकल्पसमाधिका कथन करते हैं-

लोकालोक बराबर मन को जो नभ में सुस्थिर करते।
शीघ्र मोह क्षय होता उनका केवलज्ञान प्राप्त करते।।१६४।।

अन्वयार्थः- [यः] जो ध्यानी पुरुष [आकाशे] निर्विकल्पसमाधि में [सनः] मन [धरति] स्थिर करता है, [तस्य] उसी का [मोहः] मोह [झटिति] शीघ्र [त्रुटयति] टूट जाता है, और ज्ञान करके [परस्य प्रमाणम्] लोकालोकप्रमाण आत्मा को [प्राप्नोति] प्राप्त हो जाता है।

भावार्थः- आकाश अर्थात् वीतराग चिदानंद स्वभाव अनंत गुणरुप और मिथ्यात्व रागादि परभाव रहित स्वरुप निर्विकल्पसमाधि यहाँ समझना। जैसे आकाशद्रव्य सब द्रव्यों से भरा हुआ है, परंतु सबसे शून्य अपने स्वरुप है, उसी प्रकार चिद्रूप आत्मा रागादि उपाधियों से रहित है, शून्यरुप है, इसलिए आकाश शब्द का अर्थ यहाँ शुद्धात्मस्वरुप लेना। व्यवहारनयकर ज्ञान लोकालोक का प्रकाशक है, और निश्चयनयकर अपने स्वरुप का प्रकाशक है। आत्मा का केवलज्ञान लोकालोक को जानता है, इसी कारण ज्ञान की अपेक्षा लोकालोकप्रमाण कहा जाता है, प्रदेशों की अपेक्षा लोकालोकप्रमाण नहीं है। ज्ञानगुण लोकालोक में व्याप्त है; परन्तु परद्रव्यों से भिन्न है। परवस्तु से जो तन्मयी हो जावे, तो वस्तु का अभाव हो जावे। इसलिए यह निश्चय हुआ, कि ज्ञान गुणकर लोकालोकप्रमाण जो आत्मा उसे आकाश भी कहते हैं, उसमें जो मन लगावे, तब जगत् से मोह दूर हो और परमात्मा को पावे। व्यवहारनयकर आत्मा ज्ञानकर सबको जानता है, इसलिए सब जगत् में हैं। जैसे व्यवहारनयकर नेत्र रुपी पदार्थ को जानता है; परन्तु उन पदार्थों से भिन्न है। जो निश्चयकर सर्वगत होवे, तो परपदार्थों से तन्मयी हो जावे, जो उसे तन्मयी होवे तो नेत्रों को अग्नि का दाह होना चाहिए, इस कारण तन्मयी नहीं है। उसी प्रकार आत्मा जो पदार्थों को तन्मयी होके जाने, तो पर के सुख-दुःख से तन्मयी होने से इसको भी दूसरे का सुख-दुःख मालूम होना चाहिए, पर

ऐसा होता नहीं है। इसलिए निश्चय से आत्मा असर्वगत है, और व्यवहारनय से सर्वगत है, प्रदेशों की अपेक्षा निश्चय से लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है, और व्यवहारनयकर पात्र में रखे हुए दीपक की तरह देहप्रमाण है, जैसा शरीर-धारण करे, वैसा प्रदेशों का संकोच विस्तार हो जाता है।।१६४।।

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण १०, रविवार
दिनांक- १३-०२-१९७७, गाथा - १६४, प्रवचन-२१५

परमात्मप्रकाश, १६४।

२८७) **जो आयासइ मणु धरइ लोयालोय-पमाणु।**
तुट्टइ मोहु तडत्ति तसु पावइ परहँ पवाणु।।१६४।।

आहाहा! **निर्विकल्पसमाधि का कथन करते हैं।** यह तो अन्तिम अधिकार है न? उत्कृष्ट चीज़ है। जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु की समीपता से, समीप से जिसे ज्ञान हुआ है, उसके ज्ञान में आत्मा पवित्र पूर्ण है, ऐसी प्रतीति और ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात हुआ है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की जो पर्याय है, वह है तो ज्ञानगुण की। यह पर्याय परसन्मुख जानने में जो है, वह पर्याय मिथ्या है। आहाहा! जो पर्याय अन्तरज्ञेय, ज्ञायकस्वरूप को जाननेवाली जो पर्याय है, तथापि वह स्वसन्मुख ढलती नहीं, इसलिए उस ज्ञान की पर्याय को मिथ्याज्ञान कहा जाता है। चाहे तो ज्ञान का पठन नौ पूर्व का, ग्यारह अंग का हो। राग है, वह तो बन्ध का कारण है, परन्तु ज्ञान की पर्याय, वह स्वसन्मुख न होकर परसन्मुख में जो झुका हुआ ज्ञान है, उसमें वस्तु नहीं आयी। जिसकी पर्याय है, वह चीज़ नहीं आयी। आती तो है पर्याय में, परन्तु इसे दृष्टि नहीं; इसलिए वस्तु नहीं आयी। आहाहा! ऐसा है।

इससे जिसने, **जो ध्यानी पुरुष निर्विकल्प...** आकाश शब्द से निर्विकल्प समाधि। आहाहा! जिसमें राग की शून्यता है, परसन्मुख के झुकाव का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! निर्विकल्प समाधि अर्थात् कि शान्ति। उसका स्वभाव ही अभेद निर्विकल्प शान्तस्वरूप है। आहाहा! उसमें जिसने दृष्टि लगाई, उसे अभेद निर्विकल्प शान्ति जो

प्रगट हुई है, वह आकाश की भाँति; जैसे आकाश पर के मलिन भाव से रहित है, वैसे यह निर्विकल्प समाधि राग के मैल से रहित है। आहाहा! ऐसी बातें! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। **निर्विकल्पसमाधि में मन स्थिर करता है,...** एकदम सार है, भाई! आहाहा! जिसने परसन्मुख के झुकाव की दशा को छोड़कर जिसने निर्विकल्प शान्तिस्वरूप भगवान आत्मा में निर्विकल्प समाधि जिसने जोड़ दी है। आहाहा! उस आकाश में, निर्विकल्प समाधि में आकाश कहते हैं। आहाहा! आकाश जैसे परपदार्थ से शून्य है, वैसे भगवान आत्मा का ध्यान निर्विकल्प शान्ति में विकल्प से शून्य है। उसमें जो स्थित होता है, उसका मन स्थिर हो जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मन स्थिर करता है, उसी का मोह शीघ्र टूट जाता है,... आहाहा! अर्थात् स्वसन्मुख के परिणमन के काल में परसन्मुख के राग की उत्पत्ति वहाँ नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात है। स्ववस्तु क्या है और उसका आश्रय कैसे लेना, इस बात में अभी पूरा फेरफार हो गया है, इसलिए लोगों को लगता है कि यह वह, बापू! तेरी चीज़ ही यह है। आहाहा! और अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। उसकी स्वीकृति नहीं, इसलिए उसे वह दिखता नहीं। आहाहा! उसकी स्वीकृति में अल्पज्ञ और रागादि को जाननेवाला ज्ञान, वह मैं। यह मिथ्या स्वीकृति है—विश्वास है। सम्यक् विश्वास हो, उसे भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, अस्ति है। उसके सन्मुख होने पर निर्विकल्प समाधि होती है। आहाहा! रागरहित शान्तिरूपी समाधि होती है। शान्त... शान्त... उसे मन टूट जाता है। जो परसन्मुख के विकल्प उत्पन्न नहीं होते, टूट जाते हैं। आहाहा! ऐसी बातें! अब यह सब कहे। उसमें वे तो और कहे, बारहवें गुणस्थान तक, आते हैं न लेख आते हैं। भाई नहीं आये, गये होंगे वहाँ। बारहवें गुणस्थान तक ऐसा कि पंच महाव्रत आदि (होते हैं), ऐसा आता है शास्त्र में। वह तो अन्दर में महाव्रत का स्थिरपना, वह महाव्रत है। इस शुभोपयोगरूपी महाव्रत, वे बारहवें में कहाँ थे? वहाँ तो वीतरागता है। परन्तु वहाँ आता है एक जगह शास्त्र में। परन्तु वह तो निर्विकल्प अन्दर वीतरागी परिणति को महाव्रत कहा गया है। वहाँ कहते हैं कि महाव्रत के परिणाम और समिति-गुप्ति से केवलज्ञान पाया जा सकता है। ऐसा कहते हैं यहाँ। यहाँ कहते हैं कि परन्तु वहाँ महाव्रत के परिणाम जो शुभ हैं, वे तो हैं ही नहीं न! वे शुभ नहीं, वीतराग के परिणाम (हैं)। आहाहा!

यहाँ तो मन टूटने से **मोह शीघ्र टूट जाता है...** इस कारण से, हों! आहाहा! भगवान पूर्ण शुद्धस्वरूप का आश्रय लेने से निर्विकल्प शान्ति उत्पन्न होने पर उससे वीतरागी परिणति उत्पन्न हुई, उसमें से मोह अर्थात् परसन्मुख के सावधान में विकल्प उत्पन्न नहीं होते, इसलिए मोह टूट जाता है। आहाहा! समझ में आया? **और ज्ञान करके लोकालोकप्रमाण आत्मा को प्राप्त हो जाता है।** अर्थात् कि उसका ज्ञान लोकालोक को ही जानता है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर पर्याय ऐसी उत्पन्न होती है कि लोकालोक को जाने। उसे लोकालोकप्रमाण ज्ञान हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! है? **लोकालोकप्रमाण आत्मा को प्राप्त हो जाता है।** दूसरे ऐसा कहे, लोकालाकप्रमाण आत्मा हो जाता है। शब्द का आशय क्या है, यह जानना चाहिए न!

भावार्थ—आकाश अर्थात् वीतराग चिदानन्दस्वभाव अनन्त गुणरूप और मिथ्यात्व रागादि परभावरहित स्वरूप निर्विकल्पसमाधि यहाँ (आकाश) समझना। यहाँ आकाश का अर्थ यह लेना, ऐसा कहते हैं। रागरहित चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वभाव अनन्त गुणरूप मिथ्यात्व-रागादि परभावरहित, यह अस्ति है, यह उनसे रहित है। ऐसा जो स्वरूप निर्विकल्प समाधि, पर्याय में शान्ति उत्पन्न हुई रागरहित और वीतराग परिणति... आहाहा! उसे यहाँ आकाश कहा गया है। समझ में आया? जिसकी ज्ञान की दशा इतनी विस्तार प्राप्त शक्ति है, उसका परिणति में विस्तार प्राप्त शक्ति इतनी प्रगट होती है कि लोकालोक को जाना है, इसलिए मानो व्याप्त हो गया है। वास्तव में तो लोकालोक को जानता है। इतनी सामर्थ्य है—ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान, हों! आहाहा!

जैसे आकाशद्रव्य सब द्रव्यों से भरा हुआ है,... आकाशद्रव्य है न लोकालोक -प्रमाण? उसमें सब द्रव्य रहे हैं। सब द्रव्य रहे हैं। **परन्तु सबसे शून्य अपने स्वरूप है,...** आहाहा! आकाश सब पदार्थों से भरपूर है छह द्रव्यों से, परन्तु स्वयं पर से शून्य है। आहाहा! **उसी प्रकार चिद्रूप आत्मा...** ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा चिदानन्द प्रकाश, वह **रागादि (सब) उपाधियों से रहित है, शून्यरूप है,...** विकल्प से शून्य है, इसलिए शून्य है, ऐसा। यह प्रवचनसार में आया है। स्व से अशून्य है और पर से शून्य है। सप्तभंगी चली है। आहाहा! क्या वह अशून्य है, भाई! भाषा नहीं। अपने से वह अशून्य है, भरपूर स्वभाव से भरा हुआ भगवान है। पर से शून्य है। जैसे स्व से अस्ति है, पर से

नास्ति है। यह सप्तभंगी जैसे ली है, उसमें ऐसा उतारा है। आहाहा! स्व से अशून्य अर्थात् है पदार्थ में और विकल्प से शून्य है, रागादि से शून्य है। यह अस्ति-नास्तिरूप से जो विराजता है, वह भगवान आत्मा है। आहाहा! उसमें संसार का विकल्प का अभाव है और स्वभाव की परिपूर्णता का सद्भाव है। आहाहा! व्याख्या तो दूसरी क्या हो? उसके सन्मुख देखना, उसका आदर करना, स्वीकार करना। सत्कार-आदर कब होता है? उसके सन्मुख झुके तो, स्वसन्मुख हो तो। आहाहा! उसे यहाँ लोकालोक को जानता है, ऐसा कहने से शून्यरूप है पर से, ऐसा।

इसलिए आकाश शब्द का अर्थ यहाँ शुद्धात्मस्वरूप लेना। व्यवहारनयकर ज्ञान लोकालोक का प्रकाशक है... व्यवहार से लोकालोक प्रमाण प्रकाशित करता है। क्योंकि लोकालोक में कहीं ज्ञान तन्मय नहीं होता। आहाहा! **निश्चयनयकर अपने स्वरूप का प्रकाशक है।** लो! आहाहा! उसमें भी विवाद निकाले कि सर्वज्ञ है, वह व्यवहार से है। ऐसा कि सर्व आया न? दूसरा सब बहुत आया न? परन्तु वह दूसरा सब नहीं, वह तो अपना सर्वज्ञस्वभाव शक्तिरूप से प्रगट हुआ, उसमें स्व-पर का प्रकाशक ऐसा सर्वज्ञपना अर्थात् आत्मज्ञपना (प्रगट हुआ है)। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा! सर्व को जानने से पर में तन्मय होता है? अपनी पर्याय में जानने से तन्मय होकर जानता है। इसलिए वह अपने को जानता है। वह है तो अपना ज्ञान। पर लोकालोक सम्बन्धी का ज्ञान अपना अपने से हुआ है। लोकालोक है, इसलिए हुआ है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

निश्चयनयकर अपने स्वरूप का प्रकाशक है। स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञाता और स्वयं ही ज्ञेय। आता है न कलश? समयसार में। आहाहा! अपने को ही प्रकाशित करता है। स्वयं ज्ञाता—जाननेवाला, अपना ज्ञान, वह ज्ञान और स्वयं ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान का ज्ञेय। आहाहा! उसमें लोकालोक का ज्ञान अपना अपने से पर की अपेक्षा बिना हुआ है। आहाहा! उसे व्यवहार से पर को जाने, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! चैतन्यसूर्य भगवान अन्दर। आहाहा! उसे तेजहीन करके माना है। जिसे सिद्ध की उपमा भी पर्याय की अपेक्षा से दी जाती है, ऐसी वस्तु है, उसे उपमा क्या? आहाहा! चैतन्य हीरा अन्दर पड़ा है बड़ा प्रभु। आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द भरचक भरा है। आहाहा! उसे

पर्याय द्वारा निकाले तो उसे अनुभव हो। आहाहा! और अनुभव हो, उसमें प्रतीति आवे, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। ऐसी बात है। समझ में आया? ऐसी वस्तु है। यह तो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय को नहीं घातना, दया पालना— ऐसा समझ में आये। क्योंकि वह कर सकता है, ऐसा मानता है। आहाहा! यहाँ तो तेरी दया पाल। तू जितना है, वैसा प्रतीति में ले। उस निर्विकल्प प्रतीति में वह आ सकता है। वह राग में-विकल्प में नहीं आ सकता। आहाहा! बड़ा विवाद।

देह की स्थिति तो देखो! आहाहा! यह बड़ा ताबूत, आहाहा! अभी तो आहार करते समय वहाँ आये देने। पूरा घर। साथ में बैठे। बैठे, जरा ऐसा किया। मुझे वहम पड़ा कि यह वह क्या कुछ निर्बलता लगती है? परन्तु शुरु हो गयी। आहार दिया खड़े होकर। आहार किया। फिर मन निर्बल होगा तो मोटर में गये। गये और देह छूट गयी। परन्तु वह छूटा हुआ ही है, वह तो क्षेत्र से पृथक् पड़े, तब लोग छूटा कहते हैं। यहाँ छूटा ही है। देह और आत्मा कभी एक तीन काल में कहीं हुए नहीं। आहाहा! क्षेत्र से जहाँ आत्मा भिन्न पड़ा तो इसे लगा कि यह पृथक् पड़ा। परन्तु पृथक् ही है अन्दर। आहाहा! कहो, अब एक क्षण में। पहले एक बार बीमार हो गया था। उसमें से फिर बच गया। आहाहा! आयुष्य हो, तब तक क्या हो? आयुष्य पूरा हो, फिर उसे कैसा काल और कौन सी दवा लागू पड़े उसे? आहाहा!

मुमुक्षु : उसकी दवा क्या हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा है नहीं, बापू! क्या हो? आहाहा! माँस और हड्डियों से भरपूर यह शरीर, अनन्त गुण से भरपूर भगवान, उसमें रहना। आहाहा! उसमें है ही नहीं। यह मानता है कि मैं उसमें रहा हूँ। यह तो स्वयं भगवान वीतराग समाधि में रहनेवाला है। स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा कहा है न? आहाहा! दुनिया के साथ लागू पड़े, न पड़े। शास्त्र के अर्थ निकालकर, अरे! भगवान! स्त्री, पुत्र, परिवार से कुछ सम्बन्ध किसे है कुछ? आहार के समय देते हैं। घर में जाये, वहाँ देह छूट जाती है। ऐसी नाशवान चीज़ है। उससे जिसने रुचि बदल डाली है। आहाहा! और जिसे रुचि में भगवान पोसाया है, उसके धन्धा-व्यापार में भगवान पोसाया है। आहाहा! ऐसा जो

निर्विकल्प समाधि में आने पर उसे केवलज्ञान लोकालोक को जाने, आत्मा जाने, आत्मा लोकालोक को जानता है, ऐसी शक्ति प्रगट हो जाती है। आहाहा!

स्व की अपेक्षा से तो शरीर और वाणी और कर्म जो है, वह वस्तु ही नहीं। उनकी अपेक्षा से वे हैं। भगवान ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चिद्घन, उसे जहाँ अन्दर रागरहित निर्विकल्प शान्ति से जानने में आया कि यह तो मैं एक ही हूँ। दूसरी चीज़ मुझसे है ही नहीं। अपनी अपेक्षा से कर्म और राग और शरीर, वे अद्रव्य हैं। आहाहा! जैनदर्शन के शब्द हैं संक्षिप्त, परन्तु उसमें बहुत भाव भरे हुए हैं। उसके आशय को पहुँचना। आहाहा! कहते हैं कि लोकालोक को जानता है, ऐसा कहना, लोकालोक को तो स्पर्शता भी नहीं। आहाहा! और लोकालोक तो स्व की अपेक्षा से परवस्तु अवस्तु है। समझ में आया? अपने केवलज्ञान और भाव की अपेक्षा से तो दूसरी सभी चीज़ें अभावस्वरूप है। द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्यस्वरूप है, क्षेत्र की अपेक्षा से अक्षेत्रस्वरूप है, स्वकाल की अपेक्षा से सभी चीज़ें अकाल, परकालस्वरूप है। आहाहा! ऐसा जहाँ अन्तर में कहते हैं कि पर्याय में निर्विकल्प शान्ति द्वारा केवलज्ञान प्रगट हुआ, तो उसके अस्तित्व में केवलज्ञान में लोकालोक को जानना, ऐसा अस्तित्व आया। लोकालोक का अस्तित्व नहीं आया। समझ में आया? वे दया पालने का कहे। वे भगवान की पूजा, भक्ति, यात्रा का कहे। उसमें और वस्त्र निकाल दो, नग्न होकर घूमो, ऐसा कहे। यह चीज़, नग्न है-विकल्प से वह खाली है। आहाहा! दिगम्बर है आत्मा। दिग—आकाश कहा न? आहाहा! आकाश की भाँति, जैसे आकाश पर से शून्य है, उसी प्रकार भगवान दिगम्बर है। आहाहा! अपने अनन्त गुण से भरपूर भगवान अपने से अस्ति है और पर से नास्ति है। तथापि पर का ज्ञान है, वह पर के कारण से नहीं। आहाहा! अपने अस्तित्व के कारण से है। अपना अस्तित्व ही इतना है। स्व और पर को अपनी पर्याय में (प्रकाशित करे, वह) आत्मज्ञपना है, वह सर्वज्ञपना है। आहाहा! उसे यहाँ लोकालोक को प्रकाशित करता है, पसरा है आत्मा, ऐसा कहा जाता है।

प्रदेशों की अपेक्षा लोकालोकप्रमाण नहीं है। है न? आहाहा! उसके प्रदेश हैं, वे कहीं आगे जरा भी नहीं जाते वहाँ। आहाहा! प्रदेश जो असंख्य हैं, वे तो राग में जाते नहीं न! आहाहा! एक समय की पर्याय के प्रदेश में भी त्रिकाली वस्तु तो जाती नहीं।

आहाहा! त्रिकाली पर्याय है जो जाननेवाली, वह द्रव्य में जाती नहीं, पर में जाती नहीं, तथापि वह सामर्थ्य ऐसा है कि मैं इतना हूँ और यह मैं नहीं, पूरा लोकालोक हो या न हो उसके कारण से; मेरे कारण से कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें सूक्ष्म हैं, बापू! जैनधर्म को लोगों ने अन्य धर्म जैसा कर डाला। यह दया पालन करो और यह करो, यह करूँ और राग करूँ। भाई! तू कौन है, बापू! तू तो अकेला ज्ञान का पिण्ड और भण्डार है न! उस ज्ञान के गोदाम में दूसरा अल्पज्ञपना और रागपना आवे कहाँ से? आहाहा!

ज्ञानगुण लोकालोक को व्यापता है, प्रदेश की अपेक्षा से नहीं। **ज्ञानगुण लोकालोक में व्याप्त है; परन्तु परद्रव्यों से भिन्न है।** लोकालोक से भगवान तो भिन्न है और लोकालोक को व्याप्त है, ऐसा कहना अर्थात् कि अपने ज्ञान में उसके सम्बन्ध में उसमें व्यापता है। आहाहा! **परवस्तु से जो तन्मयी हो जावे...** द्रव्य भिन्न है। **परवस्तु से जो तन्मयी हो जावे, तो वस्तु का अभाव हो जावे।** आहाहा! क्या कहते हैं? स्वयं असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु जहाँ पर्याय में ज्ञात हुआ, वह पर्याय परसन्मुख में पर को जानने जाने से पर में जाये तो स्व का अभाव हो जाता है। आहाहा! बात बहुत सरस की है। आहाहा! **परवस्तु से जो तन्मयी हो जावे, तो वस्तु का अभाव हो जावे।** परवस्तु में मिल जाये अपनी सत्ता, तो अपनी सत्ता भिन्न रहती नहीं। आहाहा! बड़ी चर्चा हुई थी (संवत्) १९८३ में। दामोदर सेठ और वीरजीभाई दोनों थे न! वीरजीभाई। बड़ी चर्चा ऊपर हुई। फिर नीचे उतरकर मेरे पास आये। सेठ ऐसा कहता है, वीरजीभाई ऐसा कहते हैं। लोकालोक है तो यह ज्ञान जानता है। वह कहे, ज्ञान जानता है, वह लोकालोक है इसलिए उसे जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ८३ की बात है, (संवत्) १९८३। कितने वर्ष हुए? ५०। अर्धशताब्दी। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले से ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से ही। कहा, यहाँ है जो स्व-पर को जानने का है, वह अपनी सत्ता में है, अपनी सत्ता से है या पर की सत्ता से है? आहाहा! स्वयं लोकालोक को जानने की सत्तावाला भाव है, वह पर की सत्ता के कारण यह अस्तित्व है? या यह अस्तित्व अपने कारण से है? आहाहा! परन्तु लोगों को बाहर की, अन्तर की बातें,

बाहर के बड़े पड़ाव डाले। यह दया पालना, व्रत करना, अपवास करना, हो गया। रुक गया वहाँ।

वे और ऐसा कहते हैं, वेदान्ती। यह प्रश्न किया ८४ में। एक थे। क्या कहलायें वे? खत्री। नारणभाई के घर के पास खत्री थे। नारणभाई नहीं अपने रुगनाथ? वे कहे, महाराज! परमाणु यदि आप कहो तो उसका यहाँ ज्ञान होता है तो परमाणु में प्रवेश करे तो ज्ञान होता है। उसके बिना कहाँ से होगा? यह (संवत्) १९८४ की बात है। राणपुर चातुर्मास था न! वे कहे, पर में प्रवेश करे तो उसका ज्ञान होता है। वेदान्ती थे न? इसलिए सब व्यापक ज्ञान मानना। भाई! ऐसा नहीं है। अग्नि को जानता है तो अग्नि में प्रवेश करके अग्नि को जानता है? वह अपनी सत्ता में रहकर, पर की सत्ता में प्रवेश किये बिना, पर और अपना ज्ञान, अपने अस्तित्व से अपने में होता है। आहाहा!

वस्तु का अभाव हो जावे। क्या कहा यह? कि लोक और अलोक जो परवस्तु है, उसे जानने जाये वहाँ अन्दर, तो उस परसत्ता में स्वयं स्वसत्ता मिल जाये। तो स्वसत्ता का तो अभाव हो जाये। पर को जानने से भी अपनी सत्ता में रहकर और उस सम्बन्धी का अपना उस सम्बन्धी का कहना, यह भी व्यवहार है। आहाहा! अपने ज्ञान की पर्याय का ऐसा ही स्वभाव है। स्वपरप्रकाशक अर्थात् आत्मज्ञ सर्वज्ञस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए यह निश्चय हुआ कि ज्ञान गुणकर लोकालोकप्रमाण जो आत्मा उसे आकाश भी कहते हैं,... देखा! **ज्ञान गुणकर लोकालोकप्रमाण जो आत्मा...** अर्थात् जाननेवाला **उसे आकाश भी कहते हैं,...** आहाहा! आकाश की व्याख्या ऐसी की। लोकालोक को जानता है न? आकाश है न इतना बड़ा? इसलिए उसे लोकालोक को जानने से स्वयं अपने में रहता है, वैसे आत्मा स्वयं अपने में रहकर पर को जानता है। पर को जानता है, यह कहना व्यवहार है। ऐसी बात! समझ में आया? **उसमें जो मन लगावे,...** आहाहा! **लोकालोकप्रमाण जो आत्मा उसे आकाश भी कहते हैं, उसमें जो मन लगावे,...** आहाहा! स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य स्व का स्व से है। स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य स्व का स्व से है। स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य पर के कारण से है, ऐसा नहीं। एक

ही मानो भगवान लोकालोक में मैं अकेला आत्मा। बस! क्योंकि वह आत्मा है, वह पर के अभावस्वरूप है। और अपने द्रव्य-गुण के परिपूर्ण स्वभाववाला है। समझ में आया? ऐसी बातें अब इसमें। दया पालना और व्रत करे, ऐई! जयन्तीभाई! अरे! बापू! दया तो उसे कहना, आहाहा! अहिंसा उसे कहना कि राग की उत्पत्ति न हो। और स्वभाव शुद्धचैतन्य है, उसकी उत्पत्ति पर्याय में हो, उसे अहिंसा धर्म कहा जाता है। है न पुरुषार्थसिद्धिउपाय में? अप्रादुर्भाव.....

मुमुक्षु : अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥४४॥

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, राग की उत्पत्ति वह पर की है। यहाँ आत्मा के आनन्द की उत्पत्ति। आहाहा! उसे आनन्द की उत्पत्ति, उसको अहिंसा (कहते हैं)। क्यों? कि जैसा उसका स्वरूप है, वैसा पर्याय में आया, उसने उसकी दया पालन की। उसने अपनी दया पालन की। जितना है, वैसा अनुभव में, प्रतीति में आया, यह उसने जीव की दया पालन की। दया अर्थात् तू इतना है, यह हम मानते हैं। लीलाधरभाई! ऐसी सूक्ष्म बातें, लो, अब वह साईंबाबा में कुछ... मार डाला जगत को। अरे! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनवरदेव के मार्ग में बापू! उसमें प्रवेश करना, वह महा अलौकिक बातें हैं। आहाहा! देखा! क्या कहा?

लोकालोकप्रमाण जो आत्मा... इसे अपेक्षा से, हों! **उसे आकाश भी कहते हैं...** क्योंकि लोकालोक का ज्ञान है न यहाँ। लोकालोक सम्बन्धी का ज्ञान अपना अपने में है न? इसलिए उसे आकाश भी कहते हैं। आहाहा! **उसमें मन लगावे, तब जगत से मोह दूर हो जाए...** महा अस्ति प्रभु, उसमें मन लगावे तो पर की नास्ति हो जाये अन्दर से। इसलिए मोह का नाश हो जाये। आहाहा! समझ में आया? अपना जो अस्तिस्वभाव, आता है न कुछ नहीं? वह सीमन्धर भगवान में आता है। अस्तिस्वभाव है, ऐसा आता है। सीमन्धर भगवान की स्तुति में आता है। अस्ति स्वभाव जो अपना रे... ऐसा आता है। आहाहा! अपने भजन में आता है। स्तवन मंजरी में, नहीं?

अस्तिस्वभाव अपना अर्थात्? जितनी सत्तावाला, उसका अस्तित्व है, वह अपना

स्वभाव है। वह स्वभाव अस्तिपना अपना स्वरूप, स्व-पर को जानना ऐसी शक्ति है और वह शक्ति पर्याय में प्रगट हुई, तब स्वपरप्रकाशक जानता है, वह तो आत्मज्ञ दशा है। आहाहा! जब ऐसा आत्मा लोकालोक को जाननेवाला, लोकालोक को स्पर्श किये बिना लोकालोक के अस्तित्व को छुए बिना अपने अस्तित्व में लोकालोक का ज्ञान है। आकाश जैसे सर्व को रखनेवाला है, वैसे भगवान भी सर्व को जाननेवाला है। समझ में आया? आकाश जैसे सर्व को रखनेवाला है, वैसे भगवान सर्व के ज्ञान को अपने से अपने में रखे, ऐसा है। ऐसा है, इसलिए उसे आकाश कहा जाता है।

लोकालोकप्रमाण जो आत्मा उसे आकाश भी कहते हैं,... देखो! **उसमें जो मन लगावे...** आहाहा! **तब जगत से मोह दूर हो...** जाये। परपदार्थ के प्रति सावधानी, स्व सन्मुख के सावधान में परसन्मुख का सावधानपना अस्त हो जाये, नष्ट हो जाये। आहाहा! परमात्मप्रकाश में भी... एक-एक गाथा। **मोह दूर हो और परमात्मा को पावे।** परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप जो आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप उसे प्राप्त करे। समझ में आया?

और वहाँ यह दृष्टान्त देते हैं। समाधिशतक में आता है न? परमात्मा का ध्यान करते-करते भी आत्मा परमात्मा हो जाता है और अपना ध्यान करने से जैसे बाँस रगड़कर स्वयं से अग्नि होती है, वैसे अपने में एकाग्र होकर ध्यानाग्नि प्रगट हो, उसमें भी कर्म का नाश होता है। देखो! पर के ध्यान से नाश होता है, यह तो निमित्त से कथन है। है न? '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' भगवान की पर्याय केवलज्ञान है, उस पर्याय का अस्तित्व पूर्णपना है, आत्मज्ञ है, वह सर्वज्ञ कथनभेद से कहने में आता है, विक्षाक्षाभेद से, पर को जानना उसमें नहीं आता। पर को जानना कहना, वह तो अशुद्धव्यवहारनय का वचन है। आहाहा! समझ में आया? इसमें कितना याद रहे इसमें? यह वस्तु ही ऐसी है कि यह याद रख सके। आहाहा! उसका पर्याय का धर्म ही ऐसा है। धारणा कहा न? मतिज्ञान की धारणा। वह तो उसका—मतिज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! और पाँच सेकेण्ड बाद जो पर्याय होनेवाली है, वह पर्याय इस पर्याय में नहीं और वह पर्याय पर्याय से है, ऐसा पर्याय का ज्ञान होने पर उसे (पाँच सेकेण्ड) पश्चात् विशेष होगा, उसे यहाँ याद रखने की आवश्यकता नहीं। समझ में

आया ? सूक्ष्म बात है। क्योंकि उस पर्याय में भविष्य की पर्याय होगी। वर्ष, दो वर्ष बाद, इस पर्याय में उसका ज्ञान है। वह यहाँ नहीं, वह इसमें नहीं, परन्तु इसके ज्ञान में है कि ऐसी पर्याय होगी। उसे धारणा की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! वह धारणा सहज हो जाती है। आहाहा! समझ में आया ? इससे उसे याद रखूँ तो यह सब रहे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा है न ? अवाय, वह तो मतिज्ञान की पर्याय है। वह तो मतिज्ञान की धारणा, वह तो उसका स्वभाव है। धार रखना, ऐसा कहाँ है ? वह तो उसका स्वभाव है न! सोगानी में आता है। समझ में आया ?

व्यवहारनयकर आत्मा ज्ञानकर सबको जानता है,... पर हो गया न वह ? पर-आश्रय व्यवहार, स्व-आश्रय निश्चय। पर को जानना, वह व्यवहार है। पर को-स्व को जाननेवाला अपना ज्ञान, उसे जानना, वह स्वनिश्चय है। समझ में आया ? आहाहा! उसमें ताकत है। ऐसा नहीं मानना कि हमको ऐसी बात कैसे बैठे ? अरे! केवलज्ञान ले सके, ऐसी सामर्थ्य है न! आहाहा! केवलज्ञान का पिण्ड प्रभु है न! उसे यह न धार सके और न प्रगट कर सके, यह इसमें है कहाँ ? आहाहा! समझ में आया ? आत्मा की जहाँ प्रतीति आयी, तब तो आत्मा में से केवलज्ञान होगा, यह भी प्रतीति में आ गया है। हें! आ गया है यह तो। आहाहा!

व्यवहारनयकर आत्मा ज्ञानकर सबको जानता है,... व्यवहार से हों, यह। **इसलिए सब जगत में हैं।** ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। कौन ? जाननेवाला आत्मा जगत में है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है, ऐसा। लोकालोक में कहा न! अपने में है, वह निश्चय है। **जैसे व्यवहारनयकर नेत्र रूपी पदार्थ को जानता है; परन्तु उन पदार्थों से भिन्न है।** रूपी पदार्थ है, मूर्त है, अग्नि है, लो न! यह ज्ञान जानता है। परन्तु ज्ञान अग्नि में प्रविष्ट होकर जानता है ? तब तो ज्ञान गर्म हो जाये। ज्ञान है अरूपी है, वह जड़ हो जाये। आहाहा! समझ में आया ?

जैसे नेत्र रूपी पदार्थ को जाने। अरूपी ज्ञान रूपी को जानता है। आहाहा! वह ज्ञान अपने में रहकर रूपी और दूसरी चीज़ जो स्वयं, उसे जानने की शक्तिवाला अपना ज्ञान अपने में है, उसे वह जानता है। आहाहा! रूपी पदार्थ तो यहाँ आते भी नहीं। अग्नि

को ऐसा जानता है कि यह अग्नि है। वह अग्नि यहाँ आती है? और ज्ञान की पर्याय अग्नि में जाती है? समझ में आया? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहा है न? इसका अर्थ यह है—राग में ज्ञान जाता नहीं, तथा राग ज्ञान में आता नहीं। इससे उसे जानना, वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा कहा है। आहाहा! क्या शैली है इनकी! आहाहा! व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है। अर्थात् कि ज्ञान की पर्याय में राग जो बाकी है और अपूर्ण है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। उस अल्पज्ञान में और राग में पूरा ज्ञान कहीं तन्मय नहीं हो जाता। आहाहा! पूरा गुण उसमें तन्मय हो जाता है? पर्याय में भी गुण तन्मय नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पर्याय, पर्याय में तन्मय है; पर्याय, गुण में तन्मय नहीं और गुण, पर्याय में तन्मय नहीं। आहाहा! ऐसी बात, बापू! यह तो मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ,...

यह परमात्मप्रकाश है न, इसलिए परमात्मा लोकालोक को प्रकाशित करते हैं, ऐसा कहना, वह एक प्रकार से अपने को प्रकाशित करते हैं, उसमें लोकालोक आ जाता है। लोकालोक अर्थात्? लोकालोक की सत्ता यहाँ आती नहीं, परन्तु उस सत्ता सम्बन्धी का अपना स्वपरप्रकाशक ज्ञान उसमें आ जाता है। आहाहा!

जैसे अग्नि को आँख देखते हुए आँख कहीं अग्नि में प्रविष्ट नहीं होती, परन्तु आँख आँख में, ज्ञान ज्ञान में रहकर अग्नि का ज्ञान करती है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। आहाहा! और अग्नि को जानने का स्वपर (प्रकाशक) स्वभाव जो ज्ञान में है, उसे अग्नि के अस्तित्व को स्पर्शे बिना, ऐसे ज्ञान का अस्तित्व है, उसे जानता है, वह निश्चय है। पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। ऐसी सब सूक्ष्म मुम्बई में नहीं रखी जाती। यह सब यह तो... वे कहते हैं, यह क्या कहते हैं? यह क्या लगायी है? बापू! तेरे गुण की-प्रभुता की लगायी है यह।

ज्ञान की पर्याय में इतनी सामर्थ्य है। इतनी सामर्थ्य है कि लोकालोक को स्पर्शे बिना और लोकालोक का अस्तित्व है, इसलिए उसका ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है।

आहाहा! एक प्रकार से देखें तो एक समय की पर्याय द्रव्य-गुण को, सब पर्यायों को और इसे (जाने), वह पर्याय का स्व-पर (प्रकाशकस्वभाव) अपने कारण ऐसा स्वभाव है। फिर होगा केवलज्ञान, इसलिए यहाँ बतलाते हैं, ऐसा भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : एक पर्याय का सामर्थ्य इतना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का सामर्थ्य इतना है। आहाहा!

श्रुतज्ञान में भी परोक्ष जानता है, उसका अर्थ क्या? भविष्य की पर्याय भी श्रुतज्ञान की पर्याय में जानने में आ जाती है। आहाहा! तथापि वह पर्याय उसमें आयी नहीं। उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना जो है, वह अपना ज्ञान उसमें आया है। आहाहा! इसलिए एक तो एकबार ऐसा विचार आया था कि यह पर्याय अकेली है, वही चीज़ है, बस। आहाहा! जिसमें द्रव्य-गुण का भी ज्ञान, अपना ज्ञान, अपना लोकालोक का (ज्ञान) वह लोकालोक के कारण नहीं, द्रव्य-गुण के कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य है। इतनी सत्ता है, उतनी सामर्थ्य की प्रतीति करे तो पर्याय की प्रतीति की कहलाये। समझ में आया? आहाहा!

जैसे व्यवहारनयकर नेत्र... रूपी पदार्थ का दृष्टान्त बहुत सरस दिया है। प्रवचनसार में है। आँख तो यह नहीं परन्तु अन्दर जाननेवाला है, वह तो अरूपी है और यह अग्नि है, वह तो रूपी है, अब इसे जानता है, उसका अर्थ क्या? अग्नि में जाकर जानता है? अग्नि यहाँ आती है, इसलिए ज्ञात होती है? समझ में आये ऐसा ही है। भाषा हो भले, आहाहा! यह अधिकार अन्तिम गाथायें, आकाश नाम का पदार्थ है, इसी प्रकार तू भी यह आकाश है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! इतना व्यापक लोकालोक को स्वयं अपने से जाने, दूसरे की अपेक्षा रखे बिना निश्चय से इतना जिसका सामर्थ्य है, उसमें जिसकी एकाग्रता हो, उसका मोह टूटे बिना नहीं रहता, कहते हैं। आहाहा!

निश्चयकर सर्वगत होवे,... क्या कहते हैं? निश्चय से जो सर्व को जाननेवाला हो, उसे सर्वगत। निश्चय से सर्वगत, **तो परपदार्थों से तन्मयी हो जावे,...** आहाहा! यहाँ बड़ा विवाद पड़ता है, सर्वज्ञ और आत्मज्ञ में। खानिया चर्चा। सर्वज्ञपना है, वह व्यवहारनय से है। निश्चयनय से नहीं। आहाहा! अरे प्रभु! निश्चयनय से ही सर्वगत

अर्थात् अपनी पर्याय का सबको जानना, ऐसी सामर्थ्य तो है, यह सर्वगत वह है। सर्वगत ऐसे जाता है और प्रवेश करता है, इसलिए सर्वगत है—ऐसा नहीं है। आहाहा! एक समय की पर्याय का सामर्थ्य ही सर्वगत है। आहाहा! समय कहाँ मिलता है इसे? दुनिया में वह बाहर की मोहजाल ने बाँध मारा है। आहाहा! जिसमें जन्मे, उसके प्रमाण में उसका स्तर रखना पड़ता है या नहीं इतना? अरे! यह स्तर... ?

मुमुक्षु : मनुष्यरूप से जन्मने की कहाँ बात है, यहाँ तो आत्मारूप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मनुष्यरूप है ही कहाँ यह? मनुष्यरूप से जन्मा है ही कब? आहाहा! यह तो यहाँ पर्याय का उत्पाद जो है, वह उसका जन्म है। आहाहा! उस पर्याय की सामर्थ्य श्रुतज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य भी स्व-पर को प्रकाशित करे, वह पर की अपेक्षा बिना प्रकाशित करे। वह तो परोक्ष और प्रत्यक्ष का अन्तर है केवलज्ञान में। आहाहा! समझ में आया? टीका ठीक की है परन्तु, हों! आहाहा!

निश्चयकर सर्वगत होवे,... अर्थात् क्या कहा? निश्चय से सर्व में यदि व्यापक हो, अपने प्रदेश और सत्ता को छोड़कर पर की सत्ता में प्रवेश करे तो परपदार्थ (के साथ) तन्मय हो जाये। आहाहा! **तो परपदार्थों से तन्मयी हो जावे, जो उसे तन्मयी होवे तो नेत्रों को अग्नि का दाह होना चाहिए,...** देखो! आँख ऐसे अग्नि को देखती है, वह आँख यदि तन्मय होकर जानती हो तो यहाँ उष्ण हो जाये, तो जल जाये। आहाहा! समझ में आया? **तन्मयी होवे तो नेत्रों को अग्नि का दाह होना चाहिए, इस कारण तन्मयी नहीं है।** अग्नि को जानने पर भी अग्नि में तन्मय (नहीं होता)। उसी प्रकार लोकालोक को जानने पर भी आत्मा लोकालोक में तन्मय नहीं है। आहाहा! अपनी पर्याय में तन्मय है। तन्मय—तत्स्वरूप। आहाहा! समझ में आया?

तो पर के सुख-दुःख से तन्मयी होने से... आहाहा! पर को जानने से पर में तन्मय होने से पर के सुख अपने में आ जायें। **इसको भी दूसरे का सुख-दुःख मालूम होना चाहिए, पर ऐसा होता नहीं है।** क्या कहते हैं यह? जैसे आँख है, वह अग्नि को जानने से अग्नि में यदि तन्मय हो तो आत्मा में अग्निपना आवे तो जल जाये पर्याय। मात्र अग्नि को स्पर्शे बिना, अग्नि का अस्तित्व है, उसे ज्ञान जानता है कि यह उष्ण है। यह

उष्ण है, यह ज्ञान जानता है। वह अपने ज्ञान से जानता है। अग्नि में उष्णता है, इसलिए जानता है—ऐसा नहीं है। आहाहा!

पर के सुख-दुःख से तन्मयी होने से... इसी प्रकार ज्ञान भी अग्नि की भाँति यदि नेत्र वहाँ देखे तो यहाँ जल जाये। इसी प्रकार आत्मा पर को तन्मय होकर जाने तो नारकी के दुःखों में तो तन्मय हो जाये तो उसका दुःख भोगना पड़े। आहाहा! **पर ऐसा होता नहीं है। इसलिए निश्चय से आत्मा असर्वगत है,...** लो, ठीक! **और व्यवहारनय से सर्वगत है।** सर्व को जानने की अपेक्षा से उपचारनय से। व्यवहारनय अर्थात् उपचारनय।

प्रदेशों की अपेक्षा निश्चय से लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है,... प्रदेश की अपेक्षा से असंख्यप्रदेशी है। **व्यवहारनयकर पात्र में रखे हुए दीपक की तरह देहप्रमाण है,...** व्यवहार से देहप्रमाण कहने में आता है। निश्चय से तो असंख्य प्रदेशी प्रमाण है, यह आत्मा। आहाहा! '**जैसे शरीर धारण करे, वैसा प्रदेशों का संकोच-विस्तार हो जाता है।**' '**जैसे शरीर धारण करे, वैसा प्रदेशों का संकोच-विस्तार हो जाता है।**' वह यह अपने कारण से, हों! संकोच-विकास हो, वह शरीर के कारण से नहीं। संकोच-विकास की पर्याय इस प्रमाण होती है, वह अपनी अपने से होती है, पर के कारण नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६५

अथ–

२८८) देहि वसंतु वि णवि मुणिउ अप्पा देउ अणंतु।
अंबरि समरसि मणु धरिवि सामिय णट्ठु णिभंतु।।१६५।।

देहे वसन्नपि नैव मतः आत्मा देवः अनन्तः।
अम्बरे समरसे मनः धृत्वा स्वामिन् नष्टः निर्भ्रान्तः।।१६५।।

देहि वसंतु वि इत्यादि। देहि वसंतु वि व्यवहारेण देहे वसन्नपि णवि मुणिउ नैव ज्ञातः कोडसौ। अप्पा निजशुद्धात्मा। किंविशिष्टः। देउ आराधनायोग्यः केवलज्ञानाघनन्तगुणाधारत्वेन देवः परमाराध्यः। पुनरपि किंविशिष्टः। अणंतु अनन्तपदार्थपरिच्छित्तिकारणत्वादविनश्वरत्वादनन्तः। किं कृत्वा। मणु धरिवि मनो धृत्वा। क्व अंबरि अम्बरशब्दवाच्ये पूर्वोक्तलक्षणे रागादिशून्ये निर्विकल्पसमाधौ। कथंभूते। समरसि वीतरागतात्त्विकमनोहरानन्दस्यन्दिनि समरसीभावे साध्ये। सामिय हे स्वामिन्। प्रभाकरभट्टः पश्चात्तापमनुशयं कुर्वन्नाह। किं ब्रुते। णट्ठु णिभंतु इयन्तं कालमित्थंभूतं परमात्मोपदेशमलभमानः सन् निर्भ्रान्तो नष्टोऽहमित्यभिप्रायः।।१६५।। एवं परमोपदेशकथनमुख्यत्वेन सूत्रदशकं गतम्।

आगे फिर प्रश्न करता है–

गुण अनन्तमय आत्मदेव देहस्थ किन्तु जो रहा अजान।
समता रसमय अम्बर में मन नहीं लगाकर किया विनष्ट।।१६५/२८८।।

अन्वयार्थः– [स्वामिन्] हे स्वामी, [देहे वसन्नपि] व्यवहारनयकर देह में रहता हुआ भी [आत्मा देवः] आराधने योग्य आत्मा [अनंतः] अनंत गुणों का आधार [नैव मतः] मैंने अज्ञानता से नहीं जाना। क्या करके [समरसे] समान भावरुप [अंबरे] निर्विकल्पसमाधि में [मनः धृत्वा] मन लगा कर। इसलिए अब तक [नष्टो निर्भ्रांतः] निस्संदेह नष्ट हुआ।

भावार्थः– प्रभाकरभट्ट पछताता हुआ श्री योगीन्द्रदेव से बिनंती करता है, कि हे स्वामिन् मैंने अब तक रागादि विभाव रहित निर्विकल्पसमाधि में मन लगाकर आत्म–देव नहीं जाना, इसलिए इतने काल तक संसार में भटका निजस्वरुप की प्राप्ति के बिना

मैं नष्ट हुआ। अब ऐसा उपदेश करें कि जिससे भ्रम मिट जावे।।१६५।।

इस प्रकार परमोपदेश के कथन की मुख्यता से दस दोहे कहे हैं।

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण ११, सोमवार
दिनांक- १४-०२-१९७७, गाथा - १६५-१६६, प्रवचन-२१६

परमात्मप्रकाश, १६५ गाथा। **आगे फिर प्रश्न करता है—**

२८८) देहि वसंतु वि णवि मुणिउ अप्पा देउ अणंतु।
अंबरि समरसि मणु धरिवि सामिय णट्ठु णिभंतु।।१६५।।

शिष्य का अन्दर का धगश का प्रश्न है। आहाहा! **हे स्वामी! व्यवहारनयकर देह में रहता हुआ...** व्यवहार से देह में है। वास्तव में तो स्वयं अपने में है। आहाहा! देह और आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, इसका अर्थ कि कुछ है नहीं। आहाहा! आत्मा, आत्मा में है; देह, देह में है। देह, आत्मा में नहीं; आत्मा, देह में नहीं। व्यवहार से देह में है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार से अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : देह में है, यह उपचार से कहा जाता है। व्यवहार अर्थात् उपचार। अयथार्थदृष्टि से कहा जाता है। आहाहा! वास्तविक तो आत्मा आत्मा में है, देह में है नहीं। आहाहा!

'देहे वसन्नपि' व्यवहारनयकर देह में रहता हुआ भी आराधनेयोग्य जो आत्मा... आहाहा! सेवनयोग्य तो यह आत्मा है। देखो न! शिष्य का प्रश्न यह है। देव-गुरु-शास्त्र की सेवा और वह तो सब शुभभाव है। शिष्य का प्रश्न ही यह है कि यह सेवनयोग्य जो भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, वह आराधनेयोग्य, वह देव है। आहाहा! कैसा है? **अनन्त गुणों का आधार...** अनन्त-अनन्त गुण का आधार वह वस्तु है।

मैंने अज्ञानता से नहीं जाना। है वस्तु, व्यवहार से शरीर में है, परमार्थ से अपने

में है। यह मैंने अपना अनन्त गुणस्वरूप... आत्मा कैसा है ? कि अनन्त गुणस्वरूप है। ऐसे आत्मा को मैंने नहीं जाना। आहाहा! **अज्ञानता से नहीं जाना।** ऐसा लिखा है, हों! कर्म के कारण से नहीं जाना, ऐसा नहीं लिखा। है न ? '**अनन्तपदार्थपरिच्छित्तिकारणत्वा-दविनश्वरत्वादनन्तः**' ऐसा लिखा है। अनन्त का स्पष्टीकरण ऐसा किया है। अनन्त गुण से अविनश्वर तत्त्व है। यह तो सब नाशवान क्षण में फू होकर उड़ जाते हैं। आहाहा! अनन्त गुण और अविनश्वर ऐसा मैं हूँ, आत्मा है। त्रिकाल नित्य शाश्वत् प्रभु अन्दर विराजता है। उसे **मैंने अज्ञानता से नहीं जाना।** ऐसा लिखा है। है न ? आहाहा! मेरे स्वरूप की शक्ति और सामर्थ्य कितना, कैसा है ? उसके अज्ञान के कारण मैंने उसे नहीं जाना। कर्म के कारण नहीं जाना और मोहकर्म अवरोध (था), इसलिए नहीं जाना, ऐसा नहीं लिखा। समझ में आया ?

क्या करके ? समान भावरूप निर्विकल्पसमाधि में मन लगा कर। आहाहा! जितने विकल्प हैं व्यवहार के, वे सब विषमभाव हैं। व्यवहाररत्नत्रय है, उसका विकल्प जो है राग, वह भी विषमभाव है। परन्तु समरसीभाव—विकल्प से रहित होकर समरसीभाव, उस निर्विकल्प समाधि से मैंने मन लगाया नहीं, देखा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। **समान भावरूप निर्विकल्पसमाधि...** समरस अर्थात् वीतरागभाव, निर्विकल्पपना। उसमें ऐसा कहा कि विकल्प जितने हैं व्यवहाररूप, उससे भी मैंने आत्मा को नहीं जाना। ऐसे विकल्प अनन्त बार किये, परन्तु उससे ज्ञात नहीं हुआ। मैं तो मेरे निर्विकल्प समताभाव से ज्ञात होऊँ, इस प्रकार से मैंने नहीं जाना। आहाहा! लो, यह मोक्षमार्ग में आता है न ? कि आत्मा पर से भिन्न है, वह पर को जाननेवाला वह मैं हूँ, तब तक तो आया है जीव, परन्तु मैं जो हूँ अनन्तगुण का धनी, वहाँ नहीं गया आगे। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। प्रवचनसार। आहाहा! यह आत्मा जैसे यह जानता है, वह सब चीज़, यह जाननेवाला मैं हूँ। यह जाननेवाला मैं हूँ, यहाँ तक तो आया था, कहते हैं। परन्तु यह विकल्प से जाननेवाला मैं हूँ और पर को जाननेवाला मैं हूँ, परन्तु मेरा स्वरूप ही पर को जानने का वह स्व को जानने का मेरा स्वभाव है। आहाहा! उसे मैंने नहीं जाना, मेरा मन उसमें लगा नहीं। है न ?

मन लगाकर। इसलिए अब तक निःसन्देह नष्ट हुआ। 'नष्टो निर्भ्रांतः' आहाहा!

भगवान आनन्दस्वरूप अन्दर ज्ञायकस्वरूप, वह समभाव से निर्विकल्प से ज्ञात हो, इस प्रकार से मैंने जाना नहीं, इसलिए नष्ट हुआ मैं। आहाहा! इसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी मैं तो नष्ट होता हूँ। आहाहा! यह निर्भ्रान्त दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? अन्तिम श्लोक है तो एकदम थोड़े शब्दों में भी (परम) सत्य को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त गुण का धनी आराधनायोग्य, उसे मैंने मेरे अज्ञान से नहीं जाना। अर्थात् कि मैं समरसी निर्विकल्प समाधि में मन लगाया नहीं। आहाहा! मेरा मन वहाँ बाहर में और बाहर में भटका करता है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, पाँच इन्द्रिय के विषय और यह परद्रव्य की ओर के झुकाव में मेरा झुकाव अनादि से रहा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु मेरा प्रभु अनन्त गुण का धनी ऐसा जो वाचक शब्द है, उसका वाच्य, अनन्त गुण का धनी प्रभु, उसे मैंने समरसीभाव से निर्विकल्प समाधि द्वारा कभी नहीं जाना, इसलिए मैं निर्भ्रान्त नष्ट हूँ। आहाहा! देखो! नौंवे ग्रैवेयक गया, तब अनन्त बार ऐसे पंच महाव्रत लिये थे। कहते हैं कि इस महाव्रत के विकल्प से तो मैं नष्ट हुआ हूँ। उससे मैं प्राप्त हुआ नहीं। जो प्राप्त होने की दशा चाहिए समरस... समरस... समता वीतराग पर्याय, निर्विकल्प रागरहित शान्ति में (उपयोग) लगाकर मैंने आत्मा को नहीं जाना। आहाहा! इसलिए निःसन्देह नष्ट हूँ। आहाहा! बहुत ही संक्षिप्त और अच्छी बात भरी है अन्दर। गागर में सागर है। आहाहा! ऐसा नहीं कहा कि मैंने देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति की नहीं, उसे मैंने माना नहीं, इसलिए मैं भटका। आहाहा!

मैं मेरा स्वरूप है, निर्विकल्प वीतरागी पर्याय से ज्ञात हो ऐसा। क्योंकि वह स्वयं अनन्त गुण का सागर वीतरागस्वरूप है। उसे वीतरागी पर्याय द्वारा—निर्विकल्प समाधि द्वारा मैंने उसमें मन को लगाया नहीं। इसलिए मैं निःसन्देह भ्रष्ट हूँ। आहाहा! इतना तो ख्याल शिष्य को हो, उसका प्रश्न है और उसे उत्तर देते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! देवाधिदेव है भगवान। आहाहा! अनन्त गुण का सागर वस्तु है। स्व-रूप से है और पर के अनन्तरूप से नहीं, ऐसे तो अनन्त धर्म उसे अपेक्षित पड़े हैं और स्वतः सामान्य जो गुण हैं, विशेष हैं, वह तो स्वतः ऐसे अनन्त गुण का सागर, उसे

जानने के लिये तो समताभावरूपी निर्विकल्प समाधि चाहिए। आहाहा! ऐसा नहीं कहा कि इतना उसे शास्त्र का ज्ञान चाहिए, इतनी उसे आचरण की क्रिया चाहिए। समझ में आया? उसके योग्य हो, तब जिनेश्वरदेव की भक्ति होती है, उसे नौ तत्त्व की विकल्पवाली श्रद्धा होती है, ऐसा हो, परन्तु वह कोई साधन नहीं। आहाहा! यहाँ तो समरसी निर्विकल्प समाधि, वह साधन है। समझ में आया?

लोग कहे, परन्तु अभी जहाँ पाप में से बचे नहीं, पुण्य में आये बिना यह कहाँ ले जाना है? बापू! यह तो धर्म की बात है। धर्म करना हो तो इस प्रकार से होता है। बाकी तो पूरी दुनिया सब करती है। वे ऐसा कहते थे। हम चौबीसों घण्टे संसार में पाप में पड़े हैं। उसे पाप से छुड़ाकर (पुण्य में तो लाओ), परन्तु मिथ्यात्व, वह पाप नहीं? तेरे अघाति के शुभभाव को करना है और अघाति के अशुभ को टालना है, उससे बचना है, परन्तु वह कुछ वस्तु नहीं। आहाहा! इससे यहाँ समभाव लिया है। है न?

'**समरसे अंबरे**' समरसरूपी निर्विकल्प शान्ति। आहाहा! उस द्वारा मैंने आत्मा को जाना नहीं। आहाहा! इतनी क्रिया नहीं कर सका, इसलिए नहीं जाना या शास्त्र का ज्ञान नहीं किया, इसलिए नहीं जाना, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समरसीभाव, समताभाव, वीतरागी पर्याय जो निर्विकल्प शान्ति है, उस द्वारा मैंने आत्मा को नहीं जाना। वैसे तो शास्त्र में आता है तो आत्मा को जाना है। नहीं जाना आत्मा को? समझ में आया? शास्त्र में आता है कि आत्मा ऐसा है। ग्यारह अंग पढ़ गया, उसमें नहीं आता? आहाहा! अभव्य को भी नहीं ग्यारह अंग में आता आत्मा, उसके ज्ञान में? आहाहा! यह शुभ-अशुभ विकल्प से, राग से रहित समरस, शान्तरस, उपशमरस—ऐसा अकषायभाव निर्विकल्प शान्ति, उससे मैंने नहीं जाना। इसलिए मैं '**नष्टो निर्भ्रांतः**' आहाहा! यह शुभभाव से भी मैं नष्ट हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अनन्त बार शुभभाव किये, परन्तु समभाव से जाना नहीं, इसलिए (शुभभाव में) भी यह निर्भ्रान्त आत्मा नष्ट होता है। आहाहा! शैली, वह शैली तो देखो! समझ में आया? ऐसे तो शास्त्र ज्ञान करे, वाँचे तो नवतत्त्व वाँचे तो उसमें आत्मा कैसा है, यह नहीं आता उसे? परन्तु उस आत्मा को जानने को समरसी निर्विकल्प दृष्टि चाहिए, वह नहीं की। आहाहा!

जाननेवाले को जाना नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यमूर्ति आराधनेयोग्य, सेवनयोग्य प्रभुता की दृष्टि से उसका सेवन करना कहते हैं। आहाहा! समरसभाव से। वह मैंने नहीं किया, (इसलिए) नष्ट हुआ हूँ। आहाहा! कर्म से नष्ट हुआ हूँ, ऐसा भी नहीं कहा। आहाहा! शैली तो देखो!

मुमुक्षु : पुण्य-पाप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसा कहते हैं न बहुत मुझे कहते हैं। फूलचन्दजी लिखते हैं, वे ऐसा कहते हैं, करणानुयोग के जाननेवाले... स्वयं फिर बेचारे लिखे कि बात आप जानते हो, वैसा मैं नहीं जानता। परन्तु इस करणानुयोग में इसका अर्थ ऐसा है, वह आप वाँचो, ऐसा कहा फूलचन्दजी ने। फूलचन्दजी अभी शास्त्र में एकदम बहुत निपुण हैं। उसमें उन्होंने बहुत वाँचा हुआ है। वे लोग ठहराते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा है।... ठहरे हैं। और आप कहते हो कि कर्म के क्षय से केवल (ज्ञान) नहीं होता। कर्म तो अज्ञान में निमित्त था, वह निमित्त टला, इसलिए वह अज्ञान टला। व्यय हुआ। परन्तु उत्पाद हुआ जो केवलज्ञान का... भाई! यह लिखा था न? ऐसा कि कर्म का अभाव है तो केवल (ज्ञान) हुआ, ऐसा तुमने क्यों नहीं माना? कर्म का भाव है तो अज्ञान है और कर्म का अभाव है तो केवलज्ञान है। ऐसा लेना चाहिए न? आहाहा! उन्होंने जवाब दिया, बापू! कर्म का अभाव है, वह बराबर है। परन्तु कर्म का अभाव होकर हुआ क्या परमाणु में? अकर्मरूप परिणमन हुआ। वह तो परमाणु में हुआ भावान्तर पलटकर। समझ में आया? उसका भावान्तर पलटा, वह दूसरे प्रकार से हुआ। आहाहा! अज्ञानभाव में से पलटकर ज्ञानभाव में आया, वह तो अपने उपादान से आया है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातों में—झगड़ों में रुके और उसका जवाब देना और उसके उत्तर देना। आहाहा! परमसत्य ही यह है। आहाहा! तीनों काल का यह एक सिद्धान्त। शिष्य के मुख में से निकला है। वह शिष्य सुनने के योग्य है और वह पूछता है।

मैंने मेरे समभाव से आत्मा को नहीं जाना। मैंने मेरे वीतरागी निर्विकल्प शान्ति से आत्मा को नहीं जाना और इससे विकल्प में मेरा आत्मा निर्भ्रान्त भ्रष्ट है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानावरणीय कर्म के कारण, मोहनीय कर्म के कारण भ्रष्ट है—ऐसा

नहीं कहा। ऐसा विवाद वह विवाद, अरे! प्रभु! क्या करना है तुझे भाई! आहाहा! 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' स्वयं ऐसी चीज़ है, उसे नहीं जाना, वह तो तेरा अपना अपराध है। तब वे लोग कहते हैं कि नहीं, कर्म के कारण अपराध है। ऐसा है। बात-बात में अन्तर है। बहुत अन्तर, भाई!

वास्तव में तो अपनी पर्याय जो है अल्पज्ञ, उसका व्यय होकर केवलज्ञान का उत्पाद हुआ है। वह समकाल में है। समझ में आया? कर्म का अभाव होकर होता है, वह तो परद्रव्य की अपेक्षा हुई। आहाहा! वह लिखा है न, जैनतत्त्व मीमांसा में। कारणक्षया वह है। उपादान-कारण का क्षय होने से उपादेय होता है। ऐसा कहते हैं। उपादान से सीधे होता है, ऐसा नहीं। कार्यक्षया। आहाहा! इसलिए इसका अर्थ कि पूर्व की पर्याय के क्षय से कार्य होता है पर्याय में। आहाहा! अब उसके बदले कर्म के क्षय से पर्याय केवल (ज्ञान) होता है, वह तो सब व्यवहार की उपचारिक बातें हैं। आहाहा! समझ में आया? इस प्रश्न में ही गम्भीरता है।

उत्पन्न कैसे होता है? और भटका कैसे? दोनों बातें इसमें से सिद्ध होती हैं। आहाहा! भटका क्यों? समरसी निर्विकल्प समाधि से मैंने नहीं जाना, इसलिए मैं भटका हूँ और वह निर्विकल्प समाधि प्रगटे कैसे? कर्म की मन्दता हो या कषाय मन्द हो, वह बात नहीं ली। सीधे समभाव से जानना चाहिए, विकल्परहित से जानना चाहिए। आहाहा! व्यवहार के विकल्प हैं, उससे भी रहित होकर जानना चाहिए। उसके सहित से ज्ञात हो, यह बात तो है नहीं। आहाहा! अरेरे! शास्त्र के भाव को भी अपनी दृष्टि को पोषण करने के लिये दूसरे अर्थ करना, ऐसा नहीं होता, भाई! भगवान को तो ऐसा कहना है। आहाहा! उनके शिष्य कैसे और गुरु कैसे, देखो न! उनकी बात स्वीकार रखते हैं कि तेरी बात सच्ची है। अज्ञानरूप से समरसीभाव से आत्मा को जानना चाहिए, उससे ज्ञात हो उस प्रकार से तूने जाना नहीं। तू कहता है, वह बात बराबर है। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ—प्रभाकर भट्ट पछताता हुआ... है न? पश्चाताप करता हुआ। संस्कृत में है। '**प्रभाकरभट्टः पश्चात्तापमनुशयं कुर्वन्नाह।**' क्या कहते हैं? शिष्य को पश्चाताप

हुआ है, इससे यह प्रश्न करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरेरे! मेरे समभाव से मैंने मुझे नहीं जाना और इससे भ्रष्ट होकर मैं चार गति में भटकता हूँ। आहाहा! अरे! मुझे कर्म ने भटकाया और कर्म हटे तो मुझे लाभ हो, तो मैं आत्मा को जान सकूँ, ऐसा प्रश्न उसे नहीं है। आहाहा! कहो, चेतनजी! यह है या नहीं? प्रश्न में तो यह है। इसमें किसके साथ? भाई! तेरी भूल से तू भटका है। भूल कर्म ने करायी है, ऐसा नहीं। भूल का कर्ता, कर्म, करण स्वयं जीव की पर्याय है। आहाहा! उसमें जब समरसीभाव से ज्ञात हो, तब वह विषमभाव व्यय हो जाता है। समझ में आया? और पर के अभाव से हुआ, वह तो कहीं रह गया, परन्तु व्यय से उत्पाद हुआ, यह भी व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! मेरे विषमभाव के कारण से मुझे आत्मा का ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह तो एकदम सम्यग्दर्शन और उसका विषय आत्मा की बात है। समझ में आया? यह कोई दूसरे प्रकार से प्राप्त हो, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करने से उनकी कृपा हो जाये तो प्राप्त हो, बड़े पुरुष की कृपा हो जाये तो प्राप्त हो, ऐसा नहीं होगा? आहाहा! बड़ा पुरुष तो तू है। आहाहा! यह महत्ता की मान्यता तुझे आवे तो उस महत्ता की तेरी महिमा सच्ची। आहाहा! समझ में आया? कहो, हरजीवनभाई! हरजीवन है— प्रत्येक समय जीवित जाति है। आहाहा! उसे समभाव से ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ है। विकल्प से और व्यवहार से, गुरु से ज्ञात हो, तो इसमें ऐसा नहीं आया? वाणी से ज्ञात हो नहीं, देव-गुरु और शास्त्र से ज्ञात हो नहीं। आहाहा! ऐई! तुम भगवान की वाणी से ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हो। अरे! प्रभु! सुन न भाई! यह सब व्यवहार के कथन बहुत होते हैं और दिव्यध्वनि भी अनन्त बार सुनी। समवसरण में भव-भव में भगवान की पूजा की। भाई! वह वस्तु नहीं, वह प्राप्त करने की वस्तु नहीं। प्राप्त करने की वस्तु तो राग से हटकर समभावरूपी निर्विकल्प दृष्टि से ज्ञात हो, ऐसा वह है। आहाहा! क्योंकि निर्विकल्प वीतरागी स्वरूप है वह तो। आहाहा! समझ में आया?

योगीन्द्रदेव से विनंती करता है,... प्रभाकर भट्ट पछताता हुआ,... पश्चातापपूर्वक **योगीन्द्रदेव (गुरु) से विनंती करता है, कि हे स्वामिन् मैंने अब तक रागादि विभावरहित निर्विकल्प समाधि में मन लगाकर आत्मदेव नहीं जाना,...** आहाहा! क्या परन्तु? थोड़े

शब्दों में (बहुत भरा)! शिष्य को इतनी स्वीकृति स्वयं से आयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! मैंने मेरे आत्मा को मेरे समभाव से अर्थात् कि विकल्प से रहित... है न पहला? निर्विकल्प समाधि, उससे रहित, इससे सहित। आहाहा! रागादि विभावरहित, निर्विकल्प समाधिसहित मैंने निर्विकल्प में मन लगाकर, आहाहा! **आत्मदेव नहीं जाना,...** इसका अर्थ यह कि वह स्वयं वीतरागी पर्याय द्वारा ही ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह वीतरागी पर्याय है। आहाहा! उससे प्रभु ज्ञात हो, ऐसा है। किसी शास्त्रज्ञान से भी ज्ञात नहीं होता, दिव्यध्वनि से ज्ञात नहीं होता। आहाहा! बाह्य के सत्संग से भी ज्ञात नहीं होता। उसका परम सत् है, उसका समभाव से संग करे तो ज्ञात होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सब बाह्य के साधन उड़ा देते हैं, एक भी रहने नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। कहो, फूलचन्दजी! यह सब साधन तुम्हारे यात्रा-बात्रा के अन्तरिक्ष के, अन्तरिक्ष नहीं, उसे क्या कहा जाता है? मक्षी। मक्षी के मन्त्री हैं न? आहाहा!

मैंने महा प्रभु को समरसीभाव से अर्थात् कि रागरहित और समरसी अस्ति। राग की नास्ति और समरस की अस्ति, उस द्वारा मैंने नहीं जाना। आहाहा! और उस द्वारा ही ज्ञात हो, ऐसा वापस, ऐसा कि उस द्वारा न जाना, इसका अर्थ? उस द्वारा ही ज्ञात होता है, दूसरे प्रकार से ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

इसलिए इतने काल तक... आहाहा! अनादि से काल अभी तक प्रभु अनन्त काल। आहाहा! **संसार में भटका...** सब शब्दार्थ अन्दर... तात्त्विक शब्द पड़ा है न उसमें? समरसी का अर्थ किया है, नहीं? वीतरागता। '**वीतरागतात्त्विकमनोहरानन्दस्यन्दिनि**' आहाहा! सब शब्द नहीं डाले इन्होंने। '**वीतरागतात्त्विक**' है न? '**मनोहरानन्दस्यन्दिनि**' ऐसा समरसीभाव। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, ऐसा समरसीभाव। आहाहा! राग के स्वाद से रहित समरसी के भाव से जानने में आवे, वह समरसी आनन्द के स्वादवाली दशा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश ने तो गजब काम किया है! आहाहा!

मन लगाकर आत्मदेव नहीं जाना,... परदेव नहीं जाने और परगुरु नहीं जाने, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! आत्मदेव 'वह दिव्य अन्तःतत्त्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो।' आहाहा! आता है न श्रीमद् में? 'बहु पुण्य...' दिव्यशक्ति अर्थात् लिया न, अनन्त गुण का आधार? दिव्य शक्तियों का आधार अनन्त गुण का नाथ प्रभु, अरे! उसकी क्या व्याख्या और उसकी क्या टीका! यह वस्तु तो अलौकिक वस्तु है! आहाहा! वाणी में आवे नहीं, विकल्प से ज्ञात नहीं हो, मन के सम्बन्ध से ज्ञात नहीं हो, शुभविकल्प से ज्ञात नहीं हो, देव-गुरु की वाणी से ज्ञात नहीं हो। आहाहा! लोग बेचारे ऐसा कहे, हों! वास्तव में...

मुमुक्षु : एक भी साधन नहीं रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह साधन था ही कहाँ? आहाहा!

साधन तो रागरहित समरसीभाव, वह साधन। साधन और साध्य दोनों एक समय में हैं। वह पर्याय साधन और पर्याय कर्म—कार्य एक समय में ही है। आहाहा! द्रव्य को कारण कहना, वह भी एक उपचारिक कथन है। आहाहा! बाकी तो पर्याय और समरसी की पर्याय, आहाहा! उससे ज्ञात हुआ, वह समरसी की पर्याय कर्ता होकर कार्य उस समय में लिया है। उस समय में साधन होकर साध्य जो पर्याय, उस समय प्रगट हुई है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! सत्य के भाव कोई अलग प्रकार के जगत से, भाई! आहाहा! कहाँ चला जाये आत्मा देह छोड़कर। आहाहा! कोई क्षेत्र, काल, भाव... आहाहा! कुछ नहीं होता। आहाहा! जिनके लिये पाप किये, रुका, वे भी पड़े रहे उसमें।

मुमुक्षु : उसके साथ जाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे जीते जी तो मेरा सेवन करे, तब तक तो भाव हो। आहाहा! कौन करे, प्रभु सेवा? शरीर की सेवा करे या तेरी करे? शरीर, वह जड़ है, उसकी क्या हो? और तू अरूपी है, तेरी सेवा क्या हो? तेरी सेवा तो समरसीभाव की सेवा हो, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : वह तो स्वयं से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यहाँ कहते हैं, मैंने मेरे देव की सेवा नहीं की। समरसी निर्विकल्प समाधि से सेवन करना चाहिए, वह मैंने सेवन नहीं किया। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा कहा करे तो इससे कुछ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा करे नहीं, अन्दर भाव में ही आवे। वाणी में क्या है? वाणी तो वाचक है। आहाहा! उसके भाव में आवे, ऐसा यहाँ कहते हैं। वाचक तो शब्द है, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? वाच्य जो है समरसी, उसे अभी श्रद्धा में भी दिक्कत, विकल्प से ज्ञाता हो और इससे, वह तो अभी शब्द का वाचक है, उसमें भी उसे दिक्कत। आहाहा! वहाँ रुका, वह अन्दर में जा कैसे सकता है? आहाहा! समझ में आया?

इसलिए इतने काल तक संसार में भटका....

मुमुक्षु : किस कारण से भटका, वह तो स्वयं ने जान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जान लिया परन्तु तब अब जानकर किया नहीं न वापस। वह तो ख्याल में आयी बात। समझ में आया? परन्तु समरसी भाव किया नहीं, इसलिए भटका, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर कुछ कहने का रहता नहीं, उसने ही कहा कि समरसी भाव से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं। वह तो कहते हैं। यह तो उसने समरसी से जाना नहीं, इसलिए मुझे अब बतलाओ, ऐसा कहता है। दूसरी बात मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! ऐसा तो उसका प्रश्न ही यह है, देखो न! आहाहा! क्या कहा, देखा!

निजस्वरूप की प्राप्ति के बिना मैं नष्ट हुआ। आहाहा! मेरे स्वरूप को समझे बिना मैं (भटका)। श्रीमद् में भी ऐसा आया न? 'जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनन्त।' उसमें यह आया है। ऐसा नहीं कि मैंने क्रिया नहीं की व्यवहार की, गुरु की सेवा नहीं की और मैंने सुना नहीं। ऐसा नहीं। आहाहा! स्वरूप को समझे बिना पाया दुःख अनन्त। समझाया, वह निमित्त से कथन है। समझा, यह उपादान से। आहाहा! 'समझाया उन पद नमूँ श्री सद्गुरु...' सत्-गुरु स्वयं भगवान है। आहाहा! उसे... समझ में आया?

निजस्वरूप की प्राप्ति के बिना मैं नष्ट हुआ। अब ऐसा उपदेश करे... देखो!

जाना है, मैंने ऐसा किया, परन्तु मुझे अब ऐसा उपदेश ऐसा दो कि वह मुझे समभाव प्रगट हो। गुरु निमित्त से बात करते हैं न? **जिससे भ्रम मिट जावे।** ऐसा उपदेश करो कि भ्रम मिट जाये। एक ओर कहते हैं, उपदेश से भी मिलता नहीं, समरसी से मिलता है। शैली ही ऐसी हो व्यवहार की। आहाहा! मैंने समरसभाव नहीं किया, इसलिए नष्ट हुआ। तब ऐसा उपदेश मुझे दो... आहाहा! कि **भ्रम मिट जावे।** कहो, समझ में आया? **जिससे (उपदेश से) भ्रम मिट जावे।** देखो भाषा ऐसी है। **ऐसा उपदेश करे कि जिससे भ्रम मिट जावे।** उसकी अपनी भावना में ऐसा है कि भ्रम मिट जाये, ऐसा भाव मुझे चाहिए। समझ में आया? आहाहा! उपदेश तो सुनने की बात है। आहाहा!

इस प्रकार परमोपदेश के कथन की मुख्यता से दस दोहे कहे हैं। लो!

गाथा - १६६-१६७

अथ परमोपशमभावसहितेन सर्वसंगपरित्यागेन संसारविच्छेदं भवतीति युग्मेन निश्चिनोति–

२८९) सयल वि संग ण मिल्लिया णवि किउ उवसम–भाऊ।
सिव–पय–मग्गु वि मुणिउ णवि जहिं जोइहिँ अणुराउ।।१६६।।

२९०) घोरु ण चिण्णउ तव–चरणु जं णिय–बोहहं सारु।
पुण्णु वि पाउ वि दड्ढु णवि किमु छिज्जइ संसारु।।१६७।।

सकला अपि संगाः न मुक्ताः नैव कृत उपशमभावः।
शिवपदमार्गोऽपि मतो नैव यत्र योगिनां अनुरागः।।१६६।।

घोरं न चीर्णं तपश्चरणं यत् निजबोधस्य सारम्।
पुण्यमपि पापमपि दग्धं नैव किं छिद्यते संसारः।।१६७।।

सयल वि इत्यादि। सयल वि समस्ता अपि संग मिथ्यात्वदिचतुर्दशभेदभिन्ना आभ्यन्तराः क्षेत्रवास्तवादिबहुभेदभिन्ना बाह्या अपि संगाः परिग्रहाः ण मिल्लिया न मुक्ताः। पुनरपि किं न कृतम्। णवि किउ उवसम–भाऊ जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखा– दिसमताभावलक्षणो नैव कृतः उपशमभावः। पुनश्च किं न कृतम्। सिव–पय–मग्गु वि मुणिउ णवि ''शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयम्। प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः।।'' इति वचनात् शिवशब्दवाच्यो योऽसौ मोक्षस्तस्य मार्गोऽपि न ज्ञातः। कथंभूतो मार्गः। स्वशुद्धात्मसम्यक्–श्रद्धानज्ञानानुचरणरुपः। यत्र मार्गे किम्। जहिं जोहहिं अणुराउ यत्र निश्चयमोक्षमार्गे परमयोगिना–मनुरागस्तात्पर्यम्। न केवलं मोक्षमार्गोऽपि न ज्ञातः। घोरु ण चिण्णउ तव–चरणु घोरं दुर्धरं परीषहोपसर्गजयरुपं नैव चीर्णं न कृतम्। किं तत्। अनशनादिद्वादशविधं तपश्चरणम्। यत्कथंभूतम्। जं णिय–बोहहं सारु यत्तपश्चरणं वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनलक्षणेन निजबोधेन सारभूतम्। पुनश्च किं न कृतम्। पुण्णु वि पाउ वि निश्चयनयेन शुभाशुभनिगलद्वयरहितस्य संसारिजीवस्य व्यवहारेण सुवर्णलोह–निगलद्वयसदृशं पुण्यपापद्वयमपि दड्ढु णवि शुद्धात्मद्रव्यानुभवरुपेण ध्यानाग्निना दग्धं नैव। किमु छिज्जइ संसारु कथं छिद्यते संसार इति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा निरन्तरं शुद्धात्मद्रव्यभावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१६६–१६७।।

आगे परमोपदेस भाव सहित सब परिग्रहका त्याग करने से संसार का विच्छेद होता है, ऐसा दो दोहे में निश्चय करते हैं–

सकल संग परित्याग किया नहिं और किया नहिं उपशमभाव।
योगीजन आसक्त जहाँ हैं जाना नहिं मैंने शिवमार्ग।।१६६/२८९।।

आत्मज्ञान का सारभूत जो तपश्चरण भी नहिं किया।
दग्ध किये नहिं पुण्य–पाप तो कैसे हो संसार विनष्ट।।१६७/२९०।।

अन्वयार्थः– [सकला अपि संगाः] सब परिग्रह भी [न मुक्ताः] नहीं छोडे, [उपशमभावः नैव कृतः] समभाव भी नहीं किया [यत्र योगिनां अनुरागः] और जहाँ योगीश्वरों का प्रेम है, ऐसा [शिवपदमार्गोऽपि] मोक्ष–पद भी [नैव मतः] नहीं जाना, [घोरं तपश्चरणं] महा दुर्धर तप [न चीर्णं] नहीं किया, [यत्] जो कि [निजबोधेन सारम्] आत्मज्ञानकर शोभायमान है, [पुण्यमपि पापमपि] और पुण्य तथा पाप ये दोनों [नैव दग्धं] नहीं भस्म किये, तो [संसार] संसार [किं छिघते] कैसे छूट सकता है?

भावार्थः– मिथ्यात्व, (अतत्त्व श्रद्धान) राग, (प्रीतिभाव दोष) दोष, (वैरभाव) वेद, (स्त्री, पुरुष, नपुंसक) क्रोध–मान–माया–लोभरुप चार कषाय, और हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि–ये चौदह अंतरंग परिग्रह, क्षेत्र, (ग्रामादिक) वास्तु, (गृहादिक) हिरण्य, (रुपया, पैसा, मुहर आदि) सुवर्ण, (गहने आदि) धन, (हाथी, घोड़ा, आदि) धान्य, (अन्नादि) दासी, दास, कुप्य (वस्त्र तथा सुगंधादिक), भांड (बर्तन आदि) ये दस तरह के बाहर के परिग्रह, इस प्रकार बाह्य अभ्यंतर परिग्रह के चौबिस भेद हुए, इनको नहीं छोड़ा। जीवित, मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभादि में समान भाव कभी नहीं किया, कल्याणरुप मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र भी नहीं जाना। निजस्वरुप का श्रद्धान, निजस्वरुप का ज्ञान और निजस्वरुप का आचरण निश्चयरत्नत्रय तथा नव पदार्थों का श्रद्धान, नव पदार्थों का ज्ञान और अशुभ क्रिया के त्यागरुप व्यवहाररत्नत्रय– ये दोनों ही मोक्ष के मार्ग हैं, इन दोनों में से निश्चयरत्नत्रय तो साक्षात् मोक्ष का मार्ग है, और व्यवहाररत्नत्रय परम्पराय मोक्ष का मार्ग है। ये दोनों मैंने कभी नहीं जाने, संसार का ही मार्ग जाना। अनशनादि बारह प्रकार का तप नहीं किया, बाईस परीषह नहीं सहन की। तथा पुण्य सुवर्ण की बेड़ी, पाप लोहे की बेड़ी, ये दोनों बंधन निर्मल आत्मध्यानरुपी

अग्नि से भस्म नहीं किये। इन बातों के बिना किये संसार का विच्छेद नहीं होता, संसार से मुक्त होने के ये ही कारण हैं। ऐसा व्याख्यान जानकर सदैव शुद्धात्मस्वरुप की भावना करनी चाहिए।।१६६-१६७।।

गाथा-१६६-१६७ पर प्रवचन

आगे परमोपदेस भावसहित... यह शब्द में अन्तर पड़ गया है। उपशम चाहिए। यहाँ परमोपदेशभाव है न, वहाँ परम उपशम चाहिए। '**परमोपशमभावसहितेन**' संस्कृत में है। परन्तु वह उपदेश, उपदेश लिखा हुआ है न, इसलिए उपदेश कर दिया है। **आगे परमोपदेस भावसहित सब परिग्रह का त्याग करने...** एकदम मुनिपने की बात करते हैं। चारित्र है, वह मुक्ति का सीधा कारण है न! इसलिए चारित्र की प्राप्ति कैसे हो? सम्यग्दर्शन होने पर भी उस चारित्र की प्राप्ति की व्याख्या है। **परमोपदेस (उपशम) भावसहित सब परिग्रह...** अकेला परिग्रह का त्याग करे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। परमउपशमभावसहित। आहाहा! समझ में आया? वे कहे, वह परिग्रह का त्याग करे, इसलिए यहाँ उपशमभाव होता है, समभाव होता है। प्रतिक्रमण में आया न? द्रव्य का त्याग करे तो भाव का त्याग हो। यह तो ऐसा कहते हैं, भाव के त्याग के लिये पर के त्याग का कथन है। वहाँ तो ऐसा है। आहाहा! अरे! शास्त्र की शैली को भी पलटा डालना! भगवान का आशय क्या है सन्तों का, उसकी पद्धति को बदल डालना, यह जीव का साहस कितना है!

परमउपशमभावसहित सब परिग्रह का त्याग करने से... ऐसा करके ऐसा कहा कि बाह्य त्याग तो अनन्त बार किया, परन्तु उपशमभावसहित असद्भूतव्यवहार से पर का त्याग किया नहीं इसने। उपशमभाव हुआ तो पर का त्याग असद्भूतव्यवहारनय से कहलाता है। परन्तु जहाँ उपशमभाव हुआ ही नहीं, वहाँ पर का त्याग उपशमभाव से कहाँ है उसे? आहाहा! सबमें ऐसा है।

मुमुक्षु : उपदेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश है? सबमें नये में भी? उपशम चाहिए।

परम उपशमभावसहित **सब परिग्रह का त्याग...** परिग्रह शब्द से रागादि, मिथ्यात्वादि है न? चौदह प्रकार का अभ्यन्त परिग्रह और दस प्रकार का बाह्य, सब। आहाहा! परम उपशमभावसहित रागादि परिग्रह का त्याग, ऐसा। अन्दर में। बाह्य से निमित्त स्त्री, कुटुम्ब और परिवार, वह हेतु बाह्य। **त्याग करने से संसार का विच्छेद होता है, ऐसा दो दोहे में निश्चय करते हैं—**

२८९) सयल वि संग ण मिल्लिया णवि किउ उवसम-भाऊ।
सिव-पय-मग्गु वि मुणिउ णवि जहिं जोइहिँ अणुराउ।।१६६।।

२९०) घोरु ण चिण्णउ तव-चरणु जं णिय-बोहहं सारु।
पुण्णु वि पाउ वि दड्ढु णवि किमु छिज्जइ संसारु।।१६७।।

यह तो संस्कृत भी नहीं। चलती भाषा नहीं इसकी? संस्कृत भी नहीं। उनकी अपनी जो भाषा होगी न, उसमें कर दिया।

अन्वयार्थः—गुरु उत्तर देते हैं। **सब परिग्रह भी नहीं छोड़े,...** आहाहा! **और समभाव भी नहीं किया और जहाँ योगीश्वरों का प्रेम है, ऐसा मोक्ष-पद भी नहीं जाना,...** आहाहा! सन्तों का प्रेम तो मोक्ष में है, कहते हैं। मुनियों का प्रेम मोक्ष में है। मुनियों का प्रेम परद्रव्य में नहीं, राग में नहीं, व्यवहाररत्नत्रय में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उपशमभाव **समभाव भी नहीं किया... 'यत्र योगिनां अनुरागः' और जहाँ योगीश्वरों का प्रेम है, ऐसा मोक्ष-पद भी नहीं जाना,...** सन्तों को तो मोक्षमार्ग का प्रेम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सन्तों को राग का, व्यवहाररत्नत्रय का प्रेम नहीं। आहाहा! और व्यवहाररत्नत्रय आता है, उसका प्रेम नहीं, रुचि नहीं। आहाहा! तो उसके फलरूप से स्वर्ग है, उसकी रुचि नहीं। आहाहा! देवपद मिलेगा, उसका भी प्रेम नहीं। और उसका जिसे प्रेम है, उसका कारण शुभराग का भी प्रेम है, उसे वीतरागभाव का प्रेम नहीं। आहाहा!

श्रीमद् में तो ऐसा आता है, जैसा स्त्री, परिवार, धन्धे के प्रति प्रेम है, उससे विशेष प्रेम जिसे देव-गुरु-शास्त्र में नहीं आता, वह अनन्तानुबन्धी का उदय है। जैसा पैसे में प्रेम, पुत्र में प्रेम, स्त्री, पुत्र की बहू को देखकर भी प्रसन्न होता है। हें! नाम

बुलावे तो प्रसन्न होता है। आहाहा! उसका जिसे प्रेम है, उसे देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम नहीं। अथवा जितना वहाँ प्रेम है, उतना प्रेम यहाँ चाहिए, इससे विशेष चाहिए, वह नहीं। यह तो दो में से दशा पलटाने की बात है। बाकी तो देव-गुरु-शास्त्र के प्रति प्रेम जिसे नहीं, सन्तों को तो मोक्ष के प्रति प्रेम है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! अब यह वह सब छूटे कब? पूरे दिन काम करना, स्त्री-पुत्र को रखना, यह तो बाबा हो तो होता है, जंगल में जाये तो। यह बाबा है, यह जंगल में है, यह कहाँ पर के साथ सम्बन्ध में है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....पर्याय में तो राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग का राग है, उसका प्रेम नहीं। दूसरे प्रकार से कहें तो आस्रवतत्त्व व्यवहाररत्नत्रय है, उसके ऊपर भी उसे प्रेम नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेम नहीं। आहाहा! ऐसी तो स्पष्ट बात है स्पष्ट। आहाहा! समझ में आया? धर्मी को तो मोक्ष का प्रेम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वह ध्येय उसे है। साध्य है। ध्येय द्रव्य है, साध्य है मोक्ष। आहाहा! पूरी दृष्टि पलटने पर उसे पर का प्रेम छूट जाता है। आहाहा! और पर का जब तक अभी उसे व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह राग है, शुभयोग है, उसका भी प्रेम है, तब तक उसे मोक्ष का प्रेम नहीं। आहाहा!

महा दुर्धर तप नहीं किया,... अर्थात्? यह स्पष्टीकरण किया है वापस। **जो कि... 'निजबोधेन सारम्'** देखा! घोर तप नहीं किया अर्थात्? यह अपवास की वह बात नहीं वहाँ। **'निजबोधेन सारम्' आत्मज्ञानकर शोभायमान है,...** ऐसा जो तप, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! घोर तपस्या, **दुर्धर तप नहीं किया,...** कभी अनन्त काल में। कैसा? **कि आत्मज्ञानकर शोभायमान है,...** ऐसा, ऐसे। उसे आत्मज्ञान नहीं, वह तपस्या, वह तपस्या ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! परमात्मप्रकाश में भी थोड़े शब्दों में बहुत भरा है!

आत्मज्ञानकर शोभायमान है,... देखा! **'निजबोधेन सारम्'** तपस्या है, वह

निजबोध का सार है। वह तो उसकी स्थिरता हुई। समझ में आया? आहाहा! चारित्र—स्वरूप की रमणता और इच्छा का निरोध, ऐसी जिसकी तपस्या है, वह **'निजबोधेन सारम्'** वह आत्मज्ञान का सार है। आहाहा! आत्मज्ञान हुआ है, उसकी उग्रता स्थिरता की, वह आत्मज्ञान का सार है। आहाहा! अपवास करना और यह तपस्या सार, यह नहीं। वह भी ज्ञान बिना यह नहीं। **'निजबोधेन'** यह भी **आत्मज्ञानकर शोभायमान है,...** ऐसा। देव-गुरु-शास्त्र के ज्ञान से शोभायमान, ऐसा भी नहीं। आहाहा! **'निजबोधेन सारम्'** अपने आत्मा में ज्ञानसहित का जो भाव है, वह शोभायमान है। आत्मज्ञान बिना की तपस्या, वह सब अशोभनीक निन्दनीक है। आहाहा! बात यह। जहाँ आत्मज्ञान समरसीभाव से हुआ, वहाँ स्थिर होने का भाव, उसे आता है। क्योंकि श्रद्धा में ही आया है कि उसमें स्थिर होना, उतना कर्म का, अशुद्धता का नाश होगा। इतने अपवास करे तो अशुद्धता का नाश होगा, ऐसा वहाँ नहीं। उस स्वरूप में जितना स्थिर होगा, श्रद्धा में ऐसा आता है। (समयसार) १७-१८ में आया है न? १७-१८ गाथा में। उसके सन्मुख होकर जितना स्थिर होगा, उतनी अशुद्धता टलेगी। समझ में आया? आहाहा! घोर तपस्या (करे), पंच महाव्रत ले, नग्न हो जाये, वह नहीं। आत्मज्ञानसहित की स्थिरता की उग्रता बढ़ गयी है, उसे यहाँ घोर तपस्या कहा जाता है। आहाहा!

'पुण्यमपि पापमपि' और पुण्य तथा पाप ये दोनों नहीं भस्म किये,... आहाहा! इस प्रकार जिसने आत्मज्ञानसहित स्थिरता—चारित्र किया नहीं और आत्मज्ञानसहित जिसने पुण्य और पाप का नाश किया नहीं। देखा! आहाहा! **तो संसार कैसे छूट सकता है?** आहाहा! जिसने भगवान आत्मा का ज्ञान स्वसन्मुख होकर किया नहीं और उसमें स्थिरता है जो उसकी शोभा है, वह नहीं की तो उसे संसार का भटकना कैसे मिटेगा? आहाहा! समझ में आया? पुण्य और पाप का नाश हुआ नहीं, किया नहीं। दोनों का नाश करने का यहाँ तो कहते हैं। भले व्यवहार का शुभराग हो या लौकिक राग का अशुभ हो, दोनों को जिसने नाश किया नहीं... आहाहा! वह **संसार कैसे छूट सकता है?** आहाहा!

अब यह परिग्रह की व्याख्या करते हैं। वापस कोई परिग्रह ऐसा ही समझे कि यह पैसा, स्त्री, पुत्र परिग्रह, वह तो बाह्य की बात है। परन्तु अभ्यन्तर में मिथ्यात्व, वह

बड़ा परिग्रह है। है ? असत्य श्रद्धा, मिथ्यात्व, वह अभ्यन्तर परिग्रह है। आहाहा! उस परिग्रह का त्याग करके आत्मबोध किया नहीं, उसे आत्मा की स्थिरतारूपी आत्मबोध का सार प्रगट नहीं होता। ऐसी बात है। बाह्य में लोगों को मिठास है न ?

मिथ्यात्व,... 'अतत्त्व श्रद्धान' राग, प्रीतिभाव... किसी के भी प्रति प्रीतिभाव, वह राग, वह परिग्रह है। आहाहा! उस सब चौबीस प्रकार के परिग्रह में अभ्यन्तर पहला लिया है। समझ में आया ? **दोष,... (बैरभाव)** पर के प्रति जो विरोधभाव, वह द्वेष, वह परिग्रह है। अन्तर का परिग्रह, वह द्वेष अन्तर का परिग्रह है। **वेद,... 'स्त्री, पुरुष, नपुंसक'** आहाहा! वेद का राग, वह अभ्यन्तर परिग्रह है। आहाहा! जो विषय-वासना में, राग में पड़ा है, जो राग उसने छोड़ा नहीं, उसे संसार से कैसे छूटे ? आहाहा! समझ में आया ? उसकी शैली ही ऐसी है, देखी ? यह अभ्यन्तर परिग्रह है, उसका त्याग। आहाहा! समझ में आया ? **क्रोध-मान-माया-लोभरूप चार कषाय,...** चौदह प्रकार का है न ? **और हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि—ये चौदह अन्तरंग परिग्रह,...** है। इस परिग्रह का जिसने त्याग नहीं किया, आहाहा! उसे शिवमार्ग की कभी प्राप्ति नहीं होती। उसकी नास्ति की नहीं, उसकी अस्ति शिवमार्ग की होती नहीं। उसका व्यय किया नहीं, उसे मोक्ष का उत्पाद होता नहीं, ऐसा कहते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव है न ? अपने में और अपने में है न व्यय और ध्रुव ? पर के साथ क्या सम्बन्ध है ? यह अभ्यन्तर परिग्रह का विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण १२, मंगलवार
दिनांक- १५-०२-१९७७, गाथा - १६६-१६७, प्रवचन-२१७

परमात्मप्रकाश, १६६-१६७। शिष्य का प्रश्न यह है कि परम उपशमभावसहित। गुरु कहते हैं शिष्य के प्रश्न का उत्तर। आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु ज्ञायक वस्तु, उसकी दृष्टि और उसमें एकाग्रतारूपी उपशमभाव अर्थात् कि समभाव अर्थात् कि वीतरागी पर्याय, उससहित **सब परिग्रह का त्याग करने से संसार का विच्छेद होता है,...** अकेले परिग्रह के त्याग से नहीं। अकेले संसार के व्यवहाररत्नत्रय आदि का आदर करे, उससे नहीं। उपशमभावसहित व्यवहाररत्नत्रय हो तो उसे मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। समझ में आया? परन्तु शर्त यह—समभाव। निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह उसका मुख्य भाव। उससहित जिसे व्यवहाररत्नत्रय होता है तो उसे मोक्ष का मार्ग व्यवहार और उपचार से कहते हैं, निश्चय को यथार्थ से कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थः—मिथ्यात्व, (अतत्त्वश्रद्धान)... अर्थात् कि जो पुण्यभाव है, वह पुण्यतत्त्व है, उसे धर्म की श्रद्धा का कारण है, ऐसा मानना, वह भी मिथ्यात्वभाव है। अतत्त्वश्रद्धान है न? आहाहा! वे लोग ऐसा ही कहते हैं कि व्यवहार मुनि के व्रत और श्रावक के व्रत और अपवास, वह सब साधन है सम्यग्दर्शन बिना। और सम्यग्दर्शन की तो खबर नहीं पड़ती, ऐसा कहे।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन बिना मुनिपना कैसे आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्रत लेते हैं, चारित्र करते हैं, वह क्या है? वह कहीं मुनिपने के समकित बिना, वह चारित्र होगा?

मुमुक्षु : ऐसा तो अभव्य को भी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभव्य भी अनन्त बार ऐसा करता है।

यहाँ तो पहली शर्त यही रखी है, देखो न! '**परमोपशमभावसहितेन**' आहाहा! उपदेश शब्द है न? यह अन्तर है। '**परमोपशमभावसहितेन**' आहाहा! वस्तु का स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव, ऐसे श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, उसकी

रमणता के अतिरिक्त समतासहित हो तो परिग्रह का त्याग, राग का त्याग, वह यथार्थ कहा जाता है। वह राग का त्याग, उसमें वे चौदह परिग्रह है न, चौदह प्रकार में? मिथ्यात्व परिग्रह है, वह है न अतत्त्वश्रद्धान? उसका त्याग भी कब होता है?—कि स्वभाव की दृष्टि करे, तब मिथ्यात्वरूपी परिग्रह का त्याग होता है। अरे! ऐसी बात है।

विपरीत श्रद्धा अर्थात् पुण्य को धर्म मानना और धर्म को निश्चय धर्म का राग है, उसे कारण मानना, ऐसा जो अतत्त्वश्रद्धान, वह परिग्रह है। उसका त्याग उपशमभाव से होता है। समझ में आया? वास्तव में तो वह अतत्त्वश्रद्धान है, उदयभाव है मिथ्यात्व। उसका त्याग तो आत्मा शुद्धचैतन्यघन है, वीतरागस्वरूप प्रभु है। ऐसी जो दृष्टि में समकित, समभाव उत्पन्न होना। आहाहा! उससहित राग का त्याग होता है, मिथ्यात्व का त्याग होता है, वह त्याग ठीक है। बाहर का त्याग बाद में। पहले तो अभी मिथ्यात्व और राग का त्याग जो है न? चौदह प्रकार का परिग्रह अभ्यन्तर और दस बाह्य। आहाहा! बाह्य तो इसने ग्रहण ही नहीं किया, इसलिए छोड़ना, वह तो प्रश्न इसमें है नहीं। परन्तु जब राग का त्याग होता है उपशमभाव से, तब वह मिथ्यात्व और राग के त्याग के निमित्त हैं, उनका भी वहाँ त्याग हो जाता है। आहाहा! ऐसी शर्तें।

निश्चय-व्यवहारनय का है उसमें? खानिया चर्चा में। ऐसे तो एक ही बात करते हैं। मुनि और साधु की जो चर्या व्रतादि है, वह साधन है। उसे तुम पुण्य कहकर उड़ा देते हो। तुम आगम का विरोध करते हो। आगम ऐसा नहीं कहता, ऐसा कहे। ठीक अब। आहा! यह यहाँ कहते हैं। अन्तर में वीतरागस्वभाव की परिणति, वह स्व के आश्रय से हो, उसके सहित में राग का और मिथ्यात्व का त्याग और बाह्य से वस्त्र-पात्र का त्याग, वह असद्भूतव्यवहारनय। समझ में आया? आहाहा! राग का त्याग, वह अशुद्ध निश्चयनय से, परन्तु तब उसे त्याग कहा जाता है। आहाहा!

उपादेय आत्मा शुद्ध परमस्वभाव परमपारिणामिकभाव। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोग बेचारे बाहर से प्रथा चलानी है न उन्हें, सामने यह बात आयी इसलिए। कहते हैं कि अतत्त्वश्रद्धानरूपी परिग्रह का त्याग कब होता है? कि उपशमभाव यहाँ करे तो उसका त्याग होता है। समझ में आया? आहाहा! यह घर में वीतरागता भरी

है अन्दर। उस वीतरागता के सन्मुख हो, तब अतत्त्वश्रद्धानरूपी परिग्रह का त्याग होता है। इसके बिना त्याग नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है।

राग (प्रीतिभाव)... वह भी परिग्रह है। चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो। वे आगन्तुक भाव हैं, इसका स्वभावभाव नहीं। उनका त्याग भी कब होता है?—कि स्वभाव का उपशमभाव प्रगट करे तो (होता है)। उपशम शब्द से यहाँ (आशय) समभाव है। समझ में आया? निर्विकल्प समभाव प्रगट करे, तब उस राग और प्रीति के भाव का त्याग होता है। इसके बिना त्याग है, वह सब मिथ्या त्याग है। आहाहा! ऐसा है।

दोष, (बैरभाव)... परन्तु वह द्वेष भी तब त्याग होता है। नास्ति है न वह त्याग होना? परन्तु जिसे अस्तिरूप से परमात्मस्वरूप अनुभव में आया है समभाव में, उसे यह द्वेष का त्याग होता है। समझ में आया? वस्तुस्थिति ऐसी है, परन्तु लोगों ने गड़बड़ कर डाली। चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा किया। प्रभु! यह मार्ग तेरे हित का है, भाई! खोटे रास्ते से यह मार्ग नहीं आता। प्रभु के पास जाना हो, तब तो राग से भिन्न होकर जाया जायेगा। राग को हाथ में—ज्ञान में रखकर जाया जायेगा वहाँ? आहाहा! व्याख्या तो सरस, परन्तु भाव इसे समझना अन्दर। आहाहा!

भगवान आत्मा समभाव का तो पिण्ड है। समभाव कहो या वीतरागभाव कहो, चारित्रभाव कहो, उसका तो वह पिण्ड है। उसके आश्रय से जो समभाव प्रगटे—उत्पाद, उसे द्वेष का व्यय होता है। आहाहा! यह प्रत्येक में लेना। यह तो अलग भाषा में डालकर आया है। अतत्त्वश्रद्धान का नाश, त्याग भी तब होता है कि ध्रुव स्वभाव के आश्रय से समभाव की उत्पत्ति करे, तब उसे अतत्त्वश्रद्धान का व्यय होता है। यह सब जरा विचारना पड़ेगा, मन्थन करना पड़ेगा। ऐसा नहीं चलता वहाँ। कचूमर निकल जायेगा। वहाँ कोई मौसीबा (नहीं है)।

मुमुक्षु : कचूमर तो निकलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कचूमर तो निकलता है अभी तक, यह तो कहते हैं। शिष्य पूछता है कि मर गये प्रभु! अभी तक संसार में। हमने इसका छेद नहीं किया।

आहाहा! कौवे-कुत्ते के भव। यह बड़ा मनुष्य हो अरबोंपति, मरकर कुत्ती की कूख से कुत्ती का बच्चा हो। आहाहा! उसका फल ही यह है, दूसरा फल क्या होगा? आहाहा! मदिरा, माँस खाता (-पीता) न हो, मछलियाँ, इससे उसे उस फल में नरक तो न हो। समझ में आया? मदिरा, माँस खानेवाले हैं, वे मरकर नरक ही जानेवाले हैं। भले यहाँ बड़े अमलदार अधिकार करोड़ों रुपये की आमदनीवाले हों या गृहस्थ हों करोड़ों की आमदनीवाले। मदिरा, माँस आदि हो तो वह मरकर नरक में जानेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ बड़ी पार्लियामेंट भरती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी पार्लियामेंट भरती है वहाँ। पापियों की पार्लियामेंट। आहाहा! यह बापू! बातें सहज कठोर हैं। यह जीव क्या है और वहाँ दुःख क्या है और दुःख की स्थिति क्या है? सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा! उसे यह वर्तमान में कुछ शरीर, मनुष्य को पाँच, पचास लाख, दो लाख, पाँच-दस लाख मिले हों तो ऐसा मानो कि अपने कुछ ठीक हैं। धूल में भी नहीं। अग्नि में कषाय से सुलग रहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपकी देखने की दृष्टि ही अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस दृष्टि का वस्तुस्वरूप ही ऐसा है न वहाँ। आहाहा! कषाय-अग्नि से जल रहा है धगधगती। क्या कहलाती है वह? जमशेदपुर। बस, वे कहते थे। जमशेदपुर की भट्टी। हमेशा वहाँ बड़ा वह होता है न? मोटरें होती हैं। बड़े क्या कहे? ट्रक। वे सब वहाँ होते हैं। गये थे न एक बार। सामने बहुत मिले नये। नये ट्रक, अकेले खोखा हों, खोखा। मशीन और खोखा। ऊपर वह न डाला हो। बहुत खोखा तैयार होते हैं और वह लोहे को धगधगते हों, उसके वापस। इसलिए उसकी अग्नि तो बहुत सख्त हो न? जमशेदपुर। देखने गये थे एक बार। भाई साथ में थे नरभेरामभाई, नरभेरामभाई। गुजर गये सब। आहाहा!

उस भट्टी में जो अग्नि का दुःख है न, उसमें भी पच्चीस वर्ष का राजकुमार जवान अवस्था में परीक्षा में अनेक प्रकार के विज्ञान के लोगों में पास हुआ हो और उस उम्र में जब राजकुमारी भी, वह भी करोड़ों, अरबोंपति हो उसकी पुत्री आयी हो और दो-पाँच करोड़ लेकर आयी हो। आहाहा! उसके विवाह के दिन उसे जो हर्ष हो,

उसको जीवित अग्नि में सेंक डाले। उसके दुःख से, प्रभु! नारकी के, पहले नरक के दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्तगुना दुःख है। अरेरे! यह दुःख है, उसकी सुलटी दशा कहो तो प्रभु! उसमें अनन्त सुख है। परन्तु उसकी उल्टी दशा हुई है तो अनन्त दुःख है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया? अरे! उसे भव का त्रास भी नहीं, भाव के दुःख क्या किये? आहाहा! उसमें यहाँ फँस गया वापस स्त्री, पुत्र, परिवार और धन्धा। मुसाफिर चलता था, उसमें बीच में आये वृक्ष। उस वृक्ष को पकड़ा कि यह मेरे वृक्ष। परन्तु वे तो रास्ते में आये हैं, वे तो उल्लंघने के लिये है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि दोष का त्याग कब होता है? है? कि जब समभाव आत्मा का प्रगटावे विकल्प से रहित। आहाहा! तब दोषरूपी परिग्रह का त्याग होता है। ऐसे वेद **(स्त्री, पुरुष, नपुंसक)...** वेद। उसकी वासना, वह अभ्यन्तर परिग्रह है। आहाहा! यह स्त्रीवेद की पुरुष के साथ रमणता, पुरुष की स्त्री के साथ और नपुंसक को दोनों के साथ, ऐसी जो विकल्प की धगधगती भट्टी। आहाहा! उसका त्याग कैसे हो? कि अन्दर उपशमभाव प्रगटे तो उसके कारण त्याग होता है। आहाहा! समझ में आया? है?

इसी प्रकार **क्रोध...** क्रोध का त्याग कैसे होता है? आहाहा! अर्थात् कि उसका व्यय कैसे होता है? आहाहा! कि समभाव की उत्पत्ति करे तो क्षमा की उत्पत्ति। क्षमा अर्थात्? अन्दर आत्मा के धर्म का आश्रय लेकर जो क्षमा, वह समभाव है। उसे समभाव के कारण क्रोध का त्याग होता है। आहाहा! इसी प्रकार **मान,...** का। उत्पाद-व्यय और ध्रुवयुक्तं सत् है न? तो ध्रुवस्वरूप भगवान समभावी प्रभु, ध्रुवस्वभावी वीतरागी आनन्दस्वरूप प्रभु के आश्रय से जो समभाव प्रगट हो उत्पाद, तब उन रागादि का व्यय होता है। आहाहा! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? ऐसी वस्तु अब इसमें।

इसी प्रकार **माया-कपट-लोभरूप चार कषाय, और हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि—ये चौदह अन्तरंग परिग्रह; क्षेत्र (ग्रामादिक)...** क्षेत्र अर्थात् जमीन आदि। **वास्तु, (गृहादिक)...** मकान, महल आदि। आहाहा! उसका त्याग कब हो? आहाहा!

मुमुक्षु : नये मकान में रहने जाये तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया अनादि-अनन्त का मकान जो आत्मा का आनन्दस्वरूप प्रभु, उसमें समभाव से बसने जाये, तब परिग्रह का त्याग होता है। आहाहा! यह तो दो-पाँच-दस लाख का मकान बनाया हो और कार्यकर्ताओं को बुलाया हो बड़े को मान देने। ऐसे मान के लिये। अमुक को बुलाया है, मुख्य अतिथि यह है। आता है न समाचार-पत्र में?

मुमुक्षु : अतिथि विशेष।

पूज्य गुरुदेवश्री : अतिथि विशेष। आहाहा! धूल भी नहीं अतिथि, अब सुन न! अतिथि तो उसे कहते हैं कि जिसकी तिथि का माप नहीं कि इस दिन में तुझे वहाँ आहार लेने आना है। ऐसे अतिथि को अतिथि कहा जाता है। अतिथि संविभाग है न भाई! अतिथि संविभाग नहीं बाहर में? इसका अर्थ यह है। आहाहा! धन्य मुनिराज! आत्मा के आनन्द में झूलते, शुद्ध उपयोगरूपी समभाव में आनन्द में लवलीन। आहाहा! वे मुनिराज जब आहार लेने आवे, आहाहा! और उन्हें दे तो वह तो शुभविकल्प है। समझ में आया? आहाहा! उसका त्याग कब हो? अन्तर निर्विकल्प दृष्टि में जाने से समभाव की समाधि प्रगट होने पर उसका त्याग होता है। आहाहा! समझ में आया? वे अतिथि हैं। उनकी तिथि का कोई मेल नहीं कि इस घर में इस दिन यहाँ आना है। अकस्मात् आ जाते हैं। आहाहा! ऋषभदेव भगवान अतिथि। राजा...

मुमुक्षु : श्रेयांसकुमार।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें जा चढ़े श्रेयांसकुमार के यहाँ। स्वप्न आया था राजा को। कल्पवृक्ष सूखता है, ऐसा स्वप्न आया। समझ में आया? परसों एक स्वप्न आया था। कौन जाने क्या हुआ। सात, सवा सात बजे। ...एक राजा थे और राजा को कुछ... था। फिर बहुत याद नहीं रहा। इस बात में राजा नहीं, ऐसा धारकर कहता था। वहाँ ऐसे नजर की तो वह राजा बैठा था, सोता था। अरे! तुम मेरी बात करते हो। ऐसा आया था कुछ सवा सात बजे आया था। दिन के शाम को। घड़ी में... ऐसे आँख मींची। राजा था। और उसकी मैं कुछ बात करता था। हल्की बात। इसलिए कोई उसकी कोई बहू या उसकी पुत्री, वह चाहे जो हो, बराबर याद नहीं। वह मानों कि मैं नहीं, ऐसा धारकर मैं

बात करता था, वहाँ ऐसा देखा तो राजा तो खड़ा है। बैठा है, सोता है, वह बोला। मैं यहाँ हूँ न। मैंने कहा, भाई! कुछ कहने की बात। ऐसा है। कौन जाने कहाँ की कल्पना की बात होगी, क्या खबर पड़े? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु का... आहाहा! श्रेयांसकुमार को स्वप्न आया, भगवान पधारेंगे। भगवान पधारेंगे और कल्पवृक्ष सूखता है। निमित्त (ज्ञानी) से उसने पूछा, प्रभु! यह क्या है मेरे यहाँ? कि आज तुम्हारे यहाँ कोई मुनि पधारेंगे, ऐसा लगता है। आहाहा! उसे अन्दर से प्रमोद आया। अब वहाँ कुछ निश्चित नहीं था कि यहाँ मेरे यहाँ आयेंगे और यहाँ आयेंगे। वे तो अतिथि हैं न। आहाहा! वे अतिथि कहलाते हैं। उन लोगों ने तो अतिथि को बुलाया (कि) मुख्य अतिथि यह है। ऐई! पोपटभाई!

मुमुक्षु : लौकिक काम तो गप्पावाला ही हो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक। आहाहा! धन्य अवतार! अतिथि तो उसे कहते हैं। आहाहा! जिसे कोई इस घर में जाना, सधन के यहाँ जाना, निर्धन के यहाँ नहीं जाना, जहाँ आहार ठीक मिले, वहाँ जाना और ठीक न मिले, वहाँ नहीं जाना—ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! ऐसे मुनि पधारे और उन्हें जब (आहार) देते हैं। आहाहा! ऊपर से वृष्टि बरसती है—फूल वृष्टि बरसती है (पंचाश्चर्य होते हैं)। पहला-वहला था। असंख्य अरब वर्ष में पहला-पहला ही यह योग भरतक्षेत्र में तीर्थंकर के समय में (हुआ)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इस सम्बन्धी का जो राग होता है, आहाहा! और मुनि को भी जो आहार देने का विकल्प संयम के हेतु से है, उसका भी त्याग कब होता है? आहाहा! आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसके समभाव में जब... हो तब, आहाहा! तब उस राग का नाश होता है—त्याग होता है। नहीं तो इसके अतिरिक्त त्याग होता नहीं। आहाहा! देखो! समझ में आया?

यह **सुवर्ण, धन (हाथी, घोड़ा आदि),...** वहाँ पहले आया न? **(ग्रामादिक) वास्तु, (गृहादिक)...** जो क्षेत्र है, वह बाहर के क्षेत्र और जमीन हो न यह ग्रामादि। वस्तु में घर-घर, महल। **हिरण्य, (रुपया, पैसा, मुहर आदि),...** आहाहा! उसका

त्याग कब कहलाये ? जिसे उपशमभाव प्रगट होता है समभाव, तब उनका त्याग होता है। यह बात है। आहाहा! यह सद्भूतव्यवहारनय से त्याग है। राग का अशुद्धनिश्चयनय से त्याग है। शुद्धनिश्चय के स्वभाव के आश्रय से आदर करता है इसलिए। आहाहा! ऐसी बातें हैं, इन्हें बहुत वैसी कर डाली। आयेगा नीचे।

धन, (हाथी, घोड़ा आदि)... ठीक! वे स्वर्ण और हिरण्य में पैसा डाला। गृहादिक। **धन, (हाथी, घोड़ा आदि) धान्य, (अन्नादि) दासी, दास, कुप्य (वस्त्र तथा सुगन्धादिक),...** आहाहा! **भाण्ड (बर्तन आदि)...** बर्तन। **ये दस तरह के बाहर के परिग्रह, इस प्रकार बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह के चौबीस भेद हुए, इनको नहीं छोड़ा।** शिष्य पूछता है, प्रभु! यह मैंने नहीं छोड़ा। आहाहा! मेरे समभाव में आकर यह मैंने नहीं छोड़ा। इसलिए यह संसार मेरा भटकने का खड़ा होता है। आहाहा! अब यह भटकना बन्द हो, वह प्रभु उपदेश मुझे दो। मुझे तो दूसरा कुछ चाहिए नहीं। आहाहा! नहीं चाहिए स्वर्ग और नहीं चाहिए पैसा, नहीं चाहिए कीर्ति। आहाहा! हमारे तो भवभ्रमण का नाश होकर भगवान आत्मा प्राप्त हो, वह उपदेश दो। हमारे दूसरा कोई काम नहीं है। आहाहा! है ?

इनको नहीं छोड़ा। समभाव करके छोड़ा नहीं अनन्त काल में। ऐसे तो छोड़ा था अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया तब, परन्तु इस समभाव से छोड़ा नहीं तो छोड़ा ही नहीं। आहाहा! अन्दर मिथ्यात्व की पकड़ है, और इससे असद्भूतनय से पहले यह वस्तु मेरी है, उसकी भी पकड़ है। शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ। वह जड़ की है और राग होता है, वह मुझे कल्याण का कारण होता है। वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : मन्दराग तो कल्याण का कारण होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल जरा भी नहीं। इसके लिये तो यह बात स्पष्ट करना चाहते हैं। रागमात्र समभाव से त्याग हो सकता है। राग से राग का त्याग हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। शुभराग से अशुभ का त्याग होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? निश्चय से तो वीतरागस्वभाव के आश्रय से ही शुभ-अशुभभाव का त्याग होता है। आहाहा! ऐसी अन्तर की बातें कभी गम्य नहीं की। जिसके विचार के मन्थन

में भी कभी आया नहीं। यह होली पूरे दिन संसार की। आहाहा! अरे प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? आहाहा! क्षण में चला जाये, देखो न यह।

जीवित, मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभादि में समान भाव कभी नहीं किया,... देखो! जीवितव्य हो या मरण हो परन्तु मैंने ज्ञाता-दृष्टारूपी समभाव कभी नहीं किया। सुख-दुःख अनुकूल हो या प्रतिकूल हो। लाभ—अरबों की आमदनी और पुत्र-पुत्री का लाभ हो, अलाभ कुछ भी न हो, ऐसी स्थिति हो, उसमें समभाव कभी नहीं किया। आहाहा! पुत्र हो तो भी क्या और न हो तो भी क्या? आहाहा! यहाँ तो जहाँ पुत्र हो वहाँ तो, आहाहा! मानो क्या हुआ हमारे घर में? होली सुलगी है वहाँ तेरे घर में।

मुमुक्षु : पेड़ा की प्रभावना करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पेड़ा की प्रभावना करे। (सबको पेड़ा बाँटे।)

यहाँ तो कहते हैं कि लाभ और अलाभ, यह पुत्र का लाभ, या पुत्र का अलाभ। आहाहा! समझ में आया? पुत्र न होता हो पचास वर्ष तक तो चारों ओर भटके फिर। यहाँ माने, यहाँ माने, यहाँ माने, आहाहा! कहते हैं कि वह तो इसे हो या न हो। ऐसा जो समभाव मैंने कभी नहीं किया। आहाहा! इससे वह वस्तु छूटी नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश है न, एकदम परमात्मा की दृष्टि और समभाव प्रगट हुए बिना किसी भी दोष का त्याग नहीं हो सकता। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें कि जिसे समभाव हुआ नहीं, उसे यह बाह्य का त्याग है, वह त्याग ही नहीं।

मुमुक्षु : वह तो उसके कारण से गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो उसे मिलना नहीं था अन्तराय के कारण, इसलिए वह चीज़ नहीं मिली। समझ में आया?

कल्याणरूप मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी नहीं जाना। परम आनन्द का नाथ चैतन्य रत्न प्रभु, जिसकी कीमत न हो, ऐसी चीज़ प्रभु, उसकी कीमत करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होना चाहिए, वे मैंने कभी नहीं किये। उसकी कीमत नहीं की। आहाहा! शुभ-अशुभभाव और उसके फल जो यह धूल बाहर की, उसकी कीमत करके रुक गया, प्रभु! आहाहा! ऐसा शिष्य कहता है। देखो! भगवानजीभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : क्या करना चाहिए, वह तो शिष्य जानता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता था, परन्तु परिणमना कैसे, यह पूछता है अब। आहाहा! वास्तव में तो परिणमना कैसे? यह पूछता है। आहाहा! इस समभावरूप से परिणमना कैसे कि जिससे यह त्याग कहलाये? आहाहा! ऐसा तो समभाव बिना का त्याग तो मैंने अनन्त बार किया, यह कहते हैं। परन्तु वह त्याग उसे कहलाये नहीं। अस्तिरूप से महाप्रभु का जहाँ आदर नहीं, आहाहा! वहाँ दूसरे का त्याग किया, वह उसे कहा नहीं जा सकता। आहाहा!

कल्याणरूप मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी नहीं जाना। अब यह सम्यग्दर्शन मोक्ष के मार्ग की दो व्याख्या करते हैं। **निजस्वरूप का श्रद्धान,...** निजस्वरूप का श्रद्धान। अपना ज्ञायकभाव। यह (समयसार) छठवीं गाथा में कहा है न? **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो'।** इसका निषेध किया—असद्भूत उपचार और अनुपचारनय का निषेध किया और राग को जानता है, ऐसा जो ज्ञायक में आता है कि ज्ञायक तो ऐसे जानता है न? ऐसी ध्वनि उठती है, उस सद्भूत उपचार का भी निषेध किया। सद्भूतव्यवहार। परन्तु यह ज्ञान वह आत्मा, ऐसा भेद पाड़कर ख्याल में आवे, वह सद्भूत अनुपचार। वह भी निषेध किया। आहाहा! अकेला ज्ञायकभाव वस्तु पूरी ध्रुव नित्यानन्द प्रभु को पकड़ने से जो ज्ञायकभाव का अनुभव हो, तब सबका निषेध हो जाता है। आहाहा! तब उसका त्याग हो जाता है, ऐसा। समझ में आया? आहाहा!

निजस्वरूप का श्रद्धान, निजस्वरूप का ज्ञान... देखा! शास्त्रज्ञान भी नहीं। आहाहा! निजस्वरूप का ज्ञान—भगवान आत्मा, निज—अपना स्वरूप ज्ञायकभाव, उस ज्ञायकभाव का ज्ञान। **और निजस्वरूप का आचरण...** ऐसा **निश्चयरत्नत्रय...** कभी नहीं किया और उसके साथ व्यवहाररत्नत्रय भी स्वीकार नहीं किया। निश्चय हो तो व्यवहार हो, निश्चय नहीं वहाँ व्यवहार भी है नहीं। उसने व्यवहार भी किया नहीं। अकेला व्यवहार नहीं। आहाहा! यह लोग ऐसा कहते हैं कि शुद्धपर्याय और अशुद्धपर्याय दो होकर अखण्ड पर्याय होकर व्यवहारनय कहते हैं। यह ऐसा कहते हैं। शुद्धपर्याय का अंश है। वह पर्याय है न, ऐसा कहे। और राग अंश है। दोनों इकट्ठे होकर शुभराग कहते हैं। उसे व्यवहारनय अंश कहते हैं। इसे कहाँ व्यवहार है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेली की बात है यह तो। अकेला जितना शुभराग करता है न, उसमें जरा शुद्धता का अंश है, ऐसा (वे) कहते हैं। वह तो राग का अंश है, वह बन्ध का कारण है। परन्तु उन दो को होकर व्यवहारनय कहते हैं। वह व्यवहारनय भी मोक्ष का मार्ग अन्दर ठहरता है, ऐसा (वे) कहते हैं। बहुत बातों में बहुत अन्तर, भाई! आहाहा! उसे व्यवहार कहते हैं, उसके दो प्रकार। जिसे अन्तर आश्रय हुआ है वस्तु का, उसे जो निश्चय हुआ, उसे जो कुछ अशुद्धता की पर्याय (है और) अपूर्ण है और अशुद्धता का राग है, उन दोनों को जानना, इसका नाम व्यवहार है। करना, उसका व्यवहार ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसमें भी विवाद निकालते हैं बारहवीं गाथा में। '**ववहारदेसिदा पुण जे**' हिम्मतलाल सोनगढ़ के, उन्होंने लिखा है इस पुस्तक में, लो। उसमें यह लिखा है। व्यवहार नहीं डाला उन पण्डित जयचन्द्रजी ने? डाला है। ऐसा कहे कि देखो! समकित के पहले भी ऐसा व्यवहार किया नहीं। उस व्यवहार से निश्चय होता है। क्या हो, भाई!

बड़े में भूल पड़ी, अब उसे समझावे कौन? आहाहा! यह चर्चा और वाद-विवाद से कुछ मिले, ऐसा नहीं, प्रभु! आहाहा! अन्दर चीज़ जैसी है, वैसी उसकी दृष्टि में न आवे और बात व्यवहार से हो, वही यहाँ कहते हैं। व्यवहार का त्याग हो कब? यह प्रश्न। यहाँ है इस समय निश्चय के साथ व्यवहार होता है। तथापि व्यवहार का त्याग कब होता है? कि यहाँ समभाव प्रगट करे, तत्प्रमाण त्याग होता है। जितना-जितना विज्ञानघन होता है... आया है न? उतना-उतना राग घटता जाता है। यह निश्चय है। और जितना-जितना राग घटता जाता है, उतना अज्ञान घटता है, वह व्यवहार है। पर की अपेक्षा आयी न वहाँ नास्ति की? क्या कहा यह?

मुमुक्षु : अस्ति-नास्ति, निश्चय-व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अस्ति-नास्ति में अस्ति है, वह निश्चय है और नास्ति है, वह व्यवहार है। आहाहा! महाप्रभु अस्तित्व महापूर्ण... पूर्ण... पूर्ण। इस भाव को समझे भाषा बिना यह क्या कहते हैं, यह! आहाहा! भाई! तू पूर्णस्वरूप है। तेरी पूर्णता

में अल्पज्ञता नहीं। राग तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञता नहीं। आहाहा! ऐसे पूर्ण स्वरूप को जो आदर करता है, उसे समभाव प्रगट होता है और उस समभाव से व्यवहार का आश्रय आवे, ऐसा नहीं। समभाव के समय वह होता है, परन्तु उसका आश्रय है, ऐसा नहीं। होता है, उसे जाननेयोग्य है। और तो भी दो नय का कथन साथ में लेना हो तो ऐसा कहा जाता है कि व्यवहार भी मोक्षमार्ग है। वह तो निश्चयमोक्षमार्ग का वहाँ सहचर-निमित्त देखकर आरोप से कथन है। वरना व्यवहारमोक्षमार्ग का फल वह दूसरा व्यवहार मोक्ष होगा? निश्चयमोक्षमार्ग का फल निश्चय मोक्ष, दो मोक्ष होंगे? नहीं तो दो मोक्षमार्ग (होंवे) तो उनके दो फल आना चाहिए। ऐसे मोक्षमार्ग तो दो नहीं, परन्तु कथन दो प्रकार से है, इसलिए उसका स्पष्टीकरण करना पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

निरूपण में कथन है दो प्रकार से। वस्तु के स्वभाव में तो निश्चयमोक्षमार्ग, वह एक ही मोक्षमार्ग है। व्यवहारमोक्षमार्ग किसकी पर्याय है? वह तो राग की है। शुभराग है, वह व्यवहाररत्नत्रय है। राग की पर्याय है, वह मोक्ष का कारण हो? हाँ, उसे जिसके निश्चय प्रगट हुआ है, उसे वह राग बाकी है, इससे परम्परा होता है, ऐसा आरोप से कथन (किया जाता है)। जैसे वस्तु जो आरोप से व्यवहार कहा, इसी प्रकार उससे मोक्ष होता है, वह भी आरोप से कथन है। आहाहा! ऐसी बात है। क्या हो?

अब? नौ पदार्थों का श्रद्धान, वह व्यवहार है, वह विकल्प है, शुभराग है। परन्तु जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ है, निश्चय ज्ञान आदि स्थिरता, उसे यह व्यवहारश्रद्धा होती है, ऐसा कहने में साथ में आता है। इसलिए वह भी मोक्षमार्ग है, आरोप से ऐसा कहने में आता है। ऐसी पद्धति है। आहाहा! **नव पदार्थों का श्रद्धान...** देखा! अभी जैसे पृथक् नौ हैं, उनकी उस प्रकार से श्रद्धा, वह अभी विकल्प और शुभराग है। क्या कहा? निश्चय में तो अकेला भगवान ज्ञायकस्वभाव का अन्दर अनुभव और श्रद्धा, उसे श्रद्धा कहते हैं। व्यवहारश्रद्धा नौ पदार्थ के भेदरूप भाव है न? कि यह जीव है और यह अजीव है और उसकी पर्याय, यह विकल्प है। परन्तु उस विकल्प को निर्विकल्प सम्यग्दर्शन साथ में होने से आरोप से उसे मोक्षमार्ग कहने में आया है। मोक्षमार्ग दो नहीं। मोक्षमार्ग तो एक ही है, तथापि कहना—निरूपण, इसका नाम दो प्रकार से कहा। दो प्रकार से निरूपण है। आरोपित साथ में करके कथन ऐसा है। आहाहा! ऐसा लम्बा

कौन विचारे ? वह भी मोक्ष का कारण। लेख है स्पष्ट इसमें। प्रश्न है न ? मोक्ष का मार्ग तो यह ही है। व्यवहार तप क्रियायें करना, उससे निश्चय प्राप्त होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके आश्रय से करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय करने जायेगा वहाँ आगे लाभ है, ऐसा मानकर करे तो मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा मार्ग है वीतराग का। आहाहा!

नव पदार्थों का श्रद्धान... है ? **नव पदार्थों का ज्ञान...** देखा! जैसे जीव है वैसे, संवर है वैसे, आस्रव है वैसे। आहाहा! ऐसी तो अभी व्यवहारश्रद्धा, उसे व्यवहारज्ञान कहा जाता है। आहाहा! यह निश्चय हो तो, हों! **अशुभ क्रिया के त्यागरूप व्यवहाररत्नत्रय —ये दोनों ही मोक्ष के मार्ग हैं,...** अशुभक्रिया का त्याग, परन्तु सम्यग्दर्शनसहित की यह बात है। मात्र अशुभक्रिया का त्याग, वह व्यवहारमार्ग मिथ्यादृष्टि को है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बातें सूक्ष्म। अरे! क्षण में देह छूट जाये। कौन हैं तेरे ? तुझे प्रसन्न रखे और तू प्रसन्न हो। कहाँ है तू ? आहाहा! जाये देह छूटकर कहीं। अनजाने क्षेत्र में, अनजाने भाव में। आहाहा! आँख की पहिचान भी न हो ऐसे में जाकर उपजे। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ वापस उन्हें मेरा... मेरा मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ उसे यह सब सुलगा है। मेरा मानकर गया है न। पर को मेरा मानकर गया है, इस संस्कार से जो आवे, उसे मेरा मानता है। आहाहा! अनन्त भव किये, वे मेरे मानकर किये हैं। आहाहा!

नौ तत्त्व का ज्ञान और नौ अशुभ का त्याग और शुभ का ग्रहण **व्यवहाररत्नत्रय ये दोनों ही मोक्ष के मार्ग हैं,...** देखा! मोक्षमार्गरूप से सिद्ध करना है न ? एक उपचारिक है, एक वास्तविक है। परन्तु उसका सत्त्व है या नहीं ? व्यवहार (मार्ग) मोक्ष भी अस्ति है या नास्ति ? है न ? वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहते हैं, परन्तु स्वयं की अपेक्षा से तो है, सत्य है। सत्य है अर्थात् ? साधन है, ऐसा नहीं। है। आहाहा! भाषा से भाव भाव में अन्तर बहुत पड़ता है। आहाहा! है ?

ये दोनों ही मोक्ष के मार्ग हैं.... दोनों ही... निश्चय हो जायेगा। दो है न ? ऐसा कहते हैं। भले निरूपण की अपेक्षा से, परन्तु दो हैं न ? हैं, वे कहीं असत्य नहीं।

त्रिकाली की अपेक्षा से वह व्यवहार असत्य है। परन्तु अपने परिणाम जिस जाति के व्यवहार हैं, उस जाति का है वहाँ। आहाहा! और वह बन्ध का कारण है, तथापि उसे निमित्त का सहचर देखकर मोक्ष के मार्गरूप से व्यवहार को कहने में आया है। ऐसी बात है। है तो वह बन्धमार्ग। राग है, वह तो बन्धमार्ग है निश्चय के साथ। परन्तु उसे यह मोक्ष का मार्ग आरोप करके कहा जाता है। बड़ा विवाद, विवाद... विवाद।

अब कहते हैं, दोनों का फल बताते हैं अब। **दोनों में से निश्चयरत्नत्रय तो साक्षात् मोक्ष का मार्ग है,...** निश्चयरत्नत्रय अभेद स्वभाव प्रगट हुआ, वह तो साक्षात् मोक्ष का कारण, सीधे मोक्ष का कारण, ऐसा। **और व्यवहाररत्नत्रय परम्परा मोक्ष का मार्ग है।** परन्तु किसे? आहाहा! वह वहाँ झगड़ा यह करते हैं कि व्यवहार परम्परा मोक्ष का कारण है, व्यवहार परम्परा। परन्तु किसका व्यवहार? व्यवहाररूप से जिसने जाना है, ऐसे निश्चयवाले का व्यवहार। अज्ञानी का व्यवहार तो अन्धकार है। व्यवहार है, ऐसा उसे ज्ञान भी कहाँ है? जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ, उसे जानता है कि यह व्यवहार है। क्योंकि पराश्रितभाव सब विकारी है, ऐसा। उसे तो खबर भी नहीं आत्मा के आश्रय से क्या और पर के आश्रय से क्या? आहाहा! कौन जाने क्या है अन्दर?

मुमुक्षु : आपने एक-एक स्पष्टीकरण कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना तो यह बैठे, ऐसा नहीं है। विवाद उठे न! दोनों वस्तु साथ में है, इसलिए उसे व्यवहार को परम्परा। अकेले सम्यक् बिना का व्यवहार, वह व्यवहार ही नहीं न! यह व्यवहार है, ऐसा ज्ञान निश्चय बिना हो किसे? आहाहा! यह मुझसे भिन्न चीज़ है। उसे स्व के भान बिना भिन्न है, ऐसा भान कहाँ से हो? समझ में आया इसमें? यह मुझसे भिन्न है। व्यवहार भिन्न है न स्वभाव से? परन्तु यह भान किसे हो? जिसे ज्ञान हुआ है उसे। स्व का ज्ञान हुआ, उसे है कि यह मैं, यह नहीं। यह नहीं कहने से वह व्यवहार है, ऐसा कहा। कथन है व्यवहार का। आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय परम्परा मोक्ष का मार्ग है, ये दोनों मैंने कभी नहीं जाने,... यह क्या? उस निश्चयसहित की अपेक्षा से बात है, हों! नहीं तो ऐसा कहा नियमसार में, भाई! नियमसार में कहा, कथनमात्र ऐसा जो व्यवहारनय, वह अनन्त बार किया है।

आता है। आहाहा! कथनमात्र व्यवहार। ज्ञान में जाना हुआ व्यवहार, वह नहीं। आहाहा! कहनेमात्र व्यवहार। दया पालन की, व्रत, तपस्या और त्याग और भक्ति... आहाहा! जंगल में चला गया अकेला नग्न होकर। आहाहा! वस्तु है, उसकी दृष्टि की तो खबर नहीं। अस्तिस्वभाव जो अपना, उस वस्तु की तो खबर नहीं और इसका त्याग किया, यह तो नास्ति से हुआ। नास्ति कब हो उसकी? अस्ति से भान हो, उसे नास्ति से परिणमन हो यथार्थ। समझ में आया? परन्तु अकेले पर के त्याग की नास्ति से ही आत्मा को धर्म होता है, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! जिसमें भगवान का अस्तित्व सम्मिलित नहीं। समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! यह भगवान आये भगवान यह तो अन्दर।

प्रभु! **ये दोनों मैंने कभी नहीं जाने,...** किस अपेक्षा से कहा? उस निश्चयसहित का व्यवहार, इस प्रकार से मैंने नहीं जाना। ये दो लिये न साथ में? **संसार का ही मार्ग जाना।** मैं तो संसार के मार्ग में चतुर हुआ। जाना, कहा न? आहाहा! कैसे पैसा कमाना, उसमें जानने में वह चतुर। आहाहा! एक बार हमारे यहाँ हुआ था पालेज में, कहा न! वह भावनगर का एक हलवाई था भरूच में। माल लेने जायें तो वहाँ लें। समय हो दस, साढ़े दस का तो... पानी दे, यह सब करे बेचारा। इसलिए एक बार आये, बहुत बार हम वहाँ जीमने जाते, भरूच माल लेने। वे आये, एक बार साधु वहाँ थे बरवाळा के। यह दर्शन करने आये थे भावनगर के हलवाई। स्थानकवासी, हों! इसलिए मैंने नीचे से कहा कि बड़ी बहिन! हलवाई आये हैं। आहार करने में ध्यान रखना। यहाँ कोई इतनी अधिक नहीं कि मेहमान के लिये लापसी करना और ऐसा नहीं बोला। नीचे से कहा, मेहमान आये हैं अपने हलवाई भावनगर से। इसलिए आहार करने बैठे वहाँ लापसी नहीं होती और कुँवरजीभाई साथ में बैठे हुए। कौन कहने आया था? कोई नहीं था? कि यह भगत कहने आये थे। भगवान को कुछ खबर नहीं पड़ती कि यह मेहमान हैं, इनके लिये लापसी बनाना। अब वह तो तुम्हारे जानना था। ऐसा है। तब हुआ था। बात सच्ची मेहमान ऐसा था, कहे। कभी आवे। हमारे साधु थे न बरवाळा के? भावनगर के कहलाये न हलवाई, इसलिए उन्हें लापसी, वहाँ कहीं उन्हें टोटा नहीं था दुकान में। सब साधन बहुत था। परन्तु मेहमान आये हैं, इतना मैंने तो कहा। यहाँ कोई लापसी बनाना या नहीं बनाना, यह खबर नहीं। साथ में जीमने बैठे उसमें। बुद्धि तो बारदान जैसी थी

कुँवरजी की। परन्तु वह पुण्य की प्रकृति और धन्धा अच्छा चला बाहर, इसलिए मानों चतुर कहलाये सब।

मुमुक्षु : सेठ थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ थे। लोगों ने कहा सेठ तो... जैसे हैं। हमारे गाँव में कुँवरजीभाई को पागलरूप से कहते थे। बालूजीवा थे न जीवापा के। बोलना भी नहीं आता कुछ। परन्तु पुण्य के कारण दुकान चली और आमदनी बढ़ गयी। दो रुपये का, तीन रुपये का था, लो महीने में। वह हर (वर्ष) दो लाख की आमदनी हो गयी। वह मरे तब, हों! दो लाख वर्ष की। फिर तो यह लड़के... यह ठीक। परन्तु लोगों को वह न देखे। विशेष हो तब चतुर कहलाये वह। अवसर-अवसर पर देखे, वह बराबर जानकर कहे तो चतुर कहलाये। यहाँ कहते हैं, वह सब संसार की चतुराई होली छोड़ने की है। आहाहा! है?

संसार का ही मार्ग जाना है। ऐसा कहा न? संसार का मार्ग जाना, ऐसा होता है और ऐसा होता है और ऐसा होता है। आहाहा! अरेरे! चौरासी के अवतार में से उभरने का अवसर। प्रभु! इस अवसर में मैं नहीं आया वहाँ, कहते हैं। यह डूबने के पंथ में मैंने कदम भरे। आहाहा! **अनशनादि बारह प्रकार का तप नहीं किया,...** यह समकितसहित की बात, हों! निश्चय हो तो व्यवहार हो न! **बाईस परीषह नहीं सहन की।** सम्यग्दर्शन को परीषह कहा जाता है न, इसके बिना परीषह कैसा? सहन कर सके ज्ञातारूप से, उसे परीषह कहा जाता है।

तथा पुण्य सुवर्ण की बेड़ी,... देखो, आया। पुण्य है, वह सोने की बेड़ी, **पाप लोहे की बेड़ी, ये दोनों बन्धन निर्मल आत्मध्यानरूपी अग्नि से भस्म नहीं किया।** लो, अब आया वापस। उसमें दो मोक्षमार्ग नहीं कहे। दूसरा मोक्षमार्ग, वह तो राग है। समझ में आया? दोनों को मोक्षमार्ग नहीं कहा तो भी वह व्यवहार तो राग है। परन्तु **ये दोनों बन्धन निर्मल आत्मध्यानरूपी अग्नि...** आहाहा! उससे **भस्म नहीं किया। इन बातों के बिना संसार का विच्छेद नहीं होता,...** यह समभाव से राग-द्वेष का नाश किये बिना, उस परिग्रह का अभाव किये बिना संसार का विच्छेद नहीं होता।

'संसार से मुक्त होने के ये ही कारण है।' 'संसार से मुक्त होने के ये ही कारण है।' स्वभाव के समभाव से राग का त्याग करना, वह एक मोक्ष का उपाय है। **ऐसा व्याख्यान जानकर...** देखो, वापस योगफल। **सदैव शुद्धात्मस्वरूप की भावना करनी चाहिए।** शुभ व्यवहार कहा तो भी वापस करना, यह कहते हैं। आहाहा! है न संस्कृत में? सदा शुद्धात्मभावना। शुद्धात्मस्वरूप पवित्र स्वरूप परमात्मस्वरूप, निजानन्दस्वरूप की एकाग्रता। भावना अर्थात् एकाग्रता करनी चाहिए। देखो! करनेयोग्य तो यह है। समझाने में भले सब आवे। समझ में आया? भगवान शुद्ध ज्ञायकस्वभाव, आनन्द प्रभु शुद्धात्मस्वरूप की भावना। शुद्धात्मभावस्वरूप की भावना, अर्थात् एकाग्रता अर्थात् सन्मुखता, वह करनेयोग्य है। आहाहा! है न? **यही करनी चाहिए।** दूसरा करनेयोग्य है नहीं।

अब **आगे दान, पूजा और पंच परमेष्ठी की वन्दना, आदि परम्परा मुक्ति का कारण...** यह समकितसहित की बात है, श्रावक को। श्रावक को, समकिती को आत्मज्ञान और दर्शन होने पर भी, उसे यह व्यवहार ऐसा आता है। समझे न? व्यवहारमोक्षमार्ग होता है, उसे—श्रावक को, यह बात यहाँ सिद्ध करते हैं और उससे मोक्ष होता है, ऐसी बात भी साथ में आती है। परन्तु वास्तव में तो यह निरूपण-कथन है। व्यवहारमोक्षमार्ग, वह कथन है और उसका फल मोक्ष नहीं। आहाहा! परन्तु तो भी व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि ऐसा-ऐसा करे तो श्रावक को भी परम्परा मोक्ष का कारण होता है। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६८

अथ दानपूजापञ्चपरमेष्ठिवन्दनादिरुपं परंपरया मुक्तिकारणं श्रावकधर्मं कथयति–

२९१) दाणु ण दिण्णउ मुणिवरहँ ण वि पुज्जिउ जिण–णाहु।
पंच ण वंदिय परम–गुरु किमु होसइं सिव–लाहु।।१६८।।

दानं न दत्तं मुनिवरेभ्यः नापि पूजितः जिननाथः।
पञ्च न वन्दिताः परमगुरवः किं भविष्यति शिवलाभः।।१६८।।

दाणु इत्यादि। दाणु ण दिण्णउ आहाराभयभैषज्यशास्त्रभेदेन चतुर्विधदानं भक्तिपूर्वकं न दत्तम्। केषाम्। मुणिवरहं निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकानां मुनिवरादिचतु– र्विधसंघस्थितानां पात्राणां ण वि पुज्जिउ जलधारया सह गन्धाक्षतपुष्पाघष्टविधपूजया न पूजितः। कोडसौ। जिण–णाहु देवेन्द्रधरणेन्द्रनरेन्द्रपूजितः केवलज्ञानाघनन्तगुणपरिपूर्णः पूज्यपदस्थितो जिननाथः पंच ण वंदिय पञ्च न वन्दिताः। के ते। परम–गुरु त्रिभुवनाधीशवन्धपदस्थिता अर्हत्सिद्धाः त्रिभुवनेशवन्धमोक्षपदाराधकाः आचार्योपाध्यायसाधवश्चेति पञ्च गुरवः, किमु होसइ सिव–लाहु शिवशब्दवाच्यमोक्षपद– स्थितानां तदाराधकानामाचार्यादीनां च यथायोग्यं दानपूजा–वन्दनादिकं न कृतम्, कथं शिवशब्दवाच्यमोक्षसुखस्य लाभो भविष्यति न कथमपीति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा उपासकाव्याख्यानं ज्ञात्वा उपासकाध्ययनशास्त्रकथितमार्गेण विधिद्रव्यदातृ–पात्रलक्षण–विधानेन दानं दातव्यं पूजावन्दनादिकं च कर्तव्यमिति भावार्थः।।१६८।।

आगे दान, पूजा और पंचपरमेष्ठी की वंदना, आदि परम्परा मुक्ति का कारण जो श्रावकधर्म उसे कहते हैं–

दान दिया नहिं मुनिराजों को जिनवर की पूजा न हुई।
पञ्च परम गुरु की न वन्दना कैसे हो शिवपद प्राप्ति।।१६८।।

अन्वयार्थः– [दानं] आहारादि दान [मुनिवराणां] मुनिश्वर आदि पात्रों को [न दत्तं] नहीं दिया, [जिननाथः] जिनेन्द्रभगवान को भी [नापि पूजितः] नहीं पूजा, [पंच परमगुरवः] अरहंत आदिक पंचपरमेष्ठी [न वंदिताः] भी नहीं पूजे, तब [शिवलाभः] मोक्ष की प्राप्ति [किं भविष्यति] कैसे हो सकती है?

भावार्थः– आहार, औषध, शास्त्र और अभयदान–ये चार प्रकार के दान भक्तिपूर्वक

पात्रोंको नहीं दिये, अर्थात् निश्चय व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यती आदिक चार प्रकार संघ उनको चार प्रकार का दान भक्तिकर नहीं दिया, और भूखे जीवों को करुणाभाव से दान नहीं दिया। इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदिकर पूज्य केवलज्ञानादि अनंतगुणोंकर पूर्ण जिननाथ की पूजा नहीं कीं; जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेघ, दीप, धूप फल से पूजा नहीं की; और तीन लोककर वंदने योग्य ऐसे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँचपरमेष्ठियों की आराधना नहीं की। सो हे जीव, इन कार्यों के बिना तुझे मुक्ति का लाभ कैसे होगा? क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति के ये ही उपाय हैं। जिनपूजा, पंचपरमेष्ठी की वंदना, और चार संघ को चार प्रकार का दान, इन बिना मुक्ति नहीं हो सकती। ऐसा व्याख्यान जानकर सातवें उपासकाध्ययन अंग में कही गई जो दान, पूजा, वंदनादिक की विधि वही करने योग्य है। शुभ विधि से न्यायकर उपार्जन किया अच्छा द्रव्य वह दातार के अच्छे गुणों को धारणकर विधि से पात्र को देना, जिनराज की पूजा करना, और पंचपरमेष्ठी की वंदना करना, ये ही व्यवहारनयकर कल्याण के उपाय हैं।।१६८।।

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण १३, बुधवार
दिनांक- १६-०२-१९७७, गाथा - १६८ से १७०, प्रवचन-२१८

परमात्मप्रकाश, १६८ गाथा। उपोद्घात का अर्थ किया ही नहीं नीचे तो। उसमें पहले अर्थ किया सीधे। टीका में नहीं। उपोद्घात बाँधा न, उसमें किया।

२९१) दाणु ण दिण्णउ मुणिवरहँ ण वि पुज्जिउ जिण-णाहु।
पंच ण वंदिय परम-गुरु किमु होसइं सिव-लाहु।।१६८।।

पाठ में तो यह है। **दान, पूजा, पंच परमेष्ठी की वन्दना, आदि...** है शुभभाव। परन्तु स्व का आश्रय होकर जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, उसे व्यवहार ऐसा होता है और इससे व्यवहार मुक्ति का कारण है परम्परा से, ऐसा कहने में आता है। अकेला जहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं, स्व का आश्रय ही नहीं, उसका जो व्यवहार है, वह तो अकेला संसार का कारण है। व्यवहार ही नहीं। तथापि व्यवहार कहा जाता है व्यवहाराभासरूप से, व्यवहाररूप से। अव्रत आते हैं न बन्ध अधिकार में? जिनाज्ञा में

कहा हुआ अभव्य भी व्यवहार करता है। यह तो सब भाषा है। व्यवहार करने की भाषा। आहाहा! परन्तु यह तो निश्चयपूर्वक सच्चा व्यवहार ऐसा होता है उपासक अध्ययन के कथन की शैली से यह बात करना चाहते हैं। वे गये लगते हैं हिन्दी। नहीं।

जो श्रावकधर्म उसे कहते हैं:—देखा! **दान, पूजा और पंच परमेष्ठी की पूजा, वन्दना आदि परम्परा मुक्ति का कारण जो श्रावकधर्म कहते हैं**—देखो न, श्रावकधर्म की व्याख्या है न? आहाहा! **आहारादि दान...** मुनियों को—सत्य मुनि को आहारदान दे, श्रावक समकिती है, जिसे आत्मज्ञान हुआ है, मैं शुद्धचैतन्य सम्यक् स्व के आश्रय से सम्यग्दृष्टि हुआ है, उसे ऐसा भाव आता है, ऐसी बात करते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात।

दान, पूजा... आहारादि दान मुनिश्वर आदि पात्रों को नहीं दिया,... मुनिश्वर भी पात्र जीव महा, जिन्हें आनन्द की धारा बहती है, ऐसे मुनि। जिन्हें शुद्धोपयोग वर्तता है, वे मुनि। आहाहा! ऐसे मुनि को सम्यग्दृष्टि होकर शुभभाव न आवे तो उसे परम्परा मुक्ति का कारण होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! **जिनेन्द्र भगवान को भी नहीं पूजा,...** सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की जिसने निश्चय सम्यग्दर्शनसहित पूजा नहीं की तो उसे व्यवहार होता नहीं, तो व्यवहार जो मोक्ष का परम्परा कारण है, वह तो है नहीं। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दृष्टिसहित की बात है, हों! अकेले आत्मज्ञान बिना के व्रत, तप सब बिना एक के शून्य हैं। बालतप और बालव्रत। आहाहा!

यहाँ तो आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन, स्वसंवेदनज्ञान हुआ आत्मा का, आहाहा! उसे पूर्ण दशा वीतरागादि है नहीं, तो उसे ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। तो व्यवहारनय से कहा जाता है कि यह करे—दान करे, पूजा करे, ऐसा कहा जाता है। वह है शुभभाव। परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शन हो, उसकी यह बात है। जिसे अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, क्या चीज़ है।

मुमुक्षु : यह करे, उसे होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं होता। ऐसा तो अनन्त बार करता है। समझ में आया? यह पुण्य-पाप अधिकार में आया नहीं? व्रत, नियम और तप तो अनन्त बार किये। सम्यग्दर्शन बिना परमार्थ, ज्ञान के आश्रय बिना अकेला भगवान ज्ञानस्वरूप है,

उसके आश्रय बिना, उसके आधार बिना जितने व्रत, तप आदि हैं, वे तो बालव्रत संसार खाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जिनेन्द्र भगवान को भी नहीं पूजा,... पंच परमगुरु **अरहन्त आदि पंच परमेष्ठी भी नहीं पूजे, तब मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है?** निश्चयपूर्वक, यदि वीतराग न हो तो ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं और व्यवहार न हो तो मुक्ति कैसे होगी? ऐसा कहते हैं। निश्चय तो थोड़ा है। वीतरागता है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थः—आहार, औषध, शास्त्र और अभयदान—ये चार प्रकार के दान भक्तिपूर्वक पात्रों को नहीं दिये,... यह सिद्धान्त। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि को ही सच्ची भक्ति होती है। मिथ्यादृष्टि को सच्ची भक्ति नहीं होती। एक बात। और **पात्रों को नहीं दिये...** पात्र जो सामने है। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शनसहित जिसे चारित्र अन्दर आनन्द, चारित्र अर्थात् आनन्द की शुद्ध उपयोग धारा बहती है, ऐसे मुनि को पात्र कहते हैं। समझ में आया? इसलिए भक्तिपूर्वक और पात्रों को। दो शब्दों पर वजन है। है न?

सम्यग्दृष्टि की भक्ति, भक्ति सच्ची होती है। राग के रसवाले को गुरु की सच्ची भक्ति नहीं होती। आहाहा! यह कहा न भगवान समन्तभद्राचार्य ने, प्रभु! आपको अभव्य नहीं पूजता। क्योंकि वह अभव्य आदि मिथ्यादृष्टि राग की रुचिवाले हैं। जिसे राग की रुचि है, वह वीतराग को नहीं पूज सकते। आहाहा! वह पूजे तो बाहर से राग को पूजता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात, भाई! यह कहते हैं। आहारदान, औषधदान, अभयदान, शास्त्रदान **भक्तिपूर्वक पात्रों को नहीं दिये,...** जिसे सम्यग्दर्शनसहित भक्ति सच्ची होती है। आहाहा! उसे नहीं दिया।

निश्चय व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति... कैसे हैं पात्र मुनि? अब पात्र कैसे हैं? कि जिन्हें निश्चय आत्मज्ञान आनन्द का अनुभव हुआ है। आहाहा! निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय और उनके पास पंच महाव्रतादि का, शास्त्र ज्ञान का विकल्प है, वह व्यवहार है। निश्चय स्वभाव आनन्द का अनुभव है, वह निश्चय है। तो उन्हें सच्चा मुनि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयरत्नत्रय (और) व्यवहाररत्नत्रय के आराधक... आहाहा! **जो यति...** मुनि **आदिक चार...** यति आदि अर्थात् श्रावक। उन्हें भी अपेक्षा से। **चार प्रकार संघ उनको चार प्रकार का दान भक्तिकर नहीं दिया, और भूखे जीवों को करुणाभाव से दान नहीं दिया।** समझ में आया? यह स्वयं ने डाला है न? नहीं। पाठ में नहीं, टीका में नहीं, टीका में नहीं। करुणा का व्यवहार का टीका में नहीं। आत्मज्ञान, आत्मा के आनन्द का अनुभव, उस अनुभवसहित सम्यग्दर्शनसहित जिसने मुनिवर आदि की पूजा नहीं की **और भूखे जीवों को करुणाभाव से दान नहीं दिया।** शुभभाव।

इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदिकर पूज्य... जिननाथ। आहाहा! जिनेन्द्रदेव तो इन्द्र, नरेन्द्र और नागेन्द्र से भी पूजनीय हैं। आहाहा! आदि सबसे पूज्य ऐसे **केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकर पूर्ण जिननाथ की पूजा नहीं की;...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द ऐसे **अनन्त गुणोंकर पूर्ण जिननाथ की पूजा नहीं की;...** आहाहा! विशेष कहते हैं। चन्दन को अन्दर विशेष डाला है। **जल, चन्दन, अक्षत,...** चावल **पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल से पूजा नहीं की; और तीन लोककर वन्दने योग्य ऐसे अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँच परमेष्ठियों की आराधना नहीं की। सो हे जीव, इन कार्यों के बिना तुझे मुक्ति का लाभ कैसे होगा?** परम्परा मुक्ति का लाभ, उसे कैसे होगा? आहाहा! समझ में आया? क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति का यह उपाय है। यह व्यवहार उपाय है। निश्चय के साथ।

जिनपूजा, पंच परमेष्ठी की वन्दना और चार संघ को चार प्रकार का दान,... कहा था न? यति आदि शब्द था न? उसमें यह डाला फिर। श्रावक डाले। अरिहन्त, **सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँच परमेष्ठियों की आराधना नहीं की, सो हे जीव, इन कार्यों के बिना तुझे मुक्ति का लाभ कैसे होगा? जिनपूजा, पंच परमेष्ठी की वन्दना, और चार संघ को चार प्रकार का दान,...** फिर संघ में मुनि भी लेना। चार संघ में, चार प्रकार के मुनि भी आते हैं न।

मुमुक्षु : मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं। मुनि, यति, अणगार (ऋषि) ऐसे मुनि के चार

भेद हैं। पंच परमेष्ठी है न, प्रवचनसार में। और श्रावक, श्राविका, आर्यिका, मुनि यह चार संघ श्रावकसहित के हैं। मुनि में ये चार संघ हैं। मुनि को चार संघ होते हैं।

इन बिना मुक्ति नहीं हो सकती। ऐसा व्याख्यान जानकर सातवें उपासकाध्ययन अंग में कही गई जो दान, पूजा, वन्दनादिक की विधि, वही करने योग्य है। व्यवहारनय से है न? **शुभ विधि से न्यायकर उपार्जन किया अच्छा द्रव्य...** लक्ष्मी सुविधि से, हों! अनीति से, अन्याय से नहीं। **वह दातार के अच्छे गुणों को धारणकर विधि से पात्र को देना, जिनराज की पूजा करना, और पंच परमेष्ठी की वन्दना करना, ये ही व्यवहारनयकर कल्याण के उपाय हैं।** देखो! है न अन्त में? आहाहा! यह तो स्वयं ने डाला है स्पष्टीकरण। व्यवहारनय था न, निश्चय का कारण परम्परा कहा था न? इसलिए वह व्यवहारनय से है। व्यवहारनय का विषय है। जैसे निश्चय का विषय आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञायकभाव है, उसका अनुभव निश्चय, और निश्चय के साथ पंच परमेष्ठी की वन्दना, पूजा आदि का भाव, वह व्यवहार। वह व्यवहार भी है, निश्चय भी है। व्यवहार परम्परा उपाय कहने में आता है। निश्चय साक्षात् उपाय का कारण है। आहाहा! यह आया न पुण्य-पाप अधिकार में, विद्वत्जन 'भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करे।'

निश्चय अपना स्वरूप आनन्द का नाथ प्रभु, उसके आश्रय बिना। आहाहा! व्यवहार का वर्तन करे, उसे मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया? विद्वान उसमें शास्त्र में से ऐसा निकाले, निश्चय की बात छोड़कर व्यवहार की बात निकाले तो उसे मुक्ति नहीं होगी। है न पुण्य-पाप अधिकार में। यहाँ तो निश्चय स्वभाव का आश्रय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द का अनुभव है, परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं तो ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। आहाहा! व्यवहार आता है। है बन्ध का कारण, परन्तु यहाँ मोक्ष के कारण का आरोप देकर मोक्ष का कारण व्यवहार से कहा। आहाहा! भारी कठिन बात! समझ में आया? है तो बन्ध का कारण। अपना आत्मा निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित है तो वह निश्चय वस्तु है, उसका उसे आरोप दिया। वह व्यवहार से मोक्ष का कारण है। है बन्ध का कारण, उसे मोक्ष का कारण कहना, वह व्यवहारनय है। आहाहा! भारी विरोध गड़बड़ चलती है अभी। आहाहा!

गाथा - १६९

अथ निश्चयेन चिन्तारहितध्यानमेव मुक्तिकारणमिति प्रतिपादयति चतुष्कलेन–

२९२) अद्धुम्मीलिय–लोयणिहिँ जोउ कि झंपियएहिँ।
एमुह लव्भइ परम–गइ णिच्चिंतिं ठियएहिँ।।१६९।।

अर्धोन्मीलितलोचनाभ्यां योगः किं झंपिताभ्याम्।
एवमेव लभ्यते परमगतिः निश्चिन्तं स्थितैः।।१६९।।

अद्धुम्मीलिय–लोयणिहिं अर्धोन्मीलितलोचनपुटाभ्यां जोउ किं योगो ध्यानं किं भवति अपि तु नैव। न केवलमर्धोन्मीलिताभ्याम्। झंपियएहिं झंपिताभ्यामपि लोचनाभ्यां नैवेति। तर्हि कथं लभ्यते। एमुइ लब्भइ एवमेव लभ्यते लोचनपुटनिमीलनोन्मीलननिरपेक्षैः। का लभ्यते। परम–गइ केवल ज्ञानादिपरमगुणयोगात्परमगतिर्मोक्षगतिः। कैः लभ्यते णिच्चिंतिं ठियएहिं ख्यातिपूजालाभप्रभृतिसमस्तचिन्ताजालरहितैः पुरुषैश्चिन्तारहितैः स्वशुद्धात्मरुपस्थितैश्चत्य–भिप्रायः।।१६९।।

आगे निश्चय से चिन्ता रहित ध्यान ही मुक्ति का कारण है, ऐसा कहते हैं–

अर्धोन्मीलित अथवा बन्द चक्षु से क्या होता है योग?
एकमात्र निश्चिन्त लीनता से ही प्राप्त परम गति हो।।१६९/२९२।।

अन्वयार्थः– [अर्धोन्मीलितलोचनाभ्यां] आधें ऊघड़े हुए नेत्रों से अथवा [झंपिताभ्याम्] बंद हुए नेत्रों से [किं] क्या [योगः] ध्यान की सिद्धि होती है, कभी नहीं। [निश्चितं स्थितैः] जो चिन्ता रहित एकाग्र में स्थित हैं, उनको [एवमेव] इसी तरह [लभ्यते परमगतिः] स्वयमेव परमगति (मोक्ष) मिलती है।

भावार्थः– ख्याति (बड़ाई) पूजा (अपनी प्रतिष्ठा) और लाभ इनको आदि लेकर समस्त चिन्ताओं से रहित जो निश्चिंत पुरुष हैं, वे ही शुद्धात्मस्वरुप में स्थिरता पाते हैं, उन्हीं के ध्यान की सिद्धि है, और वे ही परमगति के पात्र हैं।।१६९।।

गाथा-१६९ पर प्रवचन

अब निश्चय से चिन्ता रहित ध्यान ही मुक्ति का कारण है,... देखो अब। यह सब विकल्प छोड़कर अन्दर में ध्यान में जाता है तो मुक्ति का कारण है। व्यवहार कहा, बीच में आता है तो। परन्तु जब अन्तर आत्मध्यान में सब चिन्ता छोड़कर अन्तर में जाकर आनन्द का अनुभव न करे, तब तक मुक्ति नहीं होती। १६९।

२९२) **अद्धुम्मीलिय-लोयणिहिं जोउ कि झंपियएहिं।**
एमुह लब्भइ परम-गइ णिच्चिंतिं ठियएहिं।।१६९।।

आहाहा! जिसने सब चिन्ता छोड़कर। विकल्प छोड़कर, ऐसा कहते हैं। पहले बताया। निश्चय आत्मा का अनुभवपूर्वक व्यवहार आता है, परन्तु जब तक विकल्प छोड़कर चिन्तारहित ध्यान में न जाये, तब तक मुक्ति नहीं होती। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी सूक्ष्म भाई! किस प्रकार ध्यान करना? **आधे उघड़े हुए नेत्रों से...** ऐसे आधे (उघड़े)। इससे कहीं ध्यान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। परन्तु ऐसी चेष्टा वहाँ होती है। **नेत्रों से अथवा बन्द हुए नेत्रों से क्या ध्यान की सिद्धि होती है? कभी नहीं।** अन्दर में रागरहित, चिन्ता छोड़कर ध्यान करे तो ध्यान होता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात, भाई! शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभ जो राग है, उसे छोड़कर ध्यान करे तो आत्मा अनुभव में आ सकता है। आँख आधी बन्द करे और एक आँख बन्द करे। बन्द करे अर्थात् ध्यान हो जाये? आहाहा! समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात, भाई! **ध्यान की सिद्धि होती है? कभी नहीं।**

जो चिन्ता रहित एकाग्र में स्थित हैं,... आहाहा! यह शुभ जो विकल्प कहा दानादि का, वह श्रावक की अपेक्षा से निश्चयसहित व्यवहार कहा। परन्तु मुक्ति प्राप्त करता है, तब तो विकल्प को छोड़कर, सब चिन्ता छोड़कर अकेले भगवान आत्मा के अस्तित्व में ध्यान लगा दे, तब मुक्ति होगी। आहाहा! समझ में आया? ध्यान क्या? ध्यान का अर्थ ज्ञायकभाव है, शुद्धभाव परिपूर्ण है, उसमें एकाग्र होना, वह ध्यान है।

कल कहा नहीं था? ध्रुव के ध्यान की धुनी धखती। पाँचवाँ शब्द था कुछ। रात्रि

में था न? पाँच शब्द थे। ध्रुवधाम, ठीक हाँ। ध्रुवधाम के ध्यान की धुनी धखा। क्या कहते हैं? भगवान आनन्द का कन्द प्रभु नित्यानन्द, ध्रुवधाम वस्तु के ध्यान की धुनी धखती निर्मल वीतराग परिणति से धखती, वह मुक्ति का कारण है। समझ में आया? आहाहा! बीच में बताया श्रावक का अधिकार। परन्तु कहते हैं कि इस श्रावक की दशा में मुक्ति नहीं होती। आहाहा! उसे तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप से भरा पड़ा प्रभु, आहाहा! उसे ध्येय बनाकर। आहाहा! ध्यान में ध्येय बनाकर उसकी एकाग्रता की धुन लगाना। आहाहा! वही एक मुक्ति का कारण है। समझ में आया? दूसरा कारण कहा था, परन्तु वह व्यवहार से कहा था। यह परमार्थ तो यह है। आहाहा!

यह तो आता है न, श्रावक में नहीं आता यह? योगसार में आता है न! गृहकार्य करते हुए, गृहकाम करने पर भी हेयाहेय का ज्ञान। मैं त्रिकाली आनन्दस्वरूपी आदेय उपादेय है और रागादि हेय है। आहाहा! ऐसा गृहस्थाश्रम में भी गृहकाम करने पर भी हेयाहेय का ज्ञान। दो श्लोक हैं। एक १४वाँ और एक ६५वाँ। आहाहा! योगसार में है। योगीन्द्रदेव। है उसमें? आहाहा! १८। हाँ यह! '**गिहि-वावार-परिट्ठिया हेयाहेउ मुणंति।**' लो यह। '**गृहकाम करते हुए, हेयाहेय का ज्ञान**' भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु पूर्ण उपादेय है और रागादि हेय है। आहाहा! है? '**अणुदिणु सायहिं**' निरन्तर ध्यान करता है। '**अणुदिणु**' निरन्तर। आहाहा! गृहस्थाश्रम में रहता है परन्तु अन्तर में ध्यान करता है, कहते हैं। '**अणुदिणु सायहिं दोउ जिणु लहु णिव्वाणु लहंति॥**' '**अणुदिणु सायहिं दोउ**' यह देव अपना आत्मा भगवान। '**लहु णिव्वाणु लहंति॥**' '**शीघ्र निर्वाण को पाता है।**' दूसरी है न यह? ६५। यह है न!

'**सागारु वि णागारु कु वि जो अप्पाणि वसेइ।**' आहाहा! देखो! योगीन्द्रदेव (मुनिराज)। यह योगीन्द्रदेव हैं न! परमात्मप्रकाश (बनाया) वे। '**सागारु वि णागारु**' श्रावक हो या मुनि हो। '**अप्पाणि वसेइ।**' भगवान आनन्दस्वरूप में अन्दर बसते हैं, स्थिर होते हैं। आहाहा! गृहस्थाश्रम में अनुभव नहीं हो सकता, ऐसा यहाँ इनकार करते हैं। अन्यत्र इनकार करे, वह तो मुनिपने का जो अनुभव आनन्द का विशेष है, वह उतना नहीं होता। बाकी यहाँ तो यह कहा, देखो! गृहस्थ हो या मुनि हो, जो कोई भी निज

आत्मा में वास करता है। आहाहा! व्यवहार का विकल्प छोड़कर जितना आत्मा में निवास करता है। आहाहा! है? **वह शीघ्र ही मोक्ष के सुख को पाता है, ऐसा जिनवर कहते हैं।** है न? '**जिणवरु एम भणेइ।**' तीन लोक के नाथ जिनवर ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

१८ में तो हिन्दी नहीं होगा। गाथा ऊपर से वाँच लेते हैं। १८-१८। **जो गृहस्थ के कार्यों में प्रवर्तते होने पर भी हेय-उपादेय को जानते हैं और रात-दिन (निरन्तर) जिनदेव को ध्याते हैं,...** ऐसा लिया है जरा। '**अणुदिणु सायहिं दोउ जिणु**' **शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करते हैं।** आहाहा! श्रावक की दशा भी कैसी? जिसे सम्यग्दर्शन है, जिसे सर्वार्थसिद्धि के देव समकिती एक भवतारी है, उनसे भी जिनकी अन्तर दशा शान्ति की वृद्धि हो गयी है अन्दर। आहाहा! पंचम गुणस्थान जिसे आत्मज्ञान उपरान्त शान्ति-स्थिरता अन्तर में बढ़ गयी है। आहाहा! शुद्धि की वृद्धि हो गयी, उसका नाम श्रावक और पंचम गुणस्थान का गृहस्थाश्रम कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। क्या हो? वे तो यह डालते हैं कि व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है, निश्चय बिना व्यवहार आया कहाँ से? परन्तु निश्चय अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द प्रभु, उसका निर्विकल्प आनन्द का भाव तो आया नहीं, आनन्द का वेदन नहीं, आनन्द की प्रतीति हुई नहीं। आहाहा! तो उसके व्रत और तप कहाँ से आये उसे? निश्चय बिना के शून्य हैं अकेले। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। कैसी चिन्ता? अब यह स्पष्टीकरण करते हैं।

भावार्थः—ख्याति पूजा... ख्याति अर्थात् बड़ाई। सबसे मैं बड़ा हूँ, ऐसी महत्ता की चिन्ता छोड़ दे। **पूजा (अपनी प्रतिष्ठा)...** हमारा बाहर में बहुत मान है, हम दुनिया में गिने जाते हैं, इस पूजा की चिन्ता छोड़ दे। समझ में आया? **और लाभ, इनको आदि...** लाभ, पैसे मिले, पुत्र हुआ, ६० वर्ष में पुत्र आया तो यह किया। वह तो चिन्ता है, सब राग है। पैसे मिले पाँच-पच्चीस लाख। लाभ हुआ। क्या धूल-लाभ है? आहाहा! उसकी भी चिन्ता छोड़कर ध्यान लगा दे अन्दर में। आहाहा! ऐसी बात है।

समस्त चिन्ताओं से रहित... समस्त चिन्ता से रहित। अरे! गुणगुणी के भेद का

विकल्प भी चिन्ता से रहित। आहाहा! ऐसी बातें। राग आता है पूजा, भक्ति का। अरे! अशुभ भी होता है समकिती को। राग आता है। राग छूटता नहीं, राग आता तो है और वैसी क्रिया भी होती है, परन्तु अन्तर में स्व का आश्रय जितना है, उतना मोक्ष का कारण है। आहाहा! उतनी संवर-निर्जरा है। बाकी सब आस्रव और बन्ध है। आहाहा! लो!

समस्त चिन्ताओं से रहित जो निश्चिन्त पुरुष हैं,... निश्चिन्त पुरुष हैं,... वह आया था न अपने, नहीं? निभ्रत, निभ्रत। चिन्ता कोई नहीं। आहाहा! बाह्य की किसी भी प्रकार की चिन्ता, वह विकल्प है, राग है। आहाहा! अन्तर में ध्यान करने में तो विघ्न है। यह कहते हैं। **निश्चिन्त पुरुष हैं,...** चिन्तारहित जो आत्मा है। चिन्ता... शरीर का क्या होगा? परिवार का क्या होगा? प्रतिष्ठा का क्या होगा? सब चिन्ता छोड़ दे, कहते हैं। आहाहा! तब भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु में जा सकेगा। आहाहा!

निश्चिन्त पुरुष हैं, वे ही शुद्धात्मस्वरूप में स्थिरता पाते हैं,... आहाहा! अपने अतिरिक्त बाह्य किसी भी पदार्थ की चिन्ता छोड़ दे, तो आत्मा में स्थिरता होती है। वह दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। आत्मा में दर्शन, ज्ञान स्थिरता, वही मोक्षमार्ग है। समझ में आया? कठिन भाई! उस कारण की विकार है, उसकी बड़ी चर्चा ली है। विकार है, वह पराधीन है, पराधीन का कारण नहीं। पराधीन का कारण कर्म है। पराधीन स्वयं करता है, उसमें कारण है, निमित्त कारण है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि कर्म से आत्मा पराधीन होता है। ऐसा है नहीं। तो चिन्ता छोड़ दे, यह कहाँ से आया? कर्म से चिन्ता हो तो कर्म तो छूटे नहीं, अपनी सज्जनता छूटे नहीं। समझ में आया? चिन्ता करता है यहाँ तो छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। छोड़ दे तो उसकी चिन्ता स्वयं से करता हो, निमित्त कारण हो, उसे कारण कहते हैं, परन्तु पराधीन तो अपनी पर्याय पर के आधीन होती है। ऐसा पुरुषार्थ समझे तो चिन्ता छोड़कर अन्दर में आ सकता है। परन्तु कर्म ही हमको विकार कराते हैं। तो कर्म छूटे तो तेरा विकार छूटे। तो तेरे पुरुषार्थ से कुछ हुआ नहीं। तेरे अधिकार में तो धर्म करना रहा नहीं। आहाहा! प्रत्येक के अर्थ में बहुत अन्तर।

शास्त्र में ऐसा आया, कर्म का कारण—पराधीन का कर्म कारण है। परन्तु इसका अर्थ क्या? आहाहा! वह तो निमित्त कारण है। उपादान तो स्वयं से पराधीन करता है।

पराधीन करता है तो उसमें निमित्तकारण कर्म है। कर्म पराधीन कराता है (ऐसा) बिल्कुल नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्या करे? हमारे कर्म का बहुत जोर है, इसलिए राग मिटता नहीं, यह बात है। ऐसी बात कौन करता है? तुझे विकार का जोर है तो उसमें कर्म निमित्त कहने में आते हैं। कारण निमित्त, निमित्तकर्ता नहीं। निमित्त कारण कहो, परन्तु वह निमित्त विकार का कर्ता नहीं। आहाहा! विकार को करनेवाला तो जीव स्वतन्त्र है। आहाहा! इसकी खबर नहीं होती। पूजा में नहीं आता? 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' कर्म बेचारे क्या करे? वे तो जड़ हैं, मिट्टी, धूल हैं। उसकी भी खबर नहीं कुछ कि कौन सा विकार कैसे होता है? वह तो कर्म के कारण विकार होता है। 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' लोहे में अग्नि प्रविष्ट करे तो घन पड़ते हैं। अकेली अग्नि पृथक् (होवे तो घन नहीं पड़ते)। इसी प्रकार भगवान आत्मा पर का संग करे तो पराधीन हो जाये। आहाहा! समझ में आया? एक-एक बात में अन्तर, मान्यता में अन्तर। कर्म टले, तब राग टले। यह तो अपने आधीन रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तब कहते हैं कि तुम ऐसा मानते हो तो नियत क्रम में आनेवाला हो, वह आता है। उसमें आत्मा राग से भिन्न कैसे करे? क्रमबद्ध में आनेवाला हो वह आता है। परन्तु क्रमबद्ध में आनेवाला राग आता है, उसका निर्णय किसके आश्रय से होता है? आहाहा! समझ में आया? आता है तो क्रमबद्ध, परन्तु क्रमबद्ध समय-समय की पर्याय में जो भाव आनेवाला हो, वह आता है, तो उसका निर्णय किसने किया? और निर्णय किसके आश्रय से होता है? यह ज्ञायक भगवान आत्मा पूर्णानन्द के आश्रय से क्रमबद्ध का निर्णय होता है। तब कर्ताबुद्धि टलती है और अकर्ताबुद्धि ज्ञातादृष्टा होती है। आहाहा! पुरुषार्थ नहीं, ऐसा नहीं है। क्रमबद्ध में भगवान ने देखा होगा, वैसा होगा, हम क्या पुरुषार्थ करें? क्रमबद्ध में होनेवाला हो, वह होता है, हम क्या करें? परन्तु जिसने क्रमबद्ध माना और सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होता है, ऐसा माना, उसका पुरुषार्थ तो स्वभाव -सन्मुख हो जाता है। आहाहा! कुछ बात खबर नहीं इसे। जाओ, हो गया धर्म। धन्धा, व्यापार के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, मजदूरी पूरे (दिन)। ऐई! पोपटभाई! बड़ा मजदूर। उसमें यह निर्णय करने का अवसर कहाँ? किस प्रकार मैं मानता हूँ? और

किस प्रकार होता है ? भगवान क्या कहते हैं और मैं क्या मानता हूँ ? तुलना करने का समय भी नहीं। आहाहा ! जिन्दगी ऐसी की ऐसी बिना भान के चली जाती है। यह यहाँ कहते हैं। आहाहा !

चिन्ताओं से रहित जो... यह आया न ? **वे ही शुद्धात्मस्वरूप में स्थिरता पाता है,...** आहाहा ! चिन्ता का कारण कर्म है तो कर्म छूटे तो मैं चिन्ता छोड़ सकूँ, ऐसी बात नहीं है। आहाहा ! कर्म तो बेचारे जड़ हैं, धूल हैं, अजीव है, उन्हें तो खबर भी नहीं कि हम कर्म हैं या नहीं ? और मैं पर को नुकसान करूँ, यह कौन मानता है, इसकी भी खबर नहीं। आहाहा ! कर्म को खबर है ? वह तो जड़ है, मिट्टी, धूल। यह शरीर जैसे मिट्टी-धूल है, वैसे कर्म जड़ है। कर्म को तो खबर भी नहीं, मैं उसे नुकसान करता हूँ, ऐसा माननेवाला आत्मा है, इसकी भी उसे खबर नहीं। आहाहा !

जो ज्ञान पर को यह कर्म है, शरीर है, घट्ट है, मट्ठ है, राग है, उसे जो ज्ञान ऐसे प्रत्यक्ष करता है, वह ज्ञान स्व में प्रत्यक्ष क्यों नहीं कर सकता ? समझ में आया ? जो ज्ञान की पर्याय पर को प्रत्यक्ष करती है कि यह राग है, यह घट है, यह मठ्ठ है, यह स्त्री है, यह परिवार है। जो ज्ञान की पर्याय—अवस्था पर को 'यह है' ऐसा जानने में काम करती है, उस ज्ञान की पर्याय में 'जाननेवाला मैं हूँ'—ऐसा स्व का काम क्यों नहीं कर सके ? आहाहा ! समझ में आया ?

जो ज्ञान की दशा, यह चिन्ता निरोध की बात चलती है, ज्ञान जो आत्मा की वर्तमान दशा है, वह घट है, पट है, मकान है, भगवान है, परमेश्वर है, मन्दिर है, उसे ज्ञान प्रत्यक्ष जानता है या नहीं ऐसे ? या किसी के आश्रय से जानता है ? आहाहा ! वह ज्ञान स्व की ओर ढलता है तो अपने को प्रत्यक्ष करता है। क्योंकि पर्याय में आत्मा ही ज्ञात होता है। समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञान की वर्तमान दशा में पर को जानने का प्रत्यक्ष करता है कि इसका अस्तित्व है, इसका अस्तित्व है, यह है, यह है, वह ज्ञान की पर्याय स्व का अस्तित्व सिद्ध न कर सके ? अरे ! आहाहा ! समझ में आया ? राजेन्द्रजी ! न्याय-लॉजिक से तो बात चलती है। ऐसी कुछ गड़बड़ नहीं। आहाहा !

जो ज्ञान पर को प्रत्यक्ष करता है, चिन्तावाली बात वह तो है। समझ में आया ?

वह ज्ञान की पर्याय पर को प्रत्यक्ष करे, वह स्व को क्यों न करे? क्योंकि स्व का प्रकाशक, वह तो उसका मूलस्वभाव है। पर का प्रकाश तो अकेले स्व बिना का तो उसका मूलस्वभाव ही नहीं है। समझ में आया? चिमनभाई! भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, वह तो अपने अस्तित्व से है। तो जो परप्रकाशक का जो ज्ञान अपने में रहकर पर की प्रत्यक्षता अस्तित्व में है, ऐसा मानता है, आहाहा! वह जहाँ अपने स्वभाव में जानता है, पर्याय में ज्ञान आत्मा ही जानने में आता है। तो इस ओर जानकर यह आत्मा पर्याय में जानता है और वह पर्याय आत्मा को जानती है, ऐसा निर्णय क्यों नहीं कर सकता? न्याय समझ में आता है? आहाहा!

राग है, पाप का राग आता है, उसे जानता है या नहीं? जो जैसा है, वैसा जानता है या नहीं ज्ञान कि यह राग है? राग को ऐसा मानता है कि यह गधा है? गधे को जानता है, ऐसा मानता है या यह राग है? समझ में आया? क्या कहते हैं? यह चिन्ता छोड़ दे, इसका अर्थ यह है कि ज्ञान की पर्याय पर को जानने में रुकती है तो चिन्ता होती है। तो उसे भी प्रत्यक्ष करती है और है, यह ज्ञान है, वह पर को जाननेवाला है और पर भी है, ऐसा निर्णय करता है। अब जो ज्ञान अपनी पर्याय का है, वह परवस्तु का वह ज्ञान नहीं। उसे भी अस्तित्व से मानता है तो जो ज्ञान की पर्याय जिसकी है, उसके अस्तित्व का निर्णय क्यों नहीं कर सकती? नवलचन्दभाई! आहाहा! शब्दों की बात नहीं, भाई! यह तो भाव की बात है। आहाहा! समझ में आया?

और इसलिए १७-१८ गाथा (समयसार में) कहा है न कि अपनी जो ज्ञानपर्याय है वर्तमान अवस्था, उसमें ज्ञायक को ही जानता है। समझे? परन्तु इसकी दृष्टि वहाँ नहीं। वह पर्याय ज्ञायक को जानती है, ऐसी दृष्टि नहीं। परन्तु वह पर्याय इसे जानती है, यह दृष्टि है। घट को, पट को, स्त्री को, परिवार को, व्यापार को, धन्धे को यह पर्याय जानती है, यह वहाँ इसकी दृष्टि है। यह झूठी दृष्टि है।

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञान सब पर में ही जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका लक्ष्य पर के ऊपर ही जाता है। ज्ञान की पर्याय वह तो। भले इन्द्रिय तो निमित्त है, परन्तु भावेन्द्रिय की जो पर्याय है, वह तो पर को जानने में

उसका झुकाव है। आहाहा! तो जो स्थूल वस्तु जगत की और राग भी स्थूल शुभ, अशुभ। स्थूल है न वह? कहा न पुण्य-पाप? आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य और पाप दोनों को स्थूल कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को स्थूल कहा है भगवान ने। तो जो स्थूल जो सूक्ष्म ज्ञान परसन्मुख के झुकाव में पर है, भले एकमेक न हो, परन्तु है—ऐसा निर्णय करने में उसका अस्तित्व है, पर का—ऐसा वह मानता है, जानता है। आहाहा! वह ज्ञान की पर्याय स्व को जानने में क्यों नहीं जान सकती? आहाहा! समझ में आया? वहाँ चिन्ता की बात ही नहीं अन्दर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : चिन्ता छोड़ना उसकी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बात है। वहाँ तक पर के ऊपर है। चिन्ता को जानता है, राग को जानता है। आहाहा! वह जो कोई चिन्ता को राग को... आया न यह? व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है। वह भी व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, वह किसे? कि पर को जानता है, परन्तु पहले स्व को जाना, तब पर को जानता है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसा भारी, भाई! यह ज्ञान की कला है। यह ज्ञान की कला खिलती है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

और वे ही परमगति के पात्र हैं। है? आहाहा! **उन्हीं के ध्यान की सिद्धि है, और वे ही परमगति के पात्र हैं।** मोक्ष का पात्र तो वह जीव है। परसन्मुख का ज्ञान, चिन्ता रागादि की करता है, वही ज्ञान की पर्याय, भले उस समय की पर्याय नहीं, परन्तु दूसरी परन्तु अपना ज्ञान कर सकती है, उसमें क्या है? आहाहा! तब उन लोगों ने यह प्रश्न दिया है कि जो स्व को जान सकता है, तब उसके लिये काल का क्या काम है अर्धपुद्गल (परावर्तन) का? ऐसा कहते हैं। भाई! किस अपेक्षा से? अर्धपुद्गलपरावर्तन जब संसार का है, तब ही सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकता है। यह पर्याय का स्वभाव ही इतना है। आहाहा! ऐसा। ऐसा कि यह जान सकता है तो ऐसा जानने में काल की क्या आवश्यकता है? काल की आवश्यकता है नहीं परन्तु किसे? जिसे अर्धपुद्गल(परावर्तन) संसार रहा है, उसे ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई!

यह तो अकेला ज्ञान का विषय है, भाई! आहाहा! ज्ञान ने स्व का विषय किया। वह सम्यग्दर्शन के योग्य अर्धपुद्गल (परावर्तन) संसार रहे, तब ही होगा। तो वह मानता नहीं कि, नहीं। काललब्धि उसका नाम नहीं। काललब्धि आदि... आदि शब्द पड़ा है। आदि का अर्थ उस भाव की योग्यता हुई न? भाव की योग्यता वही द्रव्य-क्षेत्र का निमित्त, ऐसा है। आहाहा! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव आया न? द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव। तो भाव तो अपनी योग्यता ही ऐसी है वहाँ। आहाहा! कठिन बातें, भाई यह सब। कहाँ अन्तर पड़ता है, इसकी लोगों को खबर नहीं पड़ती। आहाहा!

भगवान आत्मा अपने पुरुषार्थ से ज्ञान की पर्याय राग को और पर को जानती है। वीर्यशक्ति है न साथ में? आहाहा! तो जिसमें पर को जानने की सहजशक्ति है तो वह तो जिसकी पर्याय है, उसे जानने में सहजशक्ति है। समझ में आया? उसे ऐसा नहीं देखना पड़ता कि काल पकता है या (नहीं)? उसे कहाँ वहाँ देखना है? आहाहा!

मुमुक्षु : काललब्धि को तो हेय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय है। परन्तु काललब्धि का ज्ञान भी किसे होता है? इस ओर ढला और फिर जाने कि यह...! बात में बहुत अन्तर, भाई! भगवान ने देखा वैसा होगा। उसमें हम क्या कर सकते हैं? ऐसा है ही नहीं। भगवान ने देखा, ऐसा जिसे निर्णय हुआ, वह तो अपने पुरुषार्थ से हुआ है, स्व के आश्रय से हुआ है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात आ गयी। चिन्ता आयी न चिन्ता। चिन्ता तो छूट जाये, ऐसा इसका स्वभाव है, ऐसा कहना है यहाँ तो। चिन्ता रखना, ऐसा इसका स्वभाव नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। पर का जानना सरल और स्व का जानना कठिन, ऐसा मानता है। पर को जाननेवाला है, वह पर्याय जब जिसकी है, उसे प्रत्यक्ष करती है कि यह है... है... है... है... है... तो वह अपने अस्तित्व को प्रत्यक्ष न कर सके? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! उसे काललब्धि के सामने देखना नहीं। भगवान ने देखा, इसलिए होगा, यह भी उसे देखना नहीं है। आहाहा! देखो न, सार तो यह आता है जहाँ-तहाँ,

स्व का आश्रय, स्व का आश्रय। पूरे बारह अंग का कहना है, पुकार यह है। कोई भी बात, कोई भी व्यवहार, कोई भी निश्चय, वह स्व का आश्रय करे तो यथार्थ है, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया?

और वे ही परमगति के पात्र हैं। आहाहा! निश्चय है अपना अनुभव, परन्तु जहाँ तक अभी व्यवहार चिन्ता है, वहाँ तक उस व्यवहार का फल स्वर्गादि मिलेगा। समझ में आया? परन्तु जो चिन्ता छोड़कर अन्तर ध्यान में लीन हो गया, आहाहा! उसकी परमगति तुरन्त होती है। परमगति अर्थात् सिद्ध। कहो, समझ में आया या नहीं? लॉजिक से तो बात चलती है, भाई! परन्तु लोगों को इसे विचार में मन्थन चाहिए थोड़ा। ऐसा का ऐसा चले बिना भान के, वह क्या चलता है? आहाहा! यह १६९ हुई।

गाथा - १७०

अथ–

२९३) जोइय मिल्लहि चिन्त जइ तो तुट्टइ संसारु।
चिंतासत्तउ जिणवरु वि लहइ ण हंसाचारु।।१७०।।

योगिन् मुञ्चसि चिन्तां यदि ततः त्रुटयति संसारः।
चिन्तासक्तो जिनवरोडपि लभते न हंसाचरम्।।१७०।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् मिल्लहि मुञ्चहि। काम्। चिन्तारहितादिशुद्ध–ज्ञानदर्शनस्वभावात्परमात्मपदार्थाद्विलक्षणां चिन्त जइ यदि चेत् तो ततश्चिन्ताभावात्। किं भवति। तुट्टइ नश्यति। स कः। संसारु निःसंसारात् शुद्धात्मद्रव्याद्विलक्षणो द्रव्यक्षेत्रकालादि–भेदभिन्नः पञ्चप्रकारः संसारः। यतः कारणात्। चिंतासत्तउ जिणवरु वि छद्मस्थावस्थायां शुभाशुभचिन्तासक्तो जिनवरोडपि लहइ ण लभते न। कम्। हंसाचारु संशयविभ्रमविमोह–रहितानन्तज्ञानादिनिर्मलगुणयोगेन हंस इव हंसः परमात्मा तस्याचारं रागादिरहितं शुद्धात्म–परिणाममिति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षा प्रभृतिसमस्तचिन्ताजालं त्यक्त्वापि चिन्तारहिते शुद्धात्मतत्त्वे सर्वतात्पर्येण भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१७०।।

आगे फिर भी चिन्ता का ही त्याग बतलाते हैं–

चिन्ता मुक्त रहो हे योगी! तो होगा संसार विनष्ट।
चिन्तायुक्त जिनेश्वर को भी कभी न होते कर्म विनष्ट।।१७०।।

अन्वयार्थः– [योगिन्] हे योगी, [यदि] जो तू [चिंतां मुंचसि] चिन्ताओं को छोड़ेगा [ततः] तो [संसारः] संसार का भ्रमण [त्रुट्यति] छूट जायेगा, क्योंकि [चिंतासक्तः] चिन्ता में लगे हुए [जिनवरोडपि] छद्मस्थ अवस्थावाले तीर्थंकरदेव भी [हंसाचारम् न लभते] परमात्मा के आचरणरुप शुद्ध भावों को नहीं पाते।

भावार्थः– हे योगी, निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्मपदार्थ से पराङ्मुख जो चिंताजाल उसे छोड़ेगा, तभी चिंता के अभाव से संसार भ्रमण टूटेगा। शुद्धात्मद्रव्य से विमुख द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरुप पाँच प्रकार के संसार से तू मूक्त होगा। जब तक चिंतावान् है, तब तक निर्विकल्प ध्यान की सिद्धि नहीं हो सकती। दूसरों की तो क्या बात है, जो तीर्थंकरदेव भी केवल अवस्था के पहले जब तक कुछ शुभाशुभ चिन्ताकर सहित हैं, तब तक वे भी रागादि रहित शुद्धोपयोग परिणामों को नहीं पा

सकते। संशय विमोह विभ्रम रहित अनंत ज्ञानादि निर्मलगुण सहित हंस के समान उज्जवल परमात्मा के शुद्ध भाव हैं, वे चिंता के बिना छोड़े नहीं होते। तीर्थंकरदेव भी मुनि होके निश्चिंत व्रत धारण करते हैं, तभी परमहंस दशा पाते हैं, ऐसा व्याख्यान जानकर देखे, सुने, भोगे हुए भोगों की वाँछा आदि समस्त चिंता-जाल को छोड़कर परम निश्चिंत हो, शुद्धात्म की भावना करना योग्य है।।१७०।।

गाथा-१७० पर प्रवचन

आगे फिर भी चिन्ता का ही त्याग बतलाते हैं— १७०।

२९३) जोइय मिल्लहि चिन्त जइ तो तुट्टइ संसारु।
चिंतासत्तउ जिणवरु वि लहइ ण हंसाचारु।।१७०।।

आहाहा! **'हंसाचारु' हे योगी!...** योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर, १३०० वर्ष पहले हुए हैं, १३०० वर्ष पहले। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले (हुए) दिगम्बर सन्त वनवासी, उन योगीन्द्रदेव का परमात्मप्रकाश है। वे योगी को लक्ष्यकर कहते हैं। आहाहा! जिसे अपने में जुड़ान करना है, उसे किस प्रकार जुड़ान करना? उसकी बात करते हैं। आहाहा!

हे योगी! जो तू चिन्ताओं को छोड़ेगा... विकल्प को छोड़ेगा। आहाहा! शुभ हो या अशुभ। **तो संसार का भ्रमण छूट जायेगा,...** सिद्ध किया वापस। वहाँ वह कहा था, परम्परा मोक्ष का कारण, वह तो अभाव करेगा इसलिए। यहाँ कहा कि वह चिन्तामात्र संसार है। आहाहा! समझ में आया? यह दान, पूजा आदि सब चिन्ता विकल्प है। आहाहा! जहाँ तक चिन्ता, वहाँ तक संसार। **चिन्ताओं को छोड़ेगा...** अब चिन्ता को छोड़े, ऐसा उपदेश करना और एक ओर ऐसा कहना कि कर्म के कारण विकार, चिन्ता होती है तो चिन्ता छोड़, ऐसा उपदेश ही निरर्थक करता है। आहाहा! तू चिन्ता स्वतन्त्ररूप से कर्ताकर्म होकर करता है। समझ में आया? आहाहा! चिन्ता विकल्प भी कर्ता, कर्म, करण, छह कारक से विकल्प स्वयं से होता है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। तो कहते हैं कि कर्ता होकर करता है तो छोड़ दे। आहाहा! तुझसे होता है

कर्ता से, छोड़ दे। आहाहा!

चिन्ता में लगे हुए... आहाहा! पहले तो यह कहा, **चिन्ताओं को छोड़ेगा तो संसार का भ्रमण छूट जायेगा, क्योंकि चिन्ता में लगे हुए छद्मस्थ अवस्थावाले तीर्थंकरदेव भी...** आहाहा! गृहस्थाश्रम में रहे, तब चिन्ता बहुत होती है, विकल्प था। आहाहा! **तीर्थंकरदेव भी परमात्मा के आचरणरूप शुद्धभावों को नहीं पाते।** वह चिन्ता जब तक गृहस्थाश्रम की है, कुटुम्ब की है, गृहस्थाश्रम में रहने के विकल्प की है। आहाहा! वे मुनि चिन्ता छोड़ने के लिये कहते हैं। यह चिन्ता के ऊपर लिया है न! गृहस्थाश्रम में भी चिन्ता है न इतनी? कहते हैं। आहाहा!

शिष्य ने कहा न कि भाई! तीर्थंकर उस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। ध्रुव सिद्ध। ध्रुव निश्चय सिद्धि उस भव में है। वे भी वस्त्र, पात्र छोड़कर, चिन्ता छोड़कर मुनिपना लेते हैं। आहाहा! आनन्द में रहना, वह (मुनिपना है)। अकेला बाहर का छोड़े, वह छूटा नहीं। पर से नास्ति तो जब अपनी पूर्ण अस्ति के अनुभव में जब स्थिर होते हैं, तब पर को छोड़ा ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! अरेरे! मार्ग ऐसा है, भाई! है?

शुद्ध भावों को नहीं पाते। जब तक तीर्थंकर भी गृहस्थाश्रम में रहे। आदिनाथ भगवान चौरासी लाख पूर्व (की आयु थी, उसमें से), त्रियाशी लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रहे। विकल्प था। तो उन्हें भी जब तक चिन्ता है, तब तक उन्हें भी केवलज्ञान नहीं होता। आहाहा! निश्चित सिद्ध हैं, इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं, यह तो निश्चय है। भगवान ने कहा और यह मानते भी हैं। मैं तो तीर्थंकर हूँ और इस भव में मोक्ष जानेवाला हूँ। परन्तु जब तक चिन्ता नहीं छोड़े, तब तक मोक्ष नहीं होगा। आहाहा! यहाँ तो परपदार्थ की चिन्ता छोड़े तो स्वपदार्थ में एकाग्र हो, ऐसा कहते हैं। वहाँ एकाग्र है तो ऐसे एकाग्र करे। आहाहा! बहुत कठिन बातें, भाई! दिगम्बर सन्तों की कथनी अलौकिक है। लौकिक में मिलान नहीं खाता, ऐसी बात है। तीर्थंकर भी मोक्ष नहीं जाएँगे। आहाहा! जब तक चिन्ता रहे, तब तक बन्धन का कारण है। आहाहा! मुनिपना और मुनिपने में भी चिन्ता का विकल्प छोड़कर, उन्हें भी पंच महाव्रतादि का विकल्प है। आहाहा! उसे छोड़कर अन्दर ध्यान में जब जाते हैं, तब मुक्ति होती है, इसके अतिरिक्त मुक्ति नहीं होती। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण १४, गुरुवार
दिनांक- १७-०२-१९७७, गाथा - १७० - १७१, प्रवचन-२१९

हे योगी!... हे धर्मात्मा! ऐसा कहकर ... कथन है। **निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्मपदार्थ से...** भगवान आत्मा निर्मल ज्ञान, दर्शन और शान्ति आदि स्वभाव, परमात्म पदार्थ से **पराङ्मुख जो चिन्ता...** आहाहा! चाहे तो शुभ हो या अशुभ विकल्प की चिन्ता, वह आत्मा अनन्त निर्मल दर्शन, ज्ञानस्वरूप, उससे विकल्प—चिन्ता विरुद्ध है। आहाहा! यहाँ तो अन्तिम उत्कृष्ट बात लेनी है न? प्रथम सम्यग्दर्शन में भी सब विकल्प की वृत्तियों को हटाकर स्वभाव में दृष्टि करना, वह प्रथम। परन्तु यह तो विकल्पमात्र न रहे, आहाहा! उसकी विधि यह है।

निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव... मलिन भी नहीं और अल्पज्ञ नहीं, ऐसा जो निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव परमात्मा स्वयं। परमात्मप्रकाश है न? उससे **पराङ्मुख जो चिन्ता जाल...** आहाहा! **उसे छोड़ेगा, तभी चिन्ता के अभाव से संसार भ्रमण टूटेगा।** आहाहा! चाहे तो शुभ चिन्ता, अशुभ, वह संसार है। आहाहा! वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा, यह चिन्ता है, वह तो आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव है, उसे छोड़कर स्वरूप का ध्यान करेगा। आहाहा! तब **भ्रमण टूटेगा।**

शुद्धात्मद्रव्य से विमुख... अब विशेष स्पष्ट करते हैं कि यह शुद्धात्मा परमात्मस्वरूप, उससे **विमुख द्रव्य...** वस्तु परमाणु आदि पदार्थ दूसरे आत्मा आदि, **क्षेत्र, (पर) काल, (पर) भव, भावरूप...** देखो! भाव में शुभाशुभभाव। इन **पाँच प्रकार के संसार से तू मुक्त होगा।** आहाहा! चिन्ता का त्याग करेगा तो तेरा संसार छूटेगा। और पाँच प्रकार का संसार। देखो! यह भावरूप संसार। आहाहा! शुभभाव है न, शुभ? वह संसार है, ऐसा कहते हैं। अशुभभाव से? परन्तु अशुभभाव से अनन्त संसार किया। आहाहा! उस भाव से रहित **पाँच प्रकार के संसार से...** संसार कहा न? द्रव्य संसार, क्षेत्र संसार, काल संसार, भव संसार, भाव संसार। आहाहा! उनसे रहित **तू मुक्त होगा।** परसन्मुख की चिन्ता छोड़ेगा तो स्वभावसन्मुख में एकाग्र होगा तो तेरी मुक्ति होगी। आहाहा!

जब तक चिन्तावान है,... किसी भी विकल्प की चिन्ता है, **तब तक तो निर्विकल्प ध्यान की सिद्धि नहीं हो सकती।** आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी कोई भी चिन्ता हो बुद्धिपूर्वक, तब तक आत्मध्यान और सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह (अज्ञानी) तो कहते हैं, व्यवहार से निश्चय होता है।

मुमुक्षु : वह व्यवहार शुभभावरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव से निश्चय होता है? शुभभाव तो संसार है। पाँच प्रकार के संसार भाव हैं, उनसे मोक्ष का मार्ग होगा? निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव परमात्मा अपना स्वरूप है, वह अनादि-अनन्त ऐसा ही उसका स्वरूप है द्रव्यस्वरूप, द्रव्यस्वभाव। उसमें पर की चिन्ता रोककर यदि अन्दर जाये तो संसार टूटेगा, इसके बिना संसार नहीं छूटेगा। आहाहा! तब कोई ऐसा कहता है कि गृहस्थाश्रम में महापाप में पड़े हैं, व्यापार, धन्धा, परिवार में पूरे दिन पाप, उसे कुछ पुण्य करने का कहो। समझ में आया? परन्तु यह तो तुम कहते हो, सब दुकान चलती है। यह तो धर्म की दुकान है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। पूरे दिन पाप, स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा। निवृत्त नहीं। बाईस घण्टे, घण्टे-दो घण्टे मिलें तो जाये कहीं अपने माने हुए स्थान में, उसमें वह ऊपर कहे उसे हाँ करके चला जाये। हो गया। आहाहा! तो उसे ऐसा कहते हैं कि कुछ यह कहो। परन्तु बापू! यह तो धर्म की बात है। धर्म कैसे हो, वह धर्मस्थानक में न कही जाये तो कहाँ कही जाये? आहाहा! पुण्य के परिणाम तो करता है, हैं वे अनादि के हैं, नये कुछ नहीं। आहाहा! अब उसे संसार का अन्त कैसे आवे? और भगवान आनन्दस्वरूप की प्राप्ति कैसे हो? उसके ऊपर यह तो धर्म की कथा है। पुण्य से लाभ होता है पुण्य करो तो। परन्तु वह तो जो शुभभाव कुशील है, संसार में प्रवेश करता है, उसे भला कैसे कहना? आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पाँच प्रकार के संसार से तू मुक्त होगा। जब तक चिन्तावान है, तब तक निर्विकल्प ध्यान की सिद्धि नहीं हो सकती। दूसरों की तो क्या बात है, जो तीर्थंकरदेव भी केवल अवस्था के पहले... आहाहा! **केवल अवस्था के पहले...** देखा! **जब तक कुछ शुभाशुभ चिन्ताकर सहित हैं,...** शुभ-अशुभ चिन्ताकर सहित हैं। आहाहा! **तब तक वे भी रागादि रहित शुद्धोपयोग परिणामों को नहीं पा**

सकते। आहाहा! समझ में आया? गृहस्थाश्रम में तीर्थंकर... लेते हैं कि आठ वर्ष में पंचम गुणस्थान (धारण) करे, वह भी अणुव्रत की चिन्ता-विकल्प है, आहाहा! और मुनि हो, तब भी अभी पंच महाव्रतादि के विकल्प और चिन्ता है। उसे भी छोड़, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? उसे छोड़कर स्वरूप में आ अन्दर ज्ञान-दर्शन की शक्ति पड़ी है मोक्षरूप। आहाहा! वह मोक्षस्वरूप ज्ञान, दर्शन स्वभाव, ऐसा परमात्मा वह स्वयं मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप में समीप में जा। आहाहा! यह ... वहाँ जायेगा, उसे मुक्ति होगी। आहाहा! मुम्बई में मोहमयी कहा था।

मुमुक्षु : मोहमयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोहमयी। उपाधि... उपाधि... ट्रक, मोटरें, आहाहा! रास्ता हो। तोड़नेवाले बैठते हैं मेरे। मशीन लेकर। वजन। उस रास्ते में लेकर बैठते हैं गजब! ऐसा होता है न? तब देखा था एक बार हम निकले तब। भगवान के दर्शन करके ऐसे निकले न, वहाँ एक व्यक्ति वजनकांटा लेकर बैठा था। झुण्ड बनाकर। ... ... दस पैसा। क्योंकि वे तो बहुत....

मुमुक्षु : मशीन में हो ऐसा दस पैसा डाले तो वजन हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा? अपने आप हो जाये? मनुष्य न हो तो भी? ओहोहो! कहो, अब ऐसे उपाधि के कितने... माल तो मकान मालिक... उसका तौल हो... आहाहा! उसे फिर चिन्ता हो। पहले से कराया हो दो-चार महीने पहले। उसे कहे घटा या बढ़ा ओय मेरा। कुछ खाने में अन्तर पड़ा, पचने में अन्तर पड़ा। खून नहीं बना। अरेरे! मारा। एक बार रास्ते में देखा था। मनुष्य बैठा था, हों! मनुष्य बैठा था। है न मन्दिर से ऐसे जाते हुए रोड पर है। वहाँ एक बैठा था। आहाहा! कितनी उपाधि यह तो कुछ! वहाँ बैठा था वह लेकर। तौल कराते होंगे लोग निकलते हों वे। आहाहा! इस जड़ को सम्हालने का। ऐसे आत्मा का तौल-माप कितना, यह इसे करना नहीं।

मुमुक्षु : मशीन आदि निकली।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मशीन कहलाती है न वह। आहाहा! उसका तौल कराना है और ठीक हो तो प्रसन्न होना है। परन्तु यह भगवान आत्मा का तौल-माप कितना है,

उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! यही कहा। वह तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, निर्मल स्वभावरूप परमात्मा है। उसका तौल तो, उसका माप तो कहाँ हो, ऐसा है। आहाहा! वह भी कब कहते हैं? आहाहा! दूसरी चिन्ताओं को छोड़कर उस ओर जा, तुझे चिन्ता छूट जायेगी, मुक्ति होगी। आहाहा! तुझे अनन्त आनन्द प्राप्त होगा। आहाहा! ऐसा लाभ का व्यापार बनिया करे बाहर में (तो) इस आत्मा का व्यापार क्यों न कर सके? आहाहा! देश छोड़कर परदेश जाये। कोई सगा नहीं, प्रिय नहीं, वहाँ जाये।

यहाँ कहते हैं कि रागादि को छोड़कर अन्दर में जा न, बापू! आहाहा! यह परदेश है। पर अर्थात् प्रधान देश है, ऐसा। पर अर्थात् दूसरा, ऐसा नहीं। आहाहा! राग में बसना, वह परदेश में बसना है और यह प्रदेश है। प्रधान देश है भगवान ज्ञानस्वरूप परमात्मा। एक जगह आया था, भाई! धाम-धाम। चैतन्य को धाम कहा है, हों! शब्द आया था न कल। उसमें आया था। खानिया चर्चा, नहीं? दूसरा भाग। आत्मा को चैतन्यधाम (कहा है)। वहाँ श्रीमद् में आता है—'स्वयं ज्योति सुखधाम' 'स्वयं ज्योति सुखधाम'। इसी प्रकार यह आत्मा चैतन्यधाम, ऐसा शब्द है। आहाहा! चैतन्य का देश है यह, चैतन्य का स्थान है यह। आहाहा! चैतन्य भगवान निर्मलानन्द, उसका यह धाम है। आहाहा! उसे अन्तर में दृष्टि में लेकर दूसरी चिन्ता को छोड़कर स्वरूप में लाओ, वहाँ व्यापार जोड़ दे। आहाहा! तुझे परमात्मपद मिलेगा अर्थात् मुक्ति होगी। आहाहा!

भगवान **भी केवल अवस्था के पहले जब तक कुछ शुभाशुभ चिन्ताकर सहित हैं, तब तक वे भी रागादि रहित शुद्धोपयोग परिणामों को नहीं पा सकते।** आहाहा! तीर्थंकरदेव आदिनाथ परमात्मा, लो! कितना सबको... असि, मसि, कृषि लाभ के लिये खताया होगा न? अपने लिये...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प का जाल। आहाहा! वह विकल्प का जाल भी छोड़कर जब मुनि हुए, पश्चात् भी जब विकल्प की, महाव्रतादि की चिन्ता छोड़कर स्थिर हुए, तब केवलज्ञान हुआ है। उसमें आता है न? उपादान-निमित्त (संवाद के दोहों) में नहीं? ऐसा कि महाव्रत आते हैं न बीच में? तुम सब ना... ना... करते हो परन्तु।

मुमुक्षु : उपादान-निमित्त के दोहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोहे उपादान-निमित्त के। महाव्रत और आते हैं न सब? अरे! महाव्रत, बहाव्रत छोड़ न मेरे। ऐसा कि महाव्रत भी होते हैं न अन्दर निमित्तरूप से? उस निमित्त को छोड़। उपादान-निमित्त की बात है न? महाव्रत, पंच महाव्रत यह, उन्हें साधु पालते हैं, तब उनका मोक्षमार्ग होता है। पालते हैं, वह विकल्प पालते हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! उस चिन्ता से भिन्न पड़कर जितना स्व का आश्रय लिया है, परमानन्द मूर्ति प्रभु परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसका जिसने इतना आश्रय लिया है जितना, उतनी उसे मुक्ति के मार्ग की दशा है। यहाँ तो अन्तिम उत्कृष्ट बात करते हैं न।

शुद्धोपयोग परिणामों को नहीं पा सकते। भाषा देखो! स्पष्ट बात है। शुभ उपयोग भी चिन्ता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें रहे, तब तक शुद्धोपयोग नहीं पा सकते और शुद्धोपयोग, वही मोक्ष का कारण है। शुभ उपयोग, वह मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! सत्य तो यह है। फिर दूसरे को कहे भक्ति करो गुरु की, देव की, उसकी तो तुम्हारे झट मुक्ति होगी। इस बात में कुछ माल नहीं है। ऐसा कहे तो लोगों को ठीक पड़ता है। यह व्यवहार से भी लाभ मानते हैं। नय नहीं उसमें। यह एक ही नय को मानना। चिन्ता छोड़कर स्थिर होना, वह मुक्ति का मार्ग है। आहाहा!

व्यवहारनय का विषय है, वह चिन्ता। आहाहा! और परलक्ष्यी ज्ञान भी है। स्व के भान बिना जितना परलक्ष्यी ज्ञान करे, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! वह मोक्ष के कारण का... ऐसा कहते हैं। वह भी एक चिन्ता है शास्त्र की। आहाहा! ऐसी बातें हैं। शास्त्र में बुद्धि जाये, उसे व्यभिचारिणी कहा है न? पद्मनन्दिपंचविंशति। समझ में आया? व्यभिचारिणी। शास्त्र अभ्यास न करते हो, उन्हें कहे व्यभिचारिणी तो कहे छोड़ देंगे हम। यह तो जो बहुत अधिक अभ्यास करके वहीं रुक गये हैं, उन्हें कहे व्यभिचारिणी है, उसे छोड़ और अन्दर में जा। ऐसी बातें हैं। देखो न, आचार्यों ने कहा। शिष्य को कहते हैं, तब एक दूसरा समीप है मनुष्यरूप से, उसे कहते हैं न? आहाहा! तो ऐसा उपदेश उसे कहे? आहाहा! संसार में तो यह सब होली जाल भरी पड़ी है। आहाहा! स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और परिवार को... आहाहा!

यह चिन्ता तो छोड़, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि अन्दर मुनि हुआ, तब भी अभी

पंच महाव्रत के विकल्प, वह चिन्ता छोड़। आहाहा! अन्तिम गाथायें हैं न? ७० है न? १४। ३० और ५४। १४ है न अब तो। ५४ है यह। आहाहा! पहले दिन से दूसरे दिन से शुरु किया है। ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को आये थे। दोपहर में समयसार लिया है। ज्येष्ठ शुक्ल नवमी से शुरु किया है। ज्येष्ठ शुक्ल नवमी। इस नवमी को नौ महीने होंगे। नवमी को नौ महीने। नवमी, हों! आहाहा! क्योंकि चिन्ता, वह स्वरूप में कहाँ है? उस स्वरूप से तो विमुख है, ऐसा कहा न? आहाहा! यह शुभभाव है, वह भी स्वरूप से विमुख है। आहाहा!

तीर्थंकरदेव भी केवल अवस्था के... आहाहा! ८३ लाख पूर्व तक रहे... तीन ज्ञान, क्षायिक समकित, हों! यह सब उपदेश देने में विकल्प सब... आहाहा! पर को व्यवस्थित रखने के लिये यह शुभविकल्प होंगे न? असि-मसि करके बताया, वह क्या होगा? वह शुभ है।

मुमुक्षु : लोगों को यह उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धन्धा ही किया है। पर के लिये यह करो... यह करो... यह करो... यह बर्तन बनाओ, ऐसा आहार बनाओ। बर्तन जब नहीं थे फिर ... का होवे न ऊपर? क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : कुम्भस्थल।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुम्भस्थल। कुम्भस्थल। वहाँ दूसरा साधन नहीं था तो वहाँ मिट्टी के वे लेकर वहाँ डालो ऊपर। ऐसे व्यवस्थित करो। बनाओ ऐसे। हाथी के कुम्भस्थल में।

मुमुक्षु : तवा और घड़ा....

पूज्य गुरुदेवश्री : तवा और मिट्टी सब करो। तो ऐसा ... था। उस प्रकार का विकल्प था। आहाहा! भारी गजब बात है! वह तो छोड़, परन्तु महाव्रत में आया, उस विकल्प को भी छोड़, ऐसा कहते हैं। यह बताया उसमें लाभ होगा या नहीं आत्मा को कुछ? तथा बहुतों को आजीविका करके दी। ऐसे पकाना और, ऐसे दलना, वह सब सिखाया था। उन्हें कहाँ आता था? किसी जुगलिया को कुछ आता नहीं था। चक्की

यह पत्थर लगाओ दो बड़े। देखो, इसको ऐसा करो। फिर इसमें अनाज डालकर फिर ऐसा करो। उन्हें कभी आता नहीं था उन्हें तो। गेहूँ पीसने के बाद उसका आटा हो, उसमें पानी डालकर ऐसे मसलना। कुछ खबर नहीं थी। जुगलिया को था कब? वे तो उन कल्पवृक्ष में से खाते थे। आहाहा! उस काल में उस प्रकार का विकल्प होता है। आहाहा! मुनि को ऐसा विकल्प होगा?

यह यहाँ कहते हैं कि किसी भी प्रकार का विकल्प है, प्रभु! वह दुःखदायक संसार है। आहाहा! वे तीर्थंकर जैसे भी शुद्धोपयोग को पा नहीं सके, जब तक चिन्ता में थे तब तक। आहाहा! **संशय विमोह विभ्रमरहित... संशय विमोह विभ्रमरहित अनन्त ज्ञानादि निर्मलगुणसहित...** आहाहा! उसमें संशय नहीं कि यह है या वह है; विमोह नहीं, विपरीतता नहीं, विभ्रम नहीं। तो उसे क्या? ऐसा टल गया है जिसे। आहाहा! **अनन्त ज्ञानादि निर्मलगुणसहित हंस के समान उज्ज्वल परमात्मा के शुद्ध भाव हैं,...** आहाहा! हंस की चोंच से जैसे निर्मल दूध हो जाता है। आहाहा! इसी प्रकार यह भगवान आत्मा हंस के समान है। अन्यमति में आता है, यह हंस और परमहंस। नाम दे। वास्तव में तो परमहंस अर्थात् कि संसार से भिन्न पड़ा आत्मा, उसका नाम परमहंस कहा जाता है। समझ में आया? वह परमहंस यह नहीं, परमहंस वह। जिसे चिन्ता छूटकर कोई भी चिन्ता छूटकर अस्तित्व में, ध्यान में जाता है, तब उस आत्मा को आनन्द आता है, उसे यहाँ परमहंस कहा जाता है। यह जैन के परमहंस। समझ में आया? उसमें तो नाम के परमहंस हैं। वस्तु तो कुछ है नहीं। थोथा है। आहाहा! इसलिए हंस शब्द डाला है।

हंस के समान उज्ज्वल परमात्मा... हंस तो सफेद होते हैं, बहुत उजले होते हैं। आहाहा! ऐसा उजला परमात्मा वह शुद्धभाव है। आहाहा! **'वे चिन्ता के बिना छोड़े नहीं होते।' 'चिन्ता के बिना छोड़े नहीं होते।'** आहाहा! चिन्ता छोड़े बिना वह उज्ज्वल परमात्मा नहीं होता। आहाहा! यह ऐसा मार्ग है। भाई! दुनिया का भला करने के लिये भले अपने को एकाध भव करना पड़े परन्तु दुनिया का भला करने के लिये जन्मे हैं। ऐसा कहते हैं न? लोगों को सुधारने, उनके दुःख को टालने के लिये, एकाध भव भले करना पड़े। वह राग को भाता है, वह मिथ्यादृष्टि है। वर्तमान चिन्ता को छोड़ता नहीं

और भविष्य की चिन्ता ऐसी हो, तब मैं जगत का उद्धार करूँ, यह भविष्य की चिन्ता भी हो, ऐसी तो भावना है उसे। क्यों? अमरचन्दभाई! आया था न वह? गाँधी में आया था। खबर है। भले एक भव करना पड़े। एक भव नहीं। जिसे चिन्ता से लाभ होगा मुझे और पर को, वह तो मिथ्यात्वभाव है। ऐई! आहाहा! मार्ग ऐसा, भाई! इस दुनिया से पूरी अलग जाति है।

यहाँ तो परमहंस सन्त कहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि यह शास्त्र लिखने का जो विकल्प है, वह भी अभी चिन्ता वहाँ ... आहाहा! ... है या नहीं? चिन्ता ही है न उस प्रकार की एक? आहाहा! दूसरे को लाभ होगा, इसलिए शास्त्र बनाऊँ, तब तो उस चिन्ता में लाभ नहीं? परन्तु दूसरे को लाभ होगा, इसलिए ही करता है न यह। आहाहा! बापू! कुछ भगवान को सुननेवाले भी स्वयं जब स्वसन्मुख गये और स्वरूप की ... आयी, भगवान से कुछ हुआ नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा, भाई! जगत से अलग प्रकार का। आहाहा!

चिन्ता के बिना छोड़ी नहीं होती। तीर्थंकरदेव भी मुनि होके निश्चिन्त व्रत धारण करते हैं,... यह अर्थ में विशेष लिखा है। टीका में नहीं। टीका में नहीं न, भाई? **तीर्थंकरदेव भी मुनि होके...** आहाहा! **निश्चिन्त व्रत धारण करते हैं, तभी परमहंस दशा पाते हैं,...** निश्चिन्त व्रत भी स्थिरता अन्दर में, वह निश्चिन्त व्रत है। निश्चय व्रत। विकल्प है, वह व्यवहार व्रत है। आहाहा! समझ में आया? निश्चिन्त ... चिन्ता तुझे इसमें-स्वरूप में स्थिर हो जाना। आहाहा! वह निश्चय व्रत। जिसमें चिन्ता का विकल्प भी है नहीं। आहाहा!

मुनि होके निश्चिन्त व्रत धारण करते हैं, तभी परमहंस दशा पाते हैं,... परमहंस। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भेंट आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द को वेदता है, तब ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे सम्यग्दृष्टि थी गृहस्थाश्रम में, विषय रानी आदि हजारों थी, तथापि विषयबुद्धि, सुखबुद्धि उड़ गयी थी। समझ में आया? परन्तु जहाँ विकल्प की चिन्ता थी—अस्थिरता की। आहाहा! पर में सुख है, यह बुद्धि तो सम्यग्दर्शन होते ही उड़ जाती है। आहाहा! तथापि उसे राग आता है। तो यह कहते हैं कि वह तो चिन्ता है। आहाहा!

ऐसा व्याख्यान जानकर... यह व्याख्यान जानकर। ऐसा है न? 'चिन्तारहित यह शुद्धात्मतत्त्व की... भावना करते हुए...' व्याख्यान शुरु हो, उसके ऊपर समझने के लिये। **ऐसा व्याख्यान जानकर देखे, सुने, भोगे हुए...** आहाहा! आँख से देखे हुए, कान से सुने हुए और शरीर से भोगे हुए मन से। मन से। भोगादि। आहाहा! उसके **भोगे हुए भोगों की वांछा आदि...** यह इच्छा। यह पूर्व में हुआ, उसे याद नहीं करना अब, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह जहर को याद करने जैसा है। उसमें आता है न, सर्प काटा हो, परन्तु जब तक याद न करे तब तक चढ़ता नहीं। सुना है? हाँ, हाँ। है। सर्प काटा हो उसे फिर भूल जाये। वापस याद न करे कि अरे! इसे काटा था, वह मर गया। वह ऐसा। प्राण छूट जाये। नहीं सुना। पोपटभाई! लो, यह तो सब बहुत प्रसिद्ध बात है।

एक व्यक्ति को सर्प ने काटा। बहुत याद नहीं करता और दूसरे को किसी को काटा और मर गया तो याद किया तो जहर चढ़ गया। इसी प्रकार पूर्व के भोगों की मिठास के जो भोग वेदन किये हों, उन्हें यदि याद करने जाये तो उसे राग—जहर चढ़ेगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा! उसमें नहीं आता भावना में, पूर्व के भोग स्मरण किये नहीं। आता है। पूर्व के भोग स्मरण करने नहीं। नहीं उसमें? अतिचार में आता है। अतिचार में आता है। आहाहा! पाँच अतिचार है न यह? चौथे... भूल गये।

मुमुक्षु : नौ भाग में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नौ भाग में अतिचार है न। चौथे में वे आते हैं।

मुमुक्षु : पाँच-पाँच

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच-पाँच भावना है न, उसमें आते हैं।

मुमुक्षु : अष्टपाहुड़ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है न। हाँ, वह आता है। बारह व्रत। ...६५। अतिचार। उसमें आता है। आहाहा! जहर को याद क्या करूँ? कहते हैं। आहाहा!

यह कहा न? कि **देखे, सुने, भोगे हुए...** यह तो गम्भीर शब्द है न! ऐसी **भोगों की...** इच्छा आदि समस्त चिन्ता-जाल को छोड़कर **परम निश्चिन्त हो,...** आहाहा! यहाँ तो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। हाँ यह। आता है।

परम निश्चिन्त हो,... आहाहा! यह तो जैसे रुई की पूणी सांधे चरखे में। चरखा... चरखा... एक पूणी पूरी हो, वहाँ दूसरी, दूसरी हो वहाँ तीसरी, ऐसा का ऐसा डोरा चलता ही जाता है। इसी प्रकार एक विकल्प में से दूसरा और दूसरे में से तीसरा एक संकल्प-विकल्प का जाल चलता ही जाता है। आहाहा! धारावाही जैसे शुद्ध अन्दर पड़ा है, प्रभु, उसमें एक विकल्प की जाल, अज्ञानी की जाल धारावाही चलती जाती है। कहीं विकल्प को तोड़ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? अशुभ विकल्प जाये तो शुभ की चिन्ता, शुभ जाये तो अशुभ की चिन्ता, ऐसा है न इस प्रकार की चिन्ता? आहाहा!

उसे **छोड़कर परम निश्चिन्त होकर, शुद्धात्मा की भावना करना योग्य है।** करना तो यह है। आहाहा! भगवान निर्मलानन्द प्रभु की भावना अर्थात् एकाग्रता करनेयोग्य है, बस। आहाहा! समझ में आया? दूसरे को उपदेश देने का विकल्प है, इसलिए अपने को लाभ है, ऐसा नहीं है और सुननेवाले को लाभ होता है, वह तो उसके कारण से होता है। आहाहा! वह चिन्ता छोड़, कहते हैं। आहाहा! **शुद्धात्मा की भावना करना योग्य है।** अकेला प्रभु वीतरागस्वरूप से विराजमान महा बादशाह। जगत का नाथ, त्रिलोकनाथ परमात्मा स्वयं। आहाहा! त्रिलोकनाथ तो भगवान होंगे केवली। केवली परन्तु तू त्रिलोकनाथ ही है। वे त्रिलोकनाथ हुए, त्रिलोकनाथ होने का अर्थ तीन काल-तीन लोक को जाना। नाथ क्या कहीं स्वामी है उस तीन लोक का? इसी प्रकार तू भी तीन लोक का नाथ है, उसके योग्य ही तेरी शक्ति है। आहाहा! पामररूप से रहे, ऐसा कोई गुण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पूर्णता को प्राप्त करे, ऐसा तुझमें गुण है। आहाहा!

जिस भाव का अभाव है, उसका भाव करे, ऐसा उसमें गुण है। ४७ शक्ति। आहाहा! प्रभु! तुझमें जो वर्तमान भाव है, उसका अभाव करे, ऐसा तुझमें गुण है और भविष्य की पर्याय का वर्तमान अभाव है, आहाहा! उसका भाव वर्तमान में करे, ऐसा

तुझमें गुण है। आहाहा! क्या वाक्य! और क्या वाणी वीतराग की! आहाहा! ऐसा जो आत्मा पावे कि जो मार्ग यह वर्तमान में अभाव है, उसका भाव करूँ। समझ में आया? भाव है, उसका अभाव करके; अभाव है, उसका भाव करके। ऐसा आत्मा का स्वभाव अगम्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें समझना इसमें।

यहाँ तो यह शुद्धात्मा की भावना है न! शुद्धात्मा में भविष्य की पर्याय वर्तमान में नहीं, उसे वर्तमान में लायेगा, ऐसा उसमें गुण है। समझ में आया? अब बाहर की अकेली दया पाली, व्रत किये, अपवास करना, वह सम्प्रदाय को भारी लगता है। ऐसी क्रियायें तो अनन्त बार कीं, सुन न अब। थोथा। कहा था न जामनगर, जब गये न पहले। (संवत्) १९८२ के वर्ष की बात है। यह राजकोट भी शास्त्र लेकर भाई आये। ताराचन्दभाई। वीरजीभाई के पिता। उतरे थे लोकाशा के उपाश्रय में। (संवत्) १९८२ के वर्ष। १८ और ३३ = ५१ हुए। पहले-वहले आये थे। ५१ वर्ष हुए। यह लोकाशा का उपाश्रय नहीं? वहाँ उतरे थे। उसमें कमरा हुआ न।

उसमें यह प्ररूपणा चली कि भाई! शुभभाव वह बन्ध का कारण है। मन की सरलता, वचन की सरलता, काया की सरलता विसंवाद खड़ा करना नहीं ऐसा जो शुभभाव ही पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म नहीं। यह जरा वीरचन्दभाई, ताराचन्दभाई साधु को वाँचन कराते थे। साधु को वाँचन करावे, हों! वीरजीभाई तब नहीं थे। यह तो साधु को वाँचन करावे। चलता सूत्र कहलाते स्थानकवासी में। ऐसा कुछ... शाम को आये अकेले। महाराज! इसमें तो लोगों को विरोध लगे ऐसा है। क्या है? यहाँ तुम्हारे ज्ञानसागर पूनातर ने छपाया है। ज्ञानावरण है। ज्ञाना... क्या कहलाता है? ज्ञानसागर। ज्ञानसागर है। पूनातर ने छपाया है। पहले का छपाया है। वह वाँचा था। यह तुम्हारे ज्ञानसागर यहाँ से छपाया है, उसमें क्या लिखा है, देखो! चारों प्रकार से शुभनामकर्म बँधता है। यह क्या लिखा है? कहा। यह मन की सरलता से पुण्यबन्ध होता है। धर्म होता है, ऐसा नहीं। ताराचन्दभाई को नहीं देखा होगा। वीरजीभाई के पिता। शास्त्र बहुत पढ़े हुए। व्यक्ति नरम, हों! वापस बहुत नहीं। मार्ग बापू! ऐसा है। आहाहा! मन की क्रिया करे सरल कषाय मन की। यह सामायिक की सब। धर्म है। बिल्कुल नहीं। आहाहा! ज्ञानसागर में तो लिखा है। यह तो पहले से ६८ के वर्ष से वाँचन किया है।

६८ के। आहाहा! परन्तु इससे दरकार नहीं। लोगों को मेरा क्या होगा? और किस भाव में मैं हूँ? तो उस भाव का क्या फल आयेगा? और किस भाव में जाने से फल दूसरा आयेगा, उसका विचार ही नहीं। पूरी होली सुलगी हो। आहाहा!

एक बार देह तो छूटेगी। हाय... हाय... वस्तु का निर्णय सम्यक् हुए बिना देह छूटेगी। आहाहा! यह आँधी का टोला, पत्ता उड़कर कहाँ जाकर पड़ेगा! आहाहा! बड़ा करोड़ोंपति, अरबोंपति मरकर ढोर, कौआ, और कौए के कूख में जायेगा। आहाहा! उसके... हो... नीम पर... हो। आहाहा! उसमें वहाँ वापस आँख फोड़ डाली हो किसी ने आकर। अब वह उड़ सके नहीं। वहाँ का वहाँ बेचारा मरे। आहाहा! क्योंकि वह जाये कहाँ उड़कर? आँख नहीं। उसे कोई विरोधी ऐसे आये हों। आहाहा! कोयल है न कोयल। कोयल का काम यह है बच्चे को वहाँ कौए का जहाँ हो न, उसमें वहाँ रख आवे। कौवे का होता है न, क्या कहलाता है वह? वह कोयल स्वयं माळो न करे। ऐसा। कौवे का माळो हो, वहाँ रख आवे। कौवे को खबर न पड़े कि यह मेरा बच्चा है या नहीं परन्तु जब वह बड़ा हो। उसे ऐसा हो। ओहो!

यहाँ अपने नहीं होता नीम पर? यहाँ। यह तो खेत था न पहले अपने। वहाँ कोयल रख गयी, कौवे ने देखा, बड़ा होने के बाद मारकर... भाग जाय। आहाहा! ऐसे भी किसी ने यदि आँख फोड़ डाली हो उसमें। आहाहा! उड़कर जाना कहाँ? माँ-बाप कहाँ तक लेकर आवे। थोड़ा-थोड़ा तो लावे खाने का। कहाँ तक लावे। छोटा हो, वहाँ तक। देखो यह सब दशा। आहाहा! यह सब चिन्ता का फल है, कहते हैं।

इससे **शुद्धात्मा की भावना करना योग्य है।** अन्तर्मुख झुकाव करके शुद्धात्मा की भावना करना, ऐसा कहते हैं। भावना शब्द से ऐसे विकल्प ऐसे भाना, ऐसा यह नहीं। आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान... आता है न? श्रीमद् में। भावना अर्थात् आत्मा जो है, वैसा जाना, जानकर वहाँ तक में एकाग्र न हो, तब तक उसकी भावना नहीं कहलाती। आहाहा! समझ में आया? है? **शुद्धात्मा की भावना...** दो शब्द में तो शुद्धात्मा, वह द्रव्य है; भावना, वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। यह **शुद्धात्मा की भावना (एकाग्रता) करनेयोग्य है।** १७० हुई।

गाथा - १७१

अथ-

२९४) जोइय दुम्मइ कवुण तुहँ भवकारणि ववहारि।
बंभु पवंचहिँ जो रहिउ सो जाणिवि मणु मारि।।१७१।।

योगिन् दर्मतिः का तव भवकारणे व्यवहारे।
ब्रह्म प्रपंचैर्यद् रहितं तत् ज्ञात्वा मनो मारय।।१७१।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् दुम्मइ कवुण तुहं दुर्मतिः का तवेयं भवकारणि ववहारि भवरहितात् शुभाशुभमनवचनकायव्यापाररुपव्यवहारविलक्षणाच्च स्वशुद्धात्म-द्रव्यात्प्रतिपक्षभूते पञ्चप्रकारसंसारकारणे व्यवहारे। तर्हि किं करोमिति चेत्। बंभु ब्रह्मशब्द-वाच्यं स्वशुद्धात्मानं ज्ञात्वा। कथंभूतं यत्। पवंचहि जो रहिउ प्रपंचैर्मायापाखण्डैः यद्रहितम्। सो जाणिवि तं निजशुद्धात्मानं वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा। पश्चात्किं कुरु। मणु मारि अनेकमानसविक्लपजालरहिते परमात्मनि स्थित्वा शुभाशुभविकल्पजालरुपं मनो मारय विनाशयेति भावार्थः।।१७१।।

आगे श्रीगुरु मुनियों को उपदेश देते हैं, कि मन को मारकर परब्रह्म का ध्यान करो-

जो व्यवहार चतुर्गति कारण क्यों उसमें दुबुद्धि रमे।
अब सम्पूर्ण प्रपञ्च रहित परब्रह्म जान मन नष्ट करे।।१७१।।

अन्वयार्थः- [योगिन्] हे योगि, [तव का दुर्मतिः] तेरी क्या खोटी बुद्धि है, जो तू [भवकारणे व्यवहारे] संसार के कारण उधमरुप व्यवहार करता है। अब तू [प्रपंचैः रहितं] मायाजालरुप पाखंडों से रहित [यत् ब्रह्म] जो शुद्धात्मा है, [तत् ज्ञात्वा] उसको जानकर [मनो मारय] विकल्प-जालरुपी मन को मार।

भावार्थः- वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मा को जानकर शुभाशुभ विकल्प-जालरुप मन को मारो। मन के बिना वश किये निर्विकल्पध्यान की सिद्धि नहीं होती। मन के अनेक विकल्प-जालों से जो शुद्ध आत्मा उसमें निश्चलता तभी होती है, जब कि मन को मार के निर्विकल्प दशा को प्राप्त होवे। इसलिये सकल शुभाशुभ व्यावहार को छोड़ के शुद्धात्मा को जानो।।१७१।।

गाथा-१७१ पर प्रवचन

आगे श्रीगुरु मुनियों को उपदेश देते हैं,... मुनियों को विशेष आगे है न बढ़े हुए उन्हें। कि **मन को मारकर परब्रह्म का ध्यान करो...** आहाहा! परमात्मास्वरूप भगवान से विरुद्ध जो संकल्प-विकल्प, उसे मारकर। आहाहा! शुद्धस्वभाव परमात्मा को ध्यान में ले। आहाहा! वह तेरा धाम है। चैतन्यधाम कहा है, हों! वह कोई श्लोक है। उसमें (कहा है)।

मुमुक्षु : भरत में भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धाम। यह चैतन्यधाम ऐसे शब्द। धाम, वह तो सुखधाम कहा है न! है न? धाम अर्थात् स्थान। आनन्द का स्थान है भगवान, चैतन्य का धाम है। आहाहा! १७१।

२९४) जोइय दुम्मइ कवुण तुहँ भवकारणि ववहारि।
बंभु पवंचहिँ जो रहिउ सो जाणिवि मणु मारि।।१७१।।

आहाहा! **हे योगी,... 'तव का दुर्मतिः' तेरी क्या खोटी बुद्धि है,...** आहाहा! **जो तू... 'भवकारणे व्यवहारे'** आहाहा! यह व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी भव का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पद्मनन्दिपंचविंशति में आया है न व्यवहार पूज्य है। भाई! व्यवहार पूज्य है। पद्मनन्दि में श्लोक है। उन्होंने डाला अब। व्यवहार हेय है या पूज्य है? पूज्य है हमारे। किस अपेक्षा से? वह व्यवहार निश्चय को बताता है, इस अपेक्षा से। परन्तु व्यवहार का अनुसरण करना, ऐसा नहीं। व्यवहार स्थापने योग्य है, ऐसा कहा। आठवीं गाथा में नहीं कहा? व्यवहार निश्चय को बताता है, परन्तु सुननेवाले को और कहनेवाले को व्यवहार का अनुसरण करना नहीं। आहाहा! इस अपेक्षा से व्यवहार बतावे, इस अपेक्षा से उसे पूज्य कहा है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ पाठ है, देखो! अरे! **'तव का दुर्मतिः' तेरी क्या खोटी बुद्धि है,...** आहाहा! **संसार के कारण उद्यमरूप व्यवहार करता है।** आहाहा! वह व्यवहारमात्र, विकल्पमात्र संसार का कारण है, यह उसका उद्यम व्यवहार करता है। आहाहा! गजब दिगम्बर

सन्तों की वाणी भी। आहाहा! यह व्यवहार अर्थात् अकेला स्त्री, कुटुम्ब ऐसा नहीं। पुण्य और पापादि का... रूप व्यवहार। आहाहा! विद्वान निश्चय को छोड़कर व्यवहार में वर्तन करे, परन्तु निश्चय के आश्रय से मुनियों को मुक्ति होती है, यह पाठ। तुम सब वाँच-वाँचकर विद्वानों ने यह निकाला? ऐसा कहते हैं। उस समय कहते हैं। देखो! पण्डितों! पढ़-पढ़कर तुमने यह निकाला? कि व्यवहार में वर्तना और उससे निश्चय होगा। ऐसा कहा है न?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य के समय में भी ऐसे पण्डित थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : होंगे ऐसे। यह मार्ग तो सदा ही ऐसा ही होता है न! आहाहा! भगवान समवसरण में विराजते हैं, वहाँ मार्ग में ऐसे जीव हैं मिथ्यादृष्टि मूढ़। वे नरक में जानेवाले हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी सातवें नरक में जानेवाले नहीं अभी। महाविदेह में सातवें नरक में जानेवाले जीव हैं। मार्ग उसमें जमीन क्या करे? तीर्थंकर की उपस्थिति क्या करे? आहाहा! इसे अपने उपादान का ठिकाना नहीं। आहाहा! यहाँ सातवें नरक में जानेवाले अभी नहीं होते। क्योंकि इतने क्लिष्ट परिणाम... ओहोहो! जिसके फल में तैतीस सागर तक वे दुःख सुने न जायें, वे इससे वेदन किये जायें। आहाहा! यह सब मिथ्यात्व का फल। आहाहा! ऐसे नरक में अनन्त बार गया। आहाहा! इस मिथ्यात्व के गोद में गया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **जो तू संसार के कारण उद्यमरूप व्यवहार करता है। अब तू... 'प्रपंचैः रहितं'** आहाहा! **मायाजालरूप पाखण्डों से रहित...** विकल्प की मायाजाल अर्थात् कि विकल्प में लाभ हो, ऐसा जो माया जाल तेरा, (उसे) छोड़। व्यवहार से मुझे लाभ होगा और ऐसा होगा, ऐसी प्रपंच की माया छोड़। **जो शुद्धात्मा है, उसको जानकर...** भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु शुद्धात्मा परमात्मा, वह भी शुद्धात्मा हो तब न! यहाँ तो त्रिकाल शुद्धात्मा है। यहाँ तो पर्याय की बात है। आहाहा! पर्याय में शुद्धात्मा होगा कहाँ से? जो शुद्धात्मा है त्रिकाली तो उसमें से होगा। आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन ऐसी पर्याय प्रगट हुई, उसका उसे माहात्म्य आवे, परन्तु वह (केवलज्ञान) जिसमें से आया है, उसमें तो ऐसा अनन्त... अनन्त सब पड़ा है। ऐसा शुद्धात्मा भगवान है, उसका माहात्म्य इसे आता नहीं।

यहाँ तो व्यवहार का माहात्म्य आवे और शुद्धात्मा का आता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा लिखा न? '**जोइय दुम्मइ कवुण**' '**दुर्मतिः का तव**' आहाहा! यह योगीन्द्रदेव कहते हैं। योगी! '**दुम्मइ कवुण**' दुर्मति कहाँ से आयी ऐसी तेरी? आहाहा! उस व्यवहार से तुझे धर्म होगा, यह कुमति कहाँ से आयी तुझे? चिन्ता का त्याग बताते हैं न? आहाहा! **अब तू...** अब भले किया अभी तक, कहते हैं। '**प्रपंचैः रहितं**' **मायाजालरूप पाखण्डों से रहित...** आहाहा! **जो शुद्धात्मा है,...** यह मायाजालरहित ही प्रभु है। आहाहा! **उसको जानकर...** '**ज्ञात्वा**' '**मनो मारय**' यह मन के मारे। मन शब्द से विकल्प-जाल, वह मन, ऐसा। शुभाशुभरूप विकल्परूपी मन को मार। आहाहा! अर्थात् कि ऐसी संकल्प-विकल्प की जाल को व्यय कर और परमात्मा के लक्ष्य से तू परमात्मपर्याय उत्पन्न कर। संकल्प-विकल्प की जाल का व्यय कर, मार और उसके स्थान में उत्पन्न परमात्मा के अवलम्बन से अनन्त ज्ञानादि उत्पन्न कर। आहाहा! यह तेरा कर्तव्य है, कहते हैं। बाहर का गजरथ चलता हो। देखो, चलता है न अभी द्रोणगिरि में। दो जगह गजरथ। बड़ा हाथी। बड़ा... हो...हा... हो...हा... होती है। धर्म किया... धर्म किया।

यहाँ तो कहते हैं कि हे दुर्मति! ऐसी तेरी बुद्धि कहाँ से आयी कि व्यवहार में लाभ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह संसार का कारण है, उसमें पुरुषार्थ क्यों कर रहा है तू? आहाहा! उसे छोड़ और **विकल्प-जालरूपी मन को मार।**

भावार्थः—वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मा को जानकर... जानकर, व्याख्या की। आत्मा को जान, ऐसा कहा न? '**तत् ज्ञात्वा**' जानकर अर्थात् क्या? कि **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मा को जानकर...** ऐसा। जानकर की व्याख्या यह की। वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान से जान। अकेले धारणा के ज्ञान से नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा को जाने '**यत् ब्रह्म तत् ज्ञात्वा**' है न? '**यत् ब्रह्म तत् ज्ञात्वा**' जो शुद्धात्मा है, उसे जानकर, ऐसा। आहाहा! अर्थात् कि जैसा आत्मा है, उसे वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान से जान। शास्त्र से ज्ञात नहीं होता, देव-गुरु से ज्ञात नहीं होता, व्यवहाररूप पर के लक्ष्यवाला ज्ञान है, उससे नहीं ज्ञात होता, विकल्प से नहीं ज्ञात होता। आहाहा! शास्त्र

का ज्ञान है विकल्पवाला, उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं, कहते हैं। इसलिए वीतराग शब्द प्रयोग किया है। **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मा को जानकर शुभाशुभ विकल्प-जालरूप मन को मारो।** शुभाशुभ विकल्प, ऐसा नहीं कहा, अशुभरूपी मन। शुभ और अशुभ दोनों विकल्प की जाल को मार तू, कहते हैं। आहाहा! भगवान निर्विकल्प में जा। आहाहा! तब तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग होगा। तब मोक्ष होगा। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, माघ कृष्ण १५, शुक्रवार
दिनांक- १८-०२-१९७७, गाथा - १७४-१७५, प्रवचन-२२०

परमात्मप्रकाश। १७४ गाथा का भावार्थ है। **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ...** क्या कहते हैं? जीव को करनेयोग्य हो तो स्वसन्मुख की एकाग्रता। और उस एकाग्रता का प्रसिद्धपना किस प्रकार हो? कहते हैं। कि आत्मा अपने स्वभाव में एकाग्र हुआ, उसका लक्षण और उसकी प्रसिद्धि किस प्रकार हो? आहाहा! कि **निज शुद्धात्मा की भावना...** भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञायकभाव—ऐसा जो प्रभु अनादि-अनन्त देवस्वरूप। उसकी एकाग्रता। उससे **उत्पन्न हुआ जो परम आनन्द...** यह उसकी प्रसिद्धि। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा जाना, वह आत्मा के स्वभाव की भावना की या आत्मा के स्वभाव में एकाग्रता की, उसका प्रसिद्ध फल क्या? कि परम आनन्द आवे। देखो, कितना भरा है इसमें? आहाहा! पुण्य और पाप के भाव में एकाग्रता का फल क्या? कि दुःख। आहाहा! बाह्य चीज़ तो कहीं भिन्न, परन्तु अन्दर में शुभ और अशुभभाव हों, उसमें एकाग्रता होने से तुझे दुःख का वेदन होता है। शान्तिभाई! यह सब तुम पैसेवाले सुखी हैं, यह यहाँ इनकार करते हैं। दुःख के ढ़ेर में।

मुमुक्षु : त्यागी को ऐसा ही हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तु के स्वरूप का वर्णन है। इसमें त्यागी की बात नहीं। आहाहा! यह धर्मी ने धर्म किया और शुद्धात्मा का उसे ज्ञान हुआ, उसका स्वरूप क्या? लक्षण क्या? कि जिसे अन्दर आत्मा परमानन्दस्वरूप है प्रभु, वह परमात्मा ही स्वयं है। आहाहा!

आया नहीं था सवेरे, कल कहा था। अन्तर आत्मा के उपाय द्वारा परमात्मा को साधना। आहाहा! अन्तरात्मा जो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु, अनाकुल आनन्द का रसकन्द आत्मा है। जैसे वह मोह एक कन्द आया था न? आहाहा! भाई! मार्ग बहुत वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्होंने त्रिकाल ज्ञान जाना त्रिकाल। आहाहा! उनकी पर्याय का स्वरूप ही ऐसा है कि त्रिकाल जाने। यह कहेंगे अभी। आहाहा!

ऐसी केवलज्ञान की (दशा) प्रगट हो, ऐसा केवलज्ञानमय न हो तो प्रगट कहाँ से होगी? आहाहा! समझ में आया? यह बाद में कहेंगे। यहाँ तो इतना कि निज शुद्धात्मा। भगवान पर आत्मा नहीं, पर देव, गुरु और देव अरिहन्त त्रिलोकनाथ हो, उनकी भी भक्ति में तो शुभभाव ही होता है। धर्म नहीं होता। आहाहा! और स्व भगवान निज शुद्धात्मा पवित्र प्रभु आत्मा है। पर्याय में दुःख और विकार। वस्तु में कहाँ है? वस्तु तो आनन्दकन्द है प्रभु। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में प्रगट हो और पर्याय में दुःख का वेदन हो, सब पर्याय में है। यह कहे न, भावना से उत्पन्न हुई, यह पर्याय है आनन्द। और संसार के दुःख हैं, वे पर्याय में हैं। कहीं बाहर में दुःख नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि **निजशुद्ध...** ऐसा पहले अर्थ किया। निज अर्थात् अपना शुद्ध आत्मा। भगवान का हुआ, वह भगवान के पास रहा। वह कहीं भगवान देते नहीं और भगवान से माँगता नहीं आत्मा। माँगे तो वह भी शुभभाव का एक विकल्प है। आहाहा! पुण्य है, राग है, धर्म नहीं। आहाहा! इससे कहते हैं कि निज शुद्धात्मा। जो पुण्य और पाप के विकल्प के पीछे विकल्पातीत है, दुःखातीत है। आहाहा! एकदम यहाँ तो सत्य का सार क्या है, यह सिद्ध करते हैं। आहाहा! वाद-विवाद करने से भाई! पार आवे, ऐसा नहीं। प्रभु! यह स्वयं वह ऐसा है। आहाहा! वह तो निज शुद्धात्मा के स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा वह तो आत्मा है। उसका स्वरूप ऐसा है। वह राग से या देव-गुरु-शास्त्र से, शास्त्र के ज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निज शुद्धात्मा... यह त्रिकाली। त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु की भावना। उसकी सन्मुखता और उसमें एकाग्रता से उत्पन्न हुआ। ऐसा कहकर यह कहते हैं कि व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प हो, परन्तु उससे यह परमानन्द उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! सम्यग्दर्शन और धर्म की उत्पत्ति परमानन्द की दशा में जो होती है। उस दशा में पर का कोई कारण नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

भावना से जो उत्पन्न हुआ... देखा, वह पर्याय है। क्या? कि **जो परम आनन्द...** दुनिया के माने हुए, विषय के पैसे के, धूल में सुख है, वह तो सब दुःख की कल्पना की जाल है। आहाहा! समझ में आया? यह तो परमानन्द जो आत्मा का स्वभाव है, वह परमानन्द प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें अब लोगों को ऐसी लगे।

व्रत करना, तप करना, यह करना, उसके करने से धर्म होगा। यह नहीं, भाई! यह तो विकल्प है। समझ में आया? लो, यह प्रश्न शान्तिभाई लाये थे। १०० आत्मधर्म भेजे होंगे, इन्होंने इनके गाँव में। स्थानकवासियों में। फिर वाँचकर उसमें से ऐसा आया है कि यह तो हम करते हैं, वह सब धर्म नहीं, पुण्य है। ऐसा यह तो लेखन है इसमें (आत्मधर्म में)।

मुमुक्षु : ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शान्तिभाई लाये थे आज। कि सबके लेख ऐसे आवे। तुम हमको यहाँ आकर समझाओ। ऐसा कहे। क्योंकि जो कुछ दया, दान, व्रत और अपवास करे, वह तो सब तुम पुण्य कहते हो, धर्म नहीं। अब हम करते हैं यह। हमारे साधु भी यह कहते हैं बेचारे।

मुमुक्षु : तो फिर करना क्या? ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह कहते हो परन्तु धर्म तो यह नहीं तो धर्म कौन-सा? आहाहा! लड़कों में भी ऐसे हैं न अभी कितने ही अपने? स्थानकवासी लड़के हों, उन्हें ऐसा कहे कि हमारे महाराज तो मुँहपत्ती रखे, हमारे महाराज तो... !

मुमुक्षु : रजोणु रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रजोणु रखे वह। मोटर में बैठे नहीं। अपने है न उसमें। क्या कहलाता है वह तुम्हारा बोर्डिंग.. बोर्डिंग। लो। ऐई! कहाँ गये नानाभाई! यह नानुभाई के लड़के हैं न सब विद्यार्थी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो, वह आया था कल। ऐसा करे। बापू! यह तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! जैनधर्म क्या है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो आज भाई लाये थे। १०० आत्मधर्म दिये होंगे। पालनपुर वाँचने के लिये। लोग कुछ वाँचे। वरना फिर समझाने आओ हमको। यह तो सब हम करते हैं, उन्हें पुण्य... पुण्य करते हैं। धर्म तो नहीं। समझाओ। तब यह कहे भाई! समझना हो तो सोनगढ़ आओ। बापू! कठिन, मार्ग अलग भाई! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि निजपरमात्मा स्वयं प्रभु स्वरूप प्रभु है या नहीं? और जिसमें से केवलज्ञान हो, अनन्त आनन्द प्रगटे, वह प्रगटे, उसका सत्त्व क्या है? वह तो पर्याय हुई। वह पर्याय किस सत्त्व में से और किस तत्त्व में से आवे? वह पुण्यतत्त्व में से आवे? आहाहा! दया, दान के विकल्प जो पुण्यतत्त्व है, उसमें से केवलज्ञान और अनन्त आनन्द की दशा आवे? इसलिए पहले से कहे निज आत्मा की भावना से परम आनन्द। आहाहा!

उसके अनुभव में क्रीड़ा करने से देव कहा जाता है,... आहाहा! भगवान आत्मा अपना अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है। बहुत बार दृष्टान्त देते हैं, नहीं? उस शकरकन्द का। वह यह शकरकन्द का दिन गया माघ कृष्ण चौदश का। शकरकन्द बाफकर खावे न? शिवरात्रि। वह शकरकन्द है, वह पौन सेर, सेर, अधसेर का एक शकरकन्द हो। उसके ऊपर की छाल छोल डालो और छाल का लक्ष्य न करो तो अकेला शकरकन्द है। शकरकन्द अर्थात् शक्कर का पिण्ड है वह तो। आहाहा! मिठास का पिण्ड। इसलिए शकरकन्द कहते हैं। हमारी अपनी काठियावाड़ी भाषा में शक्करिया, शक्करिया, ऐसा कहते हैं। मूल तो शक्कर-साकर है। आहाहा! यह बैठे इसे।

अकेला अधसेर का एक शकरकन्द हो। ऊपर की एक जरा सी छाल है, वह बर्तन में रखा हो, वह बर्तन तो कहीं शकरकन्द का नहीं? उसकी छाल भी उस शकरकन्द का स्वरूप नहीं। आहाहा! इसी प्रकार इस देह, वाणी में दिखता है, देह में रहा हुआ, यह तो बर्तन है। वह कहीं देह में रहा नहीं। वह तो भिन्न चीज़ है। और अन्दर में पुण्य और पाप की वृत्तियाँ खड़ी होती हैं, वे सब शकरकन्द की लाल छाल जैसी छाल है। वह प्रभु—आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह बात बैठे। शकरकन्द खाया हो न बाफकर। और उसमें चीनी डालकर। होवे तो मिठास, परन्तु अधिक चीनी डाले। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन, तू कौन है और कितना है और कहाँ है? आहाहा! कहते हैं कि यह निज आत्मा में परम आनन्द भरा है। समझ में आया? परन्तु इसने सुना नहीं, कभी विचार नहीं किया। आहाहा! धर्म के नाम से भी यह दया पालना, व्रत पालना, यह करना, विकल्प के राग में फँस गया, मर गया बेचारा। आहाहा!

भगवान आत्मा निज आत्मा की भावना से परमानन्द। **उसके अनुभव में क्रीड़ा करने से...** आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

दूसरी गाथा है न '**चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' यह वह बात कहते हैं। आहाहा! जो कोई भगवान आत्मा अपने सन्मुख होकर, आनन्द में एकाग्र होकर जिसे वर्तमान में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसमें स्थिर हुआ, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! और पुण्य और पाप के विकल्प की वृत्ति में स्थिर हो, टिके, उसे अनात्मा कहते हैं। वह जड़ है। अरेरे! आहाहा! प्रभु अपने चेतन का पद गँवा बैठा है यह। आहाहा! शुभ और अशुभ, हों! शरीर, वाणी, मन तो जड़ रह गये, स्त्री, पुत्र तो कहीं दूर रह गये। वह कहाँ इसके पास थे और इसके थे कभी? आहाहा!

यहाँ तो इसमें पुण्य और पाप की लागणियाँ जो वृत्तियाँ दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठे, वह भी लाल छाल जैसी छाल है। वह कहीं शकरकन्द का स्वरूप नहीं, ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा! अरेरे! इसे भी कैसे याद करे? आहाहा! पूरे दिन गोता मारे यहाँ से सुख लूँ... यहाँ से सुख लूँ, यहाँ से सुख लूँ, कीर्ति में से लूँ, स्त्री में से लूँ, पुत्र में से लूँ, अच्छे पके, ऐसा सुनने से लूँ। अरे प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह तो कल्पना के दुःख हैं।

भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप है। आहाहा! एकदम सार में सार बातें की हैं। उसके अन्तर में भावना कब करे? कि यह स्वरूप क्या है, ऐसा दृष्टि में आया हो, उसकी सत्ता का स्वीकार हुआ हो। जितनी, जैसी उसकी सत्ता है। उतना जिसे अन्तर में सम्यक् ज्ञान में, श्रद्धा में स्वीकार हुआ हो, वह उसमें एकाग्र होता है। समझ में आया? यह मार्ग सब अलग है, पोपटभाई! आहाहा!

मिलन क्या कैसा तुम्हारे मकान को कहते हैं न?

मुमुक्षु : नीलाम्बर।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! तू कहता था न कल कुछ। नीचे गिरे वहाँ कुछ वह दीवार में लिखा है न सब? मुम्बई... मुम्बई। आहाहा! यह तो तीन लोक का नाथ

आनन्द का घर अन्दर पड़ा है अतीन्द्रिय। उसके घर में प्रवेश करे तो इसे अतीन्द्रिय आनन्द आवे, ऐसा कहते हैं। परघर में जाये तो तुझे व्यभिचारी दुःख होगा तुझे। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में नींद में भी दुःखी है। आहाहा! कुत्ते को नींद आ जाये रास्ते में नहीं? यह तो फिर बँगले में है, वह तो ऐसे मोटरें जाती हों तो उस ओर पड़ा हो सोता हो कुत्ता, लो। देखा नहीं? धूप में पड़ा हो। और फिर उसे कुत्ते जैसी नींद। नहीं कहते कि जरा कुछ खड़खड़ाहट हो, ऐसे कर जाये। फिर सो जाये। आहाहा! सो जाये तो क्या? वह कुत्ता भी सोता है और शूकर भी सोता है और ढ़ोर भी जरा झोला खाकर सोता है। इन दोनों में अन्तर क्या है, ऐसा कहते हैं।

एक बाबा था न, बाबा था एक। लोगों में बहुत महिमा। और एक बाहर पड़ा था। भट्टी होगी न कोई भट्टी खुल्ली इस हलवाई की। और ठण्डा का दिन, वह सर्दी की पौष महीने की ठण्ड। इसलिए वह अन्दर जरा फिर बड़ी होगी वह भट्टी। अन्दर में सोवे राख में। ...नग्न मनुष्य तो सोवे। एक दरबार देख गये ऊपर से। दरबार तीसरी मंजिल पर होंगे ऊपर। बत्ती, वह बत्ती वहाँ गयी। देखा। एक साधु यहाँ सोता है। ऐसा कैसे? बुलाओ उसे। साधु को बुलाओ। आदमी को भेजा। वह कहे, हमारे क्या काम है राजा के पास। राजा स्वयं आये। घोड़ागाड़ी लेकर। ऋषिराज! मेरे पास आओ, मुझे कुछ पूछना है। क्या है उसे? साहेब! आपको सुख कहाँ है? वह कहता है हमको सुख है। हम सोवें तब बाहर की खबर नहीं। उसमें हम सुख में हैं। तू सोवे तब बाहर के साधन की तुझे खबर नहीं। सोवे तब समान और जब जागते हैं, हम हमारे आनन्द में हैं और तू जागृत हो तो तुझे पाप में यह करूँ और यह करूँ। पाप में। शान्तिभाई! बाबा ने जवाब दिया। सोवें तब समान। फिर तू पलंग में सो रहा हो, रेशमी गद्दों में और मैं यहाँ उस राख में। कुछ खबर नहीं होती, यह राख है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बिना भान के, सब बिना अक्ल के हैं। रेशमी गद्दे। रेशमी

की खबर है उसकी? स्वयं को खबर है कि रेशमी गद्दे हैं? और पैर चम्पी करते हों कोई लड़के। वे नौकर और कितनों को तो दिन में सोते हों तो मक्खी न आवे, इसलिए एक व्यक्ति रखा हो, वह पंखा करे। यों बहुत हवा नहीं, उसे फिर नींद भी आवे और जरा मक्खी वह मक्खी न आ जाये। ओढ़े तो नींद न आवे और कपड़ा रखे तो मक्खी आवे, एक के बाद एक। इसलिए एक व्यक्ति रखा हो धीरे से ऐसे साथ में। यह सब देखा हुआ है, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नेमीचन्द पाटनी भाई ने किया था, उसके घर में। पाटनी गृहस्थ व्यक्ति है। कोमल शरीर। सोते थे तो एक व्यक्ति ऊपर पंखा ऐसे हिलावे कैसा? वह मक्खी न आवे उतना। उसमें मैं निकला, देखा। ओहोहो! मेरे सोते समय भी पंखा करे। यह तो सब जगत का देखा है न। सोते समय राजा तू और मैं दोनों समान हैं। यह जागते समय तुझे जंजाल लगी, दुःखी हो और हम जागते हुए भी सुखी हैं, ले। आहाहा! शान्तिभाई बराबर है? सोते समय कोई खबर है कि हम पैसेवाले हैं। ऐसे हैं और ढींकणा है, गद्दे रेशम के हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कनुभाई है न अपने, वे पूछते थे एक बार। हरिभाई के नहीं, कनुभाई भायाणी। कान्तिभाई के भाई। कान्तिभाई गये? अपने नहीं तुम्हारे कनु। एक बार यहाँ (संवत्) १९९४ में आया था। तब विवाह नहीं हुआ था। छोटी उम्र थी। आठ वर्ष की उम्र। ८६ में जन्मा है, यह खबर है हमको। ८६ में वहाँ थे न हम। वह फिर वहाँ उस पेट में था, वह फिर जन्मा। ८६ में और ९४ यहाँ मकान (स्वाध्यायमन्दिर) हुआ न, वहाँ आया। बाहर मैं बैठा। महाराज! हम नीचे सोते हैं, गद्दे साधारण में, तो भी तुम कहते हो तुम धर्मी नहीं। और वे दो-दो पलंग में सोवे, तीन-तीन गद्दे रेशम के डालकर उसमें सोवे और वे धर्मी! कान्तिभाई! यह तुम्हारे कनुभाई ने प्रश्न किया था। ९४ की बात है। ३९ वर्ष हुए। बाहर बैठे थे। अपने है न! आहाहा!

भाई! वह सोने की चीज़ नहीं। जिसे राग से भिन्न पड़ा है, उस भगवान आत्मा

को अनुभव करता है। उसे उस गद्दे की खबर भी नहीं। वह दो गद्दे डाले हों तो उसे खबर भी नहीं वहाँ। आहाहा! समझ में आया? और तुम एक गद्दे में सोते हो तो भी यह मेरी शान है और उसमें मुझे सुख है। ऐसी मान्यता करके सोते हो। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर को सुख।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखी है। आहाहा!

यहाँ तो इतना कहना था कि भाई! धर्मी हो, उसे दो गद्दे रेशम के बिछाये। चक्रवर्ती हो। भरत चक्रवर्ती, जिन्हें छियानवें हजार रानियाँ। एक रानी (पटरानी की) तो हजार देव सेवा करे। हजार देव जिसकी सेवा करे। आहाहा! उसके पलंग अरबों के, हीरा, माणेक से भरे हुए—शृंगारित। उसके मकान हीरा-माणेक के होते हैं। यह नीलमणि जो होती है न, उस नीलमणि की तो वहाँ टाईल्स होती है। नीलमणि की टाईल्स हो नीचे मकान में। ऐसा तो पूरा मकान। अरबों रुपयों की कीमत का। ऐसे तो कुछ कमरे और कुछ धमाल सब हो, परन्तु वह स्वयं उसे कहीं उसकी नजरें नहीं। जाने सही, परन्तु नजर में आत्मा तैरता है अन्दर, उसका उपादेयपना उसे मान्य है। समझ में आया? आहाहा! उसमें मैं नहीं, मुझमें वह नहीं, यह निरन्तर दृष्टि की धारा चलती जाती है। आहाहा!

इस दृष्टि की धारा से पास हो गया है। आहाहा! और उसे सोने के गद्दे उत्कृष्ट हो, देव सेवा करे। सोलह हजार तो देव सेवा करे। अंगरक्षक। अंग की सम्हाल करनेवाले दो हजार देव खड़े हों। देव खड़े हों। अब वह कैसा होगा! कुछ खबर नहीं। उसे पर के ऊपर कहीं दृष्टि का आश्रय नहीं। ज्ञान हो, ज्ञान करे। आश्रय में, आधार में, अवलम्बन में तीन लोक का नाथ वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

पुण्य का उदय हो समकिती को तो बड़ा राजा हो, चक्रवर्ती हो, इन्द्रपद हो और मिथ्यादृष्टि को कुछ साधन न हो, ऐसे भी हो। मिथ्यादृष्टि बड़ा राजा हो और समकिती हो, वह रंक भिखारी भी हो। आहाहा! परन्तु उसे अन्तर में राग से भिन्न मेरा नाथ है। आहाहा! उसका आधार कभी उसे टलता नहीं। और वह कभी निमित्त, राग और पर्याय

का आधार लेता नहीं। आहाहा! इससे उसे पर में सुख की क्रीड़ा करनेवाला। देखो! उसमें क्रीड़ा करनेवाला वह देव है। आहाहा!

कहा है न कि चाण्डाल भी... रत्नकरण्डश्रावकाचार (में कहा है)। अग्नि को दबायी हुई राख हो, अग्नि अन्दर हो। उसी प्रकार चाण्डाल का शरीर मैला, काला, अन्दर समकित की जलहल ज्योति प्रगटी है अन्दर। आहाहा! वह बाहर से काला-कूबड़ा ऐसे मकान भी समझण क्या कहलाये? झोपड़ी। झोपड़ी (टूटी-फूटी) में रहता हो बेचारा बाहर। और वह बड़े बँगले में रहता हो चार-चार आठ ऊपर। भिखारी मिथ्यादृष्टि वहाँ सोता हो और वह समकिती बादशाह वहाँ सोता हो। भिखारी है और यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... बड़ा भिखारी है।

कहा नहीं था? दरबार आये थे न? कृष्णकुमार। गुजर गये। उनका पुत्र है। यहाँ आये थे व्याख्यान में। कहा, दरबार! जिसे पाँच हजार महीने चाहिए, वह छोटा भिखारी, लाख माँगे, बड़ा भिखारी, करोड़ माँगे वह बड़ा याचक / भिखारी। धर्मी जीव को आत्मा के आनन्द के समक्ष कोई याचना ही जिसे नहीं। आहाहा! भावना है बहुत, वह माँगता है यह। समझ में आया? अज्ञानी को तो विकल्प का जाल, सुलगा ही करता है। सो रहा हो तो रात्रि में और जागता हो तो भी। आहाहा! जागते को वापस विकल्पजाल बहुत हों। रात्रि में स्वप्न में सब आवे उसे। आज ऐसा किया, आज ऐसा दिया है, पाँच लाख की आमदनी हुई है और इतने नोट आये हैं और धूल आयी है। आहाहा! वह हमारे थे न मोहनजी भगत... भगत। बेचारे राणपुर। नारणभाई नहीं, नारणभाई करशन। वे इनकार करते थे। परन्तु नौकरी ऐसी करे कि सेठिया भी न कर सके, ऐसी उनकी तन्मय होकर करे। बहुत भगत व्यक्ति। वह रात्रि में सामने दे सब, उनके सेठ को कपड़े का व्यापार था। स्वयं सेठ ही स्वयं। सेठ वह करे इसलिए, ओहोहो! भगतजी! भगतजी! करे बस। सेठिया। नारणभाई के पिता। यह नारण करशनजी कहते थे। रात्रि में पाँच हाथ, पाँच हाथ, पाँच हाथ, सोते थे। कहो, जयन्तीभाई! यह सब तुम्हारे विकल्पजाल की बातें चलती है यह। रात्रि में स्वप्न आते हों, यहाँ गये हैं न, यहाँ गये हैं, यहाँ माल लिया है। भाई! तू दो आना कम तो कर, दो आना कम तो कर। पोपटभाई! आहाहा! उसे भावना परवस्तु की याचना की है, प्रभु! धर्मी को तो आत्मा की याचना, आत्मा में

एकाग्र होने की भावना है। आहाहा! कि जिसमें से परम आनन्द आवे। आहाहा! सार में सार मक्खन बात की है। अमुक हो, ढींकणा से हो, यह बात सब छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया?

अनुभव में क्रिया करने से देव... आहाहा! देव शक्ति की प्रगटता परमदेवपना प्रगट हुआ, उसे देव कहते हैं। उसको देव कहते हैं न चाण्डाल को। ढँकी हुई अग्नि है, अन्दर अग्नि है। बाहर राख दिखती है। अन्दर चैतन्यज्योति जलहल ज्योति का अनुभव है। इसी प्रकार चाण्डाल है, काला शरीर है, कूबा में रहता है। आहाहा! वह सुखी है। उसे देव कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देव। देव कहा है उसे। पण्डितजी को गाथा कण्ठस्थ होगी न! रत्नकरण्ड श्रावकाचार। आहाहा! और उसे भिखारी कहा है। शास्त्र में वरांका कहा है। वरांका अर्थात् रंक। बड़ा चक्रवर्ती भी हो ब्रह्मदत्त जैसा, भिखारी-रंक है। जिसे स्वलक्ष्मी की खबर नहीं और स्वलक्ष्मी को खोदे कैसे? प्रगट कैसे हो, उसकी खबर नहीं। वह तेरे होशियार की होशियारी किस काम की तेरी? आहाहा! समझ में आया?

यही आराधने योग्य है। है? परमानन्द का नाथ, उसमें एकाग्र होकर, उसमें परमानन्द हो, वह करनेयोग्य है। वह सेवनयोग्य है। आहाहा! कठिन भाई! यह तो कठिन काम। अमुक करना, दया पालना, दान करना या यात्रा करना और भक्ति करना। बापू! वह तो शुभविकल्प हो, राग है वहाँ वह होनेवाला हो तो होता है। वह कोई धर्म नहीं। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में इन्द्र सुनते थे, तब यह कहते थे भगवान। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! तेरे पास निधान है न! अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ईश्वरता, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय वीर्य—ऐसी खान का धारक तू प्रभु है। आहाहा! उसकी पर्याय में एकाग्र होने से अनुभव में क्रीड़ा करे, वह देव कहलाता है। आहाहा! समझ में आया?

जो आत्मदेव... अब त्रिकाल की बात करते हैं। **शुद्ध निश्चयनयकर भगवान**

केवली के समान है। है? आहाहा! आठ वर्ष की बालिका हो, चाण्डाल की पुत्री हो, कूबा में रहती हो, परन्तु जो सम्यग्दर्शन पाती है न, आहाहा! (वह) देव है, देव। आहाहा! रोटियाँ मुश्किल से मिलती हो माँगने जाये वहाँ। हो, वह क्या हो गया? आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा, यह कहते हैं वह **शुद्ध निश्चयनयकर भगवान केवली के समान है।** भगवान केवली। आहाहा! उन समान प्रभु है। आहाहा! 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' यह तो सर्वज्ञ के अन्तर तत्त्व की बातें हैं, भाई! बाहर के चुंथणा करके मर गया ऐसा करके। पाप के किये अनन्त बार, नियमसार में तो ऐसा आवे—कथनमात्र व्यवहाररत्नत्रय अनन्त बार किये। व्यवहाररत्नत्रय, हों! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत के परिणाम। यह कथनमात्र जो व्यवहाररत्नत्रय, उसे कथनमात्र कहा है, देखो! आहाहा! उपचार, उपचार का बड़ा विवाद आता है उसमें—खानिया चर्चा में।

उपचार कहलाता है। पर्याय है, वह व्यवहार है और द्रव्य है, वह निश्चय है। तुम व्यवहार को उपचार कहते हो। किस अपेक्षा से प्रभु! पर्याय भी त्रिकाल सत्यार्थ की अपेक्षा से असत्यार्थ है। समझ में आया? लोग आते हैं लड़के। आहाहा! क्या कहते हैं? शुद्ध सत्यदृष्टि से भगवान को देखो तुम, कहते हैं। आहाहा! क्या निकला है यह तो। शुद्ध निश्चयनयकर, शुद्ध निश्चयनयकर। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहना है, भूतार्थ त्रिकाली वस्तु है न, उसे सत्य कहा। तो उसकी पर्याय को भी इस अपेक्षा से तो असत्य कहा। व्यवहार किया, असत्य कहा। आहाहा! उसने सब बोल डाले हैं २१। निर्विकल्प को निश्चय कहे, सविकल्प को व्यवहार कहे, द्रव्य को निश्चय कहे, पर्याय को व्यवहार कहे। यह सब बहुत बोल डाले हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय है, ऐसा उसे सिद्ध करना है। व्यवहार कहते नहीं, व्यवहार और घट की है, ऐसा सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : पर्याय अपेक्षा से पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अपेक्षा से पर्याय है, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से असत्य है। वह तो व्यवहार है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, एक बार सुन तो सही प्रभु! तेरा आत्मा किसे कहते हैं? आहाहा! अन्दर भगवान विराजता है। चैतन्यस्वरूप प्रभु है, तुझे तेरी खबर नहीं। आहाहा!

निश्चयनयकर भगवान केवली के समान है। आहाहा! यह तो हड्डियाँ, चमड़ी है, प्रभु! जड़ है। उसमें भगवान आत्मा विराजता है, वह तो भगवान केवली समान है। आहाहा! अरे! कैसे बैठे? एक गोबर का पोहठा मिले, वहाँ प्रसन्न हो जाये। और उसमें पाँच-पचास हजार रुपये हों जायें वहाँ तो ऐसा मानो कि ओहोहो! आकाश में पाटु मार्युं मानो। आहाहा! भगवान! तुझे खबर नहीं प्रभु! तुझमें अनन्त आनन्द पड़ा है, प्रभु! तू कौन है? आहाहा! है?

शुद्ध निश्चयनयकर भगवान केवली के समान है। भगवान किसे लागू पड़े? केवली को। भगवान केवली के समान आत्मा अन्दर है। आहाहा! आत्मा में देह में विराजमान भगवान केवलज्ञानस्वरूप यदि न हो, तो केवलज्ञान की पर्याय के समय आयेगा कहाँ से? आहाहा! है? **जो देह में न होवे तो केवलज्ञान के समय कैसे प्रगट होवे।** जब केवलज्ञान परमात्मा होता है जलहल ज्योति। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा परमात्मा कहते हैं कि जो परमात्मा हुए और देह में यह भगवान शक्तिरूप से न हो तो कहाँ से परमात्मा होंगे? आहाहा! पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई न हो, यह पीपर, छोटी पीपर। तो पर्याय में चौंसठ पहरी चरपराई आयेगी कहाँ से? आहाहा! अरेरे! ऐसी बातों की खबर नहीं होती। और दुनिया के चतुर होकर घूमते हैं। आहाहा!

कहते हैं, थोड़े शब्दों में भी मक्खन भरा है। भगवान! एक बार सुन न! कि **शुद्ध निश्चयनयकर भगवान केवली के समान है** आत्मा अन्दर है। यदि इस देह में शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, सामर्थ्यरूप से परमात्मा स्वयं देह में न हो, स्वयं परमात्मा, हों! आहाहा! यहाँ परमात्मप्रकाश है न इसलिए। आहाहा! **तो केवलज्ञान के समय कैसे प्रगट होवे।** केवलज्ञानी परमात्मा, तीन काल-तीन लोक जाने परमेश्वर। उन परमेश्वर का केवलज्ञान आया कहाँ से? वह प्रगट कहाँ से हुआ? आहाहा! समझ में आया?

चौंसठ पहरी चरपराई यदि छोटी पीपर में न हो। यह छोटी पीपर है न इतनी

छोटी। उसकी शक्ति में चौंसठ पहरी चरपराई न हो तो घूँटने से चौंसठ पहरी कहाँ से आयेगी? आहाहा! समझ में आया? शक्ति की व्यक्तता है। परमात्मा जो होते हैं, वे शक्ति में से परमात्मा व्यक्त होते हैं। आहाहा! ऐसा कहकर तो निमित्त से नहीं, व्यवहार से नहीं। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय से भी नहीं। आहाहा! शक्ति भगवान आत्मा की अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द जिसका स्वरूप है, ऐसी शक्तिरूप से इस देहदेवल में स्त्री हो, पुरुष हो, नपुंसक हो, पशु हो, उसके अन्दर में शक्तिरूप से परमात्मा स्वयं विराजता है। आहाहा! स्वयं, हों! पर्याय में बाद में उसका एन्लार्ज होता है। शक्ति में से व्यक्तता आती है। आहाहा! प्रवीणभाई! अन्दर में पूर्ण प्रवीणता न हो तो पर्याय में प्रवीणता कहाँ से आयेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई!

यह देह तो मिट्टी है, बापू! राख हो जायेगी। परन्तु अन्दर वह आत्मा विराजता है, वह कहीं राख होगा? वह तो नित्य है। नित्य तो है, परन्तु कैसी उसकी शक्ति है? देह में शक्तिरूप से, सामर्थ्यरूप से, सत्त्वरूप से, तत्त्वरूप से परमात्मा स्वयं न हो तो केवलज्ञान के समय जो परमात्मा होते हैं, वे कहाँ से होंगे? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! जगत का (भाग्य है)।

मुमुक्षु : इस प्रकार ही सुनने जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि शक्तिरूप से देह में भगवान न हो, सामर्थ्यरूप से, शक्तिरूप से। उसका सत् है, वह उसका सत्त्व जो है। सत् है, उसका सत्त्व है शक्तिरूप से केवलज्ञान परमात्मा स्वयं शक्तिरूप से है। आहाहा! अब ऐसी बातें सुनने को मिले नहीं और बाहर से करे, यह करे और धूल किये और यह किया। आहाहा! फिर शान्तिभाई को पूछे न, वे भेजे वहाँ से, कि तुम समझाओ। तुमने तो आत्मधर्म में लगायी है, यह सब पुण्य... पुण्य की बातें करते हैं। हम तो यह सब यही करते हैं, हमारे साधु भी यही करते हैं। शान्तिभाई! आहाहा! उसने पुछवाया है।

यह तो कहाँ है बापू कहीं! आहाहा! अरेरे! तेरे तल में परमात्मा विराजता है, उस तल में से निकालना है। समझ में आया? पाताल में जैसे पानी पड़ा हो और निकालना हो, वैसे अन्दर पाताल में शक्ति परमात्मा स्वयं स्थित है। आहाहा! अरे! ऐसी

बातें किस प्रकार की ? आहाहा ! देश की सेवा करना, अमुक यह करना, ढींकणा यह करना। माँ-बाप की सेवा करना, लड़के को बड़ा सिखाकर शिक्षा में आगे बढ़ाना। ऐसी सब बातें संसार की—भटकने की। आहाहा ! विशिष्टता क्या कही है ? प्रभु ! तू जो सर्वज्ञ होता है, केवली परमात्मा, देह में यदि शक्तिरूप से न हो, इस देह में शक्तिरूप से भिन्न न हो, तो वह परमात्मा केवलज्ञान होगा कहाँ से ? आहाहा ! कहो, यह तो समझ में आये ऐसी बात है। भगवानजीभाई ! आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : और यह बात सीधी है। ओहोहो ! तेरी वर्तमान दशा में अल्पज्ञता है और विकार भी है। परन्तु उसका शक्तिरूप से सत्त्व है, वह तो निर्विकारी निर्दोष आनन्दकन्द है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! कहाँ के कहाँ थे सब ये ? ... आहाहा !

शक्ति में यदि शक्तिरूप से परमात्मा न हो, उसी प्रकार शकरकन्द में शक्तिरूप से मिठास का कन्द न हो तो मिठास पर्याय में आयेगी कहाँ से ? आहाहा ! सोना अन्दर सोलहवान शक्तिरूप से पूर्ण न हो तो पर्याय में सोलहवान होगा कहाँ से ? आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी शक्ति है, ऐसे आत्मा के सामर्थ्य की प्रतीति कराते हैं यहाँ तो। यह तेरी प्रतीति राग में, निमित्त में, पर में जाती है। आहाहा ! एक समय की पर्याय की अवस्था की भी प्रतीति करता है, वह भी विभ्रम है। आहाहा ! जब उसे पर्याय को परद्रव्य का प्रत्यक्षपने की प्रतीति करने का भाव है, तो फिर वह भाव उसे स्वप्रत्यक्ष करे, यह काम क्यों नहीं कर सकता ? आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं, बापू ! आत्मधर्म। आहाहा ! ओहोहो !

ऐसा परमात्मदेव शक्तिरूप से... सामर्थ्यरूप से, स्वभावरूप से देह में है। देह में है भगवान। वहाँ से शक्ति की व्यक्ति होती है। आहाहा ! ऐसी प्रतीति उसे कब हो ? यह अन्तर दृष्टि करे, तब हो। आहाहा ! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' वस्तुरूप से, हों ! आहाहा ! **जो देह में न होवे, तो केवलज्ञान के समय कैसे प्रगट होवे।** आहाहा ! १७४ हुई।

गाथा - १७५

अथ तमेवार्थं व्यक्तीकरोति-

२९८) जो परमप्पा णाणमउ सो हउँ देउ अणंतु।
जो हउँ सो परमप्पु परु एहउ भावि णिभंतु।।१७५।।

यः परमात्मा ज्ञानमयः स अहं देवः अनन्तः।
यः अहं स परमात्मा परः इत्थं भावय निर्भ्रान्तः।।१७५।।

जो परमप्पा इत्यादि। जो परमप्पा यः कश्चित् प्रसिद्धः परमात्मा सर्वोत्कृष्टानन्त-ज्ञानादिरुपा मा लक्ष्मीर्यस्य स भवति परमश्चासावात्मा च परमात्मा णाणमउ ज्ञानेन निवृतः ज्ञानमयः सो हउं यद्यपि व्यवहारेण कर्मावृतस्तिष्ठामि तथापि निश्चयेन स एवाहं पूर्वोक्तः परमात्मा। कथंभूतः। देउ परमाराध्यः। पुनरपि कथंभूतः। अणंतु अनन्तसुखादिगुणास्पदत्वादनन्तः। जो उं सो परमप्पु योडहं स्वदेहस्थो निश्चयेन परमात्मा स एव तत्सदश एव मुक्तिगतपरमात्मा। कथंभूतः। परु परमगुणयोगात् पर उत्कृष्टः एहउ भावि इत्थंभूतं परमात्मानं भावय। हे प्रभाकरभट्ट। कथंभूतः सन्। णिभंतु भ्रान्तिरहितः संशयरहितः सन्निति। अत्र स्वदेहेडपि शुद्धात्मास्तीति निश्चयं कृत्वा मिथ्यात्वाघुपशमवशेन केवलज्ञानाघुत्पत्तिबीजभूतां कारणसमयसाराख्यामागमभाषया वीतरागसम्यक्त्वादिरुपां शुद्धात्मैकदेशव्यक्तिं लब्ध्वा सर्वतात्पर्येण भावना कर्तव्येत्यभि-प्रायः।।१७५।।

आगे इसी अर्थ को प्रगटपने से दृढ़ करते हैं-

ज्ञानमयी परमात्मा हूँ मैं, मैं वह देव अनन्त स्वरूप।
जो मैं हूँ वह ही परमात्मा इस प्रकार भाओ निर्भ्रान्त।।१७५।।

अन्वयार्थः- [यः परमात्मा] जो परमात्मा [ज्ञानमयः] ज्ञानस्वरुप है, [स अहं] वह मैं ही हूँ, जो कि [अनंत देवः] अविनाशी देवस्वरुप हूँ, [य अहं] जो मैं हूँ [स परः परमात्मा] वही उत्कृष्ट परमात्मा है। [इत्थं] इस प्रकार [निर्भ्रांतः] निस्संदेह [भावय] तू भावना कर।

भावार्थः- जो कोई एक परमात्मा परम प्रसिद्ध सर्वोत्कृष्ट अनंतज्ञानादिरुप लक्ष्मी का निवास है, ज्ञानमयी है, वैसा ही मैं हूँ। यधपि व्यवहारनयकर मैं कर्मों से बँधा हूँ, तो

भी निश्चयनयकर मेरे बंध मोक्ष नहीं है, जैसा भगवान् का स्वरुप है, वैसा ही मेरा स्वरुप है। जो आत्मदेव महामुनियोंकर परम आराधने योग्य है, और अनंत सुख आदि गुणों का निवास है। इससे यह निश्चय हुआ कि जैसा परमात्मा वैसा यह आत्मा और जैसा यह आत्मा है, वैसा ही परमात्मा है। जो परमात्मा है। वह मैं हूँ, और जो मैं हूँ, वही परमात्मा है। अहं यह शब्द देह में स्थित आत्मा को कहता है। और सः यह शब्द मुक्ति प्राप्त परमात्मा में लगाना। जो परमात्मा वह मैं हूँ, और मैं हूँ सो परमात्मा–यही ध्यान हमेशा करना। वह परमात्मा परमगुण के संबंध से उत्कृष्ट है। श्रीयोगीन्द्राचार्य प्रभाकर भट्ट से कहते हैं, कि हे प्रभाकर भट्ट, तू सब विकल्पों को छोड़कर केवल परमात्मा का ध्यान कर। निस्संदेह होके इस देह में शुद्धात्मा है, ऐसा निश्चय कर। मिथ्यात्वादि सब विभावों की उपशमता के वश से केवलज्ञानादि उत्पत्ति का जो कारण समयसार (निज आत्मा) उसी की निरन्तर भावना करनी चाहिये। वीतराग सम्यक्त्वादिरुप शुद्ध आत्मा का एकदेश प्रगटपने को पाकर सब तरह से ज्ञान की भावना योग्य है।।१७५।।

गाथा-१७५ पर प्रवचन

१७५। **आगे इसी अर्थ को प्रगटपने से दृढ़ करते हैं—**

२९८) जो परमप्पा णाणमउ सो हउँ देउ अणंतु।
जो हउँ सो परमप्पु परु एहउ भावि णिभंतु।।१७५।।

आहाहा! यह गाथा परमात्मप्रकाश में मात्र मक्खन भरा है। **जो परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, वह मैं ही हूँ,...** अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञानस्वभावी स्वरूप, वह मैं आत्मा। है? **जो कि अविनाशी देवस्वरूप हूँ,...** ज्ञानस्वभावी वह मैं, वह अविनाशी देवस्वरूप हूँ। अविनाशी देवस्वरूप हूँ। आहाहा! अन्तर्मुख दृष्टि का विषय क्या है, यह बताते हैं। आहाहा! बाहर में गोते मारे, यहाँ करूँ और यहाँ करूँ और यहाँ करूँ। आहाहा! हैरान... हैरान के रास्ते चला जाता है। जहाँ आनन्द का पंथ है, वहाँ नहीं जाता, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

जो कि अविनाशी देवस्वरूप जो मैं हूँ, वही उत्कृष्ट परमात्मा है। है? **इस प्रकार**

निःसन्देह तू भावना कर। योगीन्द्र महाराज नग्नमुनि दिगम्बर वनवास में बसे हुए, (वे) कहते हैं। हे प्रभु! इस ज्ञानस्वरूप से, ज्ञानस्वरूप से, ज्ञानस्वभाव से वह परमात्मा, वह मैं हूँ—ऐसी भावना कर। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें गजब, भाई!

मुमुक्षु : भावना कर, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्र हो उसमें, ऐसा कहते हैं। उसे मान और मानकर एकाग्र हो। आहाहा!

'**स परः परमात्मा**' है न? **जो मैं हूँ, वही उत्कृष्ट परमात्मा है। इस प्रकार निःसन्देह तू भावना कर।** आहाहा! विश्वास... विश्वास... विश्वास... सम्यगदर्शन की प्रतीति में मैं पूर्णानन्द हूँ, परमात्मस्वरूप हूँ, ज्ञान की उत्कृष्ट शक्तिवाला तत्त्व हूँ। ज्ञानस्वभावरूप अविनाशी, वह आत्मा परमात्मा है, वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन की भावना कहते हैं। आहाहा! मैं शरीरवाला हूँ, रागवाला हूँ, यह तो निकाल दे। परन्तु मैं अल्पज्ञ हूँ, यह भी निकाल दे, ऐसा कहते हैं। मैं तो जो ज्ञानस्वभाव है और जिसका ज्ञानस्वभाव, वस्तु... वस्तु... वस्तु है, उसका ज्ञानस्वभाव है न ज्ञानभाव, वह ज्ञानभाव, वह अविनाशी है और अविनाशी, वह उत्कृष्ट परमात्मस्वरूप, वह मैं हूँ। आहाहा! पर्याय में प्रगट होता है परमात्मा, वही मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! लोगों को दुःख लगता है, क्या हो? ऐसी जिसे खबर नहीं, वह धर्म किस प्रकार करे?

जिसका पूर्ण केवलज्ञान अकेला ज्ञान, अकेला ज्ञान, पूर्ण ज्ञान अकेला ज्ञान स्वभाव उत्कृष्ट है, ऐसी जिसे प्रतीति में, ज्ञान में ज्ञेय आया नहीं, वह कहाँ स्थिर होगा? कहाँ करेगा? क्या करेगा धर्म? ऐसी बातें हैं। अभी तो मिलना मुश्किल है। आहाहा! मोर की पिच्छी को चित्रामण न हो। मोर की पिच्छी चित्रामण से होती है? वह चित्रामण की पर्याय की शक्तिवाले ही वे मोर के पंख हैं। वे उत्पन्न होते हैं, वहाँ से ऐसी शक्तिवाले होकर मोर ऐसे। हरा थोड़ा भाग का और ऊपर ऐसे रोममवाली। आहाहा! किसी ने किया है? इसी प्रकार यह चित्रामण भगवान का आनन्द और ज्ञानरूपी पूर्ण चित्रामण उसे किसी ने किया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

थोड़ा है परन्तु सत्य है। लगे इसे भले रूखा, परन्तु है वीतरागता के भाव से

भरपूर है यह। आहाहा! समझ में आया? वीतरागस्वरूप यदि मैं न होऊँ, देह में वीतरागस्वरूप, शक्तिस्वरूप से न होऊँ तो वीतराग की पर्याय होगी, तब कहाँ से होगी? आहाहा! ज्ञान ने ईश्वर से, ज्ञान में ईश्वर में परिपूर्ण वर्तमान में अन्दर न हो तो केवलज्ञान की पर्याय पूर्ण प्रगट होगी, वह कहाँ से होगी? बाहर के साधन से होगी? आहाहा! समझ में आाय? ऐसा उपदेश, इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)। सन्तों ने तो यही पुकार किया है। दिगम्बर मुनि तो भगवान के पथानुगामी हैं। उनकी पगडण्डी पर जाते हैं और परमात्मा होंगे। यह परमात्मा की शक्तिरूप है तो परमात्मा होंगे, यह भरोसा कराते हैं। आहाहा!

भावार्थः—जो कोई एक परमात्मा परम प्रसिद्ध सर्वोत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी का निवास है, ज्ञानमयी है, वैसा ही मैं हूँ। परमात्मा, आहाहा! वर्तमान कोई एक परमात्मा परम प्रसिद्ध सर्वोत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी का निवास है, ज्ञानमयी है, वैसा ही मैं हूँ। सिद्ध, प्रसिद्ध आता है न? सिद्ध नहीं आता, प्रसिद्ध?

मुमुक्षु : सुसिद्ध प्रसिद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुसिद्ध प्रसिद्धं। आहाहा! वह प्रसिद्ध है भगवान, कहते हैं। आहाहा!

अनन्त परमात्मा, णमो लोए सव्व साहूणं। णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहु, सिद्धाणं, यह तो प्रसिद्ध है न, कहते हैं। आहाहा! प्रगट हुआ प्रसिद्ध है। ऐसा ही मैं हूँ। समझ में आया? यह जैनदर्शन के अन्तर के भाव यह हैं। यह भाव सुनने को न मिले, वह समझे कब? उसकी जिन्दगी जाती है ऐसी की ऐसी समाप्त होकर। आहाहा! बाहर में ऐसा हो कि पाँच-पचास लाख मिले और हम कुछ बढ़े, लड़के अच्छी जगह विवाहित हुए। धूल भी नहीं, मर गया है, बापू, भाई तू! तेरी महत्ता की कीमत करना तुझे नहीं आया। आहाहा!

जैसे सर्वोत्कृष्ट प्रसिद्ध सिद्ध भगवान हैं, वैसा मैं हूँ। आहाहा! कैसे बैठे? शक्ति की दृढ़ता है। जो शिथिल दृढ़ता थी कि मैं तो पर्याय जितना हूँ और मैं राग जितना हूँ। आहाहा! वह **अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी का निवास है, ज्ञानमयी है, वैसा ही मैं हूँ।**

यद्यपि व्यवहारनयकर मैं कर्मों से बँधा हुआ हूँ। निमित्त से। **तो भी निश्चयनयकर मेरे बन्ध-मोक्ष नहीं है,...** आहाहा! देखो! पर्यायदृष्टि से बन्ध-मोक्ष है। आहाहा! बँधा हुआ छूटे और छूटा हुआ छूटे, वह तो बँधी हुई पर्याय है, उसकी बात। द्रव्य बँधा हुआ ही नहीं है। द्रव्य तो छूटा ही है। द्रव्य का मोक्ष नहीं होता। आहाहा! द्रव्य तो मोक्षस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जैसा भगवान का स्वरूप है, वैसा ही मेरा स्वरूप है। जो आत्मदेव महामुनियोंकर परम आराधने योग्य है,... उन महामुनियों को तो यह आत्मा आराधनेयोग्य है, कहते हैं। आहाहा! पंच महाव्रत पालनेयोग्य है, वह सब व्यवहार की बातें कीं, परन्तु करनेयोग्य तो यह है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७२

अथ–

२९५) सव्वहिँ रायहिँ छहिँ रसहिँ पंचहिँ रुवहिँ जंतु।
चित्तु णिवारिवि झाहि तुहुँ अप्पा देउ अणंतु।।१७२।।

सर्वैः रागैः षड्भीः रसैः पञ्चभिः रुपैः गच्छत्।
चितं निवार्य ध्याय त्वं आत्मानं देवमनन्तम्।।१७२।।

सव्वहिं इत्यादि। झाहि ध्याय चिन्तय तुहुँ त्वं हे प्रभाकरभट्ट। कम्। अप्पा स्वशुद्धात्मानम्। कथंभूतम्। देउ वीतरागपरमानन्दसुखेन दीव्यति क्रीडति इति देवस्तं देवम्। पुनरपि कथंभूतम्। अणंतु केवलज्ञानाघनन्तगुणाधारत्वादनन्तसुखास्पदत्वादविन– श्वरत्वाच्चानन्तस्तमनन्तम्। किं कृत्वा पूर्वम्। चित्तु णिवारिवि चित्तं निवार्य व्यावृत्य। किं कुर्वन् सन्। जंतु गच्छत्परिणममानं सत्। कैः करणभूतैः सव्वहिं रायहिं वीतरागात्स्वशुद्धात्मद्रव्याद्विलक्षणैः सर्वशुभाशुभरागैः। न केवलं रागैः छहिं रसहिं रसरहिताद्वीतरागसदानन्दैकरसपरिणतादात्मनो विपरीतैः गुडलवणदधि– दुग्धतैलघृतषड्रसैः। पुनरपि कैः। पंचहिं रुवहिं अरुपात् शुद्धात्मतत्त्वात्प्रतिपक्षभूतैः कृष्णनील– रक्तश्वेतपीतपञ्चरुपैरिति तात्पर्यम्।।१७२।।

आगे यही कहते हैं, कि सब विषयों को छोड़कर आत्मदेव को ध्यावो–

सभी राग, रस छहों, पाँच रूपों में जाते इस मन को–
दूर करो अरु ध्याओ देव अनन्त गुणात्मक आतम को।।१७२।।

अन्वयार्थः– हे प्रभाकरभट्ट, [त्वं] तू [सर्वैः रागैः] सब शुभाशुभ रागों से, [षड्भिः रसैः] छहों रसों से, [पंचभिः रसैः] पाँच रसों से [गच्छत् चित्तं] चलायमान चित्त को [निवार्य] रोककर [अनंतम्] अनंतगुणवाले [आत्मानं देवम्] आत्मदेव का [ध्याय] चिंतवन कर।

भावार्थः– वीतराग, परम आनंद सुख में क्रीड़ा करनेवाले केवल ज्ञानादि अनंतगुणवाले अविनाशी शुद्ध आत्मा का एकाग्र चित्त होकर ध्यान कर। क्या करके? वीतराग शुद्धात्मद्रव्य से विमुख जो समस्त शुभाशुभ राग, निजरस से विपरीत जो दधि, दुग्ध, तेल, घी, लोंन, मिस्त्री, ये छह रस और जो अरुप शुद्धात्मद्रव्य से भिन्न काले,

सफेद, पीले, लाल, पाँच तरह के रुप इनमें निरन्तर चित्त जाता है, उसको रोककर आत्मदेव की आराधना कर।।१७२।।

वीर संवत् २५०२, फाल्गुन शुक्ल १, शनिवार
दिनांक- १९-०२-१९७७, गाथा - १७२-१७३, प्रवचन-२२१

परमात्मप्रकाश, १७२ गाथा। **आगे कहते हैं कि सब विषयों को छोड़कर आत्मदेव को ध्यावो—** जहाँ सुख है, वहाँ धर्म है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर का जुकाव, उसे छोड़कर अणीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा, सम्यग्दर्शन और ज्ञान, चारित्र करना हो, उसे त्रिकाली आत्मा का ध्यान कर, तब वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान सुखरूप दशा प्रगट होगी। आहाहा! १७२।

२९५) सव्वहिँ रायहिँ छहिँ रसहिँ पंचहिँ रुवहिँ जंतु।
चित्तु णिवारिवि झाहि तुहुँ अप्पा देउ अणंतु।।१७२।।

आहाहा! **हे प्रभाकरभट्ट...** चौरासी के अवतार के परिभ्रमण से मिटना (छूटना) हो तो उसे परसन्मुख जाते हुए पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर का जाना रोक दे। एकदम सार लिया है न? और स्वभाव जो अतीन्द्रिय आनन्द कहेंगे, ऐसा जो परमात्मा, देव कहा था न? पाठ में यह है। '**अप्पा देउ अणंतु।**' भगवान अनन्तस्वरूप देव है। अनन्त जीवत्वशक्ति, अनन्त आनन्दशक्ति, अनन्त ईश्वरशक्ति, ऐसी अनन्त शक्तिवाला वह देवस्वरूप है। आहाहा! उस देव का ध्यान कर, कहते हैं। पामर के ध्यान में तू चिपटा है अनादि से। तू उसमें मर गया है। आहाहा! उसे छोड़कर परसन्मुख के भाव को छोड़कर। आहाहा! यह जवानी शरीर की हड्डियों की, माँस की। कहते हैं कि उस ओर का लक्ष्य छोड़ दे। वह तो हड्डियाँ, माँस, चमड़ी है। आहाहा!

और पाँच इन्द्रियों की ओर के झुकाव के विषय, वह भी परपदार्थ है। आहाहा! उस परपदार्थ के आश्रय से या लक्ष्य से तुझे दुःख होगा। दुःख होता है। इस प्रकार दुःखी अनन्त बार से हो रहा है। अब धर्म करना और सुखी होना हो तो इन पाँच इन्द्रियों के विषयों से विमुख हो। रोक, उसे रोक। है? **सब शुभाशुभरागों से,...** रहित हो।

आहाहा! है न? सब राग में दोनों लिये शुभ और अशुभ दोनों। क्योंकि शुभ-अशुभराग दोनों पुण्य-पाप बन्धन के कारण हैं। उनसे तू अन्दर में रागरहित होकर और **छहों रसों से...** अर्थ में आयेगा। दही, दूध आदि। और पाँच प्रकार के रूप। रस शब्द है न, वहाँ रूप चाहिए। रस तो छह प्रकार के आ गये हैं। पाँच प्रकार के रस। आहाहा! रूप... रूप।

उससे **चलायमान चित्त को...** आहाहा! शरीर की कोमलता और चतुराई शरीर की, रूपवान दशा आदि देखकर जीव चलायमान होता है, कहते हैं। आहाहा! उसका चलायमान होना, वह दुःख में जाता है। आहाहा! उसमें से हटकर। अर्थ में करेंगे विशेष। पाँच रूप से हटकर **चलायमान चित्त को रोककर...** पाँच रस। आहाहा! उससे रोककर **अनन्त गुणवाले आत्मदेव का चिन्तवन कर।** आहाहा! चिन्तवन का अर्थ विकल्प से नहीं यहाँ। अनन्त गुणवाला भगवान आत्मा तू स्वयं, हों! भगवान आत्मा परमेश्वर, वे नहीं। आहाहा! उसका चिन्तवन कर अर्थात् ध्यान कर। आहाहा!

भगवान अनन्त गुण की धीकती पेढी है, वहाँ जा, ऐसा कहे। आहाहा! उसका ध्यान कर वहाँ। आहाहा! करते हैं, यह कहते हैं या नहीं और यह करना। दया पाले, व्रत पाले, अपवास करे, वह तो पाँच इन्द्रिय के विषय के भाव हैं वे तो। परसन्मुख का भाव, वह तो राग है। यह तो पहले से कहा था। शुभाशुभराग को रोककर, छह रस को छोड़कर, पाँच इन्द्रिय, भगवान अरूपी है, उनसे भिन्न रूपी पंचेन्द्रिय रस छोड़कर आत्मा का ध्यान कर। आहाहा! यदि धर्म करना हो और हित करना हो, परिभ्रमण को टालना हो तो यह उपाय है। आहाहा! समझ में आया? **आत्मदेव का चिन्तवन कर।**

अब, पहली अनन्त की व्याख्या करते हैं। **वीतराग, परम आनन्द सुख में क्रीड़ा करनेवाले केवल ज्ञानादि अनन्त गुणवाले अविनाशी...** आहाहा! भगवान आत्मा तो वीतरागी परमानन्द में रमनेवाला, क्रीड़ा करनेवाला वह भगवान है, कहते हैं। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय में रमता है, वह तो दुःख है, जहर है। वह तो सविकल्प में राग के जहर के प्याले पीता है। आहाहा! **वीतराग, परम आनन्द सुख में क्रीड़ा करनेवाले...** आहाहा! **केवल ज्ञानादि अनन्त गुणवाले अविनाशी...** वस्तु, हों! यह आत्मा कैसा है?

आत्मा किसे कहना ? आहाहा ! अरेरे ! **वीतराग, परम आनन्द...** जिसमें वीतरागी आनन्द, परमानन्द पड़ा है। इन्द्रिय के आनन्द में तो कल्पना की राग की कल्पना है। आहाहा !

भगवान आत्मा **वीतराग, परम आनन्द सुख में क्रीड़ा करनेवाले...** आहाहा ! वह तो आनन्द की सुख की क्रीड़ा करनेवाला भगवान अन्दर है। दुःख में रमे, वह आत्मा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? अलिंगग्रहण में तो कहा है। इन्द्रिय के विषय को भोगनेवाला, वह आत्मा नहीं। विश्व को भोगनेवाला इन्द्रिय को, वह आत्मा नहीं। आहाहा ! वह उसे भोगता नहीं। उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह (बात) तो बहुत कठिन अलग प्रकार की, इसलिए लोगों को ऐसा लगे। यह मार्ग ऐसा निश्चय से... निश्चय से कहाँ से निकाला, कहे ? निकाले कहाँ, यह तो अनादि का है। आहाहा ! बीच में शुभराग आवे, उसे व्यवहार कहा जाता है, परन्तु वह निश्चय हो उसे। जिसे निश्चय आत्मा परम आनन्द सुख में रमत—क्रीड़ा करनेवाला प्रभु। आहाहा ! और केवलज्ञानादि अनन्त गुणवाला। पहला यह अर्थ है। अन्तिम है न, अन्तिम ? '**अप्पा देउ अणंतु।**' इसकी व्याख्या की। चौथा पद। '**अप्पा देउ अणंतु।**' आत्मा देव अनन्त है। आहाहा ! अरे ! एक वाक्य, परन्तु इसका भाव उसे बैठे। '**अप्पा देउ अणंतु।**' भगवान आत्मा देव है, वह अनन्त गुणवाला देव है।

दिव्यशक्ति का देव भण्डार भगवान वीतराग परमानन्द की रमणता में रमनेवाला। आहाहा ! अनादि से सुख में रमता है, कहते हैं। रमता है अर्थात् परणिति की बात नहीं। सुखशक्ति का भण्डार भगवान है। आहाहा ! ऐसा जो अनन्तदेव, आहाहा ! वह केवलज्ञानादि, पर्याय की बात नहीं। त्रिकाली केवल—अकेला भगवान। अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली स्थिरता, चारित्र, अकेली स्वच्छता, अकेली प्रभुता, अकेला कर्तागुण, कर्मगुण, करणगुण, अकेला एक-एक स्वरूप पूर्ण। ऐसे अनन्त गुण केवलज्ञानादि गुण का भण्डार।

केवल ज्ञानादि अनन्त गुणवाले अविनाशी... आहाहा ! कभी नाश न हो, ऐसा नित्य प्रभु है। आहाहा ! अनन्त गुण की मूर्तिरूप प्रभु आत्मा है। आहाहा ! और बाहर के अनुकूल विषयों में प्रसन्नता में रमना। आहाहा ! जहर पीता है। आत्मा के आनन्द को

छोड़कर। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! **अविनाशी शुद्ध आत्मा का एकाग्र चित्त होकर...** यह करनेयोग्य यह है, कहते हैं। चाहे जो पढ़ा हो और चाहे जो जाना हो। वीतरागी परम सुख में रमनेवाला प्रभु, अनन्त गुण सम्पन्न देव, उसमें एकाग्र होकर ध्यान करना, वह धर्म और सुख का उपाय है। आहाहा! समझ में आया?

क्या करके? वीतराग शुद्धात्मद्रव्य से विमुख... वह अस्ति की पहले। अब उससे विमुख (उसके) ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। यहाँ ध्यान कर, यहाँ से ध्यान छोड़ दे। आहाहा! धर्म ऐसी सूक्ष्म चीज़ है। आहाहा! आठ-आठ वर्ष के राजकुमार, चक्रवर्ती के पुत्र, तीर्थंकर के पुत्र। आहाहा! उसके आनन्द के स्वाद लेने जंगल में चले जाते हैं। आहाहा! बाघ और सिंह जहाँ दहाड़ मारते हैं। आनन्द में सिंह स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! आता है न वह, चरणानुयोग (सूचक चूलिका प्रवचनसार) में नहीं? आहाहा! हे शरीर को रमानेवाली रमणी! तू मेरे आत्मा को रमा नहीं सकी। आहाहा! मैं अब मेरी ज्ञानशक्ति प्रगट हुई है, मैं प्रभु हूँ—ऐसा मुझे अब भान हुआ है। तू आज्ञा दे। आहाहा! मेरी अनादि अनुभूति जो रमणीय अनादि स्वभाव, परम वीतराग... उसके पास मैं जाना चाहता हूँ। यह ३२-३२ वर्ष के जवान और हजारों स्त्रियाँ पद्मिनी जैसी रोती-बिलखती छोड़कर चले जाते हैं। बापू! मेरे संसार के नाश का उपाय तो यह है। मेरे स्वरूप में रमना, यह सब रमणता के लक्ष्य छोड़ना। आहाहा!

कहो, इस पैसे-फैसे में लक्ष्य जाता है तो दुःखी है, कहते हैं। आहाहा! अब उसका लक्ष्य छोड़। लक्ष्मी यहाँ (अन्दर) पड़ी है, वहाँ जा। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय, परसन्मुख का झुकाव। भगवान! उसे रोक। प्रभु! तू वहाँ पड़ा है, वहाँ अनन्त आनन्द है न! आहाहा! उस सुख सागर में झूलता है न, प्रभु! आहाहा!

वीतराग शुद्धात्मद्रव्य से विमुख... पहली व्याख्या की आत्मा की। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा परम सुख में रमनेवाला प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द में, अरे! इन विषय के सुख की रमणता की चिन्ता तूने क्या लगायी है? आहाहा! सुखबुद्धि करके तू उसमें पड़ा है। आहाहा! यहाँ सुखसागर में डोलता है न प्रभु अन्दर, वहाँ जा न! तुझे सुख होगा, ऐसा है। यह तो दुःख है। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मा **वीतराग**

शुद्धात्मद्रव्य से विमुख समस्त शुभाशुभराग,... लो, यहाँ तो शुभराग, वह परमात्मद्रव्य से विमुख है, ऐसा कहा। अब उस शुभराग से आत्मा की ओर जाया जाये? आहाहा! वह बड़ा विवाद यह। व्यवहार, व्यवहार धर्म है, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान और दया, वह तो शुभभाव है, भाई! वह तो आस्रव है। उसे तो आस्रव कहा है न? आहाहा! वह आस्रव उत्पन्न होता है, पर के आश्रय से—लक्ष्य से, परन्तु अब छोड़, तुझे संवर और निर्जरा करनी हो तो। आहाहा! एकदम मक्खन बिलोया है न, यह तो परमात्मप्रकाश है।

भाई! तू कौन है? प्रभु! तुझे तेरी कीमत आँकना आयी नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! तेरी ज्ञान की वर्तमान पर्याय में यह वीतरागी आनन्द में झूलता है, वह भगवान है, उसे ज्ञान में कभी ज्ञेयरूप से तूने लिया ही नहीं। आहाहा! परमात्म वीतराग शुद्धात्मवस्तु, देखो! वीतराग शुद्धात्मद्रव्य वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! 'जिन सोही है आत्मा, अन्य सोही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! इसमें कहीं विद्वत्ता की आवश्यकता नहीं। इसमें कोई शरीर की अनुकूलता हो तो हो सकता है, ऐसी वह चीज़ नहीं। बाहर के साधन खाने, पीने के, कमाने के व्यवस्थित हों, तो इस आत्मा में जाया जा सके, ऐसा है नहीं। यह कहते हैं। है, उसमें से लक्ष्य छोड़ तो साधन हो।

सवेरे एक आया था, भाई उसमें!—मोक्षपाहुड़ में, कि आत्मा के तीन प्रकार कहे थे न, भाई! बहिरात्मा, अन्तरात्मा... और वह शब्द कैसा लिया था? अन्तरंग उपाय से परमात्मा को साधना। आहाहा! विकल्प से और व्यवहार से अन्तर आत्मा जो ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु, अन्तरात्मा से परमात्मा को प्राप्त करने का अन्तरात्मा का उपाय है। आया था न सवेरे? आहाहा! और एक तो बात ऐसी थी रात्रि में। उठते हुए। ओहो! '**जदि दाएज्ज पमाणं**' आहाहा! प्रभु! क्या कहता है तू यह? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मेरे आनन्द के निजवैभव से मैं समयसार कहूँगा।

तं एयत्तंविहित्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण धेत्तव्वं॥५॥

आ गयी बात और तुझे सुनने को मिले, यहाँ तक तू आया। '**जदि दाएज्ज**

पमाणं' आहाहा! गजब बात है। वहाँ उसे ऐसा नहीं कहते कि तुझे काललब्धि पकेगी, तब समझेगा। आहाहा! आता है न? तीसरा पद। ओहोहो! क्या उनके वचन! क्या उनके भाव! प्रभु! तू कहेगा... बात, परन्तु प्रमाण करना, हों! अनुभव से प्रमाण करना। अकेला सुनकर रहना नहीं। आहाहा! परन्तु प्रभु! मुझे काललब्धि पकी न हो, तुम इतना सब कहो। अरे! सुन न! आहाहा! समझ में आया? वह काललब्धि हेय है। आहाहा! पर्याय है न? काललब्धि प्राप्त हो काल में। आहाहा!

भगवान का अनुभव कर द्रव्यस्वभाव का। वहाँ आगे अनुभव में तुझे आत्मा ज्ञात होगा। आहाहा! यह तो एकदम शब्द कहा। '**जदि दाएज्ज**' प्रभु! मैं कहना चाहता हूँ और यदि कहने में आया। आहाहा! '**जदि दाएज्ज पमाणं**' आहाहा! गजब किया है। स्वयं अपने अनुभव को आनन्द में झूलते हुए यह बात आ गयी है। तो कहते हैं, प्रभु! मैं कहूँ और यह बात बाहर आवे न, यह बात कान में पड़ती है न! आहाहा! तू इतना पुण्यशाली है कि यहाँ तक आया और यह बात ठेठ की तुझे मिली। आहाहा! प्रमाण करना। अर्थात्? अनुभव करके प्रमाण करना। ऐसे (ही) नहीं, आहाहा! प्रभु! तुझे क्या कहना है?

यद्यपि उसमें एक आया मोक्षमार्गप्रकाशक में। सब अवसर आ गया है। है न? यह तो कहते हैं अनुभव करना। आहाहा! ऐसी बात यदि दिखाऊँ और तुझे कान में पड़े। आहाहा! इतना पुण्यवन्त तू कि तुझे यह दिखाया है, वह तुझे कान में पड़ेगी। तू यह सब लक्ष्य छोड़कर अनुभव करना। आहाहा! जेठाभाई! ऐसी बातें हैं। भगवानभाई! आहाहा! क्या कहते हैं यह? ओहोहो! जब ये शब्द आये होंगे, तब भाव में कितनी उग्रता पुरुषार्थ की! स्वयं के लिये तो है। आहाहा!

काल में होगा, काल में होगा, परन्तु वह काल में होगा का पुरुषार्थ है। अन्दर में पुरुषार्थ करके अनुभव कर। यह तुझे काल आ गया तेरा। समझ में आया? ऐसी बात है। उस देव ने नहीं गाया? जुगलिया में जुगलिया में नहीं आता? ऋषभदेव भगवान के जैसा है, जुगलिया हुए हैं। देव आते हैं, उतरते हैं। उपदेश करे जुगलिया तो इतना पुण्यवन्त। कल्पवृक्ष के फूल, कल्पवृक्ष के वृक्ष, कल्पवृक्ष के सब जो चीज़ चाहिए हो,

वह मिले। मिले अर्थात् जो कुछ उसमें... वह मिले। परन्तु उसमें कोई दूसरी चीज़ की आवश्यकता पड़े नहीं। इतनी चीज़ें कल्पवृक्ष में हैं।

जुगलिया को कहते हैं, देव! मैं बात कहना चाहता हूँ, तेरी काललब्धि पक गयी, समकित... आहाहा! प्रभु! उसे—देव को क्या खबर पड़ी? मुनि आते हैं मुनि ऊपर से। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि स्वयं आवे वे....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं। मुनि आते हैं, ऐसा कहते हैं कि भाई! प्रभु! तुझे काललब्धि पक गयी है अब। आहाहा! प्रभु! आपने कैसे जाना परन्तु इतना सब? समझ में आया? आप छद्मस्थ हो न! आप अल्पज्ञानी हो न! उसका परिचय आपको नहीं न! आप तो मुनि कहीं से जाते थे और यहाँ उतरे। हमको ऐसा ही आया अन्दर में कि यहाँ जाते हुए यह भाव मुझे आया, इसके पास जाऊँ, तो तेरा काल पक गया था। ओहोहो! कथा में भी कितना न्याय रखा है! यह कहा तो सब तत्त्व की रखी है सब। आहाहा! मुनि छद्मस्थ हैं, केवलज्ञानी नहीं। ऐसा किसी से सुनकर आये हैं, ऐसा भी नहीं। उस सिंह के लिये तो सुनकर आये हुए हैं।

क्या कहा? भगवान महावीर। है यहाँ कहीं? पीछे है। सिंह... सिंह। सिंह के भव में मुनि ऊपर से उतरते हैं। वह हिरण पर थाप मारता है। अरे! प्रभु! तू कौन है? एकदम, परन्तु तुम कौन? कहाँ सिंह, जंगल और आपकी भाषा वह समझ गया, वह सिंह क्या है? यह बापू! यह मेल ही ऐसा होता है। आहाहा! तू दसवें भव में तीर्थंकर जीव है, भाई! आहाहा! दसवें भव में तीन लोक का नाथ महावीर तू होनेवाला है, भाई! यह क्या? यह स्थिति क्या है यह? आहाहा! उन्हें तो केवली ने कहा हुआ है कि यह सिंह का जीव है, वह दसवें भव में मोक्ष जायेगा, ऐसा सुना हुआ। इसलिए मुनि ऊपर से वहाँ उतरे। उतरे और सिंह को ऐसा हुआ। ओहो! मेरे नजदीक आते हुए प्राणी भी दूर भागते हैं। वे यह ऊपर से उतरकर मेरे निकट आये। ऐसा जहाँ देखा विस्मय से... है। आहाहा!

नजदीक में अनजाना मनुष्य या हिरण आ गया हो नजदीक। आड़ी हो। ऐसे मर

जाये, वह भागे। ऊपर से जाता है, ये आते हैं नीचे। आहाहा! मेल तो देखो एक निमित्त-नैमित्तिक का! तुमको यह शोभा नहीं देता। आहाहा! (सिंह की) आँख में से आँसू की धारा बहती जाती है। सिंह अर्थात्! वह वन का सिंह। अन्दर का सिंह जगा है न अब। अरेरे! यह क्या! यह क्या? आहाहा! अरे! मैं तीर्थंकर होनेवाला, और यह जीव मेरा तीर्थंकर का। और इस स्थिति से मुनिराज आकर केवली के पास से सुनकर कहते हैं। ये तो छद्मस्थ हैं। इतनी सब बात उसे ख्याल में आ गयी। आहाहा! एकदम सम्यक्त्व पा जाता है। आहाहा! लो।

सिंह को फिर आहार कहाँ? ऐसा कहाँ? भगवान आत्मा जम जाता है। राग बाकी है। स्वर्ग में चले गये। कहो, सिंह मरकर स्वर्ग। सिंह तो मरकर नरक जाये, माँस खाये न? आहाहा! और अभी तो हिरण को मारता है तो उसका माँस भी पेट में होगा थोड़ा। अरे! हो, वह उसे आत्मा में कहाँ अवरोधक है? आहाहा! मेरा नाथ परमात्मा वीतरागी आनन्द में रमता प्रभु। मैं वहाँ रमने गया। आहाहा! उसका (माँसादि भक्षण का) उसे पश्चाताप होता है। है तो वह पश्चाताप शुभभाव। उसके कारण यहाँ आँसू की धारा। आहाहा! यह मार्ग! परन्तु उसे तो ऐसा भी लगा कि यह तो जरा मुनि हैं और यह बात तो कोई सर्वज्ञ ने कही है, ऐसा उसे ख्याल आ गया। यह तो छद्मस्थ हैं और इतने अधिक ऊपर से आये हैं। यह कहीं मेरे प्राण बचाने के लिये आये हैं। उसके प्राण तो हिरण खाता है। आहाहा!

भाई! तू समकित प्राप्त कर। आहाहा! तेरा लक्ष्य अन्दर में जा अब। आहाहा! ...है। अन्दर में जाता है, सम्यक्त्व प्राप्त करता है। समाधिमरण से देह छोड़ता है। सिंह... सिंह। उसे रोटला-रोटी नहीं। आहाहा! वह तो क्या है? आहाहा! अभी तो अभी तक तो माँस खाता था। यह क्या है उसमें? एक क्षण में पलटता है न, भगवान! आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ जुगलिया को कहते हैं, काललब्धि पक गयी है, प्रभु! तुमने किसी से सुना था? उन्होंने तो सुना था। आहाहा! बापू! यह योग ही ऐसा है। हम तो ऊपर जाते हुए नीचे आने का मन हुआ और वह यहाँ ही आने का मन हुआ। जहाँ साधु का योग नहीं, ऐसा क्षेत्र। आहाहा! ऐसे मुझे उतरने की हमें वृत्ति

हुई। यह सूचित करता है कि तेरी काललब्धि पक गयी है। समकित ग्रहण कर, अन्दर जा। अन्दर उतर... अन्दर उतर... प्रमाण कर अब। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

वीतराग के सिद्धान्त कथा में भी तत्त्व भरा है। कथानुयोग में भी गौणपने उसमें भी मोक्ष का मार्ग भरा है। मुख्यरूप से द्रव्यानुयोग में है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तू एक बार पंचेन्द्रिय की ओर का लक्ष्य छोड़ दे और यह तू अन्दर में वीतराग परमानन्द का नाथ सुखसागर में झूलता है, उसका ध्यान कर। आहाहा! यहाँ आचार्य कहते हैं, हम इतनी बात तक तुझे सुनने और तुझे मिली अब। आहाहा! समझ में आया? परन्तु प्रभु! हमारा काल पका न हो तो हम ध्यान कैसे करें? ऐसा तर्क नहीं उठता, उसको स्वयं को। आहाहा! उसका तो ध्यान बदलकर अन्दर आत्मा का ध्यान कर, कहते हैं। यह कहा न?

परम आनन्द सुख में क्रीड़ा करनेवाले केवल ज्ञानादि अनन्त गुणवाले अविनाशी शुद्ध आत्मा का एकाग्र चित्त होकर ध्यान कर। आहाहा! अब चित्त को वहाँ से मोड़ते हैं, उसकी बात यह अस्ति से की। अब कहाँ से मोड़ते हैं, उसकी बात करते हैं। आहाहा! **वीतराग शुद्धात्मद्रव्य से...** भगवान के एक-एक वाक्य में पूरा सब पड़ा है। श्रीमद् कहते हैं न, सन्तों के एक वाक्य में अनन्त आगम भरे हैं। श्रीमद् में आता है। एक यह वन्दन... मर्म है... है। आहाहा!

एकाग्र चित्त होकर ध्यान कर। परन्तु प्रभु! तुमने कितनी बातें दूसरी सब है, वह भूलकर एकदम ध्यान कर... ध्यान कर। यह पहले व्रत पालना, पहले यह करना... यह करना... अब सीधी बात यह है, बापू! यह व्रत और तप के विकल्प तो ध्यान करने के बाद आत्मा का अनुभव होने के बाद आगे शान्ति बढ़े, तब व्रत के विकल्प आते हैं, वे भी आस्रव हैं। निश्चय व्रत हो अन्दर, तब उसे व्यवहार व्रत आते हैं। आहाहा! यहाँ तो सीधी बात। यहाँ तो आया क्या, यह दोनों उन दृष्टान्तों में? कि यहाँ तो कहते हैं कि तू एकदम ध्यान कर। पंचम काल के साधु जीव को कहते हैं। पाँचवें काल के जीव को कहते हैं। कहनेवाले पंचम काल के साधु हैं। आहाहा!

दोनों को केवलज्ञानी का विरह है। तथापि बात करते हैं वह ऐसी। आहाहा! भाई! तू इतने तक यहाँ आया न! ऐसी बात तुझे सुनने को मिले न! अब तू अन्दर में ध्यान कर, प्रभु! जो आत्मा वस्तु है, वह महाप्रभु है। यह उसे ध्यान में, ध्येय में लेकर। आहाहा! चैतन्यधाम भगवान है, ऐसा कहने पर और अमुक धाम है, वह तीर्थ का धाम है। यह नहीं कहते बाहर में?

मुमुक्षु : तीर्थधाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थधाम, फलाना धाम। वह तीर्थधाम यह है। समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान की उत्पत्ति का धाम भगवान है यहाँ। इस क्षेत्र में केवलज्ञान उपजे, ऐसा उसका धाम—क्षेत्र है। आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश है। आहाहा! कहते हैं कि तू सब बात छोड़ दे। परमात्मा से विमुख। है न? आहाहा! **समस्त शुभाशुभराग,...** पहले तो कहा। शुभ-अशुभराग का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! परन्तु तू एकदम। तुझे निचले व्यक्ति, साधारण मनुष्य, पंचम काल के। और अभी पाप में पड़े हैं, व्यापार-धन्धा आदि में और एकदम हमको यह बात। सुन न प्रभु! अब करने जैसा तो उग्ररूप से यह है। आहाहा! शुभाशुभराग को छोड़ दे। आहाहा! लो! पहले यह कर और बाद में यह कर, ऐसा कहा नहीं। आहाहा!

आज क्या आया था वह '**जदि दाएज्ज पमाणं**' पश्चात् '**तं एयत्तंविहित्तं दाएहं अप्पणो जदि दाएज्ज पमाणं**' छठवीं में यह क्रम दिया। प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय से विभक्त है और स्वभाव में यह ज्ञायक समय में एकत्व है। '**तं एयत्तंविहित्तं दाएहं अप्पणो**' '**जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण धेत्तव्वं**' दूसरे शास्त्रों की अनेक बातें हों। तर्क, व्याकरण आदि की। उस पर हमारा अभी वजन नहीं, लक्ष्य नहीं। आहाहा! हमारा अभी तो आत्मा के ध्यान में जाना, यह लक्ष्य है। किसमें? विभक्त होकर एकत्व में जाना। प्रमत्त-अप्रमत्त की पर्याय है, उसे विभक्त करके, भिन्न करके एकत्व में जाना। आहाहा! वहाँ एकत्व-विभक्त का वहाँ से सार लाये। यह कहा था। '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे। बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥**' '**एयत्त-णिच्छयगदो**' भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव में जाने से। सर्वत्र सुन्दर है द्रव्यस्वभाव।

बन्ध कथा। कथा शब्द से तो शब्द वाचक है। परन्तु राग के सम्बन्ध की बात, सम्बन्ध का भाव। प्रभु निराला है, उसे राग के सम्बन्ध का भाव विसंवाद उत्पन्न करता है। आहाहा! अब यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि उस राग से कल्याण होता है। अरे प्रभु! सुन भाई! यह आगम की पद्धति की बातें बहुत अलौकिक हैं। आहाहा! पहले धड़ाके बात करते हैं। आहाहा! कि अन्दर स्वरूप जो भगवान द्रव्यस्वभाव एकत्व है भाव, द्रव्य के साथ ज्ञायकभाव का एकत्वपना त्रिकाल है। उसमें राग की पर्याय का अभाव है न! प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय जिसमें नहीं। आहाहा! वहाँ ऐसा कहा... व्यवहार निश्चय अर्थात् कि प्रमत्त-अप्रमत्त है, वह व्यवहार है। नहीं अन्दर में, वह निश्चय है। है, उससे इनकार किया है। व्यवहार का भेद है चौथे, पाँचवें, छठवें... गुणस्थान भेद, मार्गणास्थान भेद, यह वस्तु है या नहीं? ऐसा नहीं कि यह तीर्थ है, वह साधन है। व्यवहारतीर्थ है, वह साधन है। बड़ा अन्तर।

यहाँ तो इनकार किया, देखो न! **समस्त शुभाशुभराग, निजरस से विपरीत...** अब यह तो हुआ **वीतराग शुद्धात्मद्रव्य से विमुख समस्त शुभाशुभराग,...** उसके सामने कहा। एक बोल कहा। कौन-सा? पाठ में है न? '**सव्वहिँ रायहिँ**' छोड़कर। है न? आहाहा! यह उसकी व्याख्या की इतनी कि **वीतराग शुद्धात्मद्रव्य से विमुख समस्त शुभाशुभराग,...** एक बात। अब दूसरी बात। '**छहिँ रसहिँ**' भिन्न। है न? अब इसका अर्थ करते हैं। इस शब्द का अर्थ।

निजरस से विपरीत... आहाहा! है न? भगवान आत्मा का आनन्दरस प्रभु वे अतीन्द्रिय आनन्द के रस से विमुख। आहाहा! विपरीत, दही का, दूध का। ठीक! आहाहा! खोटा दही हो न खोटा ऐसा। खोटा अर्थात् समझे न? कठिन। पानी (वाला) थोड़ा... खोटा दही कहते हैं। फिर दल हो। वह फिर ऐसे खाता हो तो उसे मानो, आहाहा! उसमें घी में तली हुई पूड़ी हो और उसमें दही खट्टा हो। और वह मीठा हो। खट्टा नहीं। प्रभु! वह रस तो अलग है न, ऐसा कहते हैं। निजरस से वह रस अलग है। उसके रस का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा!

दधि, दुग्ध,... दूध, लो। कढेलुं दूध हो अकेला गर्म। मीठा... मीठा... मीठा लगे

मानो। वह दूध आत्मा के रस से भिन्न रस है, प्रभु! आहाहा! चैतन्य का रस तो अरूपी है और यह रस है, वह रूपी जड़ है। अरूपी इससे लेंगे। पाँचवाँ बोल। रूपी नहीं, ऐसा कहा है न? '**रुवहिँ**' पंचरूप नहीं, ऐसा कहेंगे। आहाहा! **दुग्ध, तेल,...** लो! तेल का रस ऐसा। भुजिया तले हों तेल में ठीक से और ऐसे बड़े ऊँचे चने के आटा के पोचा। खावे उसे मानो उसमें आम का रस हो। आम की फाँक। ऊँचा आम है न, वह क्या कहलाता है तुम्हारे हाफुस... हाफुस। हाफुस के आम की फाँक और वह भुजिया। अरे! बापू! वह जड़ का रस है, प्रभु! निजरस से वह विमुख रस है। आहाहा! अरे! बातें की, देखो न! वीतरागस्वभाव से शुभाशुभराग भिन्न है। और निजरस से यह रस है, वह भिन्न है। आहाहा! इस रस में रस को छोड़। रस में रस को छोड़। वहाँ तुझे रस लगा है, वह छोड़ दे। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। कहाँ गये हीराभाई? यहाँ बैठे हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! यह बात कहाँ है, भाई!

निज घर में अवलम्बन लेना, बापू! आहाहा! उसके बिना सब बातें। हो, व्यवहार हो, उससे क्या? उस व्यवहार का अवलम्बन तो पर में है, पर का है। आहाहा! यहाँ तो निज अवलम्बन लेने के लिये, निजरस से विरुद्ध **दही, दुग्ध, तेल, घी,...** घी। आहाहा! **लोन,...** नमक। और **मिश्री...** साकर। छह रस कहे। यह छह रस।

अब वह शब्द है न? '**पंचहिँ रुवहिँ**' ऐसा है न? वहाँ गच्छते। उसमें जाने से रोक, ऐसा कहते हैं। पाठ है न यह? '**सर्वैः रागैः षड्भीः रसैः पंचभिः रुपैः गच्छत्।**' (जाने से) उसे रोक। आहाहा! अन्तिम शब्द है न। पाठ की गाथा। '**जंतु**' '**छहिँ रसहिँ पंचहिँ रुवहिँ जंतु**' पाठ है न, देखो न! आहाहा! अर्थ में '**गच्छत्**' पाठ में वहाँ '**जंतु**' है। संस्कृत में '**गच्छत्**' है। और उसका अर्थ संस्कृत में ही लिया है। मूल पाठ के शब्द नहीं लिये। संस्कृत की छाया है न, वे शब्द लिये हैं अन्दर। देखो, है न अन्दर? '**गच्छत् चित्तं**' **चलायमान चित्त को...** आहाहा! उसमें जाते हुए चित्त को रोक। आहाहा! समझ में आया?

अब रूप की बात करते हैं। अरूपी ऐसा शुद्धात्मद्रव्य। भगवान तो अरूपी है। आहाहा! जिसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है नहीं। ऐसा जो भगवान अन्दर अरूपी चिद्घन

परमात्मा स्वयं। आहाहा! उससे भिन्न। **काले, सफेद, पीले, लाल, पाँच तरह के रूप इनमें निरन्तर चित्त जाता है,...** है न? '**गच्छत्**' कहना है न वापस? वहाँ जाता है, उसे रोक। आहाहा! **उसको रोककर आत्मदेव की आराधना कर।** आहाहा! निज के आश्रय बिना कभी तीन काल में धर्म नहीं होता। आहाहा! इसलिए परसन्मुख के झुकाव में शुभाशुभराग को, रस को, रूप को। शुभाशुभरागरहित वीतराग परमानन्दस्वरूप में निजरस से विरुद्ध ऐसे निजरस में और अरूपी भगवान शुद्धात्मा में से भिन्न, उससे यहाँ आये अरूप में। जाता अवश्य है चित्त। समझ में आया?

अनादि से अपना अरूपी निजरस और वीतराग आनन्द में से हटकर राग में जाता है, रस में लक्ष्य जाता है। लक्ष्य, हों! रस... आहाहा! और रूप में लक्ष्य जाता है। ऐसे सुन्दर रूप देखे। आहाहा! अरे! बापू! वह सुन्दर नहीं, भाई! वह श्मशान की लकड़ियाँ जैसे सुलगती हैं, वैसे सुलगेगा। यह श्मशान की लकड़ियाँ हैं यह तो। आहाहा! 'हाड जले ज्यों लकड़ी, घास जले ज्यों...' घास जले ज्यों बाल हाड जले ज्यों लकड़ी। आहाहा! लकड़ी जले, वैसे यह हड्डियाँ जलेंगी। हळ... हळ... हळ... और घास जले यह बड़ी चोटियाँ की हो और लम्बे-लम्बे (बाल)। अब तो जवान रखते हैं न अभी ग्वाले जैसे। बड़े। इतना सब जवानों को नहीं था। यह ग्वाल जैसे हो गया है सब जवानों में। बाल सब बड़े जटा जैसे।

मुमुक्षु : नयी फैशन हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : नयी फैशन हुई ग्वाल जैसी। ग्वाल रखते थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! एक बार वहाँ से लक्ष्य को छोड़। और आत्मदेव की आराधना कर, प्रभु! भगवान को प्रसन्न कर अब। तू देवी-देवला को प्रसन्न करता है न? नैवेद्य चढ़ाकर। तीन लोक का नाथ परमात्मा तू है, प्रभु! उसकी सेवा कर, उसे प्रसन्न कर अब। ऐसी बात है। परन्तु उसका साधन? यह वापस वे लोग बात करे। कहा नहीं यह। अन्तरात्मा उपाय और परमात्मा उसका फल। अन्तरात्मा साधन, अन्तरात्मा ज्ञायक दृष्टि का साधन, वह साधन है। भाई ने अर्थ किये हैं नीचे। अन्तर उपाय है। उसमें नीचे अर्थ किया है। नहीं न यहाँ। पुस्तक में नीचे अर्थ किया है।

अन्तर उपाय वह परमात्मा... अन्तर उपाय अर्थात् अन्तरात्मा का साधन है, ऐसा डाला है नीचे नोट में। सवेरे सज्झाय की न, उसमें। समझ में आया? ऐसा का ऐसा वाँच जाना, ऐसा नहीं। उसमें उसका भाव क्या है, यह ध्यान में रखकर सज्झाय करने का हेतु है। आहाहा! जिससे आचार्यों के अभिप्राय लक्ष्य में आवे। उनका अभिप्राय क्या है? अन्तरात्मा का उपाय करके और परमात्मा की... ऐसा पाठ आया था। उपाय अर्थात् साधन। यह शुद्धचैतन्यघन श्रद्धा, ज्ञान करना, वही उसका साधन है। मोक्ष का साधन वह है। व्यवहार साधन, वह तो साधन का उपचार करके निश्चय साधन के साथ सहचर देखकर और उस निमित्त से वह ज्ञात होता है, ऐसी प्रतीति जानकर उसे व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! यह १७२ (गाथा) हुई।

गाथा - १७३

अथ येन स्वरुपेण चिन्त्यते परमात्मा तेनैव परिणमतीति निश्चनोति–

२९६) जेण सरुविं झाइयइ अप्पा एहु अणंतु।
तेण सरुविं परिणवइ जह फलिहउ–मणि मंतु।।१७३।।

येन स्वरुपेण ध्यायते आत्मा एषः अनन्तः।
तेन स्वरुपेण परिणमति यथा स्फटिकमणिः मन्त्रः।।१७३।।

जेण इत्यादि। तेम सरुविं परिणवइ तेन स्वरुपेण परिणमति। कोडसौ कर्ता। अप्पा आत्मा एहु एष प्रत्यक्षीभूतः। पुनरपि किंविशिष्टः। अणंतु वीतरागानाकुलत्वलक्षणानन्त–सुखाघनन्तशक्तिपरिणतत्वादनन्तः। तेन केन। जेण सरुविं झाइयइ येन शुभाशुभशुद्धोपयोगरुपेण ध्यायते चिन्त्यते। दृष्टान्तमाह। जह फलिहउ–मणि मंतु यथा स्फटिकमणिः जपापुष्पाघुपाधि–परिणतः गारुडादिमन्त्रो वेति। अत्र विशेषव्याख्यानं तु–''येन येन स्वरुपेण युज्यते यन्त्रवाहकः। तेन तन्मयतां याति विश्वरुपो मणिर्यथा।।'' इति श्लोकार्थकथितदृष्टान्तेन ध्यात्व्यः। इदमत्र तात्पर्यम्। अयमात्मा येन येन स्वरुपेण चिन्त्यते तेन तेन परिणमतीति ज्ञात्वा शुद्धात्मपद–प्राप्त्यर्थिभिः समस्तरागादिविकल्पसमूहं त्यक्त्वा शुद्धरुपेणैव ध्यातव्य इति।।१७३।।

आगे आत्मा को जिसरुप से ध्यावो, उसी रुप परिणमता है, जैसे स्फटिकमणि के नीचे जैसा डंक दिया जाये, वैसा ही रंग भासता है, ऐसा कहते हैं–

जिस स्वरूप ध्याया जाता है यह शाश्वत आत्मा प्रत्यक्ष।
उसी रूप में परिणमता है स्फटिक मणि अरु मन्त्र समान।।१७३।।

अन्वयार्थः– [एषः] यह प्रत्यक्षरुप [अनंतः] अविनाशी [आत्मा] आत्मा [येन स्वरुपेण] जिस स्वरुप से [ध्यायते] ध्याया जाता है, [तेन स्वरुपेण] उसी स्वरुप [परिणमति] परिणमता है, [यथा स्फटिकमणिः मंत्रः] जैसे स्फटीकमणि और गारुड़ी आदि मंत्र है।

भावार्थः– यह आत्मा शुभ, अशुभ, शुद्ध इन तीन उपयोगरुप परिणमता है। जो अशुभोपयोग का ध्यान करे, तो पापरुप परिणवे, शुभोपयोग का ध्यान करे, तो पुण्यरुप परिणवे, और जो शुद्धोपयोग को ध्यावे, तो परमशुद्धरुप परिणमन करता है। जैसे स्फटिकमणि के नीचे जैसा डंक लगाओ, अर्थात् श्याम, हरा, पीला, लाल में से

जैसा लगाओ, उसी रुप स्फटिकमणि परिणमता है, हरे डंक से हरा और लाल से लाल भासता है। उसी तरह जीवद्रव्य जिस उपयोगरुप परिणमता है, उसी रुप भासता है। और गारुड़ी आदि मंत्रों में से गारुडी मंत्र गरुड़रुप भासता है, जिससे कि सर्प डर जाता है। ऐसा ही कथन अन्य ग्रंथों में भी कहा है, कि जिस जिस रुप से आत्मा परिणमता है, उस उस रुप से आत्मा तन्मयी हो जाता है, जैसे स्फटिकमणि उज्जवल है, उसके निचे जैसा डंक लगाओ, वैसा ही भासता है। ऐसा जानकर आत्मा का स्वरुप जानना चाहिये। जो शुद्धात्मपद की प्राप्ति के चाहनेवाले हैं, उनको यही योग्य है, कि समस्त रागादिक विकल्पों के समूह को छोड़कर आत्मा के शुद्ध रुप को ध्यावें और विकारों पर दृष्टि न रक्खें।।१७३।।

गाथा-१७३ पर प्रवचन

१७३। **आगे आत्मा को जिसरूप से ध्यावो,...** आत्मा का जिस प्रकार से ध्यान करो, उस प्रकार से तुम्हें दिखाई देगा। राग का ध्यान करो तो रागी दिखेगा, द्वेष का ध्यान करो तो द्वेषी दिखेगा, विषय का ध्यान करो तो विषयवाला दिखाई देगा और आत्मा का ध्यान करो तो आत्मा दिखाई देगा। शुभ का ध्यान करो तो शुभ दिखाई देगा, अशुभ का करो तो अशुभ और शुद्ध का करो तो शुद्ध दिखाई देगा। स्फटिक का दृष्टान्त देंगे। आहाहा! १७३ है न?

२९६) जेण सरुविं झाइयइ अप्पा एहु अणंतु।
तेण सरुविं परिणवइ जह फलिहउ-मणि मंतु।।१७३।।

जैसे स्फटिकमणि के नीचे जैसा डंक दिया जाये,... हरा, पीला फोड़ा नहीं? **वैसा ही रंग भासता है,...** आहाहा! **यह प्रत्यक्षरूप,...** भगवान आत्मा, देखा! भाषा है न? '**एषः**' अर्थात् **प्रत्यक्षरूप, अविनाशी आत्मा...** आहाहा! प्रत्यक्ष भगवान है, कहते हैं। आहाहा! सत् है न? सत् का पूर्ण अस्तित्व है न? अस्ति महाप्रभु का अस्तित्व है। आहाहा! ऐसा प्रत्यक्ष भगवान आत्मा। अविनाशी आत्मा। वह तो त्रिकाली आत्मा है। आहाहा! अनन्त का अर्थ यह किया अविनाशी। उसमें अनन्त का अर्थ किया ज्ञानादि गुण।

जिस स्वरूप से ध्याया जाता है,... आहाहा! **उसी स्वरूप परिणमता है,...** आहाहा! यह लोगों में एक प्रश्न उठा था, भाई! श्रावक होता है न! श्रावक की जो परिणति है, वह जब मुनि होता है, तब वह परिणति उसमें मिल जाती है। जवाब दिया है कि ऐसा है नहीं। परिणति है, वह परिणति में मिलती है, ऐसा नहीं। परिणति का नाश हो जाता है। शुद्ध परिणति अल्प जो है, वह पूर्ण में मिल जाती है, ऐसा नहीं। है तो व्यय होती है। द्रव्य में मिल जाती है। परिणति पर्याय में मिलती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। समझ में आया?

ऐसा कहना है कि शुद्ध परिणति है, उसका व्यय होता है, पश्चात् शुद्ध परिणति। ऐसा नहीं। वह शुद्ध परिणति होती है, श्रावक का विकल्प आदि, वह सब अन्दर मिलती है परिणति निर्मल में। सातवें गुणस्थान में। कितनों का मत है न केवलज्ञान चार ज्ञान है अन्दर। मति-श्रुतज्ञान गये कहाँ, ऐसा? श्वेताम्बर में ऐसा आता है। चार ज्ञान तो पर्याय अन्दर में गयी है। और उत्पाद तब हुआ है केवलज्ञान का। आहाहा! समझ में आया?

मूल तत्त्व जो यह क्या है? उत्पाद-व्यय-ध्रुव की मर्यादा में ही पूरा तत्त्व है। उसे पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। विकार करे तो भी अपनी मर्यादा में रहकर निमित्त के लक्ष्य से और धर्म करे तो स्व के लक्ष्य से अपनी मर्यादा में रहकर, राग की मर्यादा छोड़कर। आहाहा! समझ में आया? वस्तु की स्थिति ऐसी है।

उसी स्वरूप परिणमता है, जैसे स्फटिकमणि और गारुड़ी आदि मन्त्र है। देखो! इसका विशेष भावार्थ में कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, फाल्गुन शुक्ल २, रविवार
दिनांक- २०-०२-१९७७, गाथा - १७३ से १७५, प्रवचन-२२२

(गाथा १७३ का) **भावार्थः—यह आत्मा शुभ, अशुभ, शुद्ध इन तीन उपयोगरूप परिणमता है।** स्वयं ही भगवान आत्मा शुभ, अशुभ और शुद्धरूप तीन प्रकार से परिणमता है। कर्म के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : ....कारण से इसमें लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें है ७४ में। परिणमता है, ऐसा कहा न। शुभरूप से, उत्पादरूप से परिणमता है, वह उसका अपना परिणामी है। उत्पादरूप से परिणमता है, उत्पादरूप से परिणमता है, वह अपना उत्पाद है। और दूसरे के कारण से उत्पाद है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त के कथन करने को। व्यवहार का उपचार है। मात्र अपने से होता है। यह तो प्रमाण का ज्ञान कराने के लिये दो से होता है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु प्रमाणज्ञान में निश्चय का ज्ञान तो उसकी दृष्टि में पहले होना चाहिए। फिर उसे प्रमाण में दूसरे व्यवहार की अपेक्षा से ज्ञान मिलाया जाता है। क्या कहा यह? समझ में आया?

निश्चय से तो स्वरूप से परिणमन अपना है। ऐसा जो निश्चय से निर्णय किया हो, उसे तो निमित्त का ज्ञान कराने को व्यवहार को मिलाकर प्रमाण का ज्ञान कर। इसलिए दो से होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बातें, इसलिए विवाद हो लोगों को साधारण बावत में। उत्पाद स्वतन्त्र है, उसका उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। वह उत्पाद तो उसका अपना भले शुद्धरूप से उत्पन्न होओ, अशुभरूप से उत्पन्न होओ या शुभरूप से उत्पन्न होओ। आहाहा! ये लोग शुभयोग की व्याख्या ऐसी करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम जो शुद्ध हैं, उनके साथ अशुद्ध है, वह शुभ दोनों होकर शुभ... इसलिए शुभयोग में निर्जरा भी है और राग बाकी का बन्ध है। ऐसा (वे) कहते हैं। खानिया चर्चा में आया है। आहाहा! ऐसा नहीं है।

वैसे तो क्षयोपशमभाव है, ज्ञान का क्षयोपशमभाव, उसमें जितना उघाड़ है, वह तो अपनी स्वतन्त्र पर्याय में है और उसमें जितना बाकी उदय है, वह उदय कहीं शुभ नहीं। क्षयोपशम, समकितमोहनीय का उदय। उसे मिश्र कहा जाता है परन्तु वह कहीं शुभ नहीं। वह तो अन्दर केवलीगम्य ऐसा विकल्प का भाव है। समकितमोहनीय का। बहुत सूक्ष्म बातें! और स्व का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन हुआ है, वह ज्ञान, वह तो क्षयोपशम है। और उस क्षयोपशम में क्षायिक नहीं, इसलिए जरा उदय है, परन्तु वह उदय कहीं शुभ नहीं कि दो को मिश्र शुद्ध का अंश और शुभ का अंश करके शुभयोग कहना, वह वस्तु वहाँ नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : इस विवाद का अन्त कब आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्त यह स्वयं (समझण) करे तो अन्त आवे। आहाहा! स्वतन्त्र जितना अपना आश्रय करे, उतना उसे मुक्ति का उपाय हो और उस काल में भी जितना पराश्रय करे... यह गाथा आयेगी समयसार में। कर्ता-कर्म। अध्यवसाय। आहाहा! इतना उसे स्वतन्त्र सिद्ध करना चाहिए पहले कि जो आत्मा है, वह उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। तो उसमें जितने अनन्त गुण हैं, उनका उस-उस समय में उत्पाद स्वयं के कारण से होता है। यदि उत्पाद पर के कारण से हो तो उत्पाद बिना की वस्तु हो जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों के कारण से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही कारण से है। दूसरा कारण तो उसका ज्ञान कराने को प्रमाण में मिलाया है। परन्तु प्रमाण में पहले यह निश्चय करे, फिर निमित्त और पर्याय के व्यवहार को मिलावे तो यथार्थ ज्ञान कहलाये। आहाहा! ऐसी बातें! बनिया का निवृत्ति नहीं मिलती।

मुमुक्षु : हम तो यहाँ इतने अधिक निवृत्त होकर यहाँ आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अब आये हैं न। अभी तक तो थोथा किये पूरी जिन्दगी। धन्धा और व्यापार आदि। भगवानजीभाई! दुनिया का रास्ता ही अनादि का... आहाहा! स्वयं क्या है और कैसे पराधीन है? यह कहेंगे वहाँ ७४ में। यह अर्थ टीकाकार ने नहीं

किया। टीका में लिखा है। टीका में है, देखो ७४। संस्कृत की तीसरी लाईन। '**व्यवहारनये-नादिकर्मबन्धनविशेषेण स्वकीयबुद्धिदोषेण जात उत्पन्नः**' अपनी बुद्धि के दोष के कारण से शुभ-अशुभभाव करता है। आहाहा! कर्म तो उसे निमित्तरूप से है, इसलिए उसे समझाते हैं।

अरे प्रभु! तू निर्दोष है। तेरा स्वभाव उस निर्दोष को प्रगट करता नहीं। सदोष को प्रगट करता है और उसे यहाँ पराधीन कहा जाता है। यह शब्द है। है, देखो! है? '**जात उत्पन्नः कथंभूतो जातः जाप्यः पराधीनः जामइं**' पर का जाप करता है यह। जाप शब्द पड़ा है न उसमें? १७४ में। पाठ में है न! आहाहा! '**विसेसें जायउ जप्पा**' आहाहा! यह जाप अपने को भूलकर पर का जाप करता है, वह स्वयं जाप अपना करता है और पर का करता है, वह स्वयं अपने से करता है। आहाहा! कहो, चेतनजी! यह तुम्हारे सब श्वेताम्बर में तो सब यह है। कर्म से होता है, कर्म से होता है, कर्म से होता है, जेठाभाई के साथ यह सब चर्चा चली। रामविजय के साथ। ५० प्रश्न निकाले थे। यह क्या है, देखो! अपने में से निकले तो अपने बदलना नहीं। श्वेताम्बर। आये हैं या नहीं? आये हैं। यहाँ हैं न बीच में परिचय में थे। उन्हें प्रश्न उठे ५०। किये, जवाब दिया किसी ने, परन्तु बिना ठिकाने का। तो रामविजय के साथ चर्चा करो अब। रामविजय कहे, देखो! पहली बात यह कि, कर्म से विकार होता है, यह तुम्हें स्वीकार है? बाद में चर्चा। कहो, व्यवहार सिद्धान्त देखो न, अरेरे!

यहाँ कहते हैं कि वह स्वयं से... है? कल प्रश्न हुआ था कि भाई स्फटिकमणि में तो लाल, गुलाबी हो तो लाल दिखाई दे। इसी प्रकार जीव में कर्म हो तो विकार दिखाई दे। ऐसा क्यों नहीं मानना? प्रश्न तो किसी का... उसमें ऐसा है कि स्फटिकरत्न में अपनी पर्याय की योग्यता है। वह लाल फूल है, इसलिए लाल हुआ है अन्दर, ऐसा नहीं है। देखो, लाल और उससे होता है। इसके नीचे रखो लाल फूल। इसमें लाल झाँईं नहीं पड़ेगी। इसकी योग्यता ही नहीं है। आहाहा! यह बात तो बहुत वर्ष से की है। इसलिए शास्त्र में यह शरण है—योग्यता एव शरणं। वह अपनी विकार होने की योग्यता है। आहाहा! कर्म के कारण बिल्कुल वह किंचित् एक प्रतिशत भी नहीं। आहाहा! ऐसा धर्म! वे लोग ऐसा मानते हैं। कर्म के कारण विकार होता है।

ऐसा कि योग्यता बहुत प्रकार की है, परन्तु जैसा निमित्त आवे, उसके आधीन होकर। आधीन होना ही पड़े इसे। निमित्त के आधीन होना ही पड़े। कर्म का निमित्त ऐसा है। यहाँ कहते हैं अपनी पर्याय का स्वकाल जो शुभ का, शुद्ध का और शुद्ध का, अशुभ का या शुद्ध का... वह स्वयं से स्वतन्त्र होता है। और उसे कर्ता कहते हैं, स्वतन्त्ररूप से करे वह कर्ता। पर की अपेक्षा रखे तो स्वतन्त्र कर्ता कहने में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो। **जो अशुभउपयोग का ध्यान करे,...** जो स्वयं अशुभ का ध्यान अर्थात् उसमें एकाग्र हो तो अशुभरूप से परिणमे। ध्यान करे, ऐसा कहा है न? **जो पापरूप परिणमे, शुभोपयोग का ध्यान करे, तो पुण्यरूप परिणमे,...** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभरूप स्वयं परिणमे, उसमें एकाग्र हो। **और जो शुद्धोपयोग को ध्यावे,...** है? ध्याता है न! शुद्धोपयोग। दया, दान, व्रत के परिणाम, वह शुभोपयोग; हिंसा, झूठ, चोरी, विषय वासना के परिणाम अशुभोपयोग; दोनों को छोड़कर शुद्धोपयोगरूप परिणमे, ध्यावे तो शुद्धोपयोग हो।

शुभ-अशुभ में जैसे कर्म का निमित्त नहीं अस्तिरूप से, उसके कारण उसमें शुद्ध में कर्म के अभाव का भी अस्तित्वपने का नकार है। हो अभाव, परन्तु उसके कारण शुद्धोपयोग से परिणमता है, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शनरूप से जीव हो, वह भी पर्याय में स्वतन्त्र कर्ता होकर होता है। उसे दर्शनमोह का अभाव हो तो यहाँ शुद्धरूप से परिणमे, ऐसी स्थिति नहीं है। आहाहा! ऐसा वस्तु का सूक्ष्म तत्त्व। इसीलिए तो कहा प्रवचनसार में। ज्ञेय अधिकार। प्रवचनसार का दूसरा अधिकार है, वह ज्ञेय अधिकार है। पहला अधिकार ज्ञान अधिकार और दूसरा ज्ञेय अधिकार। तो ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ ने जो देखा और दिव्यध्वनि में आया, वह हम प्रवचनसार में कहते हैं। दिव्यध्वनि अर्थात् प्र-वचन, उसका सार कहते हैं। ज्ञेय का ऐसा स्वभाव है। कोई भी जड़ हो या चैतन्य हो। उस ज्ञेय का ऐसा स्वभाव है। जिस क्षण में जिस जन्मक्षण में उत्पन्न होने की पर्याय, वह क्षण। वह ज्ञेय का स्वभाव है। आहाहा! विकाररूप से होओ, शुभरूप से होओ या अशुभरूप से होओ, वह उसका अपना ज्ञेय का पर्याय का स्वतः स्वभाव है। यह जैन में इतना... कर्म के कारण होता है।

मुमुक्षु : कर्म की बात ही जैन में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म, वह तो जड़ है। वह तो निमित्त है, ऐसा बतलाया है। वस्तु है दूसरी, इतना। कर्म से, आता है न 'कर्म से राजा कर्म से रंक...' सम्प्रदाय में बोले, यह पहली स्तुति बोले दस मिनिट। उसमें यह आता है पहली स्तुति में और सुननेवाले हों यह सब इस प्रकार के। जय नारायण कहे, उन्हें कहाँ निर्णय करने का ठिकाना है।

मुमुक्षु : गुरु में तो विश्वास होता ही है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उन्होंने किस प्रकार से कहा, इसका निर्णय अपने भाव से तो कुछ करना पड़े या नहीं? ऐसा कि 'कर्म से राजा, कर्म से रंक, कर्म ने डाला आड़ा अंक।'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अलग बात है। यह तो कर्म के कारण निमित्तरूप से आता है, वह भी घातिकर्म के उदय से उसे घात करता है राग में। ऐसा नहीं उसमें। समझ में आया? आहाहा! ऐसी वस्तु और पदार्थ की मर्यादा है। वस्तु की जो पद्धति, उसकी मर्यादा की भूमिका में वर्तती है। उस प्रकार से न जाने और अमर्यादित बात जाने, वह कहीं सत् कहलाये? आहाहा! वस्तु अपनी मर्यादा में विकाररूप से परिणमती है, वह उसकी मर्यादा है। उस मर्यादा को उल्लंघकर कर्म के कारण परिणमती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! उसका निर्णय करने का समय कहाँ है? जिसे आत्मा का कुछ यह चौरासी के अवतार में वह दुःखी,... दुःखी... दुःखी, बहुत काल तो दुःखी है। असाता के उदय में। किसी काल में साता का उदय थोड़ा हो तो बाहर की कल्पना के सुख का कारण दिखाई दे। कल्पना के सुख का। वास्तविक सुख तो है ही कहाँ उसे? आहाहा! बड़ा राग नरक और निगोद। आहाहा! दुःख, असाता के दुःख के वेदन में है। आहाहा! समझ में आया? बहुत काल तो इसने कष्ट में बिताया है। थोड़ा काल मनुष्यपने का मिले, उसमें कुछ पुण्य का उदय दिखाई दे, इसलिए ऐसा माने कि हम सुखी हैं।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा शुभरूप परिणमो या अशुभरूप परिणमो, वह अपने परिणाम की स्वतन्त्रता से उसके शुभभाव होते हैं।

मुमुक्षु : दूसरा खराब शब्द कहे या अपमान करे, इसलिए नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। यह तो कर्म जहाँ नहीं निमित्त, फिर नोकर्म की बात तो क्या करना? समझ में आया? जहाँ विकार और निमित्त का सम्बन्ध है, उससे नहीं तब तो नोकर्म तो दूर रहे। उसने गाली दी, इसलिए मेरा अपमान हुआ और मुझे क्रोध हुआ, बिल्कुल झूठी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर किसी का अपमान करे, उसमें कोई दिक्कत नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे कौन? वह तो दूसरा करे, करे करना हो तो उस काल में वह भाषा। निन्दा की भाषा वह हो तो आया नहीं ३८२ में निन्दा, प्रशंसा, वह तो उसका भाषा का परिणमन है। उसमें तुझे कहाँ तेरी निन्दा की उसने? आहाहा! सर्वविशुद्ध (अधिकार समयसार) में है। निन्दा, प्रशंसा, वह तो भाषा की पर्याय जड़ की है। वह तो करनेवाला भी कहाँ कर सकता है? आहाहा! उसके भाव में वह भले पाप हो, परन्तु वह भाषा कर सकता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाई! यह तो प्रभु का मार्ग ऐसा है। निमित्त सम्बन्ध से होता है, निमित्त सम्बन्ध से होता है, इसका अर्थ? स्वयं से होता है, तब निमित्त था, इसलिए निमित्त से उत्पन्न होता है, ऐसा कहने में आता है। वास्तविक तो स्वयं से हुआ है।

देखो न, दृष्टान्त देते हैं। **पुण्यरूप परिणमे, और जो शुद्धोपयोग को ध्यावे, तो परमशुद्धरूप परिणमन करता है।** आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु, उसका जो ध्यान करे तो उसे शुद्धरूप परिणमन होता है। पर के लक्ष्य में जाये तो उसे शुभ-अशुभभाव होते हैं। आहाहा! समझ में आया? **जैसे स्फटिकमणि के नीचे जैसा डंक लगाओ, अर्थात् श्याम, हरा, पीला, लाल में से...** है न? काला, नीला, पीला, **लाल में से जैसा लगाओ, उसी रूप स्फटिकमणि परिणमता है, हरे डंक से हरा और लाल से लाल भासता है।** उसमें ऐसा कहा, देखो फिर वह... लाभ होता है।

मुमुक्षु : निमित्त जैसा आवे वैसा परिणमे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात नहीं। यह तो दृष्टान्त ऐसा देते हैं कि वह निमित्त है परन्तु परिणमता है स्वयं से। लालरूप से परिणमन स्वयं से परिणमता है। स्फटिक।

लकड़ी क्यों नहीं परिणमती ? लाल छिलका रखे तो ? उसकी अपनी पर्याय की योग्यता नहीं है, अपनी योग्यता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह समयसार में आता है न, स्फटिकमणि परद्रव्य के कारण, वैसे आत्मा परद्रव्य के कारण राग करता है। किस अपेक्षा से बात है ? परद्रव्य के लक्ष्य से करता है, परद्रव्य से करता है, ऐसा नहीं। आहाहा! बहुत बात! एक तत्त्व की बात में। अब आस्रव तत्त्व या पुण्य-पाप तत्त्व क्यों उत्पन्न होते हैं ? उसमें कर्म के कारण होते हैं, तो वह तत्त्व तो स्वयंसिद्ध तो रहा नहीं। अजीवतत्त्व के कारण इसमें हुआ, तो अजीवतत्त्व और ये दोनों तत्त्व एक हो गये। समझ में आया ? परन्तु यह किसे पड़ी है ? जाऊँगा कहाँ ? यह भव मीठा, पर भव (किसने) देखा, जाओ। गोलण गाडा भरे (कुछ अता-पता नहीं)। .... दिखता है ठीक है, ऐसा। मीठा धूल में भी नहीं मीठा, परन्तु मानता है न! आहाहा!

दिल्ली में है न, बड़े-बड़े लोगों के पास स्वर्ण के वे होते हैं बैठने की कुर्सियाँ। सोने की। गये थे न एक बार। बड़े लोग होते हैं न! जॉर्ज एडवर्ड या ऐसे बड़े हों। एक हमारे साथ भाई थे। ....भाई के दामाद जयन्तीभाई। जयन्तीभाई वहाँ थे। अन्दर सब बताया। जेलखाना लगे यहाँ तो। आहाहा! पूरा अन्दर ... था। सोना का। ... ठीक लगे दुनिया को। आहाहा! अरे! उसमें कषाय से जल जाता है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **स्फटिकमणि के नीचे जैसा डंक लगाओ, उसी रूप स्फटिकमणि परिणमता है,...** परन्तु इसका अर्थ इतना नहीं कि स्फटिकमणि लाल के कारण से परिणमती है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! जिस प्रकार से वस्तु की स्थिति है, उसे उस प्रकार से सत्य न समझे। वह दुःख से कब छूटे ? आहाहा! वह दृष्टान्त एक जगह दिया है न! कोई अग्नि प्रविष्ट होती हो मुख में। ज्वाला। कोई नकार करे तो उसके साथ लड़े। उसी प्रकार पुण्य के कारण कषाय की अग्नि अन्दर खड़ी होती है। पुण्य के साधन का निषेध करे तो उसके साथ लड़े। आता है। अग्नि की ज्वाला हो न ऐसे। अग्नि को कोई रोके ? परन्तु यह अग्नि सुलगती है वहाँ, सुन न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सदा की ही अग्नि है। पुण्य और पाप के फल जो सामने देखकर प्रसन्न होता है, वह अग्नि का लावा पड़ा है अन्दर। उसे कोई पुण्य के साधन का अभाव करे, उसके साथ लड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : वेदन है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन, कषाय का वेदन, बापू! भगवान तो शान्तरस, अकषायरस तत्त्व है। शान्त... शान्त... शान्त। अविकारी अकषायस्वरूप प्रभु विराजता है। आहाहा! उसकी पेढी तो शान्तरस की है। उस पेढी को छोड़कर, सवेरे आया नहीं था एक पुद्गलों का? अनेक प्रकार के पुद्गलों को मेरा मानकर छोड़ते हैं। मिथ्यात्व से बन्ध, मिथ्यात्व से महाकषाय है। आहाहा! पुद्गल के अनेक प्रकार के ठाठबाट बाहर देखकर उसे आश्चर्य और विस्मयता लगती है। आहाहा! मेरा पुण्य बहुत पड़ा है। पानी माँगे वहाँ ऐसे मौसम्बी दे। रोटी माँगे वहाँ मैसूर दे। वस्त्र ओढ़ने का साधारण माँगे तो मखमल दे। आहाहा! और वह कोई... परन्तु होली कषाय है, उसके सामने देखता नहीं। कषाय अग्नि... तुझे खबर नहीं। और वह कषाय अग्नि, तूने उत्पन्न की है। वह बाहर की चीज़ के कारण से नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! और फल भी जिसका अपूर्व फल है। आहाहा! उसे जैसा है, वैसा बराबर जानकर सत्य की शरण में जाना पड़ेगा, भाई! वहाँ प्रभु सत्य विराजता है। आहाहा!

यहाँ तो इष्ट शब्द था न। .... इष्ट है, ऐसा मैं जरा बोला था। इष्ट अर्थात् प्रत्यक्षपना न! ७४ में आयेगा। **'एषः आत्मानं'** इसमें है। आहाहा! **उसीरूप भासता है।** आहाहा! दृष्टान्त दिया है। **और गारुड़ी आदि मन्त्रों में से गारुड़ी मन्त्र गरुडरूप भासता है,...** गारुडीरूप मन्त्र गरुडरूप भासता है। **जिससे कि सर्प डर जाता है।** आहाहा! ऐसे सर्प लगता है ऐसे। ऐसा मान्त्र होता है न सर्प को गारुड मन्त्र से डर जाता है। गारुड। जीवता गरुड हो उसे मार डालता है। ... हो उसे। सर्प चाहे जैसा फूंफकार मारता हो, परन्तु गरुड़ देखे... आहाहा! ऐसे गरुडी मन्त्र ऐसा होता है कि उसे देखकर सर्प डर जाता है। आहाहा!

गारुडी आदि मन्त्रों में से गारुडी मन्त्र गरुडरूप भासता है,... ...गरुडरूप

भासता है। **जिससे कि सर्प डर जाता है। ऐसा ही कथन अन्य ग्रन्थों में भी कहा है। कि जिस जिस रूप से आत्मा परिणमता है,...** आहाहा! **उस-उस रूप से आत्मा तन्मयी हो जाता है,...** यह तो उसमें आया न, प्रवचनसार में नहीं आया? शुभाशुभ परिणमता है। प्रवचनसार में ९वीं गाथा। शुभ से परिणमता शुभ, अशुभ से परिणमता अशुभ। आहाहा! यह ज्ञेय का स्वरूप ही उसका है। अरे! परन्तु इसे समय कहाँ? आहाहा! ऐसे बाल इतने बड़े लम्बे हों, उन्हें ऐसे तेल-बेल चोपड़ना हो तो बाल को एक-एक पृथक् करके मानो तेल चोपड़े तेल। महिलाओं को बड़े बाल होते हैं।

मुमुक्षु : महिलायें चोपड़ती हैं और भाई भी चोपड़ते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई अब तो सब स्त्रियों जैसे बाल रखते हैं इतने-इतने बड़े। यहाँ तक। परन्तु वह बाल-बाल न कर सके, ऐसे होते हैं कि बाल-बाल में मोती पिरोवे। व्यक्ति फुरसत में हो न राजा और रानियाँ सब। वे बाल-बाल पृथक् करके और उनमें बारीक ऊँचे मोती हों, वे डाले। होली सुलगती है, कहते हैं। मैं कैसा रूपवान लगता हूँ। यह तुम्हारे बाल-बाल पर मोती नहीं बड़े सोने के रखते। आये हैं। आहाहा! मुर्दे का शृंगार करते हैं। वापस प्रसन्नता मानते हैं। उस प्रसन्नतारूप से परिणमना— अशुभरूप से, वह स्वयं से होता है। यह गहने हैं और उनके कारण से है नहीं। आहाहा!

जैसे स्फटिकमणि उज्ज्वल है, उसके नीचे जैसा डंक लगाओ, वैसा ही भासता है। ऐसा जानकर आत्मा का स्वरूप जानना चाहिए। आहाहा! ऐसा जानकर भगवान आत्मा अन्दर कौन है? चैतन्यमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, शान्तरस का सागर, वीतरागी शक्तियों का संग्रहालय, आहाहा! जिसकी नजर में निधान वीतरागस्वरूप आवे, उसने आत्मा को जाना कहलाये। आहाहा!

जिसकी पर्याय में ज्ञान की दशा में परवस्तु ऐसे प्रत्यक्ष दिखती है। यह है... यह है... यह है। वह तो परसन्मुख के झुकाववाला ज्ञान तो दुःखरूप है। वह ज्ञान परसन्मुख झुक सकता है और कर सकता है, वह ज्ञान स्वसन्मुख झुककर अपने आनन्द का वेदन क्यों नहीं करे? आहाहा! ऐसा तो पराधीन पर के वश होता है और तब यह पर ज्ञात

होता है। यह तो स्वाधीन वस्तु है न, प्रभु! कहते हैं न। आहाहा! भाई! तुझे यह बात बैठती नहीं, परन्तु वस्तु स्वाधीन है। विकार... विकार करने में स्वाधीन है तो उपयोग करने में स्वाधीन है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! विश्वास... विश्वास कहाँ से लाना? विश्वास से जहाज चलते हैं, ऐसा कहते हैं न लोग? इसी प्रकार भगवान पूर्णानन्द प्रभु... यह कहा न देखो!

ऐसा जानकर आत्मा का स्वरूप जानना चाहिए। सब-सब जानना छोड़कर इसे (आत्मा) जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा वस्तु है, परमात्मस्वरूप विराजता है। उसे जानना चाहिए। आहाहा! ऐसा लगे कि यह मेरा आत्मा, आत्मा है, बापू! तू वह कौन है, भाई! तेरी पर्याय की अनन्त आनन्द की दशा जहाँ वाणी द्वारा हो नहीं सकती। आहाहा! ऐसी तेरी चीज़ है। ऐसी अनन्त निर्मलपर्याय का पिण्ड है। भाई! तेरा तत्त्व है, उतना तुझे मानना पड़ेगा न! आहाहा! राग उसका तत्त्व है? एक समय की प्रगट पर्याय उतना वह तत्त्व है? आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म, भाई! यह बाहरवालों को बाहर में यह मुम्बई, लन्दन जाये। आहाहा! बड़े मकान, स्वयं बैठे ऐसे। वहाँ कुर्सी रखे बड़े के लिये खड़ा रहना पड़े। २५-३० मंजिल जाना हो। वहाँ रखे। कुर्सी रखते हैं न! यह मुम्बई में रखते हैं। पाँच-सात-दस मंजिल जाना हो तो वहाँ खड़े रहना, उसकी अपेक्षा कुर्सी रखे। आहाहा! उसे ऐसा मजा लगे। आहाहा! कहीं उड़कर जाता है नरक में। यह तो माने कि सुख में है। ऐसा माने। आहाहा!

भाई! तू तेरा घर छोड़कर कहाँ जाता है? यह तो ऊँचे उड़ जाये तो घर छोड़कर विकल्प में जाये। आहाहा! यह उड़ता तो है परन्तु विकल्प से उड़ता है और स्थिर हो, तब निर्विकल्प से स्थिर होता है। आहाहा! और यह तो उसका स्वस्वभाव है। स्वरूप में स्थिर होना, यह तो उसका स्वस्वभाव है। विभाव होना, वह तो कोई शक्ति और गुण का कोई स्वभाव नहीं। आहाहा! क्या कहा यह? शुभ-अशुभरूप परिणमना, वह कहीं इसका गुण, ऐसा नहीं है। पर्याय का धर्म है। पर के कारण से नहीं, परन्तु वह पर्याय का धर्म है। और शुद्धरूप से परिणमना, वह तो उसके गुण का धर्म है, शक्ति का धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्धरूप से परिणमे, वह पर्याय का धर्म?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, वह तो पर्याय है, परन्तु यह तो गुण का धर्म है अर्थात् शुद्धरूप से परिणमना, ऐसा। पर्याय का धर्म अकेला विकारीरूप से परिणमना, इतना ही पर्याय का धर्म है। शुद्धरूप से परिणमना, वह तो शक्ति है, इसलिए गुण के कारण उसका परिणमना है। और पर्याय में शुद्धपने परिणमे, वह भी अपनी शक्ति से परिणमता है। यहाँ तो सिद्ध करना है कि वस्तु का शुद्धरूप परिणमना, ऐसी शुद्धता तो भरी पड़ी है, ऐसा कहते हैं। और अशुद्धता परिणमे, वह है तो इसका स्वयं का धर्म, परन्तु वह अशुद्धता कोई धर्म और गुण नहीं पड़ा अन्दर। समझ में आया? आहाहा!

शुद्धरूप परिणमना, वह पर्याय का धर्म है, परन्तु वह तो गुण का भी धर्म है। अशुद्धरूप परिणमना, वह तो पर्याय का ही धर्म है। गुण का धर्म कोई है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। भाई! वीतरागमार्ग आत्मा का, वह चैतन्य हीरा अन्दर कौन है, बापू! उसे जानने के लिये इसे बहुत ज्ञान गूँथना पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : वस्तु का स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव है उसका। अशुद्धरूप से पर्याय का धर्म परिणम गया। गुण का धर्म नहीं। फिर पर्याय का धर्म है, वह अलग वस्तु हुई। तो गुण में है, वह पर्याय का धर्म बाहर आया। पर्यायरूप से शुद्धरूप से आया, वह उसका धर्म बाहर आया। और कोई अशुद्धरूप से परिणमनेवाला कोई गुण है और अशुद्धरूप से परिणमे पर्याय का इतना धर्म ऐसा है। आहाहा! गजब बातें, बापू! ऐसा अब समझे नहीं। सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये, हो गया धर्म। धूल भी नहीं धर्म। सुन न! बापू! तुझे प्रभु! यह देखो, यह कहा न?

जानकर आत्मा का स्वरूप जानना। यह सब ऐसा जानकर शुभरूप परिणमे स्वयं अशुभरूप परिणमे, ऐसा करके उसे बतलाया, आत्मा का स्वरूप जानना चाहिए। आहाहा! **जो शुद्धात्मपद की प्राप्ति के चाहनेवाले हैं, उनको यही योग्य है,...** आहाहा! जिसे भगवान की—आत्मा की प्राप्ति करने की चाहना है, उसे तो आनन्द का भगवान है, उसे जानना चाहिए। आहाहा! रूखा लगे रूखा। धमाल... धमाल हो लो सर्वत्र। २५-२५ हाथी, ३०-४०-५० घोड़ा। लड़के ऊपर बैठे हों। ऐसे चले। जयपुर में नहीं, २५

हाथी। २१ नहीं? २१ हाथी शोभायात्रा में। एक बार १८ और एक बार २१, दो बार। उस समय चालीस हजार लोग। वह मानो कि आहाहा! भारी धर्म हुआ। वह तो एक शुभभाव है। आहाहा! अपने आश्रय बिना धर्म कहाँ से होगा? भले लाखों-करोड़ों रुपये खर्च किये हों उसमें।

आत्मा का स्वरूप जानना चाहिए। जो शुद्धात्मपद की प्राप्ति के चाहनेवाले हैं, उनको यही योग्य है,... जिसे शुद्धात्मा की प्राप्ति करना है, उसके लिये यह योग्य है कि उसे आत्मा जानना है। जिसे प्राप्ति करनी ही नहीं, वह चाहे जो करे भटकता है मरकर। आहाहा! उसमें शरीर की जवानी हो, एकदम लाल शरीर हो। आँखें ऐसी, कान ऐसे, कान ऐसे। आहाहा! जंघा-जंघा ऐसे, हाथ ऐसे। उसमें आहाहा! उसके... क्या कहाँ है? सुख में है। अरे! मार डाला। वह (शरीर) तो माँस का पिण्ड है जवानी। आहाहा! यह शक्ति तो स्वयं की है। कहीं आत्मा की शक्ति नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुद्धात्मा जानना चाहिए। शरीर को जानना, ऐसा है, वैसा है, यह तो छोड़। आहाहा! **शुद्धात्मपद की प्राप्ति के चाहनेवाले हैं, उनको यही योग्य है, कि समस्त रागादिक विकल्पों के समूहों को छोड़कर...** आहाहा! समस्त विकल्पादि राग का समूह। असंख्य प्रकार के विकल्प शुभ-अशुभ को छोड़कर **आत्मा के शुद्धस्वरूप को ध्यावे...** यह **आत्मा के शुद्धस्वरूप को ध्यावे...** आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में उपयोग, उसके आत्मा का ध्यान करे। आहाहा! **और विकारों पर दृष्टि न रखें।** है न? यह तो फिर उसका अर्थ किया है। **समस्त रागादिक विकल्पों के समूहों को छोड़कर आत्मा के शुद्धस्वरूप को ध्यावे...** फिर उसमें छोड़ना अर्थात् उसके ऊपर लक्ष्य नहीं करना। आहाहा!

गाथा - १७४

अथ चतुष्पादिकां कथयति–

२९७) एहु जु अप्पा सो परमप्पा कम्म–विसेसैं जायउ जप्पा।
जामइँ जाणइ अप्पें अप्पा तामइँ सो जि देउ परमप्पा।।१७४।।

एष यः आत्मा स परमात्मा कर्मविशेषेण जातः जाप्यः।
यदा जानाति आत्मना आत्मानं तदा स एव देवः परमात्मा।।१७४।।

एहु इत्यादि। एहु जु एष यः प्रत्यक्षीभूतः अप्पा [१]स्वसंवेदनप्रत्यक्ष आत्मा। स कथंभूतः। सो परमप्पा शुद्धनिश्चयेनानन्तचतुष्टयस्वरुपः क्षुधाघष्टादशदोषरहितः स निर्दोषिपरमात्मा कम्म–विसेसें जायउ जप्पा व्यवहारनयेनादिकर्मबन्धनविशेषेण स्वकी– यबुद्धिदोषेण जात उत्पन्नः कथंभूतो जातः जाप्यः पराधीनः जामइं जाणइ यदा काले जानाति। केन कम्। अप्पें अप्पा वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानपरिणतेनात्मना निजशुद्धात्मानं तामइं तस्मिन् स्वशुद्धात्मानुभूति–काले सो जि स एवात्मा देउ निजशुद्धात्मभावनोत्थवीतरागसुखानुभवेन दीव्यति क्रीडतीति देवः परमाराध्यः किंविशिष्टो देवः। परमप्पा शुद्धनिश्चयेन मुक्तिगत–परमात्मसमानः। अयमत्र भावार्थः। यधेवंभूतः परमात्मा शक्तिरुपेण देहमध्ये नास्ति तर्हि केवलज्ञानोत्पत्तिकाले कथं व्यक्तिभविष्यतीति।।१७४।।

आगे चतुष्पद छंद में आत्मा के शुद्ध स्वरुप को कहते हैं–

यह आत्मा ही परमात्म है कर्माधीन हुआ परतन्त्र।
जब निज से निज को ही जाने जपे तभी वह हो परमात्मा।।१७४।।

अन्वयार्थः–[एष यः आत्मा] यह प्रत्यक्षीभूत स्वसंवेदनज्ञानकर प्रत्यक्ष जो आत्मा [स परमात्मा] वही शुद्धनिश्चयनयकर अनंत चतुष्टयस्वरुप क्षुधादि अठारह दोष रहित निर्दोष परमात्मा है, वह व्यवहारनयकर [कर्मविशेषेण] अनादि कर्मबंध के विशेष से [जाप्यः जातः] पराधीन हुआ दूसरे का जाप करता है; परंतु [यदा] जिस समय [आत्मना] वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानकर [आत्मानं] अपने को [जानाति] जानता है, [तदा] उस समय [स एव] यह आत्मा ही [परमात्मा] परमात्मा देव है।

१. यहाँ 'स्वसंवेदन ज्ञान प्रत्यक्ष' होना चाहिए।

भावार्थः– निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो परम आनंद उसके अनुभव में क्रीडा करने से देव कहा जाता है, यही आराधने योग्य है। जो आत्मदेव शुद्ध निश्चयनयकर भगवान् केवली के समान है। ऐसा परमात्मदेव शक्तिरुप से देह में हैं, जो देह में न होवे, तो केवलज्ञान के समय कैसे प्रगट होवे।।१७४।।

गाथा-१७४ पर प्रवचन

१७४। **चतुष्पद छंद में आत्मा के शुद्धस्वरूप को कहते हैं—** १७४।

२९७) एहु जु अप्पा सो परमप्पा कम्म–विसेसैँ जायउ जप्पा।
जामइँ जाणइ अप्पें अप्पा तामइँ सो जि देउ परमप्पा।।१७४।।

देव परमात्मा। एक व्यक्ति कहे, भगवान आत्मा। कहे अरे! अभी भगवान आत्मा होगा? यहाँ तो क्षण-क्षण में त्रिकाली परमात्मा है, बापू! पर्याय की दृष्टि छोड़ दे, त्रिकाली परमात्मा ही है। अरेरे! कैसे बैठे? आहाहा! एक गोबर का पोहटा अच्छा मिल जाये, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। पूरा टोकरा भर जाये। बड़ी भैंस हो और बहुत खिलाया हो। बड़ा काशीफल एक पूरा। टोकरा भर जाये। अरे! जबकि चक्रवर्ती हो तो उसे (छह खण्ड विभूति को) कफ छोड़ दे, वैसे सब छोड़ देता है। यह यहाँ... आहाहा! स्त्री का देह और गरीब घर, उसे वह पोहटा मिले वहाँ आहाहा! जड़ की विष्टा है। भैंस की विष्टा है न वह? क्या करता है, प्रभु तू? कहाँ जाता है? आहाहा! उसको पैसे का पोहटा।

वह महिलाएँ सन्दूक नहीं रखतीं? अभी देते होंगे। विवाह में पीहर से सन्दूक दे। बर्तन भरे हों, यह और वह अमुक। आहाहा! उसे ऐसा हो कि वाह... वाह... मेरा सन्दूक मुझे दिया मेरे पीहर में से। यह सन्दूक तो धूल का है। इस भगवान ने सन्दूक यहाँ किया है न! आहाहा! यहाँ कहते हैं, देखो! '**एष यः आत्मा**' है न? '**एष**' की व्याख्या की है। **यह प्रत्यक्षीभूत स्वसंवेदनज्ञानकर प्रत्यक्ष जो आत्मा...** आहाहा! यह आत्मा तो अपने स्वसंवेदन ज्ञान से प्राप्त है, ऐसा आत्मा है। आहाहा! वह राग से प्राप्त नहीं होता और परलक्ष्यी शास्त्रज्ञान से भी प्राप्त नहीं होता। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

समझ में आया? वह देव-गुरु की वाणी से प्राप्त नहीं होता। अरे! देव-गुरु ने कहा शास्त्र का ज्ञान, उसे ख्याल आया, उससे प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं, ऐसी बातें।

वह तो कैसा है? **प्रत्यक्षीभूत स्वसंवेदनज्ञानकर प्रत्यक्ष जो आत्मा...** आहाहा! अरे! इसे श्रद्धा में अभी ठिकाना नहीं। मैं तो मेरा भगवान स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हो सके, ऐसा मैं हूँ। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय से तो नहीं, परन्तु शास्त्रज्ञान से भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। धर्मचन्दजी! ऐसी बात है। आहाहा! ...का तो पुकार व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता है। व्यवहार करते-करते निश्चय होता है। अरे! प्रभु! क्या कहता है तू? प्रभु! तुझे तेरी महत्ता की खबर नहीं। आहाहा! तेरी महत्ता पर के आश्रय से प्रगटे, यह है नहीं इतनी।

स्व अपने स्वं—प्रत्यक्ष वेदन से प्राप्त हो, ऐसा भगवान आत्मा है। आहाहा! अरेरे! सम्यग्दृष्टि की प्रतीति में यह वर्तता है कि मैं तो मेरे प्रत्यक्ष ज्ञान से प्रत्यक्ष प्राप्त हो, वह हूँ। दूसरे किसी प्रकार से प्राप्त हो, ऐसा मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहीं कहने में आया हो शुभोपयोग साधन है और यह है। वह तो उसका ज्ञान कराया। बापू! आहाहा! शुभोपयोग से रहित, शुद्धपर्याय से भी रहित भगवान त्रिकाल जो है, उसे वर्तमान स्वसंवेदनज्ञान से प्रत्यक्ष हो सकता है, ऐसा आत्मा है। ऐसी बातें हैं। यह तो परमात्मप्रकाश की अन्तिम गाथायें हैं। ७४ है न। ६ और १४ इतनी रही। आहाहा! २० गाथायें रहीं।

क्या कहते हैं? प्रभु! तू है या नहीं? और है तो किससे प्राप्त हो, ऐसा तू है? वह अपने स्व के ज्ञान से सं—प्रत्यक्ष वेदन करे, उससे प्राप्त हो, ऐसा है। आहाहा! ...ढोर में भी प्राप्त हो तो वह आत्मा अपने से होता है। आहाहा! पशु में जिसे हजार-हजार योजन का शरीर, बड़ा लम्बा पूंछड़ा मत्स्य का। आहाहा! वह कहा था, रात्रि में साधु-मुनि आये, तब समझा न? उनके कारण समझा या नहीं? मुनि आये सिंह के पास, भगवान के (पूर्व) दसवें भव में। बापू! यह सब बातें बाहर की है। समझा है, वह स्वसंवेदन से स्वयं प्राप्त हुआ है। इसने नजरें बाहर में से निकालकर अन्दर डाली है। आहाहा! तब उसे आत्मा ज्ञात होता है और तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

'**एष**' शब्द पड़ा है न? '**एष**' अर्थात् सब प्रत्यक्ष। **प्रत्यक्षीभूत स्वसंवेदनज्ञानकर प्रत्यक्ष जो आत्मा...** आहाहा!

'**स परमात्मा**' **वही शुद्धनिश्चयनयकर अनन्त चतुष्टयस्वरूप...** त्रिकाली, हों! **क्षुधादि अठारह दोषरहित निर्दोष परमात्मा है,...** क्योंकि उसमें से क्षुधादि अठारह दोषरहित परमात्मा प्रगट होता है न? वह वस्तु परमात्मा, वह अठारह दोषरहित परमात्मा स्वयं ही है अन्दर त्रिकाल। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अब एक इतने शरीर में ऐसी हड्डियाँ और चमड़ी, माँस; भगवान ऐसा चैतन्य रत्न। आहाहा! कहते हैं कि **शुद्धनिश्चयनयकर अनन्त चतुष्टयस्वरूप...** अनन्त चतुष्टय—यह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त सत्ता अर्थात् अनन्त वीर्य। जिसका ज्ञानस्वभाव अनन्त है। दर्शनस्वभाव अनन्त है। शक्ति स्वभाव, हों! जिसका आनन्दस्वभाव अनन्त है, जिसका पुरुषार्थ—वीर्यस्वभाव अनन्त है, ऐसी शक्तिरूप स्वभाव का सामर्थ्यरूप अनन्त चतुष्टयरूप, वह भगवान क्षुधादि दोष से रहित है। वस्तु स्वयं ऐसी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसीलिए उसका आश्रय करके केवलाान हो, वह भी क्षुधादि दोषरहित ही होता है। आहाहा! यह कहते हैं न, भाई! केवली हुए फिर आहार ले। तो भी उनका कोई शक्ति का ऐसा स्वभाव है। यहाँ तो शक्ति का स्वभाव ऐसा है क्षुधा, तृषारहित ऐसा उनका स्वभाव है। आहाहा! यह... डाला था। केवली की बात... आदि की। आहाहा!

अनन्त चतुष्टयस्वरूप, अनन्त चतुष्टयस्वरूप। है न? जो अन्दर ज्ञान है, वह अनन्त शक्तिवाला है। आनन्द का शक्तिस्वरूप है। वीर्य और दर्शन, वे **क्षुधादि अठारह दोषरहित निर्दोष परमात्मा है,...** वह निर्दोष भगवान आत्मा है अन्दर। आहाहा! क्योंकि आस्रव—बन्ध और पुण्य-पाप के तत्त्व उसे तो वह भिन्न तत्त्व ज्ञायक है। वह तो निर्दोष स्वरूप भगवान है। आहाहा! उसे यहाँ परमात्मा कहते हैं। परमात्मप्रकाश है सही न!

वह व्यवहारनयकर... निश्चय से तो यह सत्य है, कहते हैं। परन्तु अब पर्याय में व्यवहारनयकर। आहाहा! '**कर्मविशेषेण**' **अनादि कर्मबन्ध के विशेष से...** '**जाप्यः जातः**' **पराधीन हुआ दूसरे का...** आहाहा! है न? '**जाप्यः जातः**' **पराधीन हुआ दूसरे का जाप करता है;...** आहाहा! भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप स्वसंवेदन से ज्ञात हो,

उसका जाप छोड़कर दूसरे का जाप करता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि दूसरे भगवान हैं, उनका जाप कर, वह भी तेरा पराधीनपना है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कठिन बातें, भाई! निश्चय की बातें अकेली करे। व्यवहार साधन है, वह तो बात करते ही नहीं। परन्तु साधन नहीं, भाई! व्यवहार है सही।

मुमुक्षु : व्यवहारनय की बात तो आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार नहीं। परन्तु वह साधन नहीं, उससे प्राप्त नहीं होता और निश्चय से प्राप्त होने के पश्चात् भी व्यवहार होता है तो वह व्यवहार, निश्चय की पुष्टि करता है—ऐसा नहीं है। निश्चय की पुष्टि तो अपने स्व आश्रय से ही होती है। उत्पन्न ऐसा हुआ, फिर पुष्टि विशेष वृद्धि, परन्तु वह स्व के आश्रय से होती है। शुभ के कारण से वह कहीं पुष्टि नहीं होती। आहाहा! क्या कहते हैं यह? आहाहा! दाँत में सोना जड़ा हो। सोना जड़ते हैं न? दाँत-बाँत गिर जाये तो सोना। आहाहा! और बोलते हुए होंठ ऊँचे हो, ऐसे दिखाई दे। दूसरे को दिखाई दे कि देखो हमारे सोने का दाँत है। अरे! प्रभु! तू कौन है, यह देखा तूने? यह वह दिखाया किसी को कि ऐसी बात करते हैं ऐसी। आहाहा!

अन्दर भगवान आत्मा सुवर्ण समान वर्ण। यह वर्ण बिना का सुवर्ण समान। आहाहा! ऐसा चैतन्य भगवान क्षुधादि दोषरहित, वह अनादि पराधीन हुआ। पर का जाप करे। आहाहा! यहाँ तक ले गये बात। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह तो पराधीन जाप हुआ है तेरा। शुभराग का जाप पराधीन है। वहाँ तक ले गये।

निश्चय से मेरा स्वरूप अखण्ड सत् स्वभाव से भरपूर स्वसंवेदन से ज्ञात हो, ऐसी मैं चीज़ हूँ, परन्तु उसमें तो अपना जाप आया स्वसंवेदन में। उसे छोड़कर। आहाहा! यह पालीताणा गये, सोनगढ़ आये। आहाहा! वे कहते थे नहीं अपने केशुभाई हैं न? बढवाण में एक केशुभाई। दूसरे कहें—परन्तु तुम निमित्त का निषेध करते हो, किन्तु वापस वहाँ बारम्बार जाते हो। भाई! हम जाते हैं, यह निमित्त से होता नहीं, ऐसा दृढ़ करने को हम जाते हैं। केशुभाई नहीं? अपने दशाश्रीमाली नहीं? लड़के ने नई से

विवाह किया है। लड़के.... उसे... भाई हम तो वहाँ जाते हैं, निमित्त से होता नहीं, इसकी विशेष दृढ़ता के लिये (जाते हैं)। (निमित्त से) होता है, इसलिए नहीं। बारम्बार ऐसा। वह कहे तब उसे ठीक। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि परमात्मा—दूसरे का जाप करता है, उसे अपने परमात्मा की खबर नहीं, वह दूसरे का जाप करता है, ऐसा कहते हैं। अस्थिरता का शुभराग आवे, वह अलग बात है, परन्तु यह तो एकदम आत्मा... जाता है और भगवान... भगवान करके दूसरे को मिल जायेगा। मालायें गिने। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा नहीं। जिस समय वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान कर। वहाँ ऐसा लेना। पाठ में है न! '**स्वकीयबुद्धिदोषेण जात उत्पन्नः**' वह विकारादि उत्पन्न हुआ है, वह स्वकीय दोषबुद्धि के कारण से है। कर्म के कारण से नहीं। यह पाठ में है। यह विशेष कहा जायेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, फाल्गुन शुक्ल ३, सोमवार
दिनांक- २१-०२-१९७७, गाथा - १७५, प्रवचन-२२३

परमात्मप्रकाश, गाथा १७५। भावार्थ। थोड़ा चला है। भावार्थ १७५।

भावार्थः—जो कोई एक परमात्मा परम प्रसिद्ध सर्वोत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी का निवास है,... परमात्मा सिद्ध। कैसे हैं परमात्मा? कि परम प्रसिद्ध। सर्वोत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादि जिन्हें प्रगट हुए हैं, ऐसे परमात्मा। कर्ता कोई नहीं। अनादि परमात्मा सिद्ध भगवान हैं। वह सर्वोत्कृष्ट ज्ञानादि जिन्हें प्रगट हुए हैं, ऐसे अनन्त ज्ञानादि परमात्मा... है? वह **अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी का निवास है,...** यह लक्ष्मी। यह तुम्हारे पैसे की—धूल की लक्ष्मी, वह तो सब मिट्टी है। कहो, शान्तिभाई!

अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द—ऐसी अनन्त ज्ञान लक्ष्मी जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसे परमात्मा। है? वे ज्ञानमय हैं। **लक्ष्मी का निवास है,...** वास है। देह है, वह तो जड़, मिट्टी, धूल है। कर्म अन्दर है, वह भी जड़ है, अजीव है और दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वे भी वास्तव में तो अचेतन जड़ हैं। इस चैतन्य की जाति नहीं। आहाहा! तो चैतन्य जो परमात्मा प्रसिद्ध प्रगट हुए, वे ज्ञानमय, अपनी लक्ष्मी में निवास करते हैं।

वैसा ही मैं हूँ। जरा सूक्ष्म कभी कहीं सुना नहीं, विचार नहीं किया (कि) वह यह कौन है अन्दर प्रभु? समझ में आया? अन्दर देखने को अनन्त ज्ञानादि लक्ष्मी से निवासरूप परमात्मा सिद्ध है, वैसा मैं हूँ। समझ में आया? अपने में और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! शक्ति का स्वभाव ऐसा है। सच्चिदानन्द प्रभु, सत्—शाश्वत् चिद्—ज्ञान और आनन्द, उसकी लक्ष्मी है, उसमें परमात्मा का निवास है। मैं भी ऐसा हूँ। आहाहा! समझ में आया?

यद्यपि व्यवहारनयकर मैं कर्मों से बँधा हूँ,... निमित्त से कर्म जो जड़ है, उसके सम्बन्ध से मैं हूँ। मेरी चीज़ है परमार्थ से तो भिन्न आनन्दकन्द है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से, **व्यवहारनयकर मैं कर्मों से बँधा हूँ,...** कर्म जड़ है, उनके सम्बन्ध से निमित्त मैं हूँ, ऐसा। **कर्मों से बँधा हूँ,...** यह भी निमित्त का कथन है। अपनी

अज्ञानदशा—स्वरूप का भान नहीं, ऐसी अपनी अज्ञानदशा से बँधा हुआ है। कर्म तो जड़, धूल है, मिट्टी है। आहाहा! समझ में आया? अपने स्वभाव को भूलकर जो अज्ञान है, राग-द्वेष और अज्ञान, उससे बँधा हुआ है। कर्म से बँधा हुआ, यह तो जड़ का निमित्त से कथन है। आहाहा!

तो भी निश्चयनयकर मेरे बन्ध-मोक्ष नहीं है,... आहाहा! वस्तु जो है, उसमें बन्ध क्या और वस्तु का मोक्ष क्या? सच्चिदानन्दस्वरूप वस्तु—द्रव्य मोक्षस्वरूप है, यह तो आत्मा। कैसे बैठे, परन्तु अनादि से कभी अभ्यास नहीं। आहाहा! देह देवल में भगवान अन्दर आत्मा दिव्यशक्ति का भण्डार भरपूर आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? कभी अभ्यास नहीं, कभी उसका विश्वास शक्ति नहीं। सम्यग्दर्शन। क्या चीज़ है? मैं कौन हूँ? यह समझे बिना। यहाँ तो कहते हैं मैं ऐसा ही हूँ। जैसे परमात्मा है, आनन्दकन्द प्रभु, ऐसा मैं हूँ। आहाहा! है? आहाहा!

मेरे बन्ध-मोक्ष नहीं है, जैसा भगवान का स्वरूप है, वैसा ही मेरा स्वरूप है। शुद्धचैतन्यघन आत्मा, आनन्दकन्द ऐसे परमात्मा हैं, ऐसा मैं हूँ। ऐसी दृष्टि किये बिना उसे धर्म की शुरुआत कभी तीन काल में होती नहीं। समझ में आया? मैं परमात्मस्वरूप ही हूँ। यह परमात्मप्रकाश है न? योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि १३०० वर्ष पहले कहते हैं। पंचम काल के प्राणी को (कहते हैं)। प्रभु! तू कैसा है? आहाहा! जैसे सोलहवान सोना है, वैसा ही तेरा स्वरूप सोलहवान सोना निर्मलानन्द अन्दर है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रगटरूप से ही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्तिरूप से प्रगट ही है। शक्तिरूप से प्रगट है। पर्यायरूप से नहीं। पर्यायरूप से प्रगट करने का तो उपाय बताते हैं। शक्तिरूप से प्रगट है। सत्ता स्वभाव अपना अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु, वह शक्तिरूप से तो प्रगट ही है। उसे पर्याय में प्रगट करना, उसका यह पुरुषार्थ है। वर्तमान में प्रगट करना, मैं अनन्त ज्ञानमय हूँ, आनन्द हूँ, शुद्ध परिपूर्ण मैं हूँ। आहाहा! मुझमें तो यह दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प है, वह भी मुझमें नहीं। और मैं अल्पज्ञ भी नहीं। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया?

छोटी पीपर होती है न छोटी पीपर ? तो उसमें चौंसठ पहरी शक्ति अन्दर पड़ी है। चौंसठ पहरी है तो प्रगट होती है। प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से मिलती है। घूँटते हैं न ? चौंसठ पहरी चरपराहट कहाँ से आयी ? बाहर से आती है ? पत्थर से आती है ? पत्थर में से आवे तो कंकर घूंटे नहीं ? उसमें चौंसठ अर्थात् रुपया, सोलह आना, चौंसठ पैसा*—ऐसा पूर्ण, सब एक कहो। चौंसठ कहो, सोलह आना कहो, रुपया कहो, पूर्ण कहो, वह शक्ति, छोटी है परन्तु शक्ति तो अन्दर पूर्ण पड़ी है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में शरीर का सम्बन्ध हो, राग का सम्बन्ध हो, परन्तु वह चीज़ जो है। आहाहा! पूर्ण परमात्मशक्ति से भरपूर आत्मा है। कैसे बैठे ? एक बीड़ी बिना चले नहीं और उसके बिना चले नहीं। उसमें बाहर में तू मर गया। क्या मेरी चीज़ है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। योगीन्द्रदेव मुनि, दिगम्बर मुनि। १३०० वर्ष पहले ऐसा कहते थे कि प्रभु! तू तो परमात्मा है न! आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! तेरी शक्ति और सत्व का स्वभाव ही परमात्मस्वरूप है। आहाहा! अरे! कैसे बैठे ? आहाहा! कहते हैं कि **जैसा भगवान का स्वरूप है, वैसा ही मेरा स्वरूप है। जो आत्मदेव महामुनियोंकर परम आराधनेयोग्य है,...** आहाहा! सन्त तो उसे कहते हैं कि जिसमें परमात्मा आनन्दस्वरूप है, उसका आराधन, सेवन करे, उसका नाम सन्त है। आहाहा! समझ में आया ? पंच महाव्रत पालन करे, देह का नग्नपना, वह कोई सन्तपना नहीं। आहाहा!

भगवान अनन्त आनन्द स्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर परमात्मा अपना स्वरूप, परमस्वरूप का महामुनि सेवन करते हैं। उसका आराधन करते हैं। आनन्द का सेवन करते हैं। आहाहा! ऐसी बातें लोगों को सूक्ष्म पड़ती हैं। वह व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है, धूल भी नहीं होता, सुन न! व्यवहार से पुण्य बँधे राग मन्द हो तो। यहाँ तो अबद्धस्वरूप भगवान शक्तिरूप से पूर्णता है, उसकी सेवना मुनि करते हैं। मुनि पंच महाव्रत पालते हैं या नग्न हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। होता है नग्नपना

*** प्राचीन समय में ६४ पैसे का अर्थात् सोलह आना का एक रुपया होता था।**

- अनुवादक

निमित्तरूप से। परन्तु वे पालते हैं स्वयं शुद्धचैतन्य का अनुभव सेवन वे करते हैं। आहाहा! यह व्यवहार उड़ जाता है इनकी भाषा में। आहाहा!

आत्मदेव महामुनियोंकर परम आराधनेयोग्य है,... परम आराधनेयोग्य है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर परमात्मा, वे सेवनयोग्य है, वह तो शुभभाव है, वह धर्म नहीं। आहाहा! तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति, प्रतिमा, मन्दिर आदि, पूजा आदि, वह तो एक पुण्यभाव है। वह तो पाप से बचने को वह भाव आता है। परन्तु वह धर्म नहीं। आहाहा! जहाँ नजर करने से परमात्मास्वरूप नजर में आवे और उसकी सेवना करना, वह धर्म है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को ऐसी लगे। कभी की नहीं। दुनिया में एक तो पाप में २२ घण्टे, २४ घण्टे बितावे। परन्तु स्त्री, पुत्र, कमाना, पैसा धूल और धमाका। अकेला पाप का पोटला। पुण्य का ठिकाना नहीं, वहाँ धर्म कहाँ से आया उसे?

श्रवण, मनन, चिन्तवन, शास्त्र वाँचन, यह सब पुण्यभाव, शुभभाव है। जिसे शुभभाव का ठिकाना नहीं, आहाहा! उसे यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ पुण्य-पाप के राग से भिन्न है। समझ में आया? वह मुनियों को आराधन-योग्य है। **और अनन्त सुख आदि गुणों का निवास है।** ऊपर आया था न? **सर्वोत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी का निवास है,...** परमात्मा। प्रगट परमात्मा। प्रगट परमात्मा अनन्त ज्ञानादिरूप लक्ष्मी का निवास है। ऐसा यह देह अनन्त ज्ञानादि गुण का निवास है। आहाहा!

अनन्त सुख आदि गुणों का निवास है। इससे यह निश्चय हुआ कि जैसा परमात्मा, वैसा यह आत्मा... आहाहा! परमात्मा की प्रगट दशा अनन्त आनन्द ज्ञानादि प्रगट हुई। तुझमें शक्तिरूप से पूर्ण। उस परमात्मा के आत्मा में स्वभाव और शक्ति और सामर्थ्य में अन्तर नहीं है। आहाहा! यह कहाँ बैठे? समझ में आया? **जैसा परमात्मा, वैसा यह आत्मा...** वैसा यह आत्मा। आहाहा! **और जैसा यह आत्मा है, वैसा ही परमात्मा है... जैसा यह आत्मा है, वैसा ही परमात्मा है।** आहाहा! परमात्मा सर्वज्ञ अरिहन्त परमेश्वर, वह पूर्ण ज्ञान-आनन्द प्राप्त हुए, वह दशा आयी कहाँ से? बाहर से आती है? आहाहा!

अनन्त-अनन्त अपरिमित—हदरहित जिसकी एक-एक ज्ञानशक्ति है। एक-

एक शक्ति श्रद्धा अनहद—बेहद स्वभाव से भरपूर शक्ति है। ऐसी आनन्दशक्ति, बेहद शक्ति से भरपूर है। ऐसी अनन्त शक्तियों का निवास जिसमें है। आहाहा! अनन्त शक्तियाँ उसमें रहती हैं। निवास अर्थात् आत्मा में अनन्त शक्तियाँ रहती हैं। आहाहा! समझ में आया? वहाँ वास्तु कर। यह मकान धूल के बनावे दो, पाँच लाख के और वास्तु करे ऐसे मानो, ओहोहो! दो-पाँच हजार खर्च करे। मन्त्री, ढींकणा, बड़ों को बुलावे तब। ओहोहो! क्या किया, धूल की सुन न अब। आहाहा! यह वस्तु जो अनन्त गुण का वास जिसमें है। निवास है न? वहाँ बस। बाहर से खस, इतना अतिसंक्षिप्त बस। आहाहा! अरेरे! इसे कुछ... समझ में आता है?

मुमुक्षु : अति संक्षिप्त करे परन्तु समझता है कुछ?

पूज्य गुरुदेवश्री : टूंकू टच अर्थात् बहुत थोड़ा है। पर से खस, स्व में बस, अल्प बात में बहुत भरा है, बस। आहाहा! इसका अर्थ यह हुआ व्यवहार और पर्याय से खस—हट जा। आहाहा! वहाँ वह तम्बू ताने हैं। विकल्प जो राग जो दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, कमाना, भोग, विषय, पाप के भाव, उसमें तूने तेरे तम्बू डाले हैं। अरर! आहाहा! वह सब भटकने के, नरक और निगोद में जाने के रास्ते हैं। आहाहा! यह वहाँ से हट जा। जहाँ अनन्त ज्ञान का निवास है, वहाँ जा न, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। लोगों को ऐसा अवरोधक है, यह सब कि व्यवहार करते-करते होगा। दया, दान और व्रत, भक्ति करने से, परन्तु वह तो राग से करते-करते परन्तु वस्तु में कहाँ है तो उससे होगा? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इससे यह निश्चय हुआ कि जैसा परमात्मा वैसा यह आत्मा है और जैसा यह आत्मा है, वैसा ही परमात्मा है। जो परमात्मा है। वह मैं हूँ, और जो मैं हूँ, वही परमात्मा है। इसका शब्द में अब हल करते हैं। **अहं यह शब्द देह में स्थित आत्मा को कहता है।** अहं। अहं, वह देह में विराजमान भगवान भिन्न। आहाहा! एक भव में से दूसरे भव में जाता है, वहाँ देह साथ नहीं रहती। आत्मा और कर्म बाँधे हुए परमाणु (और) तैजसशरीर। दोनों अभी साथ में हैं। देह छूटे, फिर वह तो श्मशान की मिट्टी। आहाहा! यहाँ से अकेला छूटकर जायेगा। आहाहा!

रास्ते में अकेला रहता है या नहीं? शरीर भी नहीं वहाँ तो। यहाँ से जाये दूसरे भव में। देह छूटकर नरक में जाये, तिर्यंच में जाये, पशु में जाये। आहाहा! अकेला भी वहाँ रह सकता है न? कर्म का सम्बन्ध है, उतना है। परन्तु उस कर्म के सम्बन्ध से वहाँ जाता है, ऐसा भी नहीं है। वह अपनी योग्यता के कारण वहाँ जाता है। आहाहा! सब बात में अन्तर, बहुत अन्तर, बापू! तेरे सत्य को तूने सुना नहीं। '**श्रुतपरिचित**' कहा न? (समयसार) चौथी गाथा। '**श्रुतपरिचितानुभूता**' यह दया, दान, व्रत और काम, क्रोध के भावरूपी राग, वह बात तो यह अनन्त बार सुनी। अनन्त बार परिचय में आयी और अनन्त बार तेरे अनुभव में आयी है। परन्तु उस राग के विकल्प से भिन्न भगवान, आहाहा! यह बात तुझे सुनने में आयी नहीं। आहाहा! जो सुननेयोग्य है, वह सुनने में आया नहीं। और सुनने की नहीं आवश्यकता, उसे सुन-सुनकर इसके कान फूटे। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, यह **अहं यह शब्द देह में स्थित आत्मा को कहता है।** अहं, मैं यह मैं किसे लागू पड़ता है? यह भगवान चैतन्यमूर्ति, उसे अहं लागू पड़ता है। देह को अहं लागू पड़ता है? देह तो पर है, यह जड़-मिट्टी। **और सः... है? यह शब्द मुक्ति प्राप्त परमात्मा में लगाना।** '**अहं सः**' सोहम् है न? '**अहं सः**' ऐसा लगाया यहाँ। सो अहं। है न सो अहं। **जो परमात्मा वह मैं हूँ,...** ऐसा कहा '**अहं सः**' उनके जैसा मैं हूँ। समझ में आया? सोहम्.... सोहम्... सोहम्... शब्द नहीं, हों! '**अहं**' यह अपना अस्तित्व बताते हैं। '**अहं**' यह अपनी अस्ति-मौजूदगी बताते हैं। मैं हूँ। आहाहा! मैं चैतन्य भगवान आनन्दकन्द प्रभु हूँ। ऐसा '**अहं**' अपनी मौजूदगी बताते हैं, अस्तित्व बताते हैं। और '**सः**' '**अहं सः**' सोहम्... सोहम् कर डाला न '**अहं सः**' कर डाला। सोहम् में है न '**अहं सः**' वह मैं, ऐसा नहीं परन्तु '**अहं सः**' यह। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, बापू!

भगवान को सम्हालना और जिसकी जितनी शक्ति है, उतनी शक्तिवान अन्तर में मानना, यह अलौकिक बात है। आहाहा! **अहं यह शब्द देह में स्थित आत्मा को कहता है।** आहाहा! '**अहं**' कौन जानता है? शरीर जानता है अहं? वाणी जानती है? वह तो जड़ है। '**अहं**' जिसे ज्ञान है कि '**अहं**' यह मैं '**सः**' वह। वे परमात्मा जैसे हैं, वैसा '**अहं सः**' आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो,...

चेतनरूप अरूप (अनूप) अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।
मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो,
ज्ञान कला उपजी अब मोकूं कहूं गुण नाटक आगम केरो।
तासु प्रसाद सधे शिव मारग वेगी मिटे घट वास वसेरो।

इस सड़े हुए शरीर में भगवान को बसना... आहाहा! मर गये हुए सड़े हुए गधे का शरीर हो, उसमें मैसूर को लपेटना, मैसूर, मैसूर। आहाहा! मैसूर समझते हो? मैसूर (मैसूरपाक) कहते हैं न?

मुमुक्षु : उसमें मैसूर कहते हैं। ब न बोले, र बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने यहाँ मैसुब कहते हैं। हमारी दीक्षा में पचास मण मैसूर किया था। मगसर शुक्ल नौवीं। (संवत्) १९७० में। वह पचास मण में मण के दस रुपये, अभी कहाँ ठिकाना? पचास मण में पाँच सौ रुपये का खर्च था। खुशालभाई ने की न घर में दीक्षा। ७०-७०। ६४ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : दस रुपये मण।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो दस रुपये। तब तो सस्ता था। बारह आने सेर बादाम थे। तब कहाँ था? यह तो सब बदल गया अभी और पैसे यह तो बढ़ गये हैं न। इतने पैसे भी कब थे? दस लाख, बीस लाख, पच्चीस लाख, करोड़, दो करोड़। दस हजार रुपये हों वहाँ तो कहे ओहोहो! तब तो ऐसा था। २० का पच्चीस गुना भाव। एक में तो कितने थे? यह पैसे सेर गाय का दूध मिलता था। अभी एक रुपये का सेर। चौठस गुना हो गया।

मुमुक्षु : एक रुपये का... धोतिया का। आज उसके ६० रुपये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धोती का। आहाहा! परन्तु यह तो हमारे कणबीवाड में मकान ने वहाँ। मेहमान आवे मेहमान, तो मेरी माँ तो वहीं की थी न! उमराला की। दूध लेने जाये। पैसे का सेर। उजमबा पैसे नहीं लेंगे, हों! ले जाओ सेर। सेर दूध यों ही मुफ्त दे। हमारा घर है न, उसके सामने किसान का घर है। वे देते थे बेचारे। यह तो ७५ वर्ष पहले की बातें हैं। एक पैसा सेर गाय का। अभी किसी को पूछा था।

मुमुक्षु : परन्तु तब पैसा महँगा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक पैसा। अभी एक रुपये का सेर गाय का। अच्छी गाय का, हों! वरना बारह आने का।

मुमुक्षु : तब दूध खाते, उससे आज दूध खानेवाले...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूध भी सब समझने जैसा अभी का। उस समय तो दूध अच्छा। ऐसे उसका भाव बढ़ गया, ऐसे पैसे की कीमत घट गयी। इसी प्रकार यहाँ आत्मा का भाव जो है, जो बढ़ जाये तो उसे पर की कीमत घट जाये। आहाहा! भगवान आनन्द के लक्ष्मी का निवास प्रभु है अन्दर। चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति आनन्दकन्द प्रभु। आहाहा!

उसका जिसे अन्तर में माहात्म्य आया और उसका जिसे विश्वास आया, उसे पर का तो माहात्म्य चला जाता है, राग का माहात्म्य चला जाता है, एक समय की पर्याय का माहात्म्य उड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, ओहो! भाषा कैसी प्रयोग की, देखो न! सोहम के बदले '**अहं सः**' गुलाँट मारकर बात की है। वह मैं अर्थात् पर से, ऐसा नहीं लेना। '**अहं**' वह। मैं वैसा हूँ। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? सोहम में वह मैं, ऐसा बाहर से लेने से भी यह वह मैं। आहाहा! गजब बात है न! दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो! सर्वज्ञ के पथानुगामी मुनि। प्रभु! तू कौन है? '**अहं**' तुझे होता है या नहीं कहीं? '**अहं**'? वह किस भूमिका '**अहं**' होता है तुझे? यह ज्ञानस्वरूपी भूमिका भगवान में तुझे '**अहं**' होता है। आहाहा! यह शरीर मैं, ऐसा वहाँ नहीं आता, कहते हैं। तथा दया, दान, व्रत के, काम, क्रोध के, कमाने के भाव, वह '**अहं**' ऐसा नहीं आता। क्योंकि वे जानते नहीं। आहाहा! '**अहं**' वह जाननेवाला भगवान है, उसमें '**अहं**' का जानना होता है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया?

'**अहं**' '**अहं**' ऐसा जो ज्ञान होता है, किसे? इस आत्मा को। राग को ज्ञान है '**अहं**' का? आहाहा! यह शरीर मिट्टी, जड़, धूल है यह तो। उसमें है '**अहं**' का ज्ञान? आहाहा! जिस स्थल में, भूमिका में '**अहं**' ऐसा जो ज्ञान होता है, वह परमात्मा तू है। समझ में आया? आहाहा! बाहर के इन भभकों ने मार डाला। शरीर के, पैसे के, इज्जत

के, धूल के, मरकर यह पाडा हो मरकर यह सब पैसेवाले हों वे। यहाँ मजदूरी करते हैं धन्धे की। वहाँ मजदूरी करनी है पाड़ा की। सिर पर डालेंगे वे। गधा होगा तो कुम्हार डालेगा। यह वह होता है न क्या अभी? धूल खोदनेवाले नहीं होते? दूसरे होते हैं न! अपने देखे थे न। उल्लू को, यहाँ तो अपने दूसरे देखे थे। भटकते हों न २५-५० साथ में गधों को। धूल डाले ऊपर गधों पर। आहाहा!

मुमुक्षु : बंजारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बंजारा, वह होते हैं न अभी। उस मकान में भरे होते हैं गधे, उसमें धूल की। आहाहा! उस गधे पर भार भरे और खाने का स्वयं न दे, खाने का जंगल में से खा लो। आहाहा! पैसा यहाँ तो रोजी दे और पैसा दे। उसे तो रोजी भी नहीं मिलती बेचारे को। आहाहा! और मारा मार, मण, डेढ़ मण धूल डाले।

मुमुक्षु : मार मारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार मारे मार। आहाहा! भाई! तू कौन है, उसकी तुझे खबर बिना, यह सब मायाचार सेवन किया, आहाहा! पाप का सेवन किया, प्रभु! उसके फल में गधा, यह पाडा सब उसके फल में हुए हैं। माँस, मदिरा न खाते हों बनिया, इसलिए नरक में तो न जाये। आहाहा! और राजा, महाराजा तो ठीक से जाये। नीचे पार्लियामेन्ट भरे वहाँ नरक में। वह तो नरकगति में जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : एक-दूसरे को मारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मारे, क्या मारे ऐसे मार धड़ाधड़ काट डाले।

मुमुक्षु : ऐसी पार्लियामेन्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह पार्लियामेन्ट। आहाहा! बापू! तेरा स्वरूप है, ऐसा सत्यस्वरूप है। '**अहं**' उस निजसत्ता को अहंपना लागू पड़ता है। परसत्ता में अहंपना लागू नहीं पड़ता। और एक समय की पर्याय को '**अहं**' लागू नहीं पड़ता, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! धर्मचन्दजी! आहाहा! '**अहं**' वह चैतन्यकन्द प्रभु पड़ा है, आनन्दकन्द प्रभु, उस सत्ता को '**अहं**' लागू पड़ता है। विकल्प उठे, वह अलग परन्तु '**अहं**' का जो ज्ञान होता है, उस सत्ता को ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो दूसरी बातें

हैं बापू! वे कहे भगवान की भक्ति करो, पूजा करो, यह करो। धर्म होगा। धूल में भी नहीं, यहाँ तो कहते हैं। तेरा पुण्य ठीक सा नहीं बँधेगा। आहाहा! तेरा नाथ परमात्मा अन्दर विराजता है, उस घर में से निकलकर बाहर जूठन चाटने जाता है। आहाहा! ऐसा है।

'**अहं सः**' करके गजब किया। सोहम् '**सः**' वह मैं ऐसा नहीं, परन्तु मैं वह उनके जैसा, ऐसा। भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त हुए, तीर्थंकर हुए, परमात्मा हुए, वे कहते हैं कि '**अहं**' मैं उन परमात्मा जैसा हूँ। कहो, शान्तिभाई! आहाहा! स्तुति में आता है नहीं—भक्ति में नहीं? जैसा मैं वैसे भगवान हैं। भक्ति में आता है। देह में है, वैसा भगवान, वैसा ही भगवान है और भगवान है वैसा इस देह में है।

मुमुक्षु : जिनपद देखते...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग है। यह तो अपने भक्ति में, स्तवन मंजरी में आता है। जैसा यहाँ है, वैसा वहाँ है; जैसा वहाँ है, वैसा यहाँ है। यहाँ और वहाँ में कुछ अन्तर नहीं, ऐसा आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : याँ बसे वह। हाँ वह। मैं-तू में अन्तर कर डाला। आहाहा! यह बात बैठना, बापू! अनन्त काल में यह बैठता नहीं। बाकी तो त्याग भी किया, महाव्रत पालन किये, ब्रह्मचर्य पालन किया, दया पालन की। यह सब थोथा निकले। पैसा मिले, स्वर्ग मिले, वापस मरकर नीचे नरक में—ढोर में जाये। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

किसका एक बार देखो! **जो परमात्मा है, वह मैं हूँ,...** पहला शब्द है। **और जो मैं हूँ, वही परमात्मा है।** उसे वापस यहाँ चला आता है। '**अहं**' मैं यह, यह निजसत्ता ज्ञान और आनन्द की अस्तिपने की शक्ति, उसे '**अहं**' ऐसा लागू पड़ता है। समझ में आया? '**अहं**' '**अहं**' रटे, वह नहीं, हों! वह तो ॐ सोहम्... सोहम्... करते नहीं हैं वे? ऊपर बैठकर। सोहम्... सोहम्.. करे। भाषा वे-वे होते हैं न! वे नहीं यह तो सोहम्। मैं, जो मेरी मौजूदगी, अस्ति, मेरा अस्तित्व जितना जो है, वह मैं हूँ। आहाहा! और वह मैं।

यह शब्द मुक्ति प्राप्त परमात्मा में लगाना। ठीक! आहाहा! **जो परमात्मा है, वह मैं हूँ।** फिर लिया वापस, देखा! पहले आ गया था न यह? **और मैं हूँ, सो परमात्मा—यही ध्यान हमेशा करना।** आहाहा! कहो, णमो अरिहंताणं और फलाना का ध्यान करे। पंच परमेष्ठी का। वह तो सब विकल्प है, शुभराग है। धर्मध्यान नहीं। भगवान अहं परमात्मस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ पूर्णमिदं मैं तो पूर्ण हूँ। आहाहा! उसका ध्यान लगाना। समझ में आया?

ध्रुव के धाम में ध्यान की धखती धुनी लगा देना, इसका नाम धर्म। इसका नाम धर्म। आहाहा! ऐसी बात है। आपने तो यह सब मन्दिर बनाये, उसमें धर्म नहीं होगा? यह वे २६-२६ लाख के मकान / मन्दिर, देखो! हिन्दुस्तान में नहीं ऐसा। आहाहा! बापू! वह तो परचीज़ है, भाई! वह तो उसके कारण से बनी है। उसे कोई बनावे, यह नहीं। वह तो उसके काल में होता है, और उसे भाव हो भक्तिवाले को तो शुभभाव—पुण्य हो। जन्म-मरण मिटाने की चीज़ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे धर्मानुराग कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस धर्मानुराग का अर्थ यह कि धर्म जो है, उसका प्रेम है, ऐसा। इसलिए कहा। राग नहीं। धर्मानुराग, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? अरेरे! एक तो संसार के काम के कारण निवृत्त नहीं होता। घण्टे, दो घण्टे निवृत्त हो तो मिले ऐसा कहनेवाले सब बेचारे। यह करो, यह करो, तो होगा। जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं। परमात्मा कहते हैं, वे सन्त कहते हैं। वे सन्त आड़तिया हैं। भगवान के माल के। समझ में आया? आहाहा! उसमें आता है दुनिया के आड़तिया में घर में माल नहीं रखते। माल दूसरे से दिलाते हैं, यहाँ का यहाँ ऐसा करके। यह आड़तिया घर में माल रखकर बेचते हैं। आहाहा! अन्दर भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु का शरीरप्रमाण क्षेत्र होने पर भी जिसकी शक्ति, मर्यादा बिना की शक्ति है। आहाहा! ऐसी आत्मा की शक्ति है। आहाहा!

और मैं हूँ सो परमात्मा—यही ध्यान हमेशा... देखा फिर यह हमेशा। आहाहा!

'**भावय**' ऐसा है न! '**भावय**' परमात्मा '**भावय**' अन्तर में भगवान पूर्ण आनन्द, जैसे बर्फ की बड़ी क्या कहलाती है? शिलायें हैं मुम्बई में नहीं? पन्द्रह-पन्द्रह मण की, बीस-बीस मण की बर्फ की शिलायें। उसी प्रकार भगवान शीतल शिला आनन्द की और शान्ति की शिला अन्दर है। आहाहा! अरेरे! उसका कभी इसे विश्वास नहीं आया। उसके सन्मुख देखने का समय नहीं मिला और विमुख होने को इसे सब समय मिला। आहाहा!

बड़ा पुरुष आया हो कोई करोड़पति, अरबोंपति। खास मिलने आया हो। वह ऐसे बैठे पाव घण्टे, आधा घण्टे। तब यहाँ लड़का हो छह वर्ष का, दो वर्ष का हो उसके साथ खेल में चढ़ जाये वह बनिया। वह बड़ा खड़े होकर चला जाये कि... ठिकाना नहीं इसका। इसी प्रकार भगवान चैतन्यमूर्ति, उसके सामने देखकर क्रीड़ा करनी चाहिए, उसे भूलकर पर के साथ, बालक के साथ, राग और पुण्य-पाप के साथ क्रीड़ा की, वह चीज़ खो गयी। भगवानजीभाई! यह तो ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! जिससे जन्म-मरण न मिटे, वह धर्म नहीं। आहाहा! जिससे अवतार व्यर्थ जाये और अवतार का अभाव होकर सफल न हो, वह धर्म नहीं। धर्म सूक्ष्म बात है, बापू! एक पाँच-पच्चीस लाख खर्च कर डाले, इसलिए धर्म हो जाये, मन्दिर बनाया, इसलिए धर्म हो जाये। आहाहा! ऐसा नहीं है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

जिसमें धर्म के पूर्ण स्वभाव भगवान आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसी अनन्त शान्ति की शक्ति का भण्डार भगवान (आत्मा है)। यहाँ ठीक से बीड़ी मिले, वहाँ प्रसन्न हो जाये। एक छींकणी चपटी जरा हो छींकणी... छींकणी। छींकणी समझते हो? तम्बाकू। आहाहा! गहल और पागल के गाँव अलग होते हैं? मस्तिष्क तर हो गया। आहाहा! तो छींकणी के उसमें पूरा डुबो दे तो तरबोल हो जाता होगा अन्दर जीवित। आहाहा!

दृष्टान्त दिया है, नहीं? कि देख भाई! तुझे ऐसा लगता हो कि तेरी प्रशंसा करे, उसमें यदि तुझे सुख लगता हो तो प्रशंसा करनेवाले को ऐसे दो... बना दे तेरे प्रशंसक कि चौबीस घण्टे तेरी प्रशंसा बोला ही करे। वह जहाँ रात्रि के आठ बजे, नौ बजे तो

इनकार करता है (कि) अब नहीं। क्यों? तेरी प्रशंसा तुझे सुखरूप लगती थी न? अब तू सुख से इनकार करता है। भगवानजीभाई! यह बारोट होते हैं न बारोट? वे तो बहुत गुणगान करते हैं। आहाहा! चढ़ा दे ऊपर। उन्हें पैसा चाहिए हो, उन्हें रोटियाँ चाहिए हों, लड्डू, दाल, भात और फिर पैसे चाहिए हो पाँच-पच्चीस रुपये। तुम्हारे बापू ऐसे थे और तुम्हारे बापू ऐसे थे। आहाहा!

मुमुक्षु : सब सुने, ऐसा बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोले। हमको खबर दी थी न। हमारे एक बारोट थे, मोती बारोट। बहुत जोरदार थे, स्वयं गाते थे। बारोट आवे, ऐसा बोले... ऐसा बोले। हमारे रूपचन्दभाई की माँ। ...बारोट है। हमारे कुँवरजीभाई। आहाहा! यह तो सब ७५ वर्ष पहले की बातें हैं। वे ऐसा कहे। ऐसी तुझे यदि प्रशंसा से तुझे सुख उत्पन्न होता हो, तेरे गुणगान से तुझे... बखाण समझते हो? प्रशंसा। प्रशंसा से तुझे ठीक पड़ता हो तो प्रशंसा किया ही करे। एक व्यक्ति रख दे दो रुपये का मजदूर। उसे लिख दे, बका करे। आठ बजे, दस बजे तक। अब बन्द कर। क्यों? प्रशंसा में सुख है न? सुख का नकार? सुख नहीं, भगवान! उसमें दुःख है। प्रशंसा सुनने में प्रसन्न होना, वह दुःख है। आहाहा!

वह परमात्मा परमगुण के सम्बन्ध से उत्कृष्ट है। पहले आया था न उसका। वह आत्मा **परमगुण के सम्बन्ध से उत्कृष्ट है।** कोई बाहर की लक्ष्मी, पैसा से और कुटुम्ब से उत्कृष्ट है, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा **परमात्मा परमगुण के सम्बन्ध से उत्कृष्ट है। श्री योगीन्द्राचार्य...** मुनि हैं, ध्यानि-आनन्द में मस्त। आहाहा! वनवासी सन्त दिगम्बर मुनि, वे **प्रभाकर भट्ट से कहते हैं,...** आहाहा! **श्री योगीन्द्राचार्य प्रभाकर भट्ट से कहते हैं, हे प्रभाकर भट्ट...** आहाहा! **तू सब विकल्पों को छोड़कर...** उन परसन्मुख की वृत्तियों को छोड़कर। विकल्प अर्थात् राग। वृत्ति उत्थान होती है। वह उत्थान वृत्ति का हो, उसे छोड़ दे। आहाहा! भगवान में जा अन्दर। आहाहा! ऐसा कहे, परन्तु यह जाने में वहाँ कोई साधन होगा या नहीं? कि यही साधन? यही साधन है। दूसरा कोई साधन नहीं है। सब गप्पें मारेंगे। समझ में आया? यात्रा करते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, वह साधन है। वह तो पाप से बचने का शुभभाव आवे, परन्तु वह

कहीं धर्म के साधन हैं, (ऐसा नहीं है)। लोगों को बातें कठिन पड़े। आहाहा!

यहाँ तो विकल्प को छोड़ दे, जिसे तू साधन मानता है, व्रत, तप, और भक्ति को। वह तो विकल्प की लगनी, राग की वृत्ति उठती है। समझ में आया? आहाहा! **छोड़कर केवल परमात्मा का...** अर्थात्? कोई भी विकल्प है, उसे छोड़ दे। सब विकल्प छोड़ दे। एक ओर सब विकल्प छोड़, एक ओर **केवल परमात्मा का ध्यान कर।** देखो! गुलांट मारते हैं। परसन्मुख के सब विकल्पों को छोड़ दे। आहाहा! तब छोड़कर जाना (कहाँ?) **केवल परमात्मा का ध्यान कर।** अकेला परमात्मा भगवान पूर्णानन्दस्वरूप का ध्यान कर। सम्यग्दर्शन-ज्ञान उसका ध्यान है। समझ में आया? ऐसी निश्चय की बात। इसलिए वह व्यवहार आचरण करनेवालों को ऐसा कि इस व्यवहार आचरण से कुछ मानते नहीं निश्चयाभासी हैं, ऐसा कहकर। प्रभु! तुझे खोटा लगता है, इसलिए तू ऐसा करता है, हों! आहाहा! केवल एक ओर के सर्व विकल्प को छोड़कर, दूसरी ओर में अकेला परमात्मा है, वहाँ जा। आहाहा! उसका ध्यान कर। तेरे ध्यान में उसे ध्येय बना। आहाहा!

निःसन्देह होके इस देह में शुद्धात्मा है,... निःसन्देह जाने कि भगवान परमात्मस्वरूप मैं हूँ। कैसे बैठे? जिसकी शक्ति, जिसका स्वरूप ही स्वतन्त्र है। आनन्द, ज्ञान, शान्ति, प्रभुता, उस शक्ति का भण्डार भगवान है। आहाहा! उसे हीन मानना, वह उसकी हिंसा है। उसे ऐसा पूर्ण मानना, उसका नाम उसकी दया है। यह ऐसी बातें हैं। दुनिया से सब अन्तर है। आहाहा! **निःसन्देह होके इस देह में शुद्धात्मा है, ऐसा निश्चय कर।** निःसन्देह अर्थात् सन्देह छोड़कर। आहाहा!

मिथ्यात्वादि सब विभावों की उपशमता के वश से... देखो! परसन्मुख की भ्रान्ति, राग, विकल्प सब विभावों की... विभाव अर्थात् विकार। उससे उपशमता कहकर स्थिर होकर **वश से केवलज्ञानादि उत्पत्ति का जो कारण समयसार...** आहाहा! एक समय में केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त केवलज्ञान। ऐसा जो परमात्मस्वरूप अर्थात् **कारणसमयसार (निज आत्मा)...** यह देखो, कारणसमयसार लाये। **(निज आत्मा) उसी की निरन्तर भावना करनी चाहिए।** आहाहा! उसे नजरों में से कभी दूर

नहीं करना। आहाहा! समझ में आया? आँख से ओझल नहीं करना, उसे आँख में अन्दर में। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अविकारी स्वभाव, शान्तरस का कन्द प्रभु, उसकी एक क्षण भी उसकी नजर से दूर नहीं रहना। आहाहा! सम्यग्दर्शन में निरन्तर उसका अवलम्बन होता है। निरन्तर। भले कोई विकल्प आवे बाह्य के पाप के। उसका निज अवलम्बन है, वह छूटता नहीं। आहाहा! समझ में आया? भले गृहस्थाश्रम में हो। भगवान पूर्णानन्द का जो अवलम्बन लिया है, वह निरन्तर रहता है। उसमें कोई भेद नहीं पड़ता। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं।

निरन्तर भावना करनी चाहिए। वीतराग... अब इस भावना का स्वरूप कहते हैं। **वीतराग सम्यक्त्वादिरूप शुद्ध आत्मा का एकदेश प्रगटपने को पाकर...** भावना कही न? भावना का स्वरूप कहते हैं। **वीतराग सम्यक्त्वादिरूप शुद्ध आत्मा का एकदेश प्रगट...** भगवान पूर्णानन्द है, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान, उसकी रमणता, वह वीतरागी पर्याय है। आहाहा! **वीतराग सम्यक्त्वादिरूप...** प्रगट, हों! **शुद्ध आत्मा का एकदेश प्रगटपने को...** एक भाग अन्दर निर्मल प्रगट हुआ। दूज उगी दूज। वह दूज फिर पूर्णिमा को प्रगट करेगी, लायेगी। आहाहा! दूज होकर फिर पूर्णिमा न हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा पूर्ण रीति से प्रतीति में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की वीतरागी पर्याय में जाता, उस पूर्ण पर्याय की अपेक्षा से एकदेश प्रगट है। वस्तु पूर्ण है, परन्तु उसकी प्रतीति और अनुभव किया, उसमें एकदेश प्रगट है। आहाहा!

विशेष तो यह है कि **एकदेश प्रगटपने को पाकर सब तरह से ज्ञान की भावना योग्य है। 'सब तरह से ज्ञान की भावना योग्य है।'** आहाहा! प्रगट हुआ, उसमें भी अब ज्ञान की भावना पूर्ण करने के लिये होती है। आहाहा! मेरी बातें रूखी लगे। प्रभु! वह तो वीतरागस्वरूप से विराजता है अन्दर। पूरी दुनिया—लोकालोक से भिन्न। पानी के लोटे में पानी भरा है और लोटा है। परन्तु वह पानी, पानी के आधार से रहा है, लोटा के आधार से नहीं। यह बात कैसे बैठे? क्योंकि पानी में भी कर्ता-कर्म-करण इत्यादि शक्तियाँ हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा में भी कर्ता-कर्म-साधन यह शक्तियाँ वह शरीर

में भी भिन्न अपने आधार से रहा हुआ है। आहाहा! उसमें अधिकरण नाम का गुण है। आहाहा! यह ऐसा दिखता है कि इस स्तम्भ के आधार से रहा है। नहीं। वह चीज़ जो रही है, वह अपने आधार से रही है। इस स्तम्भ के आधार से नहीं। क्योंकि उस परमाणु में रजकण है, उसमें भी कर्ता-करण / शक्ति करण, विभक्ति, यह शक्तियाँ उसमें— परमाणु में भी है। परमाणु अपने आधार से वहाँ रहे हैं। भगवान यहाँ अपने अधिकरण के साधन से यहाँ रहे हैं। शरीर के आधार से यहाँ रहा ही नहीं। शरीर भिन्न है, यह (आत्मा) भिन्न है। आहाहा! बात-बात में अन्तर। 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे अने एक त्रांबियाना तेर।' इसी प्रकार परमात्मा कहते हैं कि तेरे और मेरे बात-बात में अन्तर है, बापू! तू उल्टे रास्ते दौड़ गया है। आहाहा! बहुत सरस बात थी, हों! **शुद्ध आत्मा एकदेश प्रगटपने को पाकर सब तरह से ज्ञान की भावना योग्य है।** आहाहा! स्वरूप की एकाग्रता अकेली यही भावना करनेयोग्य है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७६

अथामुमेवार्थं दृष्टान्तदार्ष्टान्ताभ्यां समर्थयति–

२९९) णिम्मल–फलिहहँ जेम जिय भिण्णउ परकिय–भाउ।
अप्प–सहावहँ तेम मुणि सयलु वि कम्म–सहाउ।।१७६।।

निर्मलस्फटिकाद् यथा जीव भिन्नः परकृतभावः।
आत्मस्वभावात् तथा मन्यस्व सकलमपि कर्मस्वभावम्।।१७६।।

भिण्णउ भिन्नो भवति जिय हे जीव जेम यथा। कोडसौ कर्ता। परकिय–भाउ जपापुष्पाधुपाधिरुपः परकृतभावः। कस्मात्सकाशात्। णिम्मल–फलिहहं निर्मलस्फटिकात् तेम तथा भिन्नं मुणि मन्यस्व जानीहि। कम्। सयलु वि कम्म–सहाउ समस्तमपि भावकर्म–द्रव्यकर्मनोकर्मस्वभावम् कस्मात्। सकाशात्। अप्प–सहावहं अनन्तज्ञानादिगुणस्वभावात् परमात्मनः इति भावार्थः।।१७६।।

आगे इसी अर्थ को दृष्टान्त दृाष्टान्त से पुष्ट करते हैं–

निर्मल स्वच्छ स्फटिक भिन्न है यथा पराश्रित भावों से।
सभी शुभाशुभ भाव भिन्न हैं निर्मल आत्म स्वभावों में।।१७६/२९९।।

अन्वयार्थः– [जीव] हे जीव [यथा] जैसे [परकृतभावः] नीचे के सब डंक [निर्मलस्फटिकात्] महा निर्मल स्फटिकमणि से [भिन्नः] जुदे हैं, [तथा] उसी तरह [आत्मस्वभावात्] आत्मस्वभाव से [सकलमपि] सब [कर्मस्वभावम्] शुभाशुभ कर्म [मन्यस्व] भिन्न जानो।

भावार्थः– आत्मस्वभाव महानिर्मल है, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म ये सब जड़ हैं, आत्मा चिद्रूप है। अनंत ज्ञानादि गुणरुप जो चिदानंद उससे तू सकल प्रपंच भिन्न मान।।१७६।।

वीर संवत् २५०२, फाल्गुन शुक्ल ४, मंगलवार
दिनांक- २२-०२-१९७७, गाथा - १७६ से १८१, प्रवचन-२२४

परमात्मप्रकाश, १७६ गाथा। **आगे इसी अर्थ को दृष्टान्त दार्ष्टान्त से पुष्ट करते हैं—** दृष्टान्त से और उसका सिद्धान्त। इन दो को पुष्ट करते हैं।

२९९) णिम्मल-फलिहहँ जेम जिय भिण्णउ परकिय-भाउ।
अप्प-सहावहँ तेम मुणि सयलु वि कम्म-सहाउ।।१७६।।

हे जीव, जैसे नीचे के सब डंक... स्फटिकमणि, स्फटिकमणि। उसे डंक देने से ऐसे हरे, पीले फूल का सम्बन्ध होने से **महा निर्मल स्फटिकमणि से...** वह डंक है और डंक से... भिन्न है। निर्मल स्फटिकमणि से वह डंक और डंक से होनेवाली प्रतिछाया अन्दर लाल, पीली। वह निर्मल स्फटिक से भिन्न चीज़ है। यह तो दृष्टान्त है। **नीचे के सब डंक महा निर्मल स्फटिकमणि से सब जुदे हैं,...** आहाहा! डंक तो भिन्न है परन्तु उस डंक की जो प्रभा पड़ती है न अन्दर? है तो अपनी योग्यता स्फटिकमणि की, तथापि वह सब भाव स्फटिकमणि निर्मलानन्द निर्मल से डंक और डंक के निमित्त से होनेवाली प्रभा लाल आदि वह भिन्न चीज़ है। समझ में आया?

उसी तरह... उसकी भाँति **आत्मस्वभाव से सब शुभाशुभकर्म भिन्न जानो।** डंक को भिन्न जानो, वैसे यहाँ कर्म को भिन्न जानो। भिन्न जानो, ऐसा कहते हैं अर्थात् जैसे डंक और डंक के निमित्त से होनेवाली लाल आदि जो छाया, उसे निर्मल स्फटिक से भिन्न जानो। इसी प्रकार भगवान आत्मा शब्द पड़ा है कर्म का। जैसे वह डंक अकेला नहीं। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा निर्मल आत्मस्वभाव स्वरूप, वह आत्मा से कर्म और कर्म के संग से हुई विकल्पदशा, उसे यहाँ आत्मा के निर्मल स्वभाव से भिन्न जानो। तो तुझे सुख होगा। आहाहा! समझ में आया? तो तुझे धर्म होगा। समझ में आया?

डंक और डंक से उत्पन्न हुई लाल, पीली छाया। उन सबको निर्मल स्फटिक से भिन्न जानो। ऐसे भगवान आत्मा अपना स्वभाव शुद्धचैतन्य ज्ञान-आनन्दरस। आहाहा! निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध आत्मस्वभाव, उससे विकारी परिणाम और कर्म। सिद्धान्त से

लिया है न यह विकारी परिणाम, वे कर्म में जाते हैं। जैसे डंक से उत्पन्न हुई लाल, पीली छाया भी डंक में जाती है, उसी प्रकार। आहाहा! तुझे आत्मा चाहिए तो आत्मा निर्मलानन्द प्रभु अन्दर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शुद्ध वीतरागस्वभाव से भरपूर प्रभु आत्मा है। कैसे बैठे? वह कहे, आत्मा शरीर बिना नहीं रह सकता। वे कल आये थे। बरवाळावाले। शरीर बिना नहीं रह सकता, आधार बिना। यह बात ही कुछ गुम हो गयी है। वह स्वयं ही जहाँ निराधार, सत् के आधार बिना अन्दर प्रभु है। वास्तव में तो उसे शरीर का आधार नहीं, उसी प्रकार यहाँ आकाश का आधार भी उसे नहीं। आहाहा! आकाश को आत्मा का आधार नहीं। आत्मा अपने कर्ता-कर्म-करण के आधार से टिका है। ऐसी बातें अब लोगों को प्रपंच में पड़े हों पूरे दिन, उन्हें अब यह पुण्य के भाव से भिन्न है अथवा पुण्यभाव भी तुझसे भिन्न है। आहाहा!

भिन्न जानो। कर्म स्वभाव शुभाशुभकर्म से आत्मस्वभाव, आत्मस्वभाव, आत्मा का भाव, जानन-देखन-आनन्द, वह अनन्त शक्ति का स्वभाव, ऐसे आत्मस्वभाव से भिन्न जानो उस वस्तु को। यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय भी आत्मस्वभाव से भिन्न जानो, ऐसा कहते हैं। ऐसे नारियल... नारियल होता है न श्रीफल? उसके अन्दर में जो गोला होता है न सफेद मीठा। सेर, डेढ़ सेर श्रीफल मीठा। उस श्रीफल से ऊपर की लाल छाल जो है, वह श्रीफल से भिन्न है। और काचली जो है, क्या कहते हैं तुम्हारे?

मुमुक्षु : नरेठी... नरेठी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी श्रीफल की मिठास और सफेदाई से भिन्न है। आहाहा! इसी प्रकार प्रभु आत्मा इस शरीररूपी और कर्मरूपी काचली और पुण्य और पाप के विकल्प की वृत्तियाँ, आहाहा! उनसे प्रभु अन्दर भिन्न है। अरे! कहाँ प्रभु, इसे खबर भी नहीं होती बेचारे को। आहाहा! समझ में आया? जैसे वह नारियल है नारियल, वह काचली से, छाल से और काचली की ओर की लाल छाल से श्वेत / सफेद, मीठा गोला भिन्न है और उस सफेद श्वेत मीठे गोले से लाल छाल, काचली और नरेठी, वह भिन्न है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा शरीररूपी बाहर चीज़ नरेठी और कर्मरूपी काचली और अन्दर पुण्य-पाप के विकल्परूपी छाल। आहाहा! अरे! कहाँ इसे कुछ

पता नहीं कि मैं कौन हूँ? ऐसा जो भगवान आत्मा, वह पुण्य-पाप की छाल है, वह आत्मा से भिन्न है। कर्म हैं, वे आत्मा से भिन्न हैं और शरीर भी आत्मा से भिन्न है। जगत की चीज़। आहाहा!

ऐसे आत्मा को शुभाशुभकर्म से भिन्न जानो। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की पहली सीढ़ी। सुख के पंथ में जाने को पहली सीढ़ी। आहाहा! भगवान आत्मा; कहा न स्वभाव है। स्वभाव। जिसका स्वभाव निर्मल है। समझ में आया? १७६ है न? '**स्वभावात्**' यह तो शब्द पड़ा है भावार्थ में। भावार्थ लेते हैं, देखो!

आत्मस्वभाव... भगवान आत्मस्वभाव; जैसे वह श्रीफल का स्वभाव सफेद और मीठा स्वभाव है; इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर सफेद अर्थात् निर्मल और मीठा अर्थात् आनन्द, आहाहा! ऐसा जो उसका स्वभाव है। महा निर्मल है। **भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, ये सब जड़ हैं,...** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव जड़ है। वे बेचारे चिल्लाहट मचाते हैं। ऐई! यह जड़ की क्रिया कहते हैं, परन्तु वह जड़ है, सुन न, प्रभु! शरीर जड़ की क्रिया भिन्न है और यह दया, दान, व्रत के परिणाम जड़ हैं, वह क्रिया भिन्न है। आहाहा!

भाई ने कहा न। ...भाई का आज पत्र आया है। चर्चा करने आयेंगे चौबीसवीं तारीख को। पण्डितजी है, यहाँ आना हो तो।

मुमुक्षु : वह स्वयं ही अपने साथ चर्चा भले न कर ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ २४ तारीख को भावनगर जाना है। बापू! यहाँ किसके साथ चर्चा करें? भाई! यह वस्तु चर्चा का विषय नहीं। आहाहा! यहाँ तो वे लोग जो कहते हैं, वह उन्हें कहना है कि निमित्त से होता है, व्यवहार से निश्चय होता है। बड़ा झगड़ा। यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त जो चीज़ है, वह तो अपने स्वभाव से तो अत्यन्त भिन्न है। और अपने में पुण्य और दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय का जो राग उत्पन्न होता है, उससे भी भगवान भिन्न है और आत्मा से वह भिन्न है। भिन्न है, उससे क्या लाभ होगा? यह बड़ा विवाद अभी यह है। उपादान से होता है, उसमें निमित्त भी वास्तविक कारण है। वास्तविक कारण है, वह वास्तविक कारण तो ...की अपेक्षा से।

आत्मा की अपेक्षा से तो अवास्तविक आरोपित कारण है। आहाहा! क्या हो? निजघर जिसने देखा नहीं। निजघर किस चीज़ में है?

यह तो यहाँ कहते हैं कि **आत्मस्वभाव महानिर्मल है, भावकर्म,...** अर्थात्? दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि का भाव, वह भावकर्म है। वह तो शुभरागरूपी कर्म है। आहाहा! **द्रव्यकर्म...** जड़। **नोकर्म...** शरीर, **ये सब जड़ हैं,...** है? आहाहा! राग क्या जानता है? भगवान की भक्ति, पूजा, व्रत का जो विकल्प है, वह तो राग है। राग में जानने की शक्ति है? राग तो अन्ध है। ज्ञान बिना के राग में भाव है तो अन्धा जड़ है। बात कठिन पड़ती है। शरीर की क्रिया तो जड़ है। परन्तु चैतन्यस्वभाव जो शुद्धचैतन्य भगवान, उसकी अपेक्षा से दया, दान, व्रत के परिणाम भी जड़ है, इस चैतन्य का उनमें अभाव है। और उस जड़ का चैतन्यस्वभाव में अभाव है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मस्वभाव महानिर्मल है, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, ये सब जड़ हैं,... आत्मा तो चिद्रूप है। भगवान तो ज्ञानरूप है। ज्ञान की प्रधानता से कथन है न! ज्ञानरूप, श्रद्धारूप, शान्तिरूप, आनन्दरूप, स्वच्छतारूप, प्रभुतारूप, इन सबमें ज्ञानरूप है। ज्ञानरूप है। आहाहा! चिद्रूपोहं। और वह जड़रूपो यह। आहाहा! कठिन बात, भाई! लोगों को बेचारों को मिली नहीं थी, उन्हें बैठती नहीं। कठिन पड़ती है। आहाहा! अरे! जन्म-मरण का चक्र / फेरा मारे, बापू! वह मर-मरकर अवतार धारण करता है। आहाहा!

एक हमारे यहाँ स्वाध्यायमन्दिर में चिड़ा का बच्चा अकेला रहा पेट में। वहाँ नीचे गिरा, वहाँ किसी का पैर आ गया। वह है न, क्या कहलाता है वह? पुस्तक रखने की अलमारी... अलमारी। अन्दर है न अलमारी उस ओर की? वहाँ नीचे पड़ा। ...इतना जरा अब कहीं से आया होगा? वह आत्मा है अन्दर। आहाहा! कहीं से आया होगा? कितना समय उसके—चिड़िया के गर्भ में रहा और जहाँ बाहर निकला, वहाँ गिर गया नीचे। गिरा वहाँ किसी का पैर आया। आहाहा! और दूसरे शरीर में। ऐसे अनन्त काल से अपने स्वभाव के माहात्म्य और कीमत बिना पर का माहात्म्य और कीमत आँकते हुए मर गया है यह। आहाहा! समझ में आया? अपनी क्या कीमत है, उसकी खबर नहीं। राग और राग का फल धूल और उसकी इसे कीमत। आहाहा! मणिरत्न की कीमत। आहाहा!

मुमुक्षु : चेतन स्वयं रत्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! उसकी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : वह जड़ रत्न है, यह चेतन रत्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रात्रि में कहा था जरा, पाँच मिनिट में जरा नींद आयी उसमें एक लेकर आया... मोटा बहुत पैदा किया है। महाराज! आधा लो आधा। नींद आयी पाँच मिनिट। शाम को साढ़े छह, पौने सात। कोई लेकर आया। बहुत पैदा किया है, बहुत पैदा किया है। ऐई! ले लो भाई! हमारे काम है इस रत्न का।

मुमुक्षु : स्वप्न में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वप्न आया। पौने सात को। वह डाला, गोद में डाल दिया। अरे! हमारे यह किस काम का? ऐई! नीले थे नीले। वह नीलम होती है न ऐसे।

मुमुक्षु : पन्ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्ना नहीं, नीलम। यह नहीं हमारे, बापू! हमारे तो... ऐसा चैतन्यरत्न उसमें क्या कहें हमारे उसे। आहाहा! ...कैसे आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि मेरा नाथ यह चैतन्यस्वभाव से जागती ज्योति है और राग और पुण्य-पाप के भाव, वे जड़ अन्धकार अचेतन है। आहाहा! शरीर की क्रिया तो जड़ है, परन्तु यहाँ तो दया, दान और व्रत के भाव हैं, वे जड़ हैं। आहाहा! यह लोग ऐसा कहे, ऐई! यह तो सब जड़ की क्रिया करके... यह क्या कहा यहाँ? इसलिए तो खड़े रहे यहाँ।

इस शरीर के रजकण हैं, ऐसी वह चीज़ नहीं। उस प्रकार का परमाणु की जड़तारूपी ऐसी नहीं। परन्तु वह अरूपी, परन्तु जिसमें चैतन्य के प्रकाश का अभाव है, नास्ति है, ऐसा वह अचेतन जड़ है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी अचेतन जड़ है। आहाहा! उसकी चैतन्य चमत्कारिक वस्तु से तो वह भिन्न है। आहाहा!

आत्मा चिद्रूप है। जब यह जड़ है राग और दया, दान के विकल्प और शरीर

और कर्म जड़ हैं, वहाँ भगवान आत्मा चिद्रूप, ज्ञानरूप, आनन्दरूप। आहाहा! उस चैतन्य के स्वभाव का सूर्य प्रभु है। चैतन्यस्वभाव का सूर्य है। आहाहा! वह कहीं पामर रूप से बैठा, उसने कभी सुना नहीं। उसकी महत्ता को कभी देखा नहीं। यह बाहर की धूल में धमाका। उसमें दो-पाँच अरब पैसे हो जाये तो मानो हमने क्या किया हमने? धूल में भी नहीं, क्या हुआ? रंक भिखारी है। जड़ की माँग करे जड़ की, लाओ... लाओ... लाओ। परन्तु तीन लोक के नाथ अनन्त आनन्द की लक्ष्मी का निवास प्रभु है। आहाहा! पोपटभाई! यहाँ तो ऐसी बातें हैं। आहाहा! अपने आ गया है, नहीं?

आत्मा अनन्त ज्ञानादि लक्ष्मी का निवास है। आहाहा! चिद्रूप अर्थात् ऐसी भाषा, ऐसा नहीं देखना। उसका ज्ञानरूप, ज्ञानस्वरूप, जलहल ज्योति ज्ञानभाव वह है। आहाहा! आनन्दस्वरूप, आनन्दरूप, आनन्द चैतन्य की जाति, जाति की भात पड़ी है अन्दर, कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा, उससे रागादि भिन्न है। आहाहा! और रागादि से तेरी चीज़ भिन्न है। आहाहा!

अनन्त ज्ञानादि... गुण स्वभावत्वात। ऐसा शब्द है, एक शब्द रह गया है। गुण स्वभाववत् वात। गुण स्वभाववत् वात। संस्कृत में है। तो यहाँ लेना **अनन्त ज्ञानादि गुणरूप...** स्वभाव। **जो चिदानन्द...** आहाहा! अन्तर में प्रभु आत्मा तू अनन्त ज्ञानादि गुणरूप स्वभाव। आहाहा! ज्ञानादि गुणरूप स्वभाव **जो चिदानन्द...** गुणी, वह प्रभु आत्मा, गुणी में जैसे यह गुणी (बोरी) नहीं कहते, चाबल की बोरी, गेहूँ की बोरी, वह नहीं। उस बोरी में जैसे चावल और गेहूँ रहते हैं, चावल की बोरी होती है न! उसी प्रकार यह गुणी प्रभु, उसमें अनन्त ज्ञानादि गुण रहे हुए हैं। ऐई! अरेरे! आहाहा!

जिसके आगे तीर्थंकरगोत्र बँधे जो भाव, उसकी भी यहाँ कीमत नहीं। आहाहा! राग जड़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लोगों को चैतन्य की जाति जलहल ज्योति प्रभु विराजता है, उसकी इसे खबर नहीं होती। अन्ध को दिखता नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखनेवाला, जाननेवाला कौन है? वह रागरूप नहीं, शरीररूप नहीं, कर्मरूप भी नहीं। आहाहा! वह तो चिदानन्द चिद्रूप अनन्त ज्ञानादि स्वभावस्वरूप, अनन्त ज्ञानादि गुणस्वभावस्वरूप। है न? '**अनन्तज्ञानादिगुणस्वभावात परमात्मनः**' ऐसा। देखा! यह

तो फिर शब्द है, ऐसा। **ज्ञानादि गुणरूप जो चिदानन्द...** वह परमात्मा। **उससे तू सकल प्रपंच भिन्न मान।** उससे तेरा सकल प्रपंच... आहाहा!

गुण गुणी के अन्दर गुणी वस्तु और उसके गुण अनन्त। ऐसा भेद का विकल्प— राग उठे, वह भी तेरे स्वरूप से भिन्न जान। आहाहा! और जो भिन्न है, उससे तेरा अभिन्न तत्त्व ज्ञात हो, ऐसा स्वरूप नहीं है। समझ में आया? यह बड़ा विवाद है। चर्चाओं में यह बड़ा विवाद है। यह व्रत, नियम, अपवास और त्याग करते हैं, उससे समकित होगा। उसमें से निश्चय होगा। अरे! भगवान! जड़ में से चैतन्य आयेगा। समझ में आया? वह रागादि की क्रिया तो जड़ है। अरे! बहुत कठिन बातें! आहाहा!

अभी यह शरीर मैं हूँ, यह कहेंगे। उसमें से इसे हटना सुहाता नहीं, उसमें से राग से... आहाहा! चार गाथायें आयेंगी न जड़ की! **अनन्त ज्ञानादि गुणरूप जो चिदानन्द उससे तू सकल प्रपंच भिन्न मान।** आहाहा! यह १७६ हुई।

गाथा - १७७

अथ तामेव देहात्मनोर्भेदभावनां द्रढयति–

३००) जेम सहावि णिम्मलउ फलिहउ तेम सहाउ।
भंतिए मइलु म मण्णि जिय मइलउ देक्खवि काउ।।१७७।।

यथा स्वभावेन निर्मलः स्फटिकः तथा स्वभावः।
भ्रान्त्या मलिनं मा मन्यस्व जीव मलिनं दृष्ट्वा कायम्।।१७७।।

जेम इत्यादि। जेम सहावि णिम्मलउ यथा स्वभावेन निर्मलो भवति। कोडसौ। फलिहउ स्फटिकमणिः तेम तथा निर्मलो भवति। कोडसौ कर्ता। सहाउ विशुद्धज्ञानरुपस्य परमात्मनः स्वभावः भंतिए मइलु म मण्णि पूर्वोक्तमात्मस्वभावं कर्मतापन्नं भ्रान्त्या मलिनं मा मन्यस्व जिय हे जीव। किं कृत्वा। मइलउ देक्खवि मलिनं दृष्ट्वा। कम् काउ निर्मलशुद्धबुद्धैकस्वभाव–परमात्मपदार्थाद्विलक्षणं कायमित्यभिप्रायः।।१७७।।

आगे देह और आत्मा जुदे–जुदे हैं, यह भेद–भावना दृढ़ करते हैं–

स्फटिक मणि निर्मल है निज स्वभाव से आत्मा भी निर्मल।
मलिन देह को देख भ्रान्ति से आत्मा मानो नहीं समल।।१७७।।

अन्वयार्थः– [यथा] जैसे [स्फटिकः] स्फटिकमणि [स्वभावेन] स्वभाव से [निर्मलः] निर्मल है, [तथा] उसी तरह [स्वभावः] आत्मा ज्ञान दर्शनरुप निर्मल है। ऐसे आत्मस्वभाव को [जीव] हे जीव, [कायम् मलिनं] शरीर की मलिनता [दृष्ट्वा] देखकर [भ्रांत्या] भ्रम से [मलिनं] मैला [मा मन्यस्व] मत मान।

भावार्थः– यह काय शुद्ध–बुद्ध परमात्मपदार्थसे भिन्न है, काय मैली है, आत्मा निर्मल है।।१७७।।

गाथा-१७७ पर प्रवचन

आगे देह और आत्मा जुदे-जुदे हैं,... यह भाषा की बात नहीं। यहाँ तो भाव का अन्दर रणकार है यह तो। आहाहा! ऐसे देह और आत्मा एक मानना, वह व्यवहारनय

से। तो कहते हैं, देखो, यह व्यवहारनय है या नहीं? परन्तु इसका अर्थ क्या है? आहाहा! व्यवहारनय भी सत्यार्थ है या नहीं? नय सत्यार्थ है, उसका विषय सत्यार्थ है। उसकी नय की दृष्टि। निश्चय की दृष्टि से वह असत्यार्थ है। आहाहा! दृष्टान्त देते हैं। १७७।

३००) जेम सहावें णिम्मलउ फलिहउ तेम सहाउ।
भंतिए मइलु म मण्णि जिय मइलउ देक्खवि काउ।।१७७।।

आहाहा! यह भ्रान्ति से मलिन न जान।

जैसे स्फटिकमणि... स्फटिकमणि होती है न! हमने वहाँ जामनगर में देखा है। स्फटिक। अपने डॉक्टर हैं न। १००वीं गाथा चलती थी न वह। ९१ के वर्ष।

मुमुक्षु : मन्दिर में है स्फटिक की मूर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। वह भी स्फटिक की है। स्फटिक, स्फटिक ऐसा श्वेत / सफेद। साथ में कोई भी हो, उसकी प्रभा अन्दर पड़े। 'ज्यों स्फटिक निर्मलता रे स्फटिक की।' आता है न? 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे। आहाहा! श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया प्रबल कषाय अभाव रे, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे।' ऐसा स्वभाव स्फटिक जैसा। 'श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया।' तीन लोक के नाथ वीर जिनेश्वर परमात्मा, उन्होंने वाणी द्वारा धर्म कहा। 'प्रबल कषाय अभाव रे।' यह पुण्य और पाप के विकार के भाव से अभावस्वरूप भगवान को जानना, वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें, इसलिए लोगों को। निश्चय... निश्चय... निश्चय। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय अर्थात् यथार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहा न, निश्चय यथार्थ और व्यवहार उपचार। यह पहले से कहा, उसमें सातवें अध्याय में। मोक्षमार्गप्रकाशक शुरुआत में। भाई ने जवाब यह दिया है फूलचन्दजी ने। निश्चय अर्थात् यथार्थ। व्यवहार तो उपचार। आहाहा! आरोपित वस्तु है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि **जैसे स्फटिकमणि स्वभाव से निर्मल है,...** निर्मल की है, ऐसा नहीं। आहाहा! **उसी तरह आत्मा ज्ञान-दर्शनरूप निर्मल है। ऐसे आत्मस्वभाव को...** भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शनस्वभाव से निर्मल है। पुण्य-पाप के मैल और काया मैली इसे उसमें न डाल। आहाहा! निर्मलानन्द में मलिन को न डाल। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव तो मलिन हैं। व्यवहाररत्नत्रय का भाव भी मलिन है। भगवान तो निर्मल स्वभाव है। तो क्या व्यवहाररत्नत्रय—मलिन से निर्मल होता है? आहाहा! यह बात लोगों को कठिन पड़ती है। परन्तु यह तो लोग कहते हैं न। खानिया चर्चा में सब पड़ा है। व्यवहार-निश्चय का, निमित्त-उपादान का बहुत है। वह खोटा है। हमारे सीधा... अरे! भगवान, बापू! तूने सुना नहीं था न, तुझे खबर नहीं थी। आहाहा!

आत्मा ज्ञान दर्शनरूप निर्मल है। निर्मल... निर्मल... निर्मल प्रभु है। **ऐसे आत्मस्वभाव को हे जीव! शरीर की मलिनता देखकर...** आहाहा! हड्डियाँ, चमड़ी, पेशाब, विष्टा, वीर्य, आँसू, मैल सब। ऐसे मैल से भगवान को मलिन न देख। आहाहा! **हे जीव,... 'कायम् मलिनं दृष्ट्वा'** शरीर और रागादि की मलिनता देखकर **भ्रम से मैला मत मान।** आहाहा! भ्रमणा से... आहाहा! भगवान आत्मा तो निर्मल ज्ञान, दर्शन, स्वभाववन्त है। उसे पुण्य-पाप की मलिनता और शरीर की मलिनता से मलिन न देख। भ्रान्ति से मलिन न देख। आहाहा! सम्यग्दर्शन से निर्मल देख। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू!

मुमुक्षु : ऐसी बात ही जानने जैसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों ने बाहर से बदल डाला है। यह सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमणा करो, व्रत करो। ...बड़ी इतनी बड़ी ऐसी है। गुजराती द्रोणगिरि।

भाई! सब हो, उसके कारण से होने के काल में होता है और शुभराग भी उसके काल में होता है। काल के साथ। परन्तु उसके साथ यदि वह निश्चय का भान हो तो उसे व्यवहार कहा जाता है और वह व्यवहार भी निश्चय को सूचित करता है कि अन्दर एक निश्चय वस्तु है, तब उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! व्यवहार, निश्चय को प्राप्त नहीं करता। व्यवहार, निश्चय को सूचित करता है। एक पाली अनाज भरा हो

पाली में। तो वह पाली सूचित करता है कि इसमें पाली अनाज है। इतना। समझ में आया? पाली समझते हो? क्या कहते हैं? माप। दाने का माप। क्या कहते हैं? हमारे माणु कहते हैं माणु—माप। पाली होती है न दस सेर की पाली। वह ऐसा सूचित करती है कि इसमें एक पाली अनाज है। वह पाली ऐसा सूचित करती है। पाली अनाज को बताती है, परन्तु पाली अनाजरूप हो नहीं जाती और अनाज के कारण पाली के कारण अनाज पड़ा है अन्दर, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

अपने पाली कहते हैं न? वह माणु दस सेर का। माणु अर्थात् माप। माणु में से माप हुआ। मोटा माप। माणु अर्थात् माप। दस सेर का। ठेठ तक भरे न... माणा को। दाना नापे उसे। एक माणु, दो माणु, माप माप है वह। इसी प्रकार भगवान का माप, स्फटिकमणि रत्न जैसा उसका माप है। उसे निर्मल परिणति से मापे तो उसकी खबर पड़े, ऐसा है। मलिनता से मापे तो उसकी खबर पड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! शुभभाव से उसका माप नहीं आता, ऐसा कहते हैं।

देखकर भ्रम से मैला मत मानो। आहाहा! **यह काय...** अर्थ में पड़ा रहा है भाई बहुत इसमें। **यह काय शुद्ध-बुद्ध निर्मल...** ऐसा है शब्दार्थ। '**निर्मलशुद्धबुद्धैकस्वभाव-परमात्मपदार्थाद्विलक्षणं**' ऐसा है। निर्मल शब्द पड़ा रहा है, एक स्वभाव पड़ा रहा है। **शुद्ध-बुद्ध निर्मल एक स्वभाव परमात्मपदार्थ...** यह पूरा ऐसा चाहिए। समझ में आया? शुद्ध वह पवित्रता बताता है, निर्मलता शुद्धता को सूचित करता है। शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव निर्मल। ऐसा जो यह परमात्मा। आहाहा! ऐसी रागादि चीज़ से भिन्न देख। काया-शरीर मलिन भिन्न। आहाहा! निर्मलानन्द का नाथ, मलिन शरीर में ढँक गया है। समझ में आया? पसीना उतरे। नवद्वार तो यह है। दो और दो = चार और दो = छह, (और) दो = आठ और एक = नौ। पेशाब और विष्टा। इसके अतिरिक्त तो बाल के प्रकार लाखों हैं। उसमें से पसीना निकलता है न! यहाँ पसीना निकलता है, वह कहाँ से निकलता है? वह बाल में से सूक्ष्म पसीना। आहाहा! ऐसी मलिनता का भरपूर शरीर अशुचि है। इसी प्रकार पुण्य और पापभाव भी मलिन, अशुचि है। आहाहा! यह (समयसार) ७२ गाथा में आ गया है।

यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव शुभ। वे अशुचि हैं। भगवान शुचि निर्मल है। आहाहा!

मुमुक्षु : आस्रव है न आस्रव।

पूज्य गुरुदेवश्री : आस्रव है न! वहाँ आस्रव का अधिकार ७२। बहुत अधिक तो आया है बाहर भी। आहाहा! तब अब चिल्लाहट मचाते हैं न। ४२ वर्ष हुए। चैत्र कृष्ण ३ (गुजराती फाल्गुन कृष्ण ३) यहाँ आये हैं। १४ दिन यहाँ रहे ४२ वर्ष हुए। (संवत्) १९९१ चैत्र कृष्ण ३। आज चौथ हुई। चौदह दिन रहे। ४२ वर्ष तो यहाँ होंगे। आहाहा! अब चिल्लाहट मचाना अब निकले। आहाहा!

भाई! इसमें विवाद है न प्रभु! तुझे निश्चय करना पड़ेगा। यदि तुझे सत्पंथ में आगम ने कहा उस पंथ में जाना हो तो द्रव्य का आश्रय लेना पड़ेगा। आहाहा! और सारे आगम का सार यह वीतरागता है। सारा आगम बारह अंग का सार वीतरागता है। वीतरागता उत्पन्न कैसे हो? वीतरागता उत्पन्न कैसे हो?—कि स्वद्रव्य के आश्रय से। बारह अंग स्वद्रव्य के आश्रय की बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? पंचास्तिकाय में आया है न? चारों अनुयोग का शास्त्र का सार वीतरागता है। आहाहा! वीतरागी धर्म, वीतरागी आत्मा और वह वीतरागी पर्याय का धर्म, वीतरागी चारों ही अनुयोग का सार है। वह वीतराग सार कब प्रगट हो? यहाँ आया, भाई! पढ़ने जैसा है एक। उसके सामने आया है बड़ा—जैन सन्देश के सामने। सर्वज्ञता और नियतिवाद, उसके ऊपर एक आया। बड़ा लेख। विरुद्ध। उसके सामने। नियतिवाद सर्वज्ञ ऐसा शब्द प्रयोग नहीं करना चाहिए। परन्तु उसने यह प्रयोग किया, इसलिए बड़ा विरोध आया। बड़ा लेख है।

सर्वज्ञ भविष्य की भी बात जानते हैं। यह तो हम भी जानते हैं। तो हम भी सर्वज्ञ हैं। तो हम थोड़ा जानते हैं, वे अधिक जानते हैं। निश्चय से है उसे जानते हैं, उसका नाम सर्वज्ञ कहा जाता है। नियत है, उसे जाने, वह तो हम भी जानते हैं, भविष्य में ऐसी पर्याय होगी, परन्तु यह तो अनियत, नहीं निश्चित कौन पर्याय, उसे जानते हैं। यह मार्ग। मोक्ष... बहुत यह कठिन पड़ जाता है। आहाहा! तो फिर उसका नियत होना होगा तो होगा, ऐसे इस रावण को नियत था नरक जाने का, राम को नियत था मोक्ष जाने का।

उसे उसमें पुरुषार्थ काम नहीं करता। नियत... ऐसे सब प्रश्न रखे हैं भाई के साथ सामने। उस शब्द की जरा वह थी। बात सच्ची। सर्वज्ञता,... नियतता ऐसा लिखा था न?

सर्वज्ञ तो नियतता के साथ उसका पुरुषार्थ उस काल में ऐसा होता है; स्वभाव ऐसा होता है; निमित्त का अभाव, वह सब इकट्ठा ही होता है। आहाहा! और नियत है, प्रत्येक पर्याय निश्चय है, ऐसा यदि निर्णय करने जाये तो उसे सर्वज्ञ का निर्णय होता है और सर्वज्ञ का निर्णय करने जाये, उसे द्रव्य का आश्रय होता है। इसी प्रकार वहाँ उसका पुरुषार्थ आता है। आहाहा! ...किया है। वाँचने योग्य है। बहुत लेखन है। किसी ने पूछा है जैनसन्देश के सामने। आयेगा परस्पर जवाब। क्योंकि नियत.... कर्म प्रमाण होता है और इस प्रमाण होता है तो मुझे कुछ करने का रहा ही नहीं। अरे भाई! परन्तु नियत है। जिस-जिस समय में जहाँ-जहाँ होनेवाली वह नियत। तब नियत की है किसने? किये बिना नियत कहाँ से आ गया? ऐसा कहते हैं। ऐई! चेतनजी! पढ़ा है। जैनगजट में आया है। अरे! ठीक, परन्तु अब उकला तो सही। आहाहा! यहाँ तो हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष यह तो बात है। वे कहें कि होनेवाला था, वैसा हुआ करे, हम पुरुषार्थ क्या कर सकते हैं? अरे! सुन न! सर्वज्ञ जगत में है प्रभु, उन्होंने तीन काल—तीन लोक देखे, ऐसी पर्याय की शक्ति है। शक्ति है, सामर्थ्य है, वह पर्याय का पूर्ण स्वरूप है, यह प्रतीति किसे हो? कि जो जाने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा जाने, ऐसा कहते हैं यह तो। आहाहा!

जिसने केवलज्ञान... वीतराग अरिहन्तदेव एक समय में ऐसे परमात्मा की श्रद्धा करने जाता है, वहाँ अपना स्वभाव सर्वज्ञ है, उसके ऊपर दृष्टि पड़ती है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! चलती बात से। आहाहा! यह तो जैन की प्रोफेसर की कॉलेज है यह तो। बापू! यह तो परमात्मा की कॉलेज-सभा है। आहाहा! परमात्मा जगत के अन्दर एक गुण की एक पर्याय। आहाहा! त्रिकाली शक्ति गुण, उसकी एक समय की दशा अनन्त केवली को जाने। आहाहा! उन अनन्त केवलियों से अनन्तगुणे अनन्त निगोद के जीव को जाने। आहाहा! जिसका अन्त नहीं। उसके एक-एक जीव के अनन्त गुण, जिनका अन्त नहीं, आकाश का अन्त नहीं, उससे अनन्तगुणे

आकाश के गुण। आहाहा! ऐसे उन गुणों की पर्याय भगवान को पूर्ण प्रगट हुई, उसका निश्चय करने जाता है तो अपने आत्मा में घुस जाता है। आहाहा! यह साध्य कहने का अर्थ है। समझ में आया? ऐसी बात है।

बहुत चला था हमारे ७२ में। (संवत्) १९७२, ७२। ६१ वर्ष हुए। ७० और २ संवत्। यह पहले तो तुम्हारा जन्म भी नहीं था। बड़ी चर्चा सम्प्रदाय की। एक दिन तो छोड़कर चले गये थे, नहीं? वस्तु की स्थिति क्या है? गड़बड़ है, विपरीत है। आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ एक समय में तीन काल—तीन लोक देखते हैं। ऐसे सर्वज्ञ की अस्ति जगत में है, उसके अस्तित्व की श्रद्धा, मौजूदगी की श्रद्धा, जहाँ जानते हैं, तो पर्याय के आश्रय से श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! यह त्रिकाली सर्वज्ञ स्वभाव, द्रव्यस्वभाव कहो या सर्वज्ञस्वभाव कहो। आहाहा!

वस्तु अन्दर सर्वज्ञस्वभाव से विराजमान परमात्मा स्वयं परमात्मा, उसका आश्रय लेने जाता है, तब उसे नियत का और पर्याय का पूर्णता का निश्चय होता है। समझ में आया? और उस निश्चय का फल आनन्द का वेदन होना, वह निश्चय का फल है। आहाहा! सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा—ऐसी सत्ता सर्वज्ञ जगत में है। उन सर्वज्ञ की पर्याय उन्हें प्रगट हुई, वह कहीं बाहर से आयी है? आहाहा! अन्तर सर्वज्ञस्वभाव में से आयी है। तो जिसकी पर्याय की श्रद्धा करने जाये, पर्याय तो पर है। स्वयं तो सर्वज्ञ है नहीं। उन सर्वज्ञ की पर्याय में निर्णय करता है अपनी अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञ का निर्णय कहाँ से होगा? समझ में आया?

यह सर्वज्ञस्वभाव भगवान आत्मा और कहने का आशय भी आचार्य का यह है। वीतरागता, उनका कोई भी शब्द जैन सिद्धान्त का, उसका वीतरागता तात्पर्य है। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य मणिरत्न अनन्त गुण के पासावाला चैतन्यरत्न, उसमें सन्मुख होने से उसे सर्वज्ञ की और नियत की श्रद्धा तब उसे सच्ची होती है। यह पुरुषार्थ आ गया, स्वभाव आ गया, सब पाँचों ही समवाय आ गये। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत, भाई! न्याय पकड़ना कठिन।

यहाँ आया न? **यह काय शुद्ध-बुद्ध निर्मल एक परमात्मपदार्थ से भिन्न है,...**

इतना डालना अन्दर। निर्मल और शुद्धस्वभाव। निर्मल और स्वभाव। निर्मल एक स्वभाव। आहाहा! यह हर समय 'एक' का निकाल देते हैं। नियत में अभेद है, उसमें अभेद है, उसमें अभेद है। पर्याय अनेक, विकल्प अनेक नहीं, एक है। आहाहा! सामान्य कहो, एक कहो, अभेद कहो, निश्चय कहो। समझ में आया? ऐसी व्याख्या और यह प्ररूपणा। ऐई! धर्मचन्दजी! अब ऐसी आत्मा की। एक घण्टे में कितनी अगम-निगम की बातें आवे अब इसे।

मुमुक्षु : न्याययुक्त है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : लॉजिक है तो न्याय से तो कहा जाता है। आहाहा!

यह काय शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्मपदार्थ भिन्न है, काय मैली है,... आहाहा! **आत्मा निर्मल है।** बहुत संक्षिप्त कर दिया।

गाथा - १७८ से १८१

अथ पूर्वोक्तभेदभावनां रक्तादिवस्वस्त्रदृष्टान्तेन व्यक्तिकरोति चतुष्कलेन–

३०१) रतैं वत्थैं जेम बुहु देहु ण मण्णइरत्तु।
देहिं रत्तिं णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ रत्तु।।१७८।।

३०२) जिण्णिं वत्थिं जेम बुहु देहु ण मण्णइ जिण्णु।
देहिं जिण्णिं णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ जिण्णु।।१७९।।

३०३) वत्थु पणट्ठइ जेम बुहु देहु ण मण्णइ णट्ठु।
णट्ठे देहे णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ णट्ठु।।१८०।।

३०४) भिण्णउ वत्थु जि जेम जिय देहहँ मण्णइ णाणि।
देहु वि भिण्णउँ णाणि तहँ अप्पहँ मण्णइ जाणि।।१८१।।

रक्तेन वस्त्रेन यथा बुधः देहं न मन्यते रक्तम्।
देहेन रक्तेन ज्ञानी तथा आत्मनं न मन्यते रक्तम्।।१७८।।

जीर्णेन वस्त्रेण तथा बुधः देहं न मन्यते जीर्णम्।
देहेन जीर्णेन ज्ञानी तथा आत्मानं न मन्यते जीर्णम्।।१७९।।

वस्त्रे प्रणष्टे यथा बुधः देहं न मन्यते नष्टम्।
नष्टे देहे ज्ञानी तथा आत्मानं न मन्यते नष्टम्।।१८०।।

भिन्नं वस्त्रमेव यथा जीव देहात् मन्यते ज्ञानी।
देहमपि भिन्नं ज्ञानी तथा आत्मनः मन्यते जानीहि।।१८१।।

यथा कोडपि व्यवहारज्ञानी रक्ते वस्त्रे जीर्णे वस्त्रे नष्टेडपि स्वकीयवस्त्रे स्वकीयं देहं रक्तं जीर्णं नष्टं न मन्यते तथा वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानी देहे रक्ते जीर्णे नष्टेडपि सति व्यवहारेण देहस्थमपि वीतरागचिदानन्दैकपरमात्मानं शुद्धनिश्चयनयेन देहाद्भिन्नं रक्तं जीर्णं नष्टं न मन्यते इति भावार्थः। अथ मण्णइ मन्यते। कोडसौ। णाणि देहवस्त्रविषये भेदज्ञानि। किं मन्यते। भिण्णउ भिन्नम्। किम्। वत्थु जि वस्त्रमेव जेम यथा जिय हे जीव। कस्माद्भिन्नं मन्यते। देहहं

स्वकीयदेहात्। दृष्टान्तमाह। मण्णइ मन्यते। कोडसौ। णाणि देहात्मनोर्भेदज्ञानी तहं तथा भिन्नं मन्यते। कमपि देहु वि देहमपि। कस्मात्। अप्पहं निश्चयेन देहविलक्षणाद्व्यव्यवहारेण देहस्थात्सहजशुद्धपरमात्मनन्दैकस्वभावान्निजपरमात्मनः जाणि जानीहीति भावार्थः।।१७८-१८१।।

आगे पूर्वकथित भेदविज्ञान की भावना रक्त पीतादि वस्त्र के दृष्टांत से चार दोहों में प्रगट करते हैं-

जैसे लाल वस्त्र से ज्ञानी काया को नहिं माने लाल।
वैसे रक्त देह से ज्ञानी आत्मा को नहिं माने लाल।।१७८।।

जैसे जीर्ण वस्त्र से ज्ञानी काया को नहिं माने जीर्ण।
वैसे जीर्ण देह से ज्ञानी आत्मा को नहिं माने जीर्ण।।१७९।।

जैसे नष्ट वस्त्र से ज्ञानी काया को नहिं माने नष्ट।
वैसे नष्ट काय से ज्ञानी आत्मा को नहिं माने नष्ट।।१८०।।

तन से भिन्न वस्त्रवत् ज्ञानी आत्मा को भी मानें भिन्न।
ज्ञानीजन आत्मा को सभी पदार्थों से भी मानें भिन्न।।१८१।।

अन्वयार्थः- [यथा] जैसे [बुधः] कोई बुद्धिमान् पुरुष [रक्ते वस्त्रे] लाल वस्त्र से [देहं रक्तम्] शरीर को लाल [न मन्यते] नहीं मानता, [तथा] उसी तरह [ज्ञानी] वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानी [देहे रक्ते] शरीर के लाल होने से [आत्मानं] आत्मा को [रक्तम् न मन्यते] लाल नहीं मानता। [यथा बुधः] जैसे कोई बुद्धिमान् [वस्त्रे जीर्णे] कपड़े के जीर्ण (पुराने) होने पर [देहं जीर्णम्] शरीर को जीर्ण [न मन्यते] नहीं मानता, [तथा ज्ञानी] उसी तरह ज्ञानी [देहे जीर्णे] शरीर के जीर्ण होने से [आत्मानं जीर्णम् न मन्यते] आत्मा को जीर्ण नहीं मानता, [यथा बुधः] जैसे कोई बुद्धिमान् [वस्त्रे प्रणष्टे] वस्त्र के नाश होने से [देहं नष्टम्] देह का नाश [न मन्यते] नहीं मानता, [तथा ज्ञानी] उसी तरह ज्ञानी [देहे नष्टे] देह का नाश होने से [आत्मानं] आत्मा का [नष्टम् न मन्यते] नाश नहीं मानता, [जीव] हे जीव, [यथा ज्ञानी] जैसे ज्ञानी [देहाद् भिन्नं एव] देह से भिन्न ही [वस्त्रम् मन्यते] कपड़े को मानता है, [तथा ज्ञानी] उसी तरह ज्ञानी [देहमपि] शरीर को भी [आत्मनः भिन्नं] आत्मा से जुदा [मन्यते] मानता है, ऐसा [जानीहि] तुम जानो।

भावार्थः– जैसे वस्त्र और शरीर मिले हुए भासते हैं, परंतु शरीर से वस्त्र जुदा है, उसी तरह आत्मा और शरीर मिले हुए दिखते हैं, परंतु जुदा हैं। शरीर की रक्तता से, जीर्णता से और विनाश से आत्मा की रक्तता, जीर्णता और विनाश नहीं होता। यह निसंदेह जानो। यह आत्मा व्यवहारनयकर देह में स्थित है, तो भी सहज शुद्ध परमानंदरुप निजस्वभावकर जुदा ही है, देह के सुख–दुःख जीव में नहीं हैं।।१७८–१८१।।

गाथा-१७८ से १८१ पर प्रवचन

अब **आगे पूर्वकथित भेदविज्ञान की भावना रक्त पीतादि वस्त्र के दृष्टान्त से चार दोहों में प्रगट करते हैं—**

३०१) रतैं वत्थैं जेम बुहु देहु ण मण्णइरत्तु।
देहिं रत्तिं णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ रत्तु।।१७८।।

३०२) जिण्णिं वत्थिं जेम बुहु देहु ण मण्णइ जिण्णु।
देहिं जिण्णिं णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ जिण्णु।।१७९।।

३०३) वत्थु पणट्ठइ जेम बुहु देहु ण मण्णइ णट्ठु।
णट्ठे देहे णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ णट्ठु।।१८०।।

३०४) भिण्णउ वत्थु जि जेम जिय देहहँ मण्णइ णाणि।
देहु वि भिण्णउँ णाणि तहँ अप्पहँ मण्णइ जाणि।।१८१।।

अन्वयार्थः—जैसे कोई बुद्धिमान पुरुष लाल वस्त्र से शरीर को लाल नहीं मानता,... क्या कहते हैं ? वस्त्र के लाल वस्त्र से शरीर को लाल मानता नहीं। वस्त्र के लाल रंग के कारण से शरीर को लाल नहीं मानता। कहो, बराबर है ? **शरीर को लाल नहीं मानता, उसी तरह वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानी...** देखा! वापस ज्ञानी शब्द इतना किया। आहाहा! रागरहित आत्मा वीतराग स्वसंवेदनज्ञानी, अपना स्वभाव वीतरागस्वरूप है, उसे स्व अर्थात् अपने वेदन से जिसने जाना, ऐसा वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा!

ज्ञानी किसे कहते हैं ? और धर्मी किस प्रकार से उसे धर्मी कहना ? आहाहा!

वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानी... आहाहा! शास्त्रज्ञानी कि यह सब बाहर के ज्ञानी यह जानपनेवाले, उन्हें यहाँ ज्ञानी नहीं कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं।

रागरहित निर्विकल्प अभेद का स्व अर्थात् अपना प्रत्यक्ष वेदन, उसे ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पायी हो। आहाहा! शरीर तो मिट्टी, जड़ है। परन्तु जब वह सम्यग्दर्शन वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से प्राप्त करती है। आहाहा! कहो, यहाँ कहे, वीतरागी ज्ञानी अर्थात् वीतरागी केवली को लेना है यहाँ? यहाँ तो वस्त्र को जैसे लाल को शरीर को लाल जानता नहीं, वैसे शरीर की जो स्थिति है, वैसे आत्मा को उस प्रकार से जानता नहीं। आहाहा!

ज्ञानी **शरीर के लाल होने से...** शरीर लाल होता है न गेहूँवर्ण शरीर लाल। **आत्मा को लाल नहीं मानता।** आहाहा! एक दृष्टान्त हुआ। वस्त्र को लाल देखकर, शरीर को लाल लौकिक चतुर मनुष्य मानते नहीं। इसी प्रकार शरीर को लाल देखकर लोकोत्तर ज्ञानी आत्मा को लाल मानते नहीं।

जैसे कोई बुद्धिमान कपड़े के जीर्ण होने पर... शरीर जीर्ण, वस्त्र जीर्ण हुआ। **शरीर को जीर्ण मानते नहीं।** आहाहा! **कपड़े के जीर्ण होने पर शरीर को जीर्ण मानते नहीं, उसी तरह ज्ञानी (धर्मी)...** यह व्याख्या आ गयी पहली वीतराग स्वसंवेदन। **शरीर के जीर्ण होने से आत्मा को जीर्ण नहीं मानता।** शरीर जीर्ण हो गया, चमड़ी ऐसे लटके, ऐसे आँख ऐसी हो, वह तो शरीर की स्थिति है। जैसे वस्त्र की स्थिति वस्त्र में है और शरीर की स्थिति शरीर में है। आत्मा के कारण उसमें कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा तो शरीर की स्थिति की मर्यादा से अस्ति से भिन्न अस्ति है। आहाहा! वस्त्र की अस्ति से शरीर की अस्ति भिन्न है, उसी प्रकार शरीर की अस्ति से भगवान आत्मा की स्थिति भिन्न है। आहाहा! यह तो शरीर मैं, शरीर मैं, हो गया जाओ। मेरा शरीर, मेरा शरीर, मेरा शरीर, आत्मा को मार दिया। वस्त्र मेरा, वस्त्र मेरा। वैसे शरीर मेरा। आहाहा!

आत्मा को जीर्ण नहीं मानता। जैसे कोई बुद्धिमान वस्त्र का नाश होने से देह का नाश नहीं मानता,... वस्त्र जीर्ण हुआ तो देह का नाश होता है ? आहाहा ! **तथा ज्ञानी देह का नाश होने से आत्मा का नाश नहीं मानता।** आहाहा ! देह तो नाशवान ही है, भिन्न है। उसमें देह के नाश से आत्मा का नाश होता है ? भगवान तो सच्चिदानन्द प्रभु जीवित ज्योति नित्यानन्द का नाथ भगवान तो सदा जीवित है। आहाहा ! देह के नाश से अपने को... मैं मर जाता हूँ, वह मरकर चला जाये। बहुत पीड़ा हो तो मैं मर जाता हूँ। मैं मर जाता हूँ अर्थात् कौन परन्तु ?

मुमुक्षु : मैं जाता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाता है कहे तो क्या ? वह तो और आत्मा जाता हूँ। यह तो मैं मर जाता हूँ। आहाहा ! मुझे कहीं चैन नहीं आता। मुझे कहीं चैन नहीं अर्थात् किसे ? आहाहा ! यह काटता है न, क्या कहलाता है ? गाय को और यह कुत्ते। हड़किया कुत्ता, उसका जब उसे आता है हड़किया कुत्ता। वह वेदन सहा नहीं जाये, ऐसा है। समझ में आया ? हड़किया कुत्ता अर्थात् पागल, पागल कुत्ता। तुम्हारे पागल कहते हैं न ! आहाहा !

एक लड़की थी जवान कुँवारी। हड़किया कुत्ते ने काट लिया। प्रेमचन्दभाई के मित्र की पुत्री थी। ... प्रेमचन्दभाई राणपुरवाले। वह कहे, काका ! मुझे कहीं चैन नहीं। ४८ घण्टे तक पानी नहीं, हवा नहीं, अनाज नहीं। पंखा नहीं किया जाये, पानी पिया नहीं जाये और अन्दर पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा। शरीर ४८ घण्टे में सूख गया। देह छोड़कर आत्मा चला गया। आहाहा ! तब देह के नाश से कुछ आत्मा का नाश होता है ? यह तीन कहा।

आत्मा से जुदा मानता है, ऐसा तुम जानो। ऐसा आचार्य महाराज कहते हैं। विशेष भावार्थ में....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५०२, फाल्गुन शुक्ल ५, बुधवार
दिनांक- २३-०२-१९७७, गाथा - १७८ से १८२, प्रवचन-२२५

परमात्मप्रकाश, १७८ से १८१ का भावार्थ है। **जैसे वस्त्र और शरीर मिले हुए भासते हैं,...** दृष्टान्त सीधा है। **परन्तु शरीर से वस्त्र जुदा है,...** भिन्न है। पृथक् है। कब? अभी भिन्न है। शरीर भिन्न, चैतन्य भिन्न। आहाहा! **उसी तरह आत्मा और शरीर मिले हुए दिखते हैं,...** आत्मा और शरीर मानो एक जगह इकट्ठे हुए, ऐसा दिखाई दे, परन्तु भिन्न हैं। आहाहा! वस्त्र और शरीर अभी भिन्न हैं। इसी प्रकार शरीर और आत्मा अभी भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : मर जाये तब भिन्न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मरे कौन? देह छूटे, वह क्षेत्रान्तर होता है। देह तो पृथक् ही है अन्दर। आहाहा!

शरीर की रक्तता से। वस्त्र पहला ले न, वैसे **शरीर की रक्तता से, जीर्णता से और विनाश से आत्मा की रक्तता, जीर्णता और विनाश नहीं होता।** देखो! लाल शरीर, जीर्ण शरीर, नाशवान शरीर वह आत्मा—ऐसा नहीं। आत्मा तो उससे भिन्न है। आहाहा! वह तो सचेत शरीर है ऐसा कहते हैं न? प्रश्न है न वह? सचित शरीर से धर्म नहीं होता? यह खानिया चर्चा में प्रश्न है न। कहो, ऐसे प्रश्न, अरेरे! सचित शरीर, वह तो चीज़ है, इस अपेक्षा से उसे निमित्त से, शरीर तो अचेतन जड़ है। ऐसा कि शरीर अपने चाहें जाना चाहें वहाँ शरीर जाता है, ऐसे ध्यान रखें तो। कहो, अरे! भगवान! आहाहा! वह तो मिट्टी है, जड़ है, उसकी उस समय की जो पर्याय उत्पन्न होने की, वह उसके काल में उसके कारण से उसमें होती है। आत्मा के कारण से वह चले और बोले। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा को इच्छा हो तब चलता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल इच्छा हो तो चलता नहीं। इच्छा हो तो यह पक्षघात होता है न। बहुत इच्छा होती है। पक्षघात हो। इच्छा तो बहुत हिलने की, ऐसे कुछ हिले

नहीं जरा भी। उसकी पर्याय का काल ही ऐसा है, वह हिले किसका? आहाहा! और अभी चलता है, वह उसके कारण से है। आहाहा!

आत्मा... इस प्रकार **निःसन्देह जानो।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! शरीर के नाश से जीव का नाश नहीं होता, शरीर की जीर्णता से आत्मा की जीर्णता नहीं, आत्मा के... रक्त रंग से शरीर से-रंग से आत्मा को रंग नहीं। आहाहा! ... है। आहाहा! **यह आत्मा व्यवहारनयकर देह में स्थित है,...** निमित्त अपेक्षा से जाने व्यवहार से अन्दर है, ऐसा। **तो भी सहज शुद्ध परमानन्दरूप एक निजस्वभावकर...** यह शब्द डालना चाहिए इसमें। आहाहा! स्वाभाविक **शुद्ध परमानन्दरूप एक निजस्वभावकर जुदा ही है,...** शरीर से। आहाहा! उस भिन्न की भिन्न दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और द्रव्यदृष्टि है। आहाहा!

यह चैतन्य द्रव्य शरीर के रजकण से अत्यन्त भिन्न, वह कब यथार्थरूप से ज्ञात हो? भिन्न है परन्तु भिन्नपने का अन्दर भान करे। आहाहा! शरीर के लक्ष्य को छोड़कर, शरीर का आश्रय छोड़कर और ज्ञान की पर्याय के आधार से अन्तर का आश्रय ले। आहाहा! तब वह आत्मा शरीर से भिन्न है उसका... आहाहा! समझ में आया? सहज वह वस्तु स्वाभाविक वस्तु है। वह किसी ने की है या कृत्रिम है, ऐसा नहीं है। स्वाभाविक वस्तु ही ऐसी है। शुद्ध सहज चिदानन्द एक स्वभावरूप भगवान आत्मा। देखा! एक स्वभावरूप। पर्याय के अनेक प्रकार, उसरूप नहीं। वह तो एक स्वभावरूप ही है। आहाहा! एक शब्द चाहिए अन्दर। पड़ा रहा है।

सहज शुद्ध परमानन्दरूप एक निजस्वभावकर... एक निजस्वभाव। ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव से निजवस्तु, शरीर से भिन्न तब जानने में आती है। आहाहा! समझ में आया? तब उसे धर्मदृष्टि और सम्यग्दृष्टि होती है। आहाहा! इसके बिना सम्यग्दृष्टि नहीं। शरीर की क्रिया होती है देहादि की, उसे मेरी है और उस क्रिया से मुझे लाभ होता है, तब तक उसने शरीर को अपना माना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। लोग नहीं कहते कि शरीर का सदुपयोग करो। दया में, दान में कोई जगत की सेवा में इसे लगाओ, सदुपयोग होगा। पोपटभाई! सदुपयोग शरीर का होगा? शरीर आद्यम खलु धर्म साधनं। आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहते हैं। भाई! यह शरीर एक ओर भगवान आत्मा, दोनों अत्यन्त निराली चीज़, निरालीरूप से भिन्न पड़ी है। तुझे देखने की आलस्य से वह भिन्न दिखती नहीं। समझ में आया? अन्यमति में तो कहते हैं न, 'मेरी नजर के आलस्य से रे मैंने निरखे न नयन से हरि।' मेरे नयन के आलस्य से रे मैंने निरखे न हरि, आत्मा। आत्मा को हरि कहते हैं। क्योंकि अज्ञान और दोष का हरनेवाला, इसलिए प्रभु आत्मा हरि है। आहाहा! ऐसे आत्मा को 'नयन के आलस्य से रे...' आहाहा! मेरी आँखों में ज्ञान के नेत्र के आलस्य के कारण से, आहाहा! वह नयन पर को देखते हैं परन्तु अपने को देखने के लिये काम नहीं करता, वह नयन आलसी है। आहाहा!

धर्म चीज़ ऐसी सूक्ष्म है कि उसे अन्दर में देह से भिन्न अन्दर है, ऐसा भिन्नपना कब भासित हो? कि शरीर के ऊपर के लक्ष्य को छोड़कर और लक्ष्य को चैतन्य द्रव्य पर जोड़े। आहाहा! तब भिन्न है, वैसा भान भिन्न का होता है। आहाहा! कहो, ऐसा है।

अब कहते हैं, **देह के सुख-दुःख जीव में नहीं है।** यह क्या कहते हैं? देह में प्रतिकूलता आवे, वह जीव को नहीं। जो यह शरीर की अनुकूलता हो सब, वह जीव को नहीं। शरीर निरोग हो, और हीरा की भस्म खायी हो और शरीर सुन्दर की आकृति और सुन्दर रहे तो कहते हैं कि वह अनुकूलता अर्थात् सुख। वह अनुकूलता जीव में नहीं। आहाहा! सुख-दुःख मानना, वह दूसरी बात है। इस जीव में अनुकूलता सब पाँच इन्द्रिय व्यवस्थित, शरीर निरोगी, आयुष्य लम्बा और शरीर की एक-एक इन्द्रिय पुष्ट। कहते हैं कि वह शरीर की अनुकूलता जिसे जगत कहता है, वह आत्मा में नहीं। आहाहा!

जड़ है यह मिट्टी, यह तो। इसकी अनुकूलता अर्थात् इसकी अनुकूलता अर्थात् शरीर की निरोगता, शरीर की पाँचों इन्द्रिय सही। प्रत्येक इन्द्रिय पृथक्-पृथक् अपना काम करे। आहाहा! ऐसी सब जो सुविधा शरीर की, वह जीव को नहीं है। आहाहा! कहो, समझ में आया? और शरीर की सुविधा, यह असुविधायें—रोग, क्षय। क्षय (टी.बी.) हो जाये तो खें... खें हो जाये अन्दर। हाय... हाय... ऐसा हो जाये शरीर। यह सब असुविधा शरीर को है, आत्मा को नहीं। आहाहा! कमर मुड़ जाये चलते हुए।

बहिन को है न भाई के। झबेरचन्दभाई की माँ नहीं ऐसे। ऐसे बहुत बेचारी लकड़ी से ऐसे चले। परन्तु वह वांकापन और टेढ़ापन, वह शरीर में है। आत्मा में वह वांकापन और टेढ़ापन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह आया न? आयी बहिन, लो अब। शरीर की स्थिति है।

हमारी बहिन थी उमराला में। हमारे पिता से बड़े भाई और उनके बड़े भाई की पुत्री। हमारे से बहुत बड़ी उम्र। परन्तु ऐसे मुड़ गयी। ऐसे ही चले। दूसरे के साथ बात करती हो तो ऐसा करके खड़ी रहे मुश्किल से। तब सीधे होकर बात करे। हमारे पिता से बड़े भाई थे। उनकी पुत्री, यह तो हेमचन्द को, वह मुम्बई। उनसे बड़े थे। उनके पुत्र नहीं था। पुत्री थी। उमराला में थे। शरीर बहुत... बहुत प्रेमवाले थे, परन्तु शरीर ऐसा जीर्ण और ऐसा। ऐसे बात करनी हो तो खड़े हों, तब ऐसा करके खड़े हों, तब बात करे। वह सब शरीर की स्थिति है, दशा है। वह आत्मा में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात नहीं बैठना। पूरा लोचा शरीर का मैं हूँ और उसे अनुकूलता, तो मुझे सुख, उसे प्रतिकूलता तो मुझे दुःख। आहाहा!

.... नहीं वह स्कूल का नहीं? 'शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें।' स्कूल में नहीं आता, स्कूल में? हाँ वह। वह तो यह 'शरीर से सुखी, सुखी सर्व बातें।' ऐसा आता था। धूल में भी नहीं। सुखी की व्याख्या क्या? शरीर की अनुकूलता को यहाँ सुख कहते हैं, वह जीव को नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सुख-दुःख की मान्यता है, वह जीव में है। मिथ्यादृष्टि में। समझ में आया? परन्तु शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता का ढेर हो। आहाहा! वह जीव में नहीं। इतने सम्बन्ध में तो ओहोहो! शरीर की इतनी सामग्री साधन, निश्चिन्तता से छह घण्टे, सात घण्टे सोवे और सोते हुए भी खर्राटे चले, ऐसा डाले। घरडियो कहते हैं न? खर्राटे। खर्राटे बोले ठीक से। आहाहा! यह शरीर की दशा है यह तो। यह दशा जीव में नहीं। आहाहा! जड़ की दशा चैतन्य में नहीं। आहाहा!

इस टुकड़े की ऐसी व्याख्या है। **देह के सुख-दुःख...** अर्थात् कि असुविधा-सुविधा, ऐसा। जीव में नहीं। आहाहा! देह बिगड़ी तो जीव बिगड़ता नहीं। शरीर रोगी

हो तो जीव रोगी होता नहीं। आहाहा! शरीर जीर्ण, वृद्धावस्था हो, जीव की वृद्धावस्था होती नहीं। आहाहा! यह निराले तत्त्व की निराली चीज़, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस प्रकार जिसे यथार्थ जानने में आवे, तब उसे आनन्द का लाभ होता है। आहाहा! समझ में आया? यह वह तब कहे न 'पहला सुख निरोगी काया।' स्वयं निरोगी सुख। धूल में भी नहीं सुन न। वह तो शरीर की दशा। 'दूसरा सुख सुकुल की नारी। तीसरा सुख घर के अच्छे पुत्र, चौथा सुख कोठी में अनाज।' अनाज हो घर में बारह महीने, पाँच-छह वर्ष, दो वर्ष में पहुँचे। यह मूरख के साधन, सुख के साधन।

मुमुक्षु : गाँव में ऐसा आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न सब खबर है न! शरीर से सुखी, वह सुखी सर्व बातें। और पहला सुख वह निरोगी काया। निरोगता वह सुख। अधिक सुकुल की नारी मिले अच्छी, वह सुख। धूल भी नहीं, सुन न, वह तो शरीर संयोग के हैं। समझ में आया? यह कहते हैं यहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : चार तो चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार चाहिए उठानेवाले। यह तो कहते थे न हमारे हीराभाई को छह लड़के हैं न! अपने हीराभाई के मकान में उतरे न तीन वर्ष। हीराचन्द त्रिभुवन। तीन वर्ष वहाँ रहे थे। कहे, छह लड़के हैं। चार उठानेवाले एक सामने अग्नि लेनेवाला और एक घास का पूला लेनेवाला। दोना लेकर चले न एक। आहाहा! यह तो सब शरीर के लिये बात है, कहते हैं। आत्मा में वह कुछ है नहीं। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप विराजमान निरोगी जिसका शरीर है, जिसे राग का रोग नहीं तो शरीर का रोग तो कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! है? यह कहा न?

तो भी सहजशुद्ध परमानन्दरूप एक निजस्वभावकर... है। उसे तो अल्पपर्याय अल्प स्वभाव भी नहीं, ऐसा कहते हैं। रोग तो नहीं, राग का रोग तो नहीं। शरीर की अनुकूलता का उसे सुख नहीं, प्रतिकूलता का उसे दुःख नहीं। आहाहा! परन्तु यह उसे राग का रोग नहीं, ऐसी अल्पज्ञता भी उसमें नहीं। आहाहा! ओहोहो! समझ में आया? सहज स्वाभाविक पवित्रता का पिण्ड प्रभु। तुझे हाथ आया नहीं। तू खोजने जाता है राग

और पर्याय और पर को, उसमें हाथ कहाँ से आवे ? आहाहा ! जहाँ खो गया है अज्ञान में, वहाँ खोज तो हाथ आवे। आहाहा ! समझ में आया ?

वह बुढ़िया की बात नहीं कहते ? बुढ़िया थी, उसकी सुई अन्धेरे में खो गयी। खोजने लगी, हाथ नहीं आयी, आधे घण्टा, घण्टा लगा। अब चलो तब प्रकाश में खोजें। उसमें कोई जवान निकला होगा। माँ ! क्या करती हो माँजी ? कि यह सुई खो गयी है। तो कहे, कहाँ खोई है माँ ? कहे, अन्धेरे में खोई थी, परन्तु हाथ नहीं आती थी। परन्तु हाथ नहीं आती तो उजाले में कहाँ है ? खोई है वहाँ। इसी प्रकार अज्ञान में खो गया है। भगवान अज्ञान में खो गया है। उसे जहाँ है, वहाँ खोजने जा, ऐसा है। आहाहा ! समझ में आया ?

गाथा - १८२

अथ दुःखजनकदेहघातकं शत्रुमपि मित्रं जानीहीति दर्शयति–

३०५) इहु तणु जीवड तुज्झ रिउ दुक्खइँ जेण जणेइ।
सो परु जाणहि मित्तु तुहुँ जो तणु एहु हणेइ।।१८२।।

इयं तनुः जीव तव रिपुः दुःखानि येन जनयति।
तं परं जानीहि मित्रं त्वं यः तनुमेतां हन्ति।।१८२।।

रिउ रिपुर्भवति। का। इहु तणु इयं तनुः कर्त्री जीवड हे जीव तुज्झ तव। कस्मात्। दुःक्खइं जेण जणेइ येन कारणेन दुःखानि जनयति सो परु तं परजनं जाणहि जानीहि। किम्। मित्तु परममित्रं तुहुं त्वं कर्ता। यः परः किं करोति। जो तणु एहु हणेइ यः कर्ता तनुमिमां प्रत्यक्षीभूतां हन्तीति। अत्र यदा वैरी देहविनाशं करोति तदा वीतरागचिदानन्दैकस्वभाव–परमात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुखामृतसमरसीभावे स्थित्वा शरीरघातकस्योपरि यथा पाण्डवैः कौरवकुमारस्योपरि द्वेषो न कृतस्तथान्यतपौधनैरपि न कर्तव्य इत्यभिप्रायः।।१८२।।

आगे दुःख उत्पन्न करनेवाला शत्रुरुप यह देह है, उसको तू मित्र मत समझ, ऐसा कहते हैं–

यह शरीर तेरा शत्रु है क्योंकि दुःख उत्पन्न करे।
अतः उसे तुम मित्र जान लो जो इस तन का घात करे।।१८२।।

अन्वयार्थः– [जीव] हे जीव, [इयं तनुः] यह शरीर [तव रिपुः] तेरा शत्रु है, [येन] क्योंकि [दुःखानि] दुःखों को [जनयति] उत्पन्न करता है, [यः] जो [इमां तनुं] इस शरीर का [हंति] घात करे, [तं] उसको [त्वं] तुम [परं मित्रं] परममित्र [जानीहि] जानो।

भावार्थः– यह शरीर तेरा शत्रु होने से दुःख उत्पन्न करता है, इससे तू अनुराग मत कर और जो तेरे शरीर की सेवा करता है, उससे भी राग मत कर, तथा जो तेरे शरीर का घात कर देवे, उसको शत्रु मत जान। जब कोई तेरे शरीर का विनाश करे, तब वीतराग चिदानंद ज्ञानस्वभाव परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न जो परम समरसीभाव, उसमें लीन होकर शरीर के घातक पर द्वेष मत कर। जैसे महा धर्मस्वरुप युधिष्ठिर पांडव आदि

पाँचो भाइयों ने दुर्योधनादि पर द्वेष नहीं किया। उसी तरह सभी साधुओं का यही स्वभाव है, कि अपने शरीर का जो घात करे, उससे द्वेष नहीं करते, सबके मित्र ही रहते हैं।।१८२।।

गाथा-१८२ पर प्रवचन

१८२। **आगे दुःख उत्पन्न करनेवाला शत्रुरूप यह देह है,...** आहाहा! देखो! देह है, वह शत्रु है, कहते हैं। अर्थात् कि तेरी जाति से वह विरुद्ध जाति है। उससे तो दुःख उत्पन्न होगा, तुझसे सुख उत्पन्न होगा, ऐसा। तेरा चैतन्य आनन्दशरीर, उससे तो अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न होगा, जड़ शरीर, मिट्टी। आहाहा! यह रोग होता है न, देखो न! लड़के छोटी उम्र के। यह खाँसी आती है न बड़ी क्या कहलाती है वह? बड़ी खाँसी। आँख में से आँसू बहते जायें तो भी ऐ... आहाहा! उसी प्रकार यह बड़े को भी फिर देखो न! यह श्वास के रोग होते हैं दमा के बेचारे को। एक था वहाँ। मर गया बेचारा। यहाँ था। परन्तु वह तो खटखट पूरे दिन और रात। आहाहा! यह देह की असुविधा, वह जीव को नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। इसलिए वह देह तुझ से शत्रु है वह तो। आहाहा! उस शत्रु को मित्ररूप से मान, आहाहा! बड़ा मिथ्यात्व का भ्रम है, ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं, देखो!

उसको तू मित्र मत समझ, ऐसा कहता है—उसे मत समझ, ऐसा। भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, वह तो आनन्द की उत्पत्ति का कारण है। उससे विरुद्ध शरीर, वह तो दुःख की उत्पत्ति का कारण है। आहाहा! ऐसा जो शरीर, प्रभु! तुमसे बैरी / शत्रु, उसे मित्र न समझे। आहाहा! यह तो अभी सवेरे से वह शाम, उसे ऐसा है, वैसा है। आहाहा! देह छूटे, तब आनन्दघनजी कहते हैं न 'चलो हमारे साथ, चैतन्य कहे काया को। चलो हमारे साथ।' मैंने तेरा बहुत यत्न किया है। मेरा सब काल तुझे खिलाने में, पिलाने में, सुलाने में, भोग में। अरे! प्रभु! मेरा समय तुझमें बहुत गया है। अब मैं जाता हूँ, भाई! आ न।

काया कहती है कि तू मूर्ख है, खबर नहीं तुझे। हम किसी के पीछे गये हैं साथ

में? आहाहा! 'चलो हमारी साथ काया चलो हमारी साथ।' हमने बहुत ध्यान रखा है। आहाहा! बाल संवारे है अन्दर। मुख में सोना डाला है दाँत में। यहाँ फूल पहनाये हैं। पैर में पायल, सोने का कन्दोरा कमर में। सोने का डालते हैं न! राजा रानियों को सोने का कन्दोरा होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। सोना की क्या कीमत थी वहाँ। सोना का कन्दोरा। आदमी सोना का कन्दोरा और धोती को जरा मोड़कर रखे ऐसे अन्दर कन्दोरा। बड़ा हो वह। आहाहा! बापू! यह दुश्मन है, उसे तू शृंगारता है? एक दिन दगा देगा। आहाहा!

आचार्य अन्तिम गाथाओं में एकदम देह और भगवान भिन्न, इसका बहुत स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा! इसलिए ऐसा कहते हैं कि देह की क्रिया जो दया में प्रयुक्त हो, दान में प्रयुक्त हो तो अपने को... परन्तु यह देह है, वह दुश्मन है, सुन न। आहाहा! उसका—शरीर का सदुपयोग करना। धूल भी होता नहीं, सुन न! आहाहा! मित्र मानकर घाता गया है तू। शत्रु है। आहाहा! अच्छा शरीर हो तो अपने को धर्म हो सके, दया पाल सकें, आँख ठीक हो तो देख सकें, तो दया पले। ऐसा कहकर उस देह को मित्र माना है। आहाहा!

मुमुक्षु : मूल में भूल।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में भूल है।

३०५) इहु तणु जीवड तुज्झ रिउ दुक्खइँ जेण जणेइ।
सो परु जाणहि मित्तु तुहुँ जो तणु एहु हणेइ।।१८२।।

शत्रु। '**रिउ**' अर्थात् शत्रु। आहाहा! यह कहे शरीर के कारण, भोग के कारण सुखी हो और मजा आता है। सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : बीमार हो तो पता पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : बीमार क्या वहाँ जरा ऐसा पैर फिसल जाये, फटक जाये तो हड्डियाँ टूट जाये। आहाहा! और चिल्लाहट करे। टूट जाती हैं न हड्डियाँ? फिर दो-दो

महीने तक बाँधे, डेढ़ महीने तक ऐसे रखे प्लास्टिक। प्लास्टिक क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : प्लास्टर।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्लास्टर... प्लास्टर। आहाहा! यहाँ से अपने लो न, यह तीर्थेश को। प्रेमचन्दभाई की पुत्री के पुत्र को। कल तो आया था, हों! वहाँ आया था। आहाहा! मैंने कहा जेब-वेब हो या नहीं। वह कहे, अमुक चीज़ को जेब न हो वह कहीं, ऐसा बोला। चीज़ को कुछ कहता था। पहना हुआ वस्त्र।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? ...अपने को भले खबर नहीं। वह बोला था। मैंने कहा जेब-बेब हो या नहीं? उसे जेब न हो, ऐसा बोला था। ...ऐसा कुछ। उसे जेब नहीं होती।

यहाँ कहते हैं **हे जीव... 'इयं तनुः'** यह शरीर **'तनुः'** अर्थात् शरीर। **'तव रिपुः' तेरा शत्रु है...** यह शरीर—काया, तेरी शत्रु है। आहाहा! मानो शरीर को क्या करूँ और शरीर में से क्या ले लूँ? मिट्टी, धूल, शत्रु, चैतन्यमूर्ति से विरुद्ध वह शत्रु है। आहाहा! है? **क्योंकि दुःखों को उत्पन्न करता है,...** यह शरीर तो दुःख को उत्पन्न करता है। आहाहा! ठाकरिया बिच्छू काट खाया हो जब। ठाकरिया बिच्छू समझते हो? बिच्छू का ठाकुर होता है। बड़ा ऊँचा। हमने एक बार देखा था बाहर जाते हुए। इतना बड़ा लम्बा। डिब्बा जैसे चलता हो। मैंने कहा, यह ठाकरिया बिच्छू कहते हैं, वह लगता है। कोई था नहीं। उस रास्ते गये थे न जाते हुए। एक मील दूर। वह बिच्छू काटे और फिर चिल्लाहट मचाये। आहाहा! यहाँ कहते हैं, प्रभु! यह शरीर की असुविधा है। तुझे नहीं। आहाहा!

दुःखों को उत्पन्न करता है,... आहाहा! **जो इस शरीर का घात करे, उसको तुम परम मित्र जानो।** आहाहा! श्रीमद् में आता है, नहीं? 'परम मित्र का मानो पाया योग जब।' आहाहा! क्या है उसके पहले? 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में...' २९ वर्ष में पुकार करते हैं। 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में, अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब, अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभता।' आहाहा! 'मानो पाया परम मित्र का योग

जब।' यह चीज़ मुझे चाहिए नहीं और मेरे निकले (छूटे)तो भले निकले (छूटे)। यह ले जानेवाला ले जाये, मेरा मित्र है। आहाहा! देखो! वीतरागता और देखो समभाव! आहाहा! यहाँ तो जरा (कुछ हो वहाँ) ओय.. ओय... आये... करे। जरा सा कुछ हो वहाँ हमारे मूलजीभाई थे, ९९ (डिग्री) बुखार आवे, साढ़े निन्यानवें वहाँ। कोई है नहीं? लाखाणी। सब गये। कल आये थे। कल दोनों आये थे। अरुण और नगीन। आहाहा! फिर पीछे से तो उसे आहाहा! सेठिया व्यक्ति पैसावाला। जरा निन्यानवें, साढ़े निन्यानवें (बुखार) हो, वहाँ अन्त में जब देह छूटने का अवसर आया, तो लोग ऐसा कहे, बुलाओ डॉक्टर को। यह कहे, बुलाओ लालभाई को। लालचन्दभाई के प्रति उन्हें बहुत ही प्रेम। लालचन्दभाई के ऊपर बहुत उन्हें....

एक बार तो एकान्त में कहा था हम मोटर में बैठकर आते थे। महाराज! आपके पश्चात् किसे मुख्य रखेंगे, कहे। एक लालचन्दभाई पात्र है बहुत, हों! ऐसा वहाँ तक कहा था। मूलजीभाई। लालचन्दभाई आये। भाई! यह शरीर के रोग हैं, वह तो आत्मा उनका जाननेवाला है। वह उनका जाननेवाला है। मूलजीभाई स्वयं बोले—क्या लालचन्दभाई! इस शरीर को जाननेवाला आत्मा है? या अपने को जाननेवाला है? उस समय इतने अधिक पैसे नहीं थे न! अब सब हुए। तब सोलह लाख या अठारह लाख मुम्बई से लेकर आये। दोनों भाई। पैदा हुए एकदम, धन्धा बन्द करके। अब तो सोलह, दस, अठारह लाख की कीमत कहाँ है? यह तो कितने वर्ष पहले की बात है।

उसमें यह मरते हुए बोले, कहे। लालचन्दभाई कहे। वह श्रीमद् में आता है न! जीव पद में ज्ञात होता है। उसके पहले?

मुमुक्षु : देह का स्वभाव जीवपद में ज्ञात होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देह का स्वभाव जीवपद में ज्ञात होता है। इसलिए ऐसा कहा तो वे बोले। यह उसे दुःख है, ऐसा जानना? उसे रोग है, ऐसा जानना? या जाननेवाले को जानना? अन्तिम स्थिति, हों! भगवानजीभाई! आहाहा! पैसा पैसे के घर में रहा। स्त्री स्त्री के घर में लड़के... आहाहा! एक लड़का तो मर गया है नहीं पहले? बड़ा मर गया था। आहाहा! जवान विवाहित बड़े गृहस्थ में। वहाँ पोरबन्दर, आहाहा!

मर गया वहाँ। स्त्रियाँ कहती हैं, यह लड़का जाता है। जवानी के काल में जाता है, इसकी स्थिति होती है। किसी से रखा रहे, ऐसा है? आहाहा!

वास्तविक अवसर पर उसकी कसौटी खबर पड़े। समझ में आया? ऐसी प्रतिकूलता के ढ़ेर आवें। आहाहा! यह यहाँ कहेंगे। समझ में आया? कहते हैं, **यह शरीर तेरा शत्रु होने से दुःख उत्पन्न होता है, इससे तू अनुराग मत कर,...** देखा, उसे अनुसरकर प्रेम मत कर। आहाहा! यह तो ठेठ की बातें हैं, भाई! सम्यग्दृष्टि को शरीर की अनुकूलता से उसे प्रेम भी नहीं, प्रतिकूलता से उसे द्वेष भी नहीं। आहाहा!

और जो तेरे शरीर की सेवा करता है, उससे भी राग मत कर,... स्त्री, पुत्र, सब बापूजी! पैर दबायें, पैर दबायें। अब सुन न! पैर दबाकर मार डाला है। इन सेवा करनेवाले के प्रति राग न कर। इसके (शरीर के) ऊपर राग हो तो इसकी सेवा करनेवाले के ऊपर राग हुए बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु : समकिती की बात है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! घर की सबकी बात है। समकिती की बात है। उसे शरीर ठीक है, इसलिए राग नहीं होता। उसकी सेवा करनेवाला है, इसलिए राग ज्ञानी को नहीं होता। निर्बलता के कारण राग हो, वह अलग वस्तु है। आहाहा! मुनि को तो वह निर्बलता का राग भी नहीं। समझ में आया? ठेठ चोट मारी है। शरीर और आत्मा के बीच। आहाहा! जैसे दो टुकड़े करे एक छुरी से, उसी प्रकार यह भेदज्ञान भिन्न ज्ञान से दो टुकड़े कर दिये हैं। आहाहा! भगवान! तेरे भाग में आत्मा आया है टुकड़ेवाला। शरीर तेरे भाग का नहीं, वह तो पर है। समझ में आया? वह आता है न, प्रज्ञा से भिन्न किया, परन्तु कहाँ से ग्रहण करना? आता है न? प्रज्ञा से भिन्न हुआ, प्रज्ञा से ग्रहण करना। आहाहा! क्या कहते हैं यह?

प्रज्ञा ज्ञान की चीज़, भेदज्ञान की छैनी द्वारा राग से, शरीर से भिन्न किया। अब उसे ग्रहण कैसे करना? वह प्रज्ञा से ग्रहण होता है। प्रज्ञा से पृथक् पड़ा, वह प्रज्ञा से ग्रहण होता है। आहाहा! प्रज्ञा से ग्रहण होता है। राग से ग्रहण नहीं होता। आहाहा! ...राग की भिन्न ज्ञान की प्रज्ञाछैनी से भिन्न किया। उसे प्रज्ञा से ग्रहण कर। और उसमें

स्थिर हो। आहाहा! उसमें तुझे सुख की प्राप्ति होगी। भिन्न करके उसमें यदि बाहर में वापस रहा तो दु:ख की उत्पत्ति के कारण होंगे। यह तो ठेठ की बातें हैं। आहाहा! शरीर का एक रजकण भी तेरा नहीं। उस रजकण का दूसरा रजकण नहीं। वह रजकण तेरा नहीं। आहाहा! तू उस रजकण का नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परमाणु के स्कन्ध के जत्थे में एक-एक परमाणु स्वतन्त्र परिणमेगा। अपनी पर्याय से वहाँ पृथक् ही है। द्रव्य-क्षेत्र-काल से तो भिन्न है ही, परन्तु पर्याय से भी भिन्न ही है। आहाहा! तो भगवान आत्मा शरीर है, उससे भगवान तो अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी क्रीड़ा है, बापू!

मुमुक्षु : वैराग्य आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वैराग्य पर से भिन्न करना, वही वैराग्य है। ज्ञानशक्ति अपने अस्तित्व को भिन्न रखे और राग से भिन्न करना, वह वैराग्य है। ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति नहीं आयी निर्जरा (अधिकार) में? आहाहा! यह तो कल आया था कि मैंने समयसार बहुत वाँचा, परन्तु उसमें क्रमबद्ध कहीं निकलता नहीं। क्रमबद्ध तो यह स्पष्ट निकलता है उसमें। ...सब टीका में—पाठ में भरा है। क्रम नियमित। ...क्रम करि निश्चित से... क्रम से और नियमित / निश्चित। फिर भाई ने इकट्ठा किया क्रमबद्ध। स्पष्ट भरा है समयसार में। ३०८-३०९ गाथा में। कहेंगे कल।

कैलाशचन्दजी ने... सर्वज्ञता... नियत... ऐसा न करना। ...समयसार मैंने पूरा वाँचा। कहीं क्रमबद्ध निकलता नहीं। क्रमबद्ध की व्याख्या मैंने तो सुना हुआ ही है। परन्तु ३०८, ९, १०, ११ में स्पष्ट पाठ लिखा है। नियमित। क्रम से और निश्चय से वही पर्याय, उस काल में हो उसका नाम क्रमबद्ध। आहाहा! भाई कहते थे देवचन्दजी। अपने थे। ऐसा तुमने कुछ कहा था। क्रम नियमित और क्रम निश्चय। आहाहा! क्रम से वह निश्चय क्रमबद्ध। बात तो सच्ची है। ...कहा था। उन्होंने पंचाध्यायी का अर्थ किया। बापू! यह वस्तुस्थिति है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **उससे भी राग मत कर,...** स्व की सेवा करनेवाले का भी राग न कर। **तथा जो तेरे शरीर का घात कर देवे, उसको शत्रु मत जान।** क्योंकि तेरी चीज़

नहीं, तुझमें वह नहीं, उसमें तू नहीं। फिर उसकी सेवा करे, उसके ऊपर राग न कर, और घात करे उसके ऊपर द्वेष न कर। क्योंकि तू उसमें नहीं। आहाहा! देखो! पैर कणे लड़के आवें दो-चार व्यक्ति। घण्टे, आधे घण्टे पैर दबा जाये लड़के। रात्रि में... जाओ... सेठिया के पैर दबावे तो... वहाँ आया था एक। नाटक आता है। सर्कस। सर्कस। हाथी को। हमारे यहाँ बहुत आता था। बड़े-बड़े वयापारी। गाँव छोटा था। व्यापारी बड़े थे। सर्कस था, यह पैसे बहुत निकाले थे। सब देखा है सब। वहाँ वे... सब घर देखने जाये। ...हो। ...सोने न दे।

शरीर का विनाश करे, तब वीतराग चिदानन्द ज्ञानस्वभाव परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न... आहाहा! जब वह अनुकूलता-प्रतिकूलता हो, ऐसा कहते हैं। तब वीतराग चिदानन्द ज्ञानस्वभाव, **परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न...** देखा! **वीतराग चिदानन्द ज्ञानस्वभाव...** ऐसा जो परमात्मतत्त्व, वह स्वभाव और तत्त्व। ऐसा जो स्वभाववाला तत्त्व भगवान परमात्मतत्त्व। आहाहा! उसकी भावना, उसकी सन्मुख की एकता से उत्पन्न हुआ आनन्द। आहाहा! है? **परम समरसीभाव...** उसकी भावना से उत्पन्न हुआ परम समरसीभाव। आहाहा!

उसमें लीन होकर शरीर के घातक पर द्वेष मत कर। आहाहा! दृष्टान्त देते हैं। **जैसे महा धर्मस्वरूप युधिष्ठिर...** युधिष्ठिर धर्मराजा। पालीताणा। पाँच पाण्डव ध्यान में थे, आनन्द में। पाँचों भाई। उसमें दुर्योधन का भानेज आया। **धर्मस्वरूप युधिष्ठिर...** स्वयं। धर्मस्वरूप धर्मी धर्मराजा। जैसा नाम था, वैसा स्वरूप प्रगट किया। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल। ओहो! कैसा यह तीर्थंकर की तो उपस्थिति थी। वे अत्यन्त... शत्रुंजय... ओहोहो! उसकी भक्ति... पाँच पाण्डव... लोहे के गहने गर्म करके, अग्नि वहाँ लाये होंगे। कोई देखनेवाला नहीं होगा? यह किसलिए करते हैं लोहे के गर्म? कैसा यह काल है। वे पाँचों ध्यान में दिगम्बर सन्त आनन्दकन्द में झूलनेवाले। इसलिए धर्मस्वरूप कहा न?

आदि पाँच भाईयों ने दुर्योधनादि पर द्वेष नहीं किया। दुर्योधन आदि के प्रति द्वेष नहीं किया। हमको आकर गहने पहनाये लोहे के धगधगते। **द्वेष नहीं किया। उसी**

तरह... देखो, यह मुनियों की समदशा! आहाहा! जैसे सम अमृतरस जिन्हें प्रगट हुआ है न! समामृत। आया न उसमें? 'राग दाह अग्नि दाह' 'राग आग दाह दहे सदा तातै समामृत सेवीये।' कोई वैरी-विरोधी हो तो समता रख। व्यक्ति के प्रति द्वेष करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसे अनुकूलता—प्रशंसा करनेवाले के ऊपर राग न कर। आहाहा!

साधुओं का यही स्वभाव है,... है? जैसे पाण्डवों ने ऐसा किया, **उसी तरह सभी साधुओं का यही स्वभाव है।** आहाहा! जिसमें ज्ञातादृष्टा भगवान जागृत होकर उत्पन्न हुई है दशा समभाव की। आहाहा! जो विषमभाव की दशा थी, उसे टालकर समभाव की दशा प्रगट हुई है। ऐसे धर्मस्वरूप पाण्डव। आहाहा! ... आहाहा! यह... जैसे लोहे... ध्यान में आनन्द में। हमको कौन यह प्रतिकूल करता है? करता कोई नहीं। वह तो होने के काल में होता है। मुझे जाननेवाला मैं जानूँ। आहाहा! ऐसा जिसका समभाव है। उसे वीतरागता प्रगट हुई है, उसे अमृत का स्वाद आता है। आहाहा! समामृत सेविये, कहा न? तुम वीतराग स्वरूपी अमृत का सेवन करो। आहाहा!

बाहर का वह गन्ना खाता हो या रस पीता हो, तब उसे लगे ऐसी मिठास। तब वह मिठास तो राग की है, गन्ने की नहीं।

मुमुक्षु : उसे तो यह स्पर्श नहीं कर सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे लगता है कि यह खाते हैं। राग की मिठास है तो फिर इस ओर ढला, तब वीतराग की मिठास हुई या नहीं? आहाहा! चाहे तो अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, निन्दा करनेवाला हो या प्रशंसा करनेवाला। उसके सामने नहीं देखना, प्रभु! तू समामृत को सेवन कर न! आहाहा! वीतरागभाव का समभाव सब साधुओं का वह स्वभाव, ऐसा कहेंगे। आहाहा!

कि अपने शरीर का जो घात करे,... अन्त में... ले गये हैं अब। **उससे द्वेष नहीं करते, सबके मित्र ही रहते हैं।** आहाहा! सत्वेषु मैत्री। घात किया, इसलिए शत्रु है, यह कहाँ? वह आत्मा भगवान है न आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर। बीच में गड़बड़ हो, वह भी तेरी नहीं और राग की। आहाहा! कि वह भी राग को शरीर से भिन्न जाना था, उसके आत्मा को तू ऐसा जान न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मित्र अर्थात् विरोध नहीं, ऐसा। सत्त्वेषु मैत्री। कहा नहीं? ...मित्र अर्थात् अनुकूलता, ऐसा नहीं। सत्त्वेषु मैत्री। सब भगवान, ऐसा। समझ में आया? दुश्मन है, उसे मित्र मानना, ऐसा यहाँ नहीं। मित्र का अर्थ सर्व जीव सत्त्वेषु मैत्री। ... ... नहीं आता? बारह भावना में? यह सत्त्वेषु सत्त्व आत्मा है। आहाहा! उसके प्रति वैर-विरोध चाहे जो। सिर काटनेवाला हो या शरीर है तो छेदने की क्रिया तो जड़ की उस काल में होने की थी। इसमें उसने क्या किया है? उसका भाव तो उसके पास रहा। समझ में आया?

सबके मित्र ही रहते हैं। मित्र यह। सत्त्वेषु मैत्री। आहाहा! बहुत सरस गाथा है अन्त की। पाण्डवों का दृष्टान्त है। यहाँ दो का दृष्टान्त है। मुनि विराजते हैं सिद्धपद में, वह सिद्धक्षेत्र। सिद्धक्षेत्र ऊपर है कि जहाँ केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए और वहाँ से सीधे गये हैं। आहाहा! यात्रा का हेतु तो इतना है (कि) जिस क्षेत्र से मोक्ष पधारे, उस क्षेत्र की याद आवे। ओहो! परमात्मा सिद्ध भगवान विराजते हैं। यहाँ से सीधे गये हैं। समश्रेणी जाते हैं न? केवलज्ञान यहाँ होता है और जाते हैं वहाँ से। ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसे जीव के ऊपर प्रतिकूलता करनेवाले के ऊपर तू मैत्री रख। वैर-विरोध न करो भाई! आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शन का स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि में जरा असिथरता आ जाती है। परन्तु वह उसके कारण नहीं आती, परन्तु उन्हें—मुनि को तो आती ही नहीं। समभाव... समभाव... समभाव... समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १८३

अथ उदयागते पापकर्माणि स्वस्वभावो न त्याज्य इति मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं कथयति-

३०६) उदयहँ आणिवि कम्मु मइँ जं भुंजेवउ होइ।
तं सह आविउ खविउ मइँ सो पर लाहु जि कोइ।।१८३।।

उदयमानीय कर्म मया यद् भोक्तव्यं भवति।
तत् स्वयमागतं क्षपितं मया स परं लाभ एव कश्चित्।।१८३।।

जं यत् भुंजेवउ होइ भोक्तव्यं भवति। किं कृत्वा। उदयहं आणिवि विशिष्टात्मभावना-बलेनोदयमानीय। किम्। कम्मु चिरसंचितं। कर्म। केन। मइं मया तं तत् पूर्वोक्तं कर्म सह आविउ दुर्धरपरीषहोपसर्गवशेन स्वयमुदयमागतं सत् खविउ मइं निजपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्न-वीतरागसहजानन्दैकसुखरसास्वाददृवीभूतेन परिणतेन मनसा क्षपितं मया सो स परं नियमेन लाहु जि लाभ एव कोइ कश्चिदपूर्व इति। अत्र केचन महापुरुषा दुर्धरानुष्ठानं कृत्वा वीतरागनिर्विकल्प-समसमाद्यौ स्थित्वा च कर्मोदयमानीय तमनुभवन्ति, अस्माकं पुनः स्वयमेवोदयागतमिति मत्वा संतोषः कर्तव्य इति तात्पर्यम्।।१८३।।

आगे पूर्वोपार्जित पाप के उदय से दुःख अवस्था आ जावे उसमें अपना धीरपना आदि स्वभाव न छोड़े, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं-

उदयावलि में लाकर कर्म भोगने पड़ते मुझे सदा।
यदि ये स्वयं उदय में आयें तो क्षय कर लूँ लाभ महा।।१८३।।

अन्वयार्थः- [यत्] जो [मया] मैं [कर्म] कर्म को [उदयम् आनीय] उदय में लाकर [भोक्तव्यं भवति] भोगने चाहता था, [तत्] वह कर्म [स्वयम् आगतं] आप ही आ गया, [मया क्षपितं] इससे मैं शांत चित्त से फल सहनकर क्षय करुँ, [स कश्चित्] यह कोई [परं लाभः] महान् ही लाभ हुआ।

भावार्थः- जो महामुनि मुक्ति के अधिकारी हैं, उदय में वे नहीं आये हुए कर्मों को परम आत्म-ज्ञान की भावना के बल से उदय में लाकर उसका फल भोगकर शीघ्र निर्जरा कर देते हैं। और जो वे पूर्वकर्म बिना उपाय के सहज ही बाईस परीषह तथा

उपसर्ग के वश से उदय में आये हों, तो विषाद न करना बहुत लाभ समझना। मन में यह मानना कि हम तो उदीरणा से इन कर्मों को उदय में लाकर क्षय करते, परंतु ये सहज ही उदय में आये, वह तो बड़ा ही लाभ है। जैसे कोई बड़ा व्यापारी अपने ऊपर का कर्ज लोगों को बुला बुला के देता है, यदि कोई बिना बुलाये सहज ही लेने आया हो, तो बड़ा ही लाभ है। उसी तरह कोई महापुरुष महान दुर्धर तप करके कर्मों को उदय में लाके क्षय करते हैं, लेकिन वे कर्म अपने स्वयमेव उदय में आये हैं, तो इनके समान दूसरा क्या है, ऐसा संतोष धारणकर ज्ञानीजन उदय आये हुए कर्मों को भोगते हैं, परंतु राग-द्वेष नहीं करते।।१८३।।

वीर संवत् २५०२, फाल्गुन शुक्ल १५, शनिवार
दिनांक- १९-०३-१९७७, गाथा - १८३-१८४, प्रवचन-२२६

परमात्मप्रकाश, १८३ गाथा। १८२ पहले चल गयी है। गुजराती यहाँ चलता है। यहाँ सब गुजराती हैं। गुजराती चलता है, थोड़ी हिन्दी साथ में आती है। हिन्दी पुस्तक है न!

आगे पूर्वोपार्जित पाप के उदय से दुःख अवस्था आ जावे... क्या कहा, समझ में आया? यहाँ धर्मी की बात है कि आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न, अपना निज आनन्दस्वरूप, उसका जिसे भान हुआ हो, उसे सम्यग्दृष्टि की—धर्म की शुरुआतवाला कहने में आता है। समझ में आया? यह धर्मी को प्रतिकूल कर्म का उदय आवे तो समता रखना, स्वभाव की शरण लेना, ऐसा कहते हैं। '**स्वस्वभावो न त्याज्य**' अपने स्वभाव का त्याग नहीं करना, परन्तु राग का त्याग करना, ऐसा। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अन्तिम गाथायें हैं न, तो एकदम आत्मा आनन्दस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप, ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई। सम्यग्दृष्टि। वह पुण्य की क्रिया को हेय मानता है। आता है, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव सम्यग्दृष्टि को भी आते हैं। परन्तु मानता है कि हेय-बन्ध का कारण। सूक्ष्म बात है, भाई! इससे सम्यग्दृष्टि को ज्ञानचेतना प्रगट हुई है, ऐसा कहते हैं।

अर्थात् कि आत्मा जो ज्ञायकस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप, उसका अन्तर में वेदन,

ज्ञान में चेत गया है, ज्ञान में एकाग्र हुआ है। वह ज्ञान चेतना प्रगटी है। उस मिथ्यादृष्टि को ज्ञान चेतना नहीं होती। जिसकी दृष्टि में यह बाह्य व्रत, तप आदि क्रिया के जो परिणाम हैं, उनके ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसे वह ज्ञान चेतना होती नहीं। उसे राग की चेतना है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई!

भगवान आत्मा राग से रहित है। ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर केवलज्ञान में देखा, वह आत्मा है अन्दर। आहाहा! ऐसा जिसे भान हुआ। उसे कहते हैं कि कोई पूर्व के कर्म के कारण शरीर में प्रतिकूलता आदि संयोग आवे तो उसे धीरज से स्वभाव से सहन करना। समझ में आया? यह कहते हैं। है न?

पूर्वोपार्जित पाप के उदय से... पूर्व के पाप कोई किये होते हैं, उसके उदय से। शरीर में दुःख आवे, व्याधि आवे, बाहर में निन्दा आदि के प्रसंग आवे, वह **दुःख अवस्था आ जावे उसमें अपना...** पाठ में तो यह है। **'स्वस्वभावो न त्याज्य' 'उदयागते पापकर्माणि स्वस्वभावो न त्याज्य'** अपना स्वभाव जानना, देखना, आनन्द उसमें उसका त्याग नहीं करना इसे। सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म बहुत सूक्ष्म बात है। लोग अभी मान बैठे हैं न, वह धर्म बाहर में मानो क्रिया करें और व्रत पालन करें और तपस्या करें, वह धर्म नहीं। वह तो राग की मन्द की क्रिया पुण्य की है। और उसमें धर्म मानते हैं तो मिथ्यात्व का महापाप लगता है। ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई! अभी तो पूरी लाईन फेरफार हो गयी है।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि जिसे यह आत्मज्ञान और आत्मदर्शन हुआ है, उसे कोई पूर्व के कर्म के कारण शरीर में दुःख की—रोग की अवस्था आवे। बाहर में कुछ प्रतिकूलता का संयोग ऐसा आवे तो उस समय स्वभाव का त्याग नहीं करना। अर्थ इतना लिया। धीरपना आदि, ऐसा। पाठ में स्वभाव है। **'स्वस्वभावो न त्याज्य'** अर्थात् कि ज्ञातादृष्टापना छोड़ना नहीं इसे। आहाहा! समझ में आया? प्रतिकूल संयोग मुनि को भी आते हैं न? सच्चे सन्त मुनि आनन्दकन्द में झूलनेवाले। उन्हें घानी में पील दिया है, घानी में। परन्तु वे तो आनन्द में हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर पिल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर में—जड़ में है, वह तो ज्ञेय है, परज्ञेय है। स्वज्ञेय में वह

नहीं होता। परज्ञेय में है, वह तो जानने का विषय रहा। आहाहा! यह यहाँ आचार्य कहते हैं। यह परमात्मप्रकाश है।

अपना धीरपना स्वभाव आदि न छोड़े,... आहाहा! चाहे जितना प्रतिकूल संयोग शरीर में और बाहर में आवे, तो धर्मी को अपना ज्ञातादृष्टापने का स्वभाव छोड़ना नहीं। आहाहा! धीरजता अर्थात् कि जानना और देखना, ऐसा स्वरूप आत्मा का जाना है, वह जानने-देखनेवाला रहे। पर की दुःख की अवस्था मुझे होती है, ऐसा वह न माने। सम्यग्दृष्टि जीव। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं—** है? १८३।

३०६) उदयहँ आणिवि कम्मु मइँ जं भुंजेवउ होइ।
तं सह आविउ खविउ मइँ सो पर लाहु जि कोइ।।१८३।।

आहाहा! अरे! **जो मैं कर्म को उदय में लाकर भोगने चाहता था,...** आहाहा! धर्मी तो अपने ज्ञानानन्दस्वभाव में रहनेवाले हैं। चाहे तो समकिती गृहस्थाश्रम में हो। समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं कि पूर्व के कर्म के कारण, उदीरणा करके मैं कर्म खिपाना चाहता हूँ। अपने स्वरूप में आनन्द में रहने के लिये कर्म के उदय की उदीरणा करके मैं खिराना चाहता हूँ तो सहज उदय आया। लेनदार आया। लेनदार को बुलाकर मैं देता हूँ तो लेने आया तो बहुत लाभ का कारण है। आहाहा! क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात, भाई! जिनवर का मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु। वीतराग को यह लोग मान बैठे हैं न बाहर से यह व्रत करना और तप करना और यह मानो चारित्र है। धूल भी चारित्र नहीं। चारित्र किसे कहना, उसकी इसे खबर भी नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि मैं आत्मा, परमात्मस्वरूप है न यह व्याख्यान? मैं तो परमात्मस्वरूप हूँ। जिसे दृष्टि में निमित्त और पुण्य-पाप के विकल्प भी जिसकी दृष्टि में से छूट गये हैं और वर्तमान पर्याय प्रगट जो अंश है, उसकी रुचि भी जिसे छूट गयी है। आहाहा! उसे धर्मी कहते हैं। उस धर्मी को सहनशीलता रखना, कैसे अवसर में? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जो मैं कर्म को उदय में लाकर भोगने चाहता था,... आहाहा! **वह कर्म आप ही**

आ गया,... अपने आप उदय आया। शरीर में कोई रोग आया, प्रतिकूलता की निन्दा हुई जगत में। समझ में आया? जिस कर्म को उदीरणा करके मैं टालना चाहता था, वह कर्म अपने आप उदय आया। आहाहा! है? **वह कर्म आप ही आ गया,...** आहाहा! **इससे मैं शान्त चित्त से...** है न? स्वस्वभाव त्याग नहीं करना, यह आया। अर्थ में धीरता आदि स्वभाव लिया था। उसमें यह लिया। **शान्त चित्त से फल सहन कर...** इस प्रतिकूलता के संयोग में द्वेष न कर। और अनुकूलता के संयोग में प्रेम न कर। आहाहा!

ज्ञाता-दृष्टा के शान्तस्वभाव से सहन करके। आहाहा! जानना-देखना, यह सहन करना, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! वीतराग जिनेश्वर, परमेश्वर का मार्ग जगत से भिन्न है। आहाहा! सम्प्रदाय में तो यह बात चलती बाहर की क्रियाकाण्ड, वह धर्म और उसे चारित्र माने, वह सब। जिसे अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है। आहाहा! इसके बिना यह व्रत, तप और सब क्रिया चारित्र है। वह मिथ्यादृष्टि ने अनन्त बार ऐसा किया है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह छहढाला में आता है। छहढाला है न? 'मुनिव्रत धार...' नग्न मुनि हुआ अनन्त बार। 'अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' नौवाँ ग्रैवेयक है, वहाँ अनन्त बार गया। 'पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' परन्तु उस पुण्य की क्रिया से पार आत्मा, उसके आनन्द का स्वाद उसे नहीं आया।

'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? कि पंच महाव्रत पालन किये, पाँच समिति-गुप्ति पालन किये, वह सब दुःख है। राग है, आस्रव है, दुःख है, सुख नहीं। आहाहा! बात सुनना कठिन पड़े। लोग एक ही माने कि सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन किया करते हो, परन्तु चारित्र की बात? परन्त चारित्र किसे कहना, यह तुझे खबर नहीं है। समझ में आया? आहाहा! बापू! चारित्र हो, वह तो परमेश्वर हुआ। वह चारित्र तो आनन्दस्वरूप में रमणता हो, वह चारित्र है। समझ में आया? परन्तु अभी आनन्दस्वरूप है, ऐसा ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित नहीं हुआ। आहाहा! उसे अन्तर में रमणतारूप चारित्र कहाँ से होगा? भाई! यह तो हित की बात है, प्रभु! यह उसे ऐसा लगे, निश्चय लगे निश्चय, ऐसा। आहाहा! अज्ञानी को अनादि काल से तत्त्व की खबर

ही नहीं। ऐसे व्रत, तप अनन्त बार किये। भगवान की पूजायें भी समवसरण में जाकर अनन्त बार कीं। वह कहीं वस्तु नहीं। वह तो राग है। आहाहा!

राग से भिन्न भगवान आत्मा, ऐसा जिसे स्वरूप का भान हुआ। वह जीव ऐसा कहता है कि मैं तो कर्म के प्रकारपने की उदीरणा लेकर। उदीरणा का अर्थ वापस ऐसा नहीं कि उसे उस समय खिरने के योग्य नहीं थे और खिराये। वे कर्म उस समय टलने की योग्यतावाले थे। उसे उदीरणा करके खिराये, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! मार्ग सूक्ष्म, प्रभु! जन्म-मरण से रहित होने की रीति।

कहते हैं कि यह पुण्य और पाप के भाव से भिन्न भगवान का जिसे सम्यग्दर्शन के साथ आत्मज्ञान में स्वाद आया। उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि और धर्म की शुरुआतवाला कहा जाता है। बाकी चाहे वह पंच महाव्रत पाले और पंच समिति, गुप्ति, नग्नपना अनन्त बार लिया, हजारों रानियों को छोड़ा। वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि मैं तो... मुनि की मुख्यता से बात है न इसमें अभी तो? अन्तिम गाथायें हैं। आत्मज्ञानसहित जिसे आनन्द प्रगट हुआ है मुनि को। अतीन्द्रिय आनन्द के उत्कृष्ट स्वाद में आ गया है। उसे प्रचुर स्वसंवेदन कहते हैं। सम्यग्दर्शन में स्वसंवेदन आनन्द का अल्प होता है। मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन होता है। प्रचुर अर्थात् बहुत अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसे मुनिपना कहते हैं। आहाहा! यह कहते हैं कि मैं तो कर्म के उदय को उदीरणा करके खिराना चाहता था, (वह) अपने आप आया मुझे। समझ में आया? आहाहा!

सनतकुमार चक्रवर्ती दीक्षित हुए और ७०० वर्ष तक गलित कोढ़, पाँच अँगुलियाँ और पाँच दोनों पैर की दस गले। चक्रवर्ती। दीक्षित होने के बाद तो ७०० वर्ष तो गलित कोढ़ रहा। यह शरीर का स्वभाव है, वह हुआ। वह मुझे कोई उपद्रव का कारण नहीं। आहाहा! वह तो परचीज़—परज्ञेय है। समझ में आया? आहाहा! उस समय वे ऐसा मानते हैं, लो, वादिराज लो। वादिराज मुनि (का) आता है न कोढ़। कोढ़, वादिराज मुनि को कोढ़ होता है। शरीर में कोढ़। जानते हैं कि, आहाहा! जिसे मैं टालना चाहता हूँ, वे (कर्म) आये हैं प्रगट। इसलिए मुझे तो समता रखना, धीरज रखना। और धीरज

से सहन करना अर्थात् ज्ञाता-दृष्टारूप से रहना। आहाहा! समझ में आया? मार्ग अलग, भाई! दुनिया तो बाहर की यह करो, भगवान की भक्ति की, यात्रा की, पूजा की, धर्म हो गया। अरे बापू! ऐसा तो अनन्त बार किया है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु के स्वसन्मुख होकर अनुभव होना, ऐसी दशा में धर्मात्मा को। यहाँ तो मुनि की विशेष बात है न! मुनि ऐसा कहते हैं कि मुझे जब मेरी आनन्ददशा में मैं रमता हूँ, वह मुनिपना है। पंच महाव्रत के विकल्प और वह तो सब आस्रव और राग है। वह कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा! ऐसी बातें भारी कठिन! बेचारे को सुनने को मिला नहीं। इसलिए लोग ऐसा मानकर बैठे कि यह तो सब ओहोहो! निश्चय... निश्चय... निश्चय (की) बातें करे, परन्तु यह व्यवहार? व्यवहार कहाँ था तेरे अब सुन न! अभी सम्यग्दर्शन बिना व्यवहार कैसा? समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं कि जब सम्यग्दृष्टि को भी प्रतिकूलता आ पड़ती है तो कहते हैं, यह तो वह आया। **इससे मैं शान्ति से फल सहनकर...** अर्थात् कर्म का फल आया, उसे ज्ञाता-दृष्टारूप से जानकर **क्षय करूँ...** कहो, समझ में आया? यह पहले उसका ज्ञान तो करे कि वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वह मार्ग यह है। आहाहा! अनन्त काल, अनन्त चौबीसी, अनन्त पुद्गलपरावर्तन नौवें ग्रैवेयक के किये। भव्य और अभव्य ने दोनों ने अनन्त बार (किये)। नग्न दिगम्बर मुनि होकर पंच महाव्रत कैसे? कि जो अभी तो ऐसे हैं नहीं। ऐसे पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति, व्यवहार निरतिचार (पालन किया)। उसके लिये बनाया हुआ चौका-बौका करे तो प्राण जाये तो, मर जाये तो न ले। ऐसी जिसकी क्रिया, स्वर्ग में गया, परन्तु आत्मज्ञान बिना संसार कट हुआ नहीं। आहाहा! ग्रन्थीभेद बिना गाँठ टूटी नहीं, भव मिटा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं। ओहो! **मैं शान्ति से फल सहनकर क्षय करूँ, यह कोई महान ही लाभ हुआ।** देखो! कर्म का उदय कठोर आया, वह मुझे सहन करना, वह तो मुझे लाभ का कारण है। आहाहा!

भावार्थ। यह शब्दार्थ किया। **जो महामुनि...** इन्होंने मुनि से मुख्य बात ली है न! **मुक्ति के अधिकारी है।** देखो! आहाहा! जिन्हें नौ तत्त्व में मोक्षतत्त्व की प्रतीति हुई है।

और इससे वह मोक्ष का अधिकारी है। आहाहा! समझ में आया? आनन्द के स्वाद में आया हुआ मुनि, उसे नौ तत्त्व में मोक्षतत्त्व की प्रतीति हुई है। और उस मोक्ष का जो महामुनि अधिकारी। आहाहा! **उदय में वे नहीं आये हुए कर्मों को परम आत्म-ज्ञान की भावना के बल से...** है न? **परम आत्म-ज्ञान की भावना...** अन्दर सब वह नहीं डाला। कहाँ चाहिए सब? बाद में चाहिए, हों! पाठ में अन्दर बहुत है, भाई! परन्तु अर्थ में नहीं डाला।

पाठ में तो ऐसा है **परम आत्म-ज्ञान की भावना...** का अर्थ टीका में डाला है। '**निजपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्नवीतरागसहजानन्दैकसुखरसास्वादद्रवीभूतेन परिणतेन मनसा क्षपितं मया**' क्या कहते हैं जरा? कि निजपरमात्मा। मेरा प्रभु पूर्णानन्द से भरपूर यह आत्मा, परमात्मस्वरूप ही यह आत्मा है। यदि परमात्मस्वरूप शक्ति से और स्वभाव से न हो तो परमात्मा कहाँ से होगा? कहीं बाहर से आवे, ऐसा है? ऐसा जो निजपरमात्मा। सर्वज्ञ परमात्मा, वे पर रहे, उनकी भक्ति और उन्हें मानने में तो शुभराग होता है। निजपरमात्मा। संस्कृत टीका में है। '**निजपरमात्मतत्त्व**' है न? '**निजपरमात्मतत्त्व**' उसकी '**भावनोत्पन्न**' आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा सहजानन्दस्वरूप, ऐसा जो परमात्मा निजस्वरूपतत्त्व, उसकी भावना, उसकी एकाग्रता।

'**निजपरमात्मतत्त्व**' यह त्रिकाली द्रव्यस्वभाव लिया। और भावना, यह वर्तमान पर्याय ली। आहाहा! क्या कहा यह? '**निजपरमात्मतत्त्व**' परम आत्मतत्त्व। उत्कृष्ट स्वरूप भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु स्वयं, वर्तमान परमात्मा पूर्ण स्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? उस निजपरमात्मतत्त्व की भावना, उसकी अन्तर एकाग्रता। उससे उत्पन्न। है? निजात्म परमात्मस्वरूप की भावना से उत्पन्न। क्या उत्पन्न? '**वीतरागसहजानन्दैकसुखरसास्वादद्रवीभूतेन**' आहाहा! मुनि कहते हैं कि मुझे यह दशा प्रगट हुई है। इस दशा द्वारा मैं कर्म को खिराता हूँ। आहाहा! समझ में आया? है?

'**निजपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्न**' इससे उत्पन्न। पंच महाव्रत के और फलाना से उत्पन्न होता वीतरागी भाव, वह नहीं। वह तो राग है। आहाहा! '**निजपरमात्मतत्त्वभावनो-**

त्पन्नवीतरागसहजानन्द' आहाहा! वर्तमान, हों! रागरहित स्वाभाविक आनन्द। एक। आनन्द का स्वरूप एकरूप जिसका वर्तमान भी। सुखरसास्वाद। ऐसा जो सुख के रस का आस्वाद, अनुभव '**द्रवीभूतेन**' ऐसा परिणमित हुआ, वह पूरा। पूरा भगवान आत्मा '**द्रवीभूतेन**' परिणमा, वह आनन्दरूप से। आहाहा! समझ में आया?

'**सुखरसास्वादद्रवीभूतेन परिणतेन**' आहाहा! वीतरागी सुख के आनन्द के स्वादरूप से आत्मा परिणमा। द्रवित हुआ अर्थात् वह परिणमा। आहाहा! हुआ। वीतरागी परम आनन्द के सुख के स्वादरूप अन्दर हुआ। '**परिणतेन मनसा**' अन्तर से। '**क्षपितं मया**' मैं उन कर्मों को इस प्रकार से खिराता हूँ। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, बापू! बहुत सूक्ष्म भाई! लोगों को मानो बाहर से मिल जायेगा। आहाहा! यह व्रत पालना और अपवास करना और यह करना, उसे चारित्र माने। वह चारित्र कैसा, वह तो सब विकल्प-राग है। आहाहा! लोगों को तत्त्व की वीतरागमार्ग की खबर ही नहीं और मार्ग कहीं का कहीं। और यह वीतराग के सिवाय कहीं यह बात है? अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा!

जिनवरदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान तो विराजते हैं, महाविदेह में प्रभु विराजते हैं। वहाँ से, यह कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। संवत् ४९। दो हजार वर्ष हुए। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ रहे थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह सब बनाया है। आहाहा! उसमें से सबके यह बीज उनसे हैं, यह सब परमात्मप्रकाश के। समयसार में से। आहाहा! ओहोहो! शब्द कितना भरा है, देखो! उसके द्वारा मैं खिराता हूँ।

'**स परं नियमेन लाहु जि लाभ एव**' मुझे कोई अपूर्व लाभ हुआ, ऐसा कहते हैं। है न अन्दर, भाई! अपूर्व है न अन्दर! '**कश्चिदपूर्व इति लाभ**' आहाहा! जंगल में मुनि आत्मा के ध्यान में मस्त हों। आहाहा! उसमें बाघ आकर काटे, बटका भरे। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... मित्र आया, मित्र। मुझे शरीर चाहिए नहीं और इसे चाहिए है। मित्र है ले जाओ। वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... ऐसे भाव द्वारा, कर्म जो आये उन्हें मैं खिराता हूँ। आहाहा! ऐसे भाव द्वारा। निर्जरा ऐसे भाव से होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह तप यह। आहाहा!

यहाँ से आया। **परम आत्म-ज्ञान की भावना के बल से...** उसमें—टीका में। **परम आत्म-ज्ञान की भावना...** परम आत्मज्ञान। आहाहा! शास्त्राान, वह नहीं। आत्म परम। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, ऐसा परमात्मज्ञान। उसकी भावना के बल से। उसकी एकाग्रता के बल से। आहाहा! **उदय में लाकर उसका फल भोगकर शीघ्र निर्जरा कर देते हैं।** लो! यह निर्जरा। **परम आत्म-ज्ञान की भावना के बल से उदय में लाकर उसका फल भोगकर शीघ्र निर्जरा कर देते हैं। और जो वे पूर्वकर्म बिना उपाय सहज ही बाईस परीषह तथा उपसर्ग के वश से उदय में आये हों,...** ऐसा। देखा न अब। इस प्रकार मुनि कर्म को खिराते हैं, परन्तु उसमें कहते हैं कि कर्म का उदय ऐसा आया। आहाहा! बाईस परीषह। उसमें सब आया, लो। क्षुधा, तृषा, रोग, उपसर्ग, मनुष्य के, तिर्यंच के, देव के।

उदय में आये हों, तो विषाद न करना, बहुत लाभ समझना। देखा! आहाहा! **लाभ समझना।** कहते हैं। जिस कर्म को मेरे आत्मज्ञान के बल से खिराता हूँ। उदीरणा करके। पुरुषार्थ की उग्रता से अन्तर में, वह कर्म अपने आप आया। बहुत लाभ का कारण है, कहो भगवानजीभाई! यह तो लाभ का कारण है, ऐसा कहते हैं। क्षुधा, तृषा, रोग, बाईस परीषह है न। आहाहा! आक्रोश वचन का बाद में कहेंगे। आक्रोश वचन की गाथा बाद में कहेंगे। १८४वीं। आहाहा!

परन्तु यह सहज ही उदय में आये, वह तो बड़ा ही लाभ है। आहाहा! **जैसे कोई बड़ा व्यापारी...** टीकाकार ने दृष्टान्त दिया। यह टीका अर्थकार ने। जैसे बड़ा व्यापारी हो, **अपने ऊपर का कर्ज लोगों को बुला बुलाके देता है,...** बुलावे भाई! ले जाओ तुम्हारा पैसा, लो, यह कितने लेना है? पाँच हजार, दस हजार। **यदि कोई बिना बुलाये सहज ही लेने आवे,...** लो, है न? बुलाये बिना देता है। यह तो **बिना बुलाये सहज ही लेने आया हो तो बड़ा ही लाभ है।** ले जाओ भाई! तुमको बुलाने आदमी भेजा है। वहाँ तो तुम आये। ले जाओ, ले जाओ। क्या कितना? मैं परदेश में से लाया हूँ। बुलाये बिना

देना, उसकी अपेक्षा लेने आया हो, उसे देना। समय कम बचा, ऐसा ले जायेगा, लाभ का कारण है। इसी प्रकार कर्म के उदय से उसको लाकर खिराता हूँ, उसके बदले अपने आप उदय आये, वह तो लाभ का कारण है, कहते हैं। ऐसी बात है। आहाहा!

किसी के प्रति खेद नहीं, किसी के प्रति द्वेष नहीं। आहाहा! १८२ में आ गया है यह। शरीर की सेवा करे, उसके प्रति राग नहीं। शरीर को मारे, उसके प्रति द्वेष नहीं। १८२ में। आ गया है यह। गाथा नहीं? **शरीर तेरा शत्रु होने से दुःख उत्पन्न करता है। इससे तू अनुराग मत कर, और जो तेरे शरीर की सेवा करता है, उससे भी राग मत कर। और तेरे शरीर का घात करे, उसे शत्रु मत जान।** आहाहा! शरीर तो जड़, मिट्टी, धल है यह तो। अजीव है। पुद्गल है। यह कहीं आत्मा है नहीं। इसकी सेवा करनेवाले पर राग न कर। और मारनेवाले पर द्वेष न कर—ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! शरीर शत्रु, कहा था न? तब शरीर शत्रु है। आहाहा! पहली लाईन। आहाहा! दृष्टान्त दिया था न? धर्मस्वरूप युधिष्ठिर। १८२-१८२।

धर्मराजा पाण्डव और अर्जुन। पाँच पाण्डव। यह शत्रुंजय (के ऊपर) ध्यान में थे। शत्रुंजय यहाँ (सोनगढ़ से) १९ मील दूर है। आनन्द के ध्यान में थे। मस्त, उसमें दुर्योधन के भानेज ने आकर लोहे के आभूषण पहनाये मुकुट, गहने, जेवर, आभूषण। आहाहा! एक तो पाण्डव योद्धा राजकुमार, उसमें मुनि हुए नग्न दिगम्बर, आत्मध्यान में मस्त और उसने आकर लोहे के पहनाये। शान्त... शान्त... शान्त... उस समय उदय आया तो है, उसे तो जान। जान, तो तुझे जान, उसमें उसे जानने का इकट्ठा आ जाता है। लो! दो मुनियों को—सहदेव और नकुल दो छोटे भाई। उन्हें जरा विकल्प आया, शुभराग आया। अरे! मुनि को क्या होता होगा? सहोदर है। एक माता के गर्भ में उत्पन्न हुए और मुनि वापस धर्मात्मा मुनि दिगम्बर सन्त हैं। अन्दर आनन्दकन्द में झूलते हैं। उसमें उन्हें—दो मुनियों को हो गया—एक विकल्प आया। शत्रुंजय पर। आहाहा!

अरे! मुनियों को क्या होता होगा? इतना जरा विकल्प आया। केवलज्ञान रुक गया। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। केवलज्ञान दूर हो गया। यह शुभभाव। शुभभाव था या अशुभ था यह? उन मुनियों के लिये। पाँचों मुनि थे, धर्मात्मा आनन्दकन्द

में झूलनेवाले। एक माता के उदर में उत्पन्न हुए सहोदर, साधर्मी और बड़े। अपने से बड़े थे न तीनों बड़े थे। उन्हें यह लोहे के पहनाये। आहाहा! शान्त... शान्त। तीन तो केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए। इन दो को जरा ऐसा विकल्प आ गया। आयुष्य बँध गया सर्वार्थसिद्धि का। तैतीस सागर का आयुष्य। तैतीस सागर केवलज्ञान दूर हो गया। और वापस मनुष्य भव आवे, तब अभी कब केवलज्ञान पावे, वह इतना दूर हो गया। क्योंकि आठ वर्ष पहले तो पावे नहीं। वह था शुभभाव, परन्तु पुण्य का कारण, बन्ध का कारण हो गया। आहाहा! उससे नुकसान हुआ, लाभ नहीं हुआ। समझ में आया? यह १८२ में आ गया है। पाँचों भाईयों ने दुर्योधन (के भानेज पर) '**द्वेष नहीं किया...**' द्वेष नहीं किया, लो! आहाहा!

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं **तो बड़ा ही लाभ है। उसी तरह कोई महापुरुष महान दुर्धर तप करके कर्मों को उदय में लाके क्षय करते हैं,...** वह बुलाकर जैसे देता है, वैसे। **लेकिन कर्म अपने स्वयमेव उदय में आये हैं, तो इनके समान दूसरा क्या है,...** आहाहा! यह लोहे के पहनाये हैं, उसके सामने उन्हें नहीं देखना। उसके ऊपर द्वेष नहीं करना। वह तो ज्ञेय है जगत के प्राणी उसे। आहाहा! वीतरागभाव रखना। वीतरागभाव से सहन करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

लेकिन वे कर्म अपने स्वयमेव उदय में आये हैं, तो इनके समान दूसरा क्या है, ऐसा सन्तोष धारणकर... टीका में है यह। सन्तोष है न? ऊपर। '**संतोषः कर्तव्य**' स्वभाव को नहीं छोड़ना, इसका अर्थ यह सन्तोष करना। वीतरागता रखना। आहाहा! सन्तोष से आनन्द में रहना। 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे, भजना परिब्रह्म को दूसरा कुछ न कहना रे' अभी लाये थे कोई। स्तवन लाये थे न? स्तवन में आया था, नहीं? अखण्डानन्द में। अखण्डानन्द है न अखबार अहमदाबाद। उसमें कोई लाया था। यह तो हमारे ७५ वर्ष पहले की बात है। यह हमारे पड़ोसी थे। मूलजी भट्ट, परन्तु हम उन्हें मामा कहते थे। हमारी माँ के ननिहाल के थे वे। हमारी माँ थी, उनका ननिहाल था भुंभली। वे भुंभली के ब्राह्मण थे। और उतारा में नौकर थे कारकून। फिर नहाते। नहाकर जब फिरे जरा। वह मकान है, वे गाते। पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है। बारह वर्ष की उम्र थी तब। 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे। भजना परिब्रह्म को,

दूसरा कुछ न कहना रे।' राजेन्द्रभाई! ब्राह्मण थे। पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है। कहा, यह क्या कहते होंगे? याद तो था उस दिन का, हों! क्या कहते होंगे? अनुभव को इतना रे....

यह यहाँ कहते हैं। धर्मात्मा मुनियों को प्रतिकूलता के काल में स्वयं आनन्द में रहना। भजना परिब्रह्म। परमब्रह्म भगवान आत्मा का भजन करना। भगवान का भजन करने जाओगे तो राग होगा। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे सन्तोष धारण कर ज्ञानीजन उदय आये हुए कर्मों को भोगते हैं, परन्तु राग-द्वेष नहीं करते।** आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! गाली देनेवाले, प्रतिकूलता करनेवाले। आहाहा! उनके प्रति द्वेष नहीं करना। और अनुकूल बोलनेवाले, प्रशंसा करनेवाले के ऊपर राग नहीं करना। समझ में आया? आहाहा! १८३ हुई।

गाथा - १८४

अथ इदानीं परुषवचनं सोढुं न याति तदा निर्विकल्पात्मतत्त्वभावना कर्तव्येति प्रतिपादयति–

३०७) णिट्ठुर–वयणु सुणेवि जिय जइ मणि सहण ण जाइ।
तो लहु भावहि बंभु परु जिं मणु झत्ति विलाइ।।१८४।।

निष्ठुरवचनं श्रुत्वा जीव यदि मनसि सोढुं न याति।
ततो लघु भावय ब्रह्म परं येन मनो झटिति विलीयते।।१८४।।

जइ यदि चेत् सहण ण जाइ सोढुं न याति। क्व मणि मनसि जिय हे मूढ जीव। किं कृत्वा। सुणेवि श्रुत्वा। किम् णिट्ठुरवयणु निष्ठुरं हृदयकर्णशूलवचनं तो तद्वचनश्रवणानन्तरं लहु शीघ्रं भावहि वीतरागपरमानन्दैकलक्षणनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावय कम्। बंभु ब्रह्मशब्दवाच्यनिजदेहस्थपरमात्मानम्। कथंभूतम्। परु परमानन्तज्ञानादि गुणाधारत्वात् परमुत्कृष्टं जिं येन परमात्मध्यानेन। किं भवति। मणु झत्ति विलाइ वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्न परमानन्दैकरुपसुखामृतास्वादेन मनो झटिति शीघ्र विलयं याति द्रवीभूतं भवतींति भावार्थः।।१८४।।

आगे यह कहते हैं कि जो कोई कर्कश (कठोर) वचन कहे, और यह न सह सकता हो तो अपने कषायभाव रोकने के लिये निर्विकल्प आत्म–तत्त्व की भावना करनी चाहिए–

निष्ठुर वचन कहे यदि कोई मन सहने में नहीं समर्थ।
परम ब्रह्म की करो भावना जिससे मन हो शीघ्र विलय।।१८४।।

अन्वयार्थः– [जीव] हे जीव, [निष्ठुरवचनं श्रुत्वा] जो कोई अविवेकी किसी को कठोर वचन कहे, उसको सुनकर [यदि] जो [न सोढुं याति] न सह सके, [ततः] तो कषाय दूर करने के लिये [परं ब्रह्म] परमानंदस्वरुप इस देह में विराजमान परमब्रह्म का [मनसि] मन में [लघु] शीघ्र [भावय] ध्यान करो। जो ब्रह्म अनंत ज्ञानादि गुणों का आधार है, सर्वोत्कृष्ट है, [येन] जिसके ध्यान करने से [मनः] मन का विकार [झटिति] शीघ्र ही [विलीयते] विलीन हो जाता है।।१८४।।

गाथा-१८४ पर प्रवचन

१८४। **आगे यह कहते हैं कि जो कोई कर्कश (कठोर) वचन कहे,...** है न? **'इदानीं परुषवचनं सोढुं न याति'** आहाहा! **और यह न सह सकता हो तो अपने कषायभाव रोकने के लिये निर्विकल्प आत्मतत्त्व की भावना करनी चाहिए—**आहाहा! इसमें बहुत है अन्दर, हों! उसमें यह है। **'हृदयकर्णशूलवचनं' 'हृदयकर्णशूलवचनं'** हृदय और कान के शूल जैसे वचन कोई बोले। पापी प्राणी ऐसे पुरुषों को बोले तो दुनिया क्या है? दुनिया तो बोले। वे वचन सुनकर भी धर्मात्मा को **'वीतरागपरमानन्दैक-लक्षणनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावय कम्।'** आहाहा! भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप प्रभु। आहाहा! भारी कठिन बातें, कठिन काम।

पहले क्या करना इसे—मनुष्य को, कहते हैं। परन्तु ऐसी बात, पहले यह करना सम्यग्दर्शन। आहाहा! पुण्य-पाप के राग से भिन्न सहजानन्द प्रभु आत्मा, वह तो कहते हैं, उसका ध्यान करना। ऐसी प्रतिकूलता के समय आत्मा को भाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठोर वचन हो, कठोर वचन हो, वहाँ तक लिया है न। **'हृदयकर्णशूल'** हृदय को कान में शूल समान वचन ऐसे कठोर। सुनना, सुनकर क्या है, वे तो ज्ञेय हैं। आया है न उसमें? सर्वविशुद्ध में नहीं? निन्दा-प्रशंसा। निन्दा-प्रशंसा, वह तो जड़ की पर्याय है। उसमें तुझे कहाँ निन्दा हुई? तेरी कहाँ प्रशंसा हुई? आहाहा! निन्दा है, वह जड़ की पर्याय है—अवस्था है। वह तो परमाणु की अवस्था है और कोई प्रशंसा करे, वह जड़ की, परमाणु की अवस्था है, उसमें तुझे उसमें क्या आया?

मुमुक्षु : प्रशंसा करनेवाला तो होशियार कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर कहलाये तो उसके लिये। तुझे क्या है? तुझे तो प्रशंसा के शब्द जड़ की पर्याय है, ऐसा जान। कहो, समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग, वीतरागता की उत्पत्ति बतलाता है यहाँ तो। राग की उत्पत्ति, वह तो बन्ध का कारण, चाहे तो शुभराग हो। दया का, दान का, व्रत का, तप का, भक्ति का, पूजा का, परन्तु वह बन्ध का कारण है। वह धर्म नहीं। आहाहा! लोगों को बातें कठिन लगे। कभी सुना नहीं

बेचारों ने। जैन के नाम से थोथा सुने। जैन परमेश्वर क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : कहीं यह दुकान ही नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग परन्तु बापू! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! देखो न, क्या कहा?

(कठोर) वचन कहे,... निर्विकल्प आत्मतत्त्व की भावना करनी चाहिए— आहाहा! समाधिशतक में कहा है न? किसी समय ऐसा प्रसंग आवे, वहाँ आत्मभावना लेना। प्रतिकूलता सुनकर, यह अन्तर (में) जाना। उसे भूल जाना। आहाहा! तेरे काम के साथ काम है या पर के साथ काम है तुझे? वह तो होता है, दुनिया तो अनेक प्रकार की है। ठीक लगे तो प्रशंसा करे, ठीक न लगे तो निन्दा करे, उसमें तुझे क्या उसके साथ सम्बन्ध है? आहाहा! लो, यह कहते हैं।

आत्मतत्त्व की भावना करनी चाहिए—कैसा आत्मा? निर्विकल्प। है? आहाहा! आत्मा तो भेदरहित अभेद है। उसे निमित्त का लक्ष्य छोड़ देना, शुभराग का लक्ष्य छोड़ देना, भेद का लक्ष्य छोड़ देना। अभेद निर्विकल्प, आत्मतत्त्व की भावना करना। आहाहा! उस समय पुण्यभाव ऐसा करना और फलाना ऐसा करना, ऐसा यहाँ नहीं लिया। भाई! वह तो उसके कर्म का मेरा उदय आया, वह तो सब विकल्प की बातें हैं। यहाँ तो सीधे यहाँ कहा **निर्विकल्प आत्मतत्त्व की भावना करनी चाहिए—**आहाहा! मार्ग सूक्ष्म, बापू! जन्म-मरणरहित, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, वही महँगी चीज़ है और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र-फारित्र शून्य बिना एक के। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन की ही खबर नहीं, किसे कहना? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। जिसे निर्विकल्प आत्मा का भान हुआ है, उस जीव को ऐसे कठोर वचन के काल में अपनी भावना करनी चाहिए। आहाहा! यह श्लोक है। १८४।

३०७) णिट्ठुर-वयणु सुणेवि जिय जइ मणि सहण ण जाइ।
तो लहु भावहि बंभु परु जिं मणु झत्ति विलाइ।।१८४।।

उसे जीव कहा। टीका में, हे मूढ़ जीव! ऐसा डाला है। टीका में। आहाहा! **हे**

जीव,... 'निष्ठुरवचनं' जो कोई अविवेकी किसी को कठोर वचन कहे, उसको सुनकर जो न सह सके, तो कषाय दूर करने के लिये... आहाहा! ऐसी कठोर भाषा निन्दा करे। आहाहा! '**परं ब्रह्म**' लो आया नहीं उसमें? 'अनुभवी को इतना...' '**परं ब्रह्म**' 'अनुभवी को इतना आनन्द में रहना भजना परमब्रह्म।' आनन्द में रहना, भजना परमब्रह्म अर्थात् यह आत्मा। है न '**परं ब्रह्म**' परमानन्द। ब्रह्म अर्थात् आनन्द।

परमानन्दस्वरूप इस देह में विराजमान परमब्रह्म का मन में शीघ्र ध्यान करो। आहाहा! आत्मा क्या, इसकी तो खबर नहीं होती। और बातें, इसलिए धर्म हो गया हमारे। आहाहा! यात्रायें कीं सम्मेदशिखर की, शत्रुंजय की और गिरनार की हो गयी। वहाँ धूल भी धर्म नहीं। वह तो सब शुभराग की क्रिया है। वहाँ कहाँ धर्म था? यहाँ आत्मा भगवान अन्दर विराजता है। आहाहा! ऐसा परमब्रह्म भगवान परमानन्दस्वरूप **इस देह में विराजमान...** लो! भिन्न दूर नहीं। यहाँ है अन्दर। आहाहा! ऐसा कठिन। यह तो सब निश्चय की बातें। व्यवहार नहीं? परन्तु व्यवहार तो बन्ध का कारण है, सुन न! निश्चय यह है, वही मोक्ष का कारण है। आहाहा! क्या हो? जगत लुटा है और लूटनेवाले मिले हैं उसे। और लुटते हुए वापस प्रसन्न होता है। आहाहा! यह बराबर, यह बराबर। यहाँ तो व्यवहार को बन्ध का कारण कहकर छुड़ाते हैं।

न सह सके,... अर्थात् क्या? कि सुनने में बहुत कठोर ऐसा लगे जरा तुझे। वहाँ ध्यान छोड़ दे, अन्दर में जा—ऐसा कहते हैं। कठोर निन्दा हो, कठोर वचन हो। सहन न हो। ऐसा कहा है और सहन न हो। अर्थात् कि वहाँ से लक्ष्य छोड़ दे, उसका क्या काम है? ऐसा। भगवान निर्विकल्प आनन्द। आहाहा! **परमानन्दस्वरूप इस देह में विराजमान...** इस देह-देवल में भगवान विराजमान है परमात्मा तेरा तत्त्व (विराजमान है)। अरेरे! कैसे बैठे? बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, सवेरे चाय एक-डेढ़ पाव सेर न पीवे तो सिर घूम जाये। अब उसे कहना कि तू परमब्रह्म परमात्मा है अन्दर। बापू! उसे खबर नहीं। आहाहा!

ज्ञानी को पर में सुख कहीं भासित नहीं होता और जिसे पर में सुख भासित होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? इन्द्र के इन्द्रासनों में और अरबोंपति पैसा,

लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार बड़ा सब पाँच-पाँच करोड़, दो-दो करोड़ की आमदनी हो। वे सब धूल के ढ़ेर हैं। आहाहा! वह सब दुःख के निमित्त हैं। उसमें दुःख है। दुःख ही कहा है न? आठों कर्म का फल दुःख कहा न? ऐसा कहा न? तो सातावेदनीय के फल अपेक्षा से मिले, वह दुःख है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। कितनी, ४५वीं? ४५वीं की आयी न गाथा समयसार। आठों कर्म का फल दुःख है। उसमें ऐसा न आया, साता का फल भी दुःख है, ऐसा आया उसमें तो। आया या नहीं? आहाहा! दो-पाँच करोड़ मिले, स्त्री अच्छी, पुत्र अच्छे, इसलिए सुख। धूल में भी नहीं अब सुन न, वह तो परवस्तु जड़ है। वह सब कर्म के फल दुःख है, उसे अज्ञानी मूढ़ सुख मानता है। वह मिथ्यादृष्टि जैन ही नहीं है। उसे जैन की खबर ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, हसमुखभाई! यह सब पैसेवाले सुखी हों। लोग ऐसा कहते हैं न! पहली कुर्सी मिले सामने। आहाहा!

'परं ब्रह्म' भाषा देखो! ओहोहो! प्रभु! तू कौन है? **परमानन्दस्वरूप इस देह में विराजमान...** आहाहा! भाई! तेरा लक्ष्य वहाँ गया नहीं। वह चीज़ अव्यक्तरूप से भी तुझे लक्ष्य में आयी नहीं। आहाहा! भगवान परमानन्दस्वरूप ही हूँ। ऐसी जो व्यवहारश्रद्धा जो पात्रता, वह भी जिसे नहीं। आहाहा! उसे परमानन्दस्वरूप की प्राप्ति ही कहाँ से होगी? आहाहा! यशोकीर्ति का फल भी दुःख? आठों ही कर्म में तो यह आया। आठों ही कर्म का पाक दुःख। उसमें यशोकीर्ति हो, तीर्थंकरगोत्र का फल। आहाहा! सातावेदनीय। आहारकशरीर, औदारिकशरीर मिले, देव का वैक्रियिकशरीर मिले, लो! औदारिकशरीर मिले, वह दुःख। मनुष्य का औदारिकशरीर मिले, लो! बहुत संक्षिप्त शैली में यह सब दुःख है, कहते हैं। मनुष्यपना हो, वह दुःख है। क्योंकि उसका आश्रय—लक्ष्य जायेगा तो उसे राग ही होगा। आहाहा! अब वापस उस मनुष्यपने को मोक्ष का साधन कहना! एक ओर ऐसा कहना कि वह कर्म का फल सब दुःख है। दूसरी ओर ऐसा कहना कि शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं। आहाहा!

भगवान आत्मा बाल-गोपाल, आहाहा! (समयसार, गाथा) १७-१८ में नहीं कहा? ज्ञान की जो तेरी वर्तमान पर्याय है, सूक्ष्म बात। उस ज्ञान में ज्ञेय ही ज्ञात होता है,

परमानन्द ही ज्ञात होता है। यह ज्ञान की पर्याय है न? पर्याय अर्थात् अवस्था। क्षयोपशम। ज्ञान का प्रगट अंश है न! उस प्रगट अंश में तो शास्त्रकार ऐसा कहते हैं सिद्धान्त, कि ज्ञेयस्वरूप जो पूर्ण है, वह ज्ञात होता है। अज्ञानी को ऐसा ही ज्ञात होता है। परन्तु उसकी दृष्टि करता नहीं, इसलिए उसे ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

यहाँ परमब्रह्मस्वरूप विराजता है, वह उसकी ज्ञान की पर्याय में आना चाहिए न? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! पर्याय क्या और द्रव्य क्या, यह भी किसे? आहाहा! ग्यारह अंग का जानपना अनन्त बार किया। पंच महाव्रत के पालन अनन्त बार किये। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! परमब्रह्म भगवान आत्मा ज्ञान की समय की पर्याय में, एक समय की पर्याय में—अवस्था में पूरा ज्ञेय ज्ञात होता है। अज्ञानी को भी पर्याय में स्व-परप्रकाशकपने के कारण वस्तु ज्ञात होती है। परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं, इसलिए ज्ञात नहीं होता। दृष्टि राग और पुण्य और पर्याय में उसकी दृष्टि है। साधु हुआ दिगम्बर मुनि हजारों, तो भी दृष्टि वहाँ राग और क्रिया पर है। इसने आत्मज्ञान नहीं किया। जिस पर्याय में आत्मा आता है, ज्ञात होता है, उस आत्मा का ज्ञान नहीं किया। आहाहा!

ऐसा परमब्रह्म विराजमान **मन में शीघ्र ध्यान करो।** आत्मा की ओर मुड़ो, ऐसा कहते हैं। सहन न हो तो अन्तर में मुड़ो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जो ब्रह्म अनन्त ज्ञानादि गुणों का आधार है,...** ब्रह्म शब्द वाच्य है न अन्दर। **'निजदेहस्थपरमात्मानम्।' 'परमानन्तज्ञानादि गुणाधारत्वात् परमुत्कृष्टं'** उत्कृष्ट लेना है न? **सर्वोत्कृष्ट है,...** सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा अन्दर है। परमात्मा अरिहन्त से भी आत्मा सर्वोत्कृष्ट पर से भिन्न है। **जिसके ध्यान करने से मन का विकार शीघ्र ही विलीन हो जाता है।** आहाहा! अन्तर में ढलने से बाहर के परिणाम का नाश हो जाता है, इसलिए आत्मतत्त्व का विचार करना। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १८५

अथ जीवः कर्मवशेन जातिभेदभिन्नो भवतीति निश्चिनोति–

३०८) लोउ विलक्खणु कम्म–वसु इत्थु भवंतरि एइ।
चुज्जु कि जइ इहु अप्पि ठिउ इत्थु जि भवि ण पडेइ।।१८५।।

लोकः विलक्षणः कर्मवशः अत्र भवान्तरे आयाति।
आश्चर्यं किं यदि अयं आत्मनि स्थितः अत्रैव भवे न पतति।।१८५।।

लोउ इत्यादि। विलक्खणु षोडशवर्णिकासुवर्णवत्केवलज्ञानादिगुणसदृशो न [१]सर्वजीव–राशिसदृशात् परमात्मतत्त्वद्विलक्षणो विसदृशो भवति। केन। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रादि–जातिभेदेन। कोडसौ। लोउ सोको जनः। कथंभूतः सन्। कम्मवसु कर्मरहित शुद्धात्मानुभूति–भावनारहितेन यदुपार्जितं कर्म तस्य कर्मण अधीनः कर्मवशः। इत्थंभूतः सन् किं करोति। इत्थु भवंतरि एइ पञ्चप्रकारभवरहितादीतरागपरमानन्दैकस्वभावात् शुद्धात्मद्रव्याद्विसदृशे अस्मिन् भवान्तरे संसारे समायाति चुज्जु किं इदं किमाश्चर्यं किंतु नैव, जइ इहु अप्पि ठिउ यदि चेदयं जीवः स्वशुद्धात्मनि स्थितो भवति तर्हि इत्थु जि भवि ण पडेइ अत्रैव भवे न पततीति इदमप्याश्चर्यं न भवतीति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा संसारभयभीतेन भव्येन भवकारणमिथ्यात्वादि–पञ्चास्रवान् मुक्त्वा द्रव्यभावस्रवरहिते परमात्मभावे स्थित्वा च निरन्तरं भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१८५।।

आगे जीव के कर्म के वश से भिन्न–भिन्न स्वरुप जाति–भेद से होते हैं, ऐसा निश्चय करते हैं–

अरे! विलक्षण कर्मों के वश भव–भव भ्रमता जीव सदा।
क्या आश्चर्य कि आत्म–लीन नर भव–समुद्र में नहीं गिरा।।१८५।।

अन्वयार्थः– [विलक्षणः] सोलहवानी के सुवर्ण की तरह केवलज्ञानादि गुणकर समान जो परमात्मतत्त्व उससे भिन्न जो [लोकः] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जाति–भेदरुप जीव–राशी वह [कर्मवशः] कर्म के वश उत्पन्न है, अर्थात् जाति–भेद कर्म के निमित्त से हुआ है, और वे कर्म आत्म–ज्ञान की भावना से रहित अज्ञानी जीव

१. संस्कृत टीका में भूल लगती है। कदाचित् इस प्रमाण भी हो : सर्वजीवराशिसदृशात्=सर्वजीवराशिःसदृशात्

ने उपार्जन किये हैं, उन कर्मों के आधीन जाति-भेद है, जब तक कर्मों का उपार्जन है, तब तक [अत्र भवांतरे आयाति] इस संसार में अनेक जाति धारण करता है, [अयं यदि] जो यह जीव [आत्मनी स्थितः] आत्मस्वरुप में लगे, तो [अत्रैव भवे] इसी भव में [न पतति] नहीं पड़े-भ्रमण नहीं करे, [किं आश्चर्यं] इसमें क्या आश्चर्य हैं, कुछ भी नहीं।।

भावार्थः- जबतक आत्मा में चित्त नहीं लगता, तब तक संसार में भ्रमण करता है, अनेक भव धारण करता है, लेकिन जब यह आत्मदर्शी हुआ तब कर्मों को नहीं उपार्जन करता, और भव में भी नहीं भटकता। इसमें आश्चर्य नहीं है। संसार-शरीर-भोगों में उदास और जिसको भव-भ्रमण का भय उत्पन्न हो गया है, ऐसा भव्य जीव उसको मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद, योग, इन पाँचों आस्त्रवों को छोड़कर परमात्मतत्त्व में सदैव भावना करनी चाहिये। जो इसके आत्म-भावना होवे तो भव-भ्रमण नहीं हो सकता।।१८५।।

वीर संवत् २५०२, चैत्र शुक्ल १, रविवार
दिनांक- २०-०३-१९७७, गाथा - १८५, प्रवचन-२२७

परमात्मप्रकाश, १८५ चलती है। १८४ हुई न? १८४ में ऐसा कहा कि कोई कठोर वचन आदि प्रतिकूल कहे तो उस समय में परमात्मस्वरूप जो देह में विराजमान है। विराजमान है साक्षात्। कौन परमात्मा? यह परमात्मा। आहाहा! है न आ गया न यह? **परमानन्दस्वरूप इस देह में विराजमान... 'परं ब्रह्म'** यहाँ सवेरे आया था न निश्चय स्व। वह स्व कौन? यह बात यहाँ है। कि परमानन्दस्वरूप आत्मा, वह स्व है। आहाहा! शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, कर्म नहीं, पुण्य और पाप के भाव भी नहीं। एक समय की पर्याय भी नहीं।

परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का ध्यान करना। प्रतिकूलता के समय कर्म का उदय कठोर आवे, शरीर में रोग हो, बाह्य में प्रतिकूलता हो, उस समय स्वरूप चैतन्य भगवान देह में विराजमान अस्ति पदार्थ है। शुद्ध विज्ञान आनन्दघन, उसका ध्यान करना, उसकी ओर झुकाव करना, ऐसा कहते हैं। जयन्तीभाई! ऐसी सूक्ष्म बात कठिन आयी, भाई! आहाहा! प्रतिकूलता के समय धर्मात्मा को क्या करना? कि अपना

परमानन्दस्वरूप शक्ति से, स्वभाव से परमानन्दस्वरूप आत्मा की ओर का झुकाव करना। उसके सन्मुख होना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह सन्मुख कौन हो सकता है? यह सन्मुख कौन हो सकता है? जिसे पहले आत्मा परमानन्दस्वरूप सम्यग्दर्शन और अनुभव में प्रतीति में आया हो। समझ में आया?

'दिठ मग्गे' रात्रि में कहा था न? 'दिठ मग्गे' रात्रि में कहा था। जिसने मार्ग देखा है। धवल में पाठ है। धवल है न? जय धवल, धवल, महा धवल। उसमें पाठ है कि यह मार्ग जो आत्मा पुण्य-पाप के राग से भी भिन्न और अपनी पर्याय में पर्यायवान का अनुभव जिसने किया है, उसने मार्ग देखा है कि यह आत्मा का मार्ग है। आहाहा! वह 'दिठ मग्गेणं'। मार्ग जो देखा है कि यह आत्मा आनन्दस्वरूप। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, वह तो सब विकार, वह दृष्टि का विषय नहीं और वह आत्मा में नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान परमानन्द प्रभु, देह में देह से भिन्न विराजता है। देह में देह से भिन्न। आहाहा! उसकी ओर का झुकाव जिसने प्रथम किया हो, वह प्राणी धर्मात्मा को प्रतिकूलता के समय उस ओर का झुकाव करना। समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

यहाँ तो अब विशेष कहते हैं। **आगे जीव के कर्म के वश से भिन्न-भिन्न स्वरूप जाति-भेद से होता हैं,...** ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षूद्र, वे सब कर्म के वश से उत्पन्न होते हैं। वह आत्मा का कोई स्वभाव नहीं। समझ में आया? वह **भिन्न-भिन्न स्वरूप जाति-भेद से होता हैं, ऐसा निश्चय करते हैं—** १८५।

३०८) लोउ विलक्खणु कम्म-वसु इत्थु भवंतरि एइ।
चुज्जु कि जइ इहु अप्पि ठिउ इत्थु जि भवि ण पडेइ।।१८५।।

भगवान आत्मा **सोलहवानी के सुवर्ण की तरह...** सोलहवलुं कहते हैं? हिन्दी में क्या कहते हैं? सोलहवान सोना। उस **सोलहवानी के सुवर्ण की तरह...** भगवान आत्मा। है? **केवलज्ञानादि गुणकर समान...** आहाहा! सोलहवान सोना जो है, वह सोलहवान सोना लाख, करोड़, अरब हो तो सब समान सोलहवान है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, आहाहा! प्रत्येक आत्मा सोलहवान सोने के समान केवलज्ञान... केवलज्ञान

अर्थात्? पर्याय की बात नहीं। केवल पर्याय, वह नहीं। केवलज्ञान—अकेला ज्ञान, अकेला आनन्द, अकेली शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे **केवलज्ञानादि गुणकर समान...** उन केवलज्ञानादि गुण से सभी आत्मायें अन्दर में समान हैं। समझ में आया? आहाहा!

जो परमात्मतत्त्व... ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभाव, आनन्दस्वभाव, वीर्यस्वभाव, स्वच्छस्वभाव, ऐसे **केवलज्ञानादि गुणकर समान जो परमात्मतत्त्व, उससे भिन्न...** आहाहा! यह परमात्मतत्त्व, हों! परमस्वरूप जो ध्रुव चिदानन्द प्रभु ऐसा अपना आत्मा सम्यग्दर्शन का जो विषय, वह स्वस्वरूप एक समान अनन्तगुणसहित एक समान सभी आत्मायें हैं। आहाहा! कब?

मुमुक्षु : तीनों काल में।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल में। आहाहा! यह आत्मा पूर्णानन्द, पूर्णानन्दस्वरूप। विकार तो उसमें नहीं, परन्तु अपनी वर्तमान प्रगट व्यक्त अवस्था—दशा, उतना भी आत्मा नहीं। आहाहा! परमानन्दस्वरूप केवलज्ञानादिक गुणसहित विराजमान प्रभु, अरे! कैसे बैठे पामर प्राणी को? ऐसी प्रभुता की प्रतीति कैसे हो? समझ में आया? अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त स्वभाव सहित प्रभु सभी आत्मा परमात्मस्वरूप से समान हैं।

है? **उससे भिन्न....** यह **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जाति भेदरूप जीव-राशि...** इस परमात्मतत्त्व से, कर्म से उत्पन्न हुई भिन्न जाति, वह जातिभेद कर्म के निमित्त से हुआ है। आहाहा! अपने स्वरूप में वह जाति नहीं। कि भाई! यह ब्राह्मण है और यह वैश्य है। वह तो कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई भेदजाति है। वह अपना स्वरूप नहीं। आहाहा! कोई कहे कि भाई! ब्राह्मण की जाति हो तो उसे आत्मा का भान हो। तो कहते हैं कि वह तो कर्म के कारण से प्राप्त भिन्न-भिन्न जाति, वह चैतन्य सोलहवान सोने के समान प्रभु से तो वह भिन्न जाति है। आहाहा!

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जाति भेदरूप जीव-राशि वह कर्म के वश उत्पन्न है,... अपने स्वभाव में वह नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव धर्म का पहला सोपान, प्रथम सीढ़ी, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव अपने को पूर्ण परमानन्द और अनन्त गुण

आदि सहित समान-सरीखे आत्मा को मानते हैं। समझ में आया? बाह्य जातिभेद आदि है, वह तो पर्याय का भेद वह तो जानने योग्य है। अपनी चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वे कर्म आत्म-ज्ञान की भावना से रहित... अब क्या कहते हैं कि पहली तो यह चीज़ कही कि अपना आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दसहित सदृश्य स्वरूप एक समान आत्मा है। उससे भिन्न जाति धर्म आदि। यह जाति उत्पन्न क्यों हुई? कि कर्म से हुई। तो कर्म कैसे उत्पन्न हुए? समझ में आया? यह कहते हैं देखो! **जाति-भेद कर्म के निमित्त से हुआ है, और वे कर्म आत्म-ज्ञान की भावना से रहित...** आहाहा! भगवान अनन्त ज्ञान सम्पन्न प्रभु, अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दस्वरूप, अनादि से अज्ञानी आत्मा को पर्याय में दुःख है। वह कर्म के संग से दुःख है, उसका स्वभाव दुःख नहीं है। उसका स्वभाव तो आनन्द है। यह तो कहा, विराजमान अन्दर। तो परमानन्दस्वरूप में दुःख जो भासित होता है, वह अबुद्धिपूर्वक हो। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय के सब प्राणी असंज्ञी संज्ञी उस दुःख को वेदते हैं। क्यों? कि आत्मा के आनन्द का उसमें अभाव है। यह क्या कहा?

अज्ञानी को आत्मा तो है, वह है। परन्तु पर्याय में आनन्द का अभाव है, इस कारण से दुःख को ही वेदते हैं। अकेले दुःखी ही है। समझ में आया? यह अरबोंपति, राजा और देव, वे सब दुःखी हैं। क्योंकि आत्मा के आनन्द का जहाँ अभाव है, वहाँ दुःख है। आहाहा! सवेरे कहा नहीं था? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' वह दुःखी है। पंच महाव्रत पालनेवाला दुःखी है। क्योंकि महाव्रत के परिणाम राग हैं और दुःख है। आहाहा! ऐसी बात! क्योंकि जहाँ आत्मा आनन्द प्रभु है, अतीन्द्रिय आनन्द, उस अतीन्द्रिय आनन्द का जिसकी पर्याय में अभाव है, उसकी पर्याय में राग और द्वेष का-दुःख (का) वेदन है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा जो है। पहले परमानन्द कहा न? परमानन्द विराजमान अन्दर है। आहाहा! उस परमानन्द के आनन्द का अपनी वर्तमान पर्याय में जिसे अभाव है, उसे राग और द्वेष के दुःख के सद्भाव की दशा है। कहो, भगवानजीभाई! आहाहा! उसे दुःख है, यह सिद्ध कैसे हो? पंचाध्यायी में लिया था न भाई? कि यह अज्ञानी प्राणी बड़ा राजा हो,

देव हो, अरबोंपति हो, वे सब प्राणी एकेन्द्रिय हों। पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति, वे प्राणी दुःखी हैं, यह कैसे सिद्ध किया? और पंच महाव्रत के पालन करनेवाले भी प्राणी आत्मज्ञान नहीं, इसलिए दुःखी है। यह सिद्ध कैसे किया तुमने? कि यह सिद्ध ऐसे किया कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का अभाव है, उसे दुःख का सद्भाव है। समझ में आया? आहाहा! गजब भाई! यह सब अरबोंपति और करोड़ोंपति, ये बेचारे दुःखी हैं।

यहाँ तो वहाँ तक दुःखी कहा कि अनन्त बार मुनिपना लिया, दिगम्बर मुनि हुआ। पंच महाव्रत पालन किये, समिति, गुप्ति, ब्रह्मचर्य आजीवन शरीर का बालब्रह्मचर्य, परन्तु वह सब विकल्प है, राग है, वहाँ आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! जहाँ आत्मज्ञान का अभाव है, वहाँ आनन्द का अभाव है। आनन्द का अभाव है, वहाँ दुःख का सद्भाव है। भगवानजीभाई! न्याय समझ में आता है? आहाहा! प्रभु आत्मा परमानन्द प्रभु का जिसे सम्यग्दर्शन आनन्द का स्वाद नहीं। आहाहा! उसका जिसे परमानन्द का व्यक्त, शक्तिरूप से तो है, परन्तु व्यक्त में जहाँ सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञान का स्वाद नहीं, वह सुख नहीं, वहाँ उसकी बुद्धि में राग, द्वेष और मिथ्यात्व (है और वह) और दुःखी है। समझ में आया? आहाहा!

यह शरीर, वाणी, यह तो जड़, मिट्टी, धूल है। अन्दर जो कर्म है, वह अजीव, जड़ है और जो अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वह भी विकार है, वह भी जड़ है, अचेतन है। उसमें चैतन्यपने का अभाव है। तो उसमें आनन्द का भी अभाव है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म है, भगवान! वीतराग का मार्ग प्रथम सम्यग्दर्शन वह चीज़ कोई अलौकिक चीज़ है। समझ में आया? चारित्र तो कहाँ? वह तो बाद में दूसरी दशा है।

यहाँ तो प्रथम कहते हैं कि आनन्द का अभाव अर्थात् पंच महाव्रत पालन करे, समिति, गुप्ति पाले, अजीवन ब्रह्मचर्य पाले, हजारों रानियाँ छोड़कर दिगम्बर मुनि हो, परन्तु उसे दुःख है, ऐसा कैसे सिद्ध किया? कि उसे आत्मज्ञान के आनन्द का स्वाद और अनुभव नहीं। जयन्तीभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यहाँ ५०-५० लाख का बँगला और स्त्रियाँ अनुकूल और परिवार अनुकूल। कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही नाथ एक

बात! तेरा स्वभाव तो परमानन्द है न, प्रभु! उस परमानन्द के स्वाद का जहाँ अभाव है, वहाँ दु:ख का सद्भाव है, दु:खी प्राणी है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं कि जहाँ आगे परमानन्द प्रभु का अभाव, वहाँ वह कर्म की उत्पत्ति करता है। है न? क्या कहा, देखो! **कर्म आत्म-ज्ञान की भावना से रहित...** है? आहाहा! कर्म क्यों हुए? और कर्म के कारण से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति क्यों हुई? आहाहा! दुनिया की जाति अलग। यह **कर्म आत्म-ज्ञान की भावना से रहित...** क्या कहा? पहली बात तो यह की है कि सोलहवान सोना, ऐसा परमात्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द से परिपूर्ण भरपूर सोलहवान सोना समान आत्मा परमात्मा है। उसे यह जाति आदि क्यों मिली? ब्राह्मण आदि, क्षत्रिय आदि जाति। नरकगति, देवगति आदि क्यों मिली? कि कर्म के कारण से मिली। कर्म क्यों हुए? कि आत्मज्ञान की भावना से रहित जिसे भगवान परमानन्द प्रभु की दृष्टि जिसे हुई नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप का स्वाद आना, अनुभव आना, वह सम्यग्दर्शन जिसमें नहीं, वह आत्मज्ञानी की भावना से रहित है। आहाहा! कठिन, भाई! है या नहीं? आत्मज्ञान, भगवान आत्मा तो कहा कि परमानन्दस्वरूप, उसका ज्ञान, उसकी भावना। आहाहा! आत्मज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा परमानन्द और अनन्त ज्ञानादि सम्पन्न, उस अनन्त गुण की सम्पदावाला प्रभु। आहाहा! उसमें आता है। 'चेतन रूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो। चेतनरूप अनूप अमूरत।' जिसे कोई उपमा नहीं, ऐसा प्रभु अमूरत 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ओहोहो! 'मोह महातम आतम अंग।' परन्तु स्वरूप की दृष्टि बिना, परसन्मुख की सावधानी के मिथ्यात्वभाव के कारण 'मोह महातम आतम अंग कियो परसंग।' मैंने तो पुण्य और पाप के राग का संग किया। 'कियो परसंग।' आहाहा! 'महातम घेरो।' अज्ञान का घेरा हुआ। आहाहा!

'ज्ञान कला उपजी अब मोकूं।' बनारसीदास कहते हैं। समयसार नाटक। 'ज्ञान कला उपजी अब मोकूं कहूं गुण नाटक आगम केरो।' आधे घण्टे बाद आये मगनभाई। पीछे से १५ मिनिट, २० मिनिट आवे थोड़ा दिखाने को। यह रामजीभाई ऐसा कहते थे। रामजीभाई को खबर हो न। क्या कहा, समझ में आया कुछ इसमें? आहाहा! 'चेतनरूप

अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो। मोह महातम।' यह कर्म कैसे हुए? मोह— परसन्मुख की सावधानी, स्वरूप की असावधानी। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उस ओर की असावधानी और पुण्य-पाप आदि के भाव और उसके फल के ओर की सावधानी। शुभ-अशुभराग पुण्य-पाप की सावधानी और उसका फल, पुण्य का फल यह धूल, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत कीर्ति में जिसकी सावधानी। आहाहा!

रोटियों के बदले पोटला है बड़े कुछ पड़े हैं अन्दर। तो भी मोह किया ही करता है। आहाहा! भगवानजीभाई! उनके पास तो पैसे बहुत हैं। रोटला, पोटला बड़ा है। आहाहा! आज आया नहीं था हमारा दिनेश-दिनेश न? मनहर का पुत्र आया था। कैसा है, देखने आया था। उसके पास पैसे बहुत हैं। तबियत देखने आया था। वह चला गया सवेरे, जाकर वापस सिहोर। धन्धा है न वह? किसका वह कहलाता है? भंगार... भंगार। यह बर्तन का धन्धा। सिहोर गया होगा। जाये। कितने पैसे हैं उसके पास और उसके पिता के पास। सत्तर लाख। उसका भानेज तो और कहता था हमारे रसिक। ऐई! महेन्द्र! तेरा भाई रसिक तो कहता था कि मेरे मामा के पास करोड़ रुपये हैं। ऐसा कहता था। वहाँ इकट्ठे रहते हैं न। परन्तु पैसा तो है। ६०-७० लाख तो (होंगे)। आहाहा! धूल में भी उसमें कहीं नहीं, मर गया फँसकर वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्निपातिया सब इकट्ठे होकर बिठावे सामने। आहाहा! सन्निपात समझे न? वात, पित्त और कफ। सन्निपात हो जाता है। आहाहा! ऐसे पागल है यह सब। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्याराग-द्वेष का आचरण, वह सन्निपात है। आहाहा! जगत से अलग बात है, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मज्ञान की भावना से रहित। आत्मज्ञान की भावनासहित हो, उसे कर्मबन्धन नहीं होता। सम्यग्दृष्टि को कर्मबन्धन परमार्थ से मिथ्यात्व का बन्धन होता नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ समकित, श्रेणिक राजा गृहस्थाश्रम में राज्य में थे। हजारों राजा चँवर ढोरते थे। सम्यग्दर्शन पाये एक। चारित्र नहीं, व्रत नहीं कुछ अभी अन्दर में रमणता नहीं। सम्यग्दर्शन। आत्म-अनुभव श्रेणिक राजा। परन्तु सम्यक्त्व प्राप्त

होने से पहले मुनि की असताना की थी। तो सातवें नरक का आयुष्य बँधा। फिर सम्यग्दर्शन पाये, तो ३३ सागर के आयुष्य का बन्ध पड़ा था, उसे तोड़कर ८४ हजार वर्ष रह गये। अभी पहले नरक में हैं। श्रेणिक राजा पहले नरक में हैं नीचे। ८४ हजार वर्ष की स्थिति में हैं। वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर होंगे। आहाहा! जैसे महावीर परमात्मा अन्तिम तीर्थंकर, उसे प्रकार आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। आहाहा! सम्यग्दर्शन पाये और तीर्थंकरगोत्र प्राप्त किया। अभी पहले नरक में है। ८४ (हजार) वर्ष की स्थिति है। तो ढाई हजार वर्ष तो गये। साढ़े इक्याशी हजार वर्ष बाकी है, वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर होंगे। चारित्र नहीं, व्रत नहीं, तप नहीं, राग का तीव्र त्याग; मिथ्यात्वसहित में अनन्तानुबन्धी का त्याग है, परन्तु दूसरे भी तीन कषाय के राग का त्याग नहीं। आहाहा! परन्तु आत्मानुभव हुआ, आत्मज्ञान किया। इस कारण से उन्हें मिथ्यात्व का बन्ध नहीं होता। मिथ्यात्व ही संसार है, अनन्त संसार का कारण, वह बन्ध उन्हें नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

नरक में गये, ८४ हजार वर्ष की स्थिति है। आहाहा! आयुष्य बँधा, उस आयुष्य का अभाव नहीं होता। आयुष्य बँधा, उसका अभाव नहीं होता। जिसके लड्डू बने, लड्डू। दाल, शक्कर, घी और आटा। उसमें से लड्डू बने गये, उसमें से घी निकालकर पूड़ी नहीं बनती, और आटा निकालकर रोटी नहीं होती। वह तो उसे खाना ही होता है। आहाहा! उसमें थोड़ा घी डाले अथवा थोड़ा सूखाबे, परन्तु लड्डू तो खाना पड़ेगा। इसी प्रकार जिसे आयुष्य बँध गया, वह स्थिति घट गयी, सातवें नरक की स्थिति थी, वह घट गयी, परन्तु नरक के आयुष्य का अभाव नहीं हुआ। पहले नरक में गया, परन्तु आत्मज्ञानसहित है अभी वहाँ। आहाहा!

पंच महाव्रत और समिति, गुप्ति का व्यवहार पालन कर नौवें ग्रैवेयक में जाये तो मिथ्यादृष्टि है वहाँ। आहाहा! यह नरक में गये और सम्यग्दृष्टि है। परन्तु सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर ही नहीं। बस देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा करो, व्रत पालन करो, सब गप्प-झूठ है। समझ में आया? आहाहा!

आत्मज्ञान की भावना से रहित अज्ञानी जीव... देखा! आत्मा परमानन्द प्रभु, उसका ज्ञान नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं, उसकी सन्मुखता नहीं, तो उस भावना से रहित;

भावना शब्द से (आशय यह कि) सन्मुख की एकाग्रता। समझ में आया? आत्मज्ञान वस्तु भगवान परमानन्द प्रभु का ज्ञान और उसकी एकाग्रता भावना अन्दर में। आहाहा! राग की एकाग्रता छोड़कर आत्मज्ञान की एकाग्रता है, वह वास्तविक धर्म है और वास्तविक मोक्ष का मार्ग है। उससे रहित। आहाहा! आत्मज्ञान प्रभु ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु, उसका ज्ञान, उसका सम्यग्दर्शन, उससे रहित अर्थात् उसकी एकाग्रता रहित। सम्यग्दर्शन और ज्ञान, यह आत्मा के एकाग्रता का भाव है। व्यवहाररत्नत्रय है, वह राग की एकाग्रता का भाव है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मज्ञान की भावना से रहित अज्ञानी जीव ने उपार्जन किये हैं... सम्यग्दृष्टि ने उपार्जन किया, उसकी यहाँ बात ली ही नहीं। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन, वह बन्ध का कारण नहीं और मिथ्यात्व, वही बन्ध का कारण है, यह सिद्ध करना है। आहाहा! यह आत्मा भगवान अन्दर जो कोई अरिहन्त परमात्मा हुए, यह सर्वज्ञ और केवलज्ञान प्राप्त, वह चीज़ आयी कहाँ से? कहीं बाहर से आती है कुछ? अन्दर में पड़ी है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे छोटी पीपर होती है न? छोटी पीपर। तो वह रंग से काली है और चरपराई में बाहर से अल्प है, परन्तु अन्दर में शक्ति की चरपराहट तो चौंसठ पहरी है। चौंसठ पहरी समझते हो? सोलह आना। चौंसठ-चौंसठ। उस घूँटते हैं और वह चौंसठ पहरी बाहर आती है, वह कहाँ से आयी? पत्थर से आयी? तो पत्थर से लकड़ी और पत्थर घूँटे न? कहाँ से आये? उसमें है। उस छोटी पीपर में चौंसठ अर्थात् रुपया सोलह आना चरपराहट भरी है। और हरा रंग अन्दर में पड़ा है। आहाहा! वह है, उसकी प्राप्ति है। समझ में आया? इसी प्रकार केवलज्ञानी परमात्मा केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ, वह कहाँ से हुआ? वह आत्मा के स्वभाव में चौंसठ—पूर्ण आनन्द, पूर्ण शक्ति, पूर्ण शान्ति पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? उसमें से निकालकर परमात्मा हुआ। तो परमात्मा शक्ति से है, तो व्यक्ति से प्रगट परमात्मा हुआ। समझ में आया? ऐसा यह आत्मा शक्ति से, स्वभाव से तो परमात्मा है। उसके ज्ञानरहित जीव, उसका ज्ञान नहीं होता, दूसरा ज्ञान किया, शास्त्र का किया, पठन किया, हजारों लोगों को रिझाने की व्याख्या शैली आयी। उसमें क्या हुआ? समझ में आया?

आत्मज्ञानरहित अपना चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्धस्वरूप के ज्ञान और श्रद्धारहित अर्थात् उसका ज्ञान और अन्दर श्रद्धा की भावना, एकाग्रतारहित। आहाहा! **अज्ञानी...** है? **अज्ञानी जीव को...** भाषा यह ली है। ज्ञानी को थोड़ा राग रहता है, परन्तु वह अनन्त संसार का कारण नहीं। समकिती आत्मज्ञान होने के पश्चात् तीन कषाय का राग है, परन्तु वह कहीं अनन्त संसार का कारण नहीं है। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा और मिथ्याज्ञान अनन्त संसार का कारण है तथा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, वह अनन्त संसार को छेदने का कारण है। आहाहा! ऐसी बातें अब। देखो, यह परमात्मप्रकाश। योगीन्द्रदेव मुनि हुए हैं।

सवेरे जो समयसार था, वह कुन्दकुन्दाचार्य (कृत)। दिगम्बर मुनि दो हजार वर्ष पहले (हुए)। यह दिगम्बर मुनि हैं। (ये) १३०० वर्ष पहले योगीन्द्रदेव वनवास में रहते थे। उनके शिष्य थे प्रभाकरभट्ट, उनके लिये यह बनाया। समझ में आया? आहाहा! आत्मज्ञान से रहित **आत्मज्ञान की भावना से रहित...** आत्मा क्या चीज़ है, उसकी दृष्टि हुई नहीं और भावना कहाँ से करे अन्दर? जो चीज़ भासित हुई हो, उसकी भावना करे कि यह चीज़ ऐसी है। आहाहा!

कोई ऐसा कहता था। परदेश में है न? आम पकते हैं। आम-आम। आम होते हैं न? वे किसी देश में हैं ऐसा सुना। आम पकते नहीं। फिर इतने-इतने बड़े बोर आवे न बोर। बोर होते हैं न बोर? बोर को क्या कहते हैं? बोरी। बैर। तो उसे आम मान ले। परन्तु कहाँ आम और कहाँ बोर? देखा नहीं कभी बोर कैसे और आम कैसा? समझ में आया? यहाँ भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से रहित और परिपूर्ण स्वभाव से सहित ऐसी ज्ञान की भावना बिना... आहाहा! इसने भावना की पुण्य और पाप और अल्पज्ञदशा की। तो उसे **अज्ञानी जीव ने उपार्जन किये हैं,...** अज्ञानी ने कर्म उपार्जित किये, ऐसा सिद्धान्त किया यहाँ तो। आहाहा!

उन कर्मों के आधीन... उन कर्म के आधीन **जाति-भेद है,...** आहाहा! यह ब्राह्मण और यह क्षत्रिय, वह तो कर्म के आधीन जातिभेद है। भगवान आत्मा में वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **जाति-भेद है, जब तक कर्मों का उपार्जन है,...**

आहाहा! आत्मज्ञान की एकाग्रतारहित कर्म का जब तक उपार्जन है, **तब तक संसार में अनेक जाति धारण करता है,...** आहाहा! ब्राह्मण होता है, क्षत्रिय होता है। वह तो सब कर्म का फल है। जिसे आत्मज्ञान नहीं, आत्मा का भान नहीं, उसने अज्ञानरूप से जो कर्म उपार्जन किये, उन कर्म के कारण से जाति आदि मिलती है। भवान्तर। भवान्तर अर्थात् भव में भटकता है। आहाहा! समझ में आया? है न?

तब तक... 'अत्र भवांतरे आयाति' संसार में अनेक जाति धारण करता है,... आहाहा! **जो यह जीव आत्मस्वरूप में लगे,...** आहाहा! अब बात गुलाँट खाती है। आनन्दस्वरूप भगवान की दृष्टि रहित अज्ञानी कर्म उपार्जित करता है, उसमें जातिभेद आदि मिलते हैं और भव में भटकता है। भव में पड़ता है। है न? **'अत्र भवांतरे आयाति' 'अयं यदि' जो यह जीव... 'आत्मनी स्थितः' आत्मस्वरूप में लगे,...** आहाहा! अज्ञानी आत्मा के स्वभाव की भावनारहित राग में लगा, पुण्य-पाप की क्रिया में लगा और अज्ञान से कर्म उपार्जन हुआ। आहाहा!

परमात्मप्रकाश है। दिगम्बर मुनि, योगीन्द्रदेव। १३०० वर्ष पहले हुए। आहाहा! जंगल में रहनेवाले, वनशास्त्र है यह। वन में बनाया है। मुनि तो वन में रहते थे न। जंगल में रहते थे। दिगम्बर मुनि जो आत्मज्ञान और ध्यान आनन्द, उन्हें बाहर का परिचय है नहीं। जंगल में रहते थे। भिक्षा के लिये गाँव में आवे, भिक्षा (आहार) लेकर वापस चले जायें। आहाहा! अन्तर के आनन्द के स्वाद में दूसरी किसी चीज़ पर उनकी प्रीति और रुचि नहीं होती। महाव्रत के परिणाम आवे तो रुचि और प्रीति नहीं होती। क्योंकि वह राग है। आहाहा! दुःख है।

आत्मज्ञान बिना जितना राग है, वह सब दुःख है और धर्मी जीव को भी आत्मज्ञानसहित में भी जितना राग होता है, वह दुःख है। तो दुःख की रुचि नहीं। रुचि तो आनन्द की है। आहाहा! निर्बलता के कारण राग आता है, परन्तु वह दुःख है। आहाहा! यह पंच महाव्रत आस्रव है, दुःख है। आहाहा! यह तो कहा था न, ८५ के वर्ष में। कितने वर्ष हुए? १५ और ३३, ५० में दो कम। ४८ वर्ष हुए। उसमें थे न हम। तो बोटाद थे न, बोटाद। हमारी तो प्रतिष्ठा पहले से बहुत ही थी न! तो लोग तो हजारों आवे

व्याख्यान सुनने। पूरा उपाश्रय खचाखच भर जाये। उसमें तो समावे नहीं परन्तु पीछे शेरी, क्या कहते हैं ? गली ? गली। खचाखच लोग। यह तो ५० वर्ष पहले की बात है। ४० और ८, ४८ वर्ष पहले की बात है। सभा बड़ी थी। उसमें पहले ऐसा कहा, उस समय, हों! कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। खलबलाहट, खलबलाहट। ५० में दो कम। बोटाद।

और जिस भाव से पंच महाव्रत होते हैं, वह आस्रव है, राग है। ४८ वर्ष पहले सभा में स्थानकवासी में। उसमें थे न हम तो पहले। तो कहा तो खलबलाहट, खलबलाहट हो गयी। करो खलबलाहट करो, कहा—मार्ग यह है। समझ में आया ? लोग तो सुनते थे। लोगों को हमारे प्रति प्रेम था न! छोटी उम्र से हजारों लोग आते थे। दो-दो हजार, तीन-तीन हजार लोग। तो एक साधु बैठे, उन्हें रुचा नहीं। तो वे कहे वोसरे... वोसरे, यह हमें नहीं चाहिए। उनका कोई मानता नहीं था तब। लोग बड़ी सभा भरी थी। मार्ग यह है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र सोलहकारण भावना, वह भाव भी बन्ध का कारण है तो राग धर्म नहीं। तीर्थंकर प्रकृति बँधे, वह तो भाव है। भाव से बँधती है। तो क्या वह धर्मभाव है ? धर्मभाव से बन्ध होता है ? वह तो राग है। आहाहा! कहो, समझ में आया ? और पंच महाव्रत है, वह आस्रव है, कहा। मुनि आत्मज्ञानी। उसमें तो यह बात है नहीं—श्वेताम्बर में तो शास्त्र में ही सब कल्पना है। यह बात तो उसमें है नहीं। यह तो दिगम्बर सन्तों ने यह बात की है। समझ में आया ? यथार्थ वस्तु की यह स्थिति है। समझ में आया ?

एक साधु थे, वे कहे वोसरे... वोसरे... कोई माने नहीं। कुछ खबर नहीं। फिर पूरा होने के बाद कहा, परन्तु तुम्हें वहाँ बैठा रहना था। तुमने क्या कहा, उसे लोग जानते हैं ? और तुमने कहा यह सब सेठिया बैठे थे, बड़े-बड़े सेठिया। ५०-५० हजार वार्षिक आमदनीवाले। कोई तुम्हारा मानते नहीं मुफ्त का कया करना ? उन लोगों को बैठे नहीं और इसलिए हमारी श्रद्धा बराबर है, ऐसा कहे। धूल में भी नहीं। यह पंच महाव्रत के परिणाम से धर्म माने, वे मिथ्यादृष्टि श्रद्धा मिथ्यात्व है। समझ में आया ? प्ररूपणा भी ऐसी करते हैं। व्रत करो, ऐसा करो, तो व्रत से संवर होता है। धूल भी नहीं होता, सुन तो सही। संवर तो अपना आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी दृष्टि होकर

एकाग्र हो, उसका नाम संवर है। कभी सुना नहीं। एक भी तत्त्व की बात सुनी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। अज्ञानी '**आत्मनी स्थितः**' तो पहले कहा कि आत्मा की भावनारहित, उससे कर्म उपार्जित किये तो उन कर्म के कारण से जातिभेद मिला। आहाहा! अब आत्मा में स्थित है। आहाहा! है? **आत्मस्वरूप में लगे...** स्थित का अर्थ किया। भगवान स्वरूप आनन्द अविकारी स्वभाव त्रिकाली भगवान आत्मा का, उस आत्मा में स्थित है। दृष्टि वहाँ लगी है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की दृष्टि आत्मस्वभाव में लगी है। भले गृहस्थाश्रम में हो, श्रेणिक राजा। कहा न, अभी नरक में है, परन्तु आत्मस्वभाव में दृष्टि वहाँ है। आहाहा! आगामी काल में वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर होंगे। अभी तो छह महीने पहले इन्द्र आकर उनकी माता को साफ करेंगे। अभी तो (वे) नरक में होंगे। छह महीने पहले। माँ का गर्भ साफ करे। जहाँ जैसे बड़े पुरुष आवे और मकान साफ करे और... है न? यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर। आहाहा! नरक में से आनेवाले हैं। राजा श्रेणिक। इन्द्र आकर माता का गर्भ साफ करेंगे। आहाहा! और नौ महीने, छह महीने = पन्द्रह महीने रत्न की वृष्टि। नरक में से निकले उसकी भी रत्न की वृष्टि। आहाहा! यह सब प्रताप आत्म-सम्यग्दर्शन का है। बापू! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी लोगों को खबर नहीं। बस अपने भगवान को मानते हैं, देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं। व्रत लो, तप लो, वह चारित्र। धूल भी नहीं, सुन न। आहाहा! ऐसी बातें। मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

कहा था न, पद्मनन्दि पंचविंशति है न! पद्मनन्दि दिगम्बर आचार्य हुए हैं। पद्मनन्दि। महा वनवासी। २६ अध्याय है। परन्तु नाम पंचविंशति दिया है। पद्मनन्दि पंचविंशति। जिसे श्रीमद् राजचन्द्र ने वनशास्त्र कहा है। वनशास्त्र। कि मुनि दिगम्बर वन में लिखते थे ताड़पत्र पर (लिखते थे) उन्हें कहीं किसी की पड़ी नहीं थी। आहाहा! उसमें एक यह आया, २६वाँ अधिकार है। ब्रह्मचर्य का अधिकार है, ब्रह्मचर्य का। ऐसा ब्रह्मचर्य का वर्णन किया, ऐसा वर्णन किया कि लोगों को एकबार तो ऐसा हो कि आहाहा! यह क्या? ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें चरना अर्थात् रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। काया से-शरीर से स्त्री का सेवन न करना, वह कहीं ब्रह्मचर्य

नहीं। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें चरना, रमना, आनन्द का अनुभव करना, इसका नाम ब्रह्मचर्य, बहुत स्पष्टीकरण किया है। फिर ऐसा कहा, मुनि दिगम्बर सन्त वनवासी थे। (उन्होंने कहा)—हे युवकों! ऐसा लिखा है अन्दर। पाठ है। हे युवकों! मैं जो ब्रह्मचर्य की बात करता हूँ, वह तुमको न रुचे तो क्षमा करना। मैं तो मुनि हूँ। आहाहा! जवान शरीर हो लठ्ठ जैसा, रूपवान ऐसा और स्त्री, कुटुम्ब सब। उसे ऐसी ब्रह्मचर्य की बात सुनकर, हे युवकों! ऐसा पाठ लिखा है। मुनि कहते हैं, हों! आहाहा!

वह ब्रह्मचर्य की बात तुझे न रुचे, तो प्रभु! मैं तो मुनि हूँ, माफ करना। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं, हम मोक्ष का मार्ग जो वर्णन करते हैं, वह भगवान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। हम तो मुनि हैं। तुमको न रुचे तो माफ करना। आहाहा! भगवानजीभाई! बहुत से ऐसा कहते हैं न कि वह यह निश्चय है। यह तो निश्चय की बात करते हैं। व्यवहार का तो लोप कर दिया है। सुन न अब। निश्चय क्या और व्यवहार की खबर बिना तुझे। आहाहा! व्यवहार का लोप करके स्वभाव का आश्रय बताया है। यह बात तुमको न रुचे और न सुहावे तो क्षमा करना। प्रभु का मार्ग तो ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो तो मुनिराज दिगम्बर सन्त जंगल में बसनेवाले, यह बहुत यह लिखकर फिर अन्त में ऐसा कहते हैं। मार्ग तो यह है प्रभु! बापू! तुझे न रुचे और दूसरे प्रकार से सुना हो तो तुझे ऐसा लगे कि यह तो निश्चयाभास है। यह तो निश्चय (की बात करते हैं) और व्यवहार की बात उड़ा देते हैं। व्यवहार होता है, परन्तु व्यवहार बन्ध का कारण है। भगवान आत्मा के आश्रय से निश्चय प्रगट हुआ, वह अबन्ध का कारण है। क्योंकि अबन्ध स्वरूपी प्रभु आत्मा अबद्धस्पृष्ट आत्मा है, अबद्धस्पृष्ट है। राग और पर्याय से बद्ध नहीं ऐसा भिन्न है। उस अबद्धस्पृष्ट का अनुभव करते हैं, जैन शासन का अनुभव करते हैं। आहाहा! यह (समयसार) १४-१५ गाथा में आया है। समझ में आया? तो उस अबद्ध आत्मा का परिणाम जो अबद्ध हो। अबद्धस्वरूप है, उसके परिणाम में अबद्ध परिणाम हो सम्यग्दर्शन आदि, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! कठिन बातें भाई!

'**आत्मनी स्थितः**' आहाहा! जो कोई प्राणी, भगवान आत्मा विकल्प आवे, होवे

परन्तु उसे छोड़कर अन्तर में स्थिर होता है। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण आनन्द स्वरूपी परमात्मस्वरूप अपना, उसमें जो दृष्टि करके स्थिर होता है। आहाहा! समझ में आया? '**अत्रैव भवे न पतति**' वह जीव भव में पड़ेगा नहीं। उसे भव मिलेगा नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान की भावनारहित अज्ञानी कर्म बाँधे, उसे भव मिलेंगे और आत्मा में जो ज्ञानस्वरूप आनन्द है, ऐसी दृष्टि करके स्थिर होता है, वह भव में नहीं आयेगा। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भगवानजीभाई! आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसलिए लोगों को कठोर पड़े, परन्तु उसका कोई साधन? ऐसा पूछते हैं। परन्तु यही साधन है, सुन तो सही! पहले व्यवहार करना, यह करो, यह करो, वह साधन है। बिल्कुल झूठ है। अनन्त बार ऐसा साधन किया है। समझ में आया?

श्रीमद् में आता है न यह, 'यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग वैराग्य अथाग लयो, वनवास रह्यो, मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो, सब शास्त्रन के नयधारी हिये, मत मण्डन, खण्डन भेद लिये, यह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ न हजु न पड़्यो।' आहाहा! 'अब क्यों न विचारत है मन से कछु और रह्या उन साधन से।' यह यम-नियम पालन किये अनन्त बार महाव्रतादि (पालन किये), वह साधन-फाधन नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपी कछु हाथ हजु न पड्यो। अब क्यों न विचारत है मन से कछु और रह्या उन साधन से। बिन सद्गुरु कोई न भेद लहे, मुख आगळ है कह बात कहे।' भगवान अन्दर स्थित है न मुख्य। आहाहा! है? आहाहा!

उसमें जो स्थित हो, वह भव में नहीं पड़ता। है न? **नहीं पड़े-भ्रमण नहीं करे,... 'कि आश्चर्य' इसमें क्या आश्चर्य है?** ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें क्या आश्चर्य? यदि आत्मा वस्तु भगवान आत्मा में दृष्टि सम्यक् करके उसमें रमता है, वह भव में नहीं पड़ता, इसमें आश्चर्य क्या? उसे भव है ही नहीं। एकाध दो भव हैं, वे भी भव ज्ञाता का ज्ञेय है। आहाहा! वह भव और भव के भाव को अपना मानते नहीं। अपना तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, स्वभाव भगवान आत्मा, उसे अपना मानते हैं। सम्यग्दृष्टि। भले पंचम गुणस्थान अभी न हो, मुनि न हो। आत्मज्ञान के आनन्द के अनुभवसहित मुनि चारित्रवन्त भी न

हो, परन्तु यह जिसे आत्मा की दृष्टि हुई, वह नये कर्म नहीं बाँधता और भव में नहीं भटकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब ऐसी बात। इसलिए फिर लोग तो ऐसा ही कहे न, यह सोनगढ़वालों का एकान्त है। यह सब खबर नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान क्या कहते हैं यह? मुनिराज क्या कहते हैं? आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु तेरे पंथ की, पद्धति की तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **आत्मस्वरूप में लगे, तो इसी भव में नहीं पड़े-भ्रमण नहीं करे, इसमें आश्चर्य क्या है?** आहाहा!

भावार्थः—जब तक आत्मा में चित्त नहीं लगता,... आहाहा! जब तक पुण्य और पाप में चित्त लगा हुआ है, तब तक चार गति में भटकेगा। आहाहा! है? **जब तक आत्मा में चित्त नहीं लगता, तब तक संसार में भ्रमण करता है,...** आहाहा! आत्मा क्या चीज़ है और आत्मधर्म को छोड़कर सब बात अब। आहाहा! **अनेक भव धारण करता है, लेकिन जब यह आत्मदर्शी हुआ...** है? आत्मदर्शी हुआ, आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! आत्मदर्शी। रागदर्शी, निमित्तदर्शी, पर्यायदृष्टि नहीं।

मुमुक्षु : आत्मदर्शी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा तो सवेरे आया था स्व। आत्मा का आश्रय अर्थात् स्व का आश्रय, स्व अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव। आहाहा! समझ में आया?

आत्मदर्शी हुआ, तब कर्मों को नहीं उपार्जन करता,... देखो, यहाँ तो वहाँ से ही उठाया है। सम्यग्दर्शन हुआ तो कर्मोपार्जन नहीं करता, जाओ। आहाहा! **और भव में भी नहीं भटकता। इसमें आश्चर्य नहीं है।** आश्चर्य क्या? आहाहा! भव और भव के भावरहित भगवान आत्मा की जिसे दृष्टि हुई, वह भव में नहीं भटकता। उसे भव है ही नहीं। आहाहा! है? उसमें आश्चर्य क्या? ऐसा कहते हैं। उसमें नवीन बात क्या है? वह तो पूर्व का सत्य सिद्धान्त है, इस प्रकार इन्होंने कहा। आहाहा! समझ में आया? यह विशेष बात है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, चैत्र शुक्ल २, सोमवार
दिनांक- २१-०३-१९७७, गाथा - १८५ से १८७, प्रवचन-२२८

श्री परमात्मप्रकाश १८५ गाथा। यहाँ आया है। फिर से भावार्थ। **जब तक आत्मा में चित्त नहीं लगता,...** क्या कहते हैं? जिसका चित्त अन्दर पुण्य और पाप तथा उसके फल में चित्त लगा है, वह मिथ्यादृष्टि संसार के भ्रमण में परिभ्रमण करेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसका चित्त आत्मा में लगा है। शुद्ध चिद्घन आनन्द ज्ञायकभाव। ऐसा जो निजस्वभावभाव, उसमें जिसका चित्त लगा है। है न यह? **चित्त नहीं लगता, तब तक संसार में भ्रमण करता है, अनेक भव धारण करता है, लेकिन जब यह आत्मदर्शी हुआ...** लो! आत्मदर्शी भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव की अन्दर अनुभव में दृष्टि-द्रव्यदृष्टि हुई।

आत्मदर्शी हुआ तब कर्मों को नहीं उपार्जन करता,... वहाँ से इसे उपार्जित किया। कर्म को उपार्जित नहीं करता। मिथ्यादृष्टि उत्पन्न करता है। सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं करता। आहाहा! **और भव में भी नहीं भटकता। इसमें आश्चर्य क्या? आश्चर्य नहीं है।** आहाहा! जिसका चित्त दृष्टि वस्तु के स्वभाव पर पड़कर आदर किया, उसे अब भवभ्रमण नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा कहते हैं। यहाँ तक आया था। पाठ में तो इतना है '**संसारभयभीतेन**' संस्कृत। इसका अर्थ जरा थोड़ा लम्बा हुआ। संसार, शरीर और भोग, तीन शब्द प्रयोग किये हैं। टीका में '**संसारभयभीतेन**' जिसे संसार का भय लगा है। चौरासी के अवतार में भटकना, इसका जिसे डर लगा है। आहाहा! चाहे तो स्वर्ग का भव हो या मनुष्य का, परन्तु वह भव दु:खदायक है। इसी प्रकार जिसे संसार का भय लगा है। आहाहा!

वह **संसार-शरीर-भोगों से उदास...** उदयभाव, शरीर और भोग तीनों से उदास, पर से उदास होकर। आहाहा! **जिसको भव-भ्रमण का भय उत्पन्न हो गया है,...** भव भ्रमण का भय। तीनों भभा। भव, भ्रमण का भय। **ऐसा भव्य जीव...** आहाहा! यह चौथा भ। समझ में आया? आहाहा! कोई भी भव करना, वह दु:खदायक है। चाहे तो स्वर्ग का हो या मनुष्य का हो या राज का, सेठाई का हो। आहाहा! पुण्य के फलरूप से सेठाई

और स्वर्ग मिले, वह भी दुःखरूप है, ऐसे भवभ्रमण के भय से। भव जिसे भ्रमण का भय उत्पन्न हुआ है, ऐसा भव्यजीव। आहाहा! उसे **मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद, योग, इन पाँचों आस्त्रव...** पाँच के आस्त्रव से रहित अपना परमात्मतत्त्व है। आहाहा! अभी, हों! आहाहा!

मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद, योग,... पाँचों आस्त्रव के कारण, उन आस्त्रव के कारण से रहित, आस्त्रव को छोड़कर, दृष्टि में से पाँचों आस्त्रव को छोड़कर स्वरूप में एकाग्र होने से, **परमात्मतत्त्व में सदैव भावना करनी चाहिए।** लो! आहाहा! यह समयसार में आता है न भावार्थ में? उतना योग भी छूट जाता है। क्या कहते हैं? जितना आत्मा ज्ञायकस्वभाव है, उसका आश्रय लेता है, तब तो उसे मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग का भी अंश है, वह उतना छूट जाता है। आहाहा! भावार्थ में है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कहने का आशय कि जिसे आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, ऐसी जिसे अन्दर लगनी लगी, उस ओर की भावना के भाव में पाँच आस्त्रव का उसमें अभाव है। आहाहा! आस्त्रवतत्त्व है, वह तो आस्त्रवरूप है। वह आत्मा में नहीं। यहाँ तो योग को भी छोड़कर। कम्पन है और शुभाशुभभाव है, उसे छोड़कर परमात्मतत्त्व अपना स्वरूप, उसकी जो भावना करता है। आहाहा! वह **भावना करनी चाहिए।** यह करनेयोग्य है। बाकी सब थोथा। आहाहा! तब फिर यह धन्धा कब करना हमारे? यह पाप का धन्धा पूरे दिन। चौबीस घण्टे। घण्टे, दो घण्टे सुनने में जाता हो, लो न २०-२२ घण्टे।

अरे! प्रभु कहते हैं यहाँ तो सुन न भाई! ऐसे भाव तो संसार में भटकने के, अनन्त बार, अनन्त भव में अनन्त बार किये। वह कोई नयी चीज़ नहीं। आहाहा! तेरी वस्तु अन्दर भव और भव के भावरहित, वस्तु जो अन्दर है परमात्मतत्त्व, स्वयं परमात्मतत्त्व, वह भव और भव के कारण के भावरहित वस्तु है। आहाहा! उसे उल्लंघे कब यह? कि ऐसे परिणाम आस्त्रव के होने पर भी उसे न गिनकर ज्ञायकभाव पर जाने से उसे पाँचों आस्त्रव का उसमें अभाव होता है। समझ में आया? आहाहा! उसमें यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी आस्त्रव में आ गये। समझ में आया?

इन **पाँचों आस्रवों को छोड़कर परमात्मतत्त्व में...** विकारी पर्याय में पाँच प्रकार के जो आस्रव हैं, उन्हें छोड़कर, उनका लक्ष्य छोड़कर—पाँच आस्रव का लक्ष्य छोड़कर परमात्मतत्त्व में भावना करना। आहाहा! ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को दूसरा कोई साधन हो तो उन्हें सरल पड़े, परन्तु दूसरा कोई साधन है नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञायकस्वरूप चिद्घन, जिसमें भव और भव का भाव तो नहीं, परन्तु जिसमें वर्तमान ज्ञान की पर्याय आदि गुण की अनन्त गुणी की व्यक्त पर्याय भी जिसकी वस्तु में नहीं। आहाहा! उसकी भावना करना चाहिए। ऐसा कहते हैं। है न?

परमात्मतत्त्व में... अर्थात् वे पाँच प्रकार के आस्रव है, उनका लक्ष्य छोड़कर। वह पर्यायबुद्धि है। उसे आत्म-परमात्मतत्त्व में भावना करनी चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है। **जो इसके आत्म-भावना होवे तो भवभ्रमण नहीं हो सकता।** आहाहा! उसे ऐसा भवभ्रमण नहीं हो सकता। १८५ हुई। भवभय से डरी चित्त, आता है न? योगसार में—दोहों में आता है। पहले और बाद में अन्त में (आता है)। भवभय से डरकर, यह लिखा है। पहले भवभय से डरकर... आहाहा! डरकर का अर्थ? उसमें से हटकर। परमात्मतत्त्व आनन्द का कन्द प्रभु, पूर्ण शान्ति और पूर्ण स्वच्छता और पूर्ण ईश्वर शक्तियों का सागर, उसकी भावना करनी चाहिए। आहाहा! यह भावना, वह धर्म है। परमात्मतत्त्व है, वह तो त्रिकाली है। समझ में आया? उसकी भावना करना, वह वर्तमान पर्याय वीतरागी। आहाहा! इसे पकड़ना कठिन। क्या कहते हैं यह? भाई! वह मार्ग यह है। जहाँ प्रभु आत्मा विराजता है, जिस स्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु है, उसकी लगन लगा। आहाहा! उसका चित्त वहाँ जोड़ दे। और आस्रव के प्रति चित्त को वहाँ से हटा दे। अस्ति-नास्ति की। पूर्णानन्द के नाथ में चित्त को जोड़, आस्रवतत्त्व से चित्त को तोड़, छोड़। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

सब फिर ऐसा कहते हैं। परन्तु यह सब ऐसा पहला इसका साधन क्या? यही साधन है, भाई! आहाहा! स्वसन्मुख होना, पर से विमुख होना, यह साधन है। आहाहा! लोगों को यह बाहर का हो न, व्रत, तपस्या और अपवास ऐसा। धमाधम मानो, ओहोहो! दुःखी प्राणियों को देना, दूसरे का आँसू पोंछना तो उसमें इसे कुछ समझ में भी आये। पैसे का सदुपयोग करना, शरीर का सदुपयोग करना। हमारे ढेबरभाई कहते थे

तब यहाँ। आये थे न एक बार? वृक्ष के नीचे बैठे थे उस ओर। बहुत वर्ष (हुए)। विनोबा थे यहाँ, उनके लिये आये थे। वे कहे कि हमारे करना तो पड़े न पर के लिये? आहाहा! हमारे निमित्त तो होना न! लो, आहाहा! वह चला गया, लो! कौन करे बापू? परद्रव्य को कौन करे? आहाहा!

अरे! परद्रव्य को तो नहीं, परन्तु परद्रव्य के लक्ष्य से हुए आस्रवों को कौन करे, प्रभु? वे आस्रव तो विकार और दुःख हैं। आहाहा! उसे—पंच महाव्रत को छोड़कर, पंचम पारिणामिक स्वभावभाव में भावना करना। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? मनुभाई! ऐसा सूक्ष्म है। अब इसमें धन्धे के कारण कुछ सूझ पड़ती नहीं इसमें। ऐई! रतिभाई! यह बड़े हैं, यह छोटे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सूझ पड़े ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सादी ही बात है। यह तो सूझ पड़े ऐसी ही बात है। आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? कितना है? कि तू है, परमात्मतत्त्व है और पुण्य-पाप, मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, वह तो आस्रवतत्त्व—दुःखतत्त्व—विकारतत्त्व है। आहाहा! इन दो में से विकारतत्त्व का लक्ष्य छोड़कर निर्विकारी परमात्मतत्त्व की भावना करना। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आप तो सब अनजानी बात करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना हुआ मार्ग नहीं, इसलिए तो अनजाना लगता है। परन्तु इसे जानना पड़ेगा न? अनजाने को जानना पड़ेगा न? जाने बिना कहाँ से हो सकेगा? आहाहा! यह पंचम, पाँच आस्रव ऐसे जो विकारी परिणाम, उन्हें छोड़कर निर्विकारी परमात्मतत्त्व, आत्मा वह परमात्मतत्त्व है, उसकी भावना करना। आहाहा! उसका नाम मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

गाथा - १८६

अथ परेण दोषग्रहणे कृते कोपो न कर्तव्य इत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं प्रतिपादयति–

३०९) अवगुण–गहणइँ महुतणइँ जइ जीवहँ संतोसु।
तो तहँ सोक्खहं हेउ हउँ इउ मण्णिवि चइ रोसु।।१८६।।

अवगुणग्रहणेन मदीयेन यदि जीवानां संतोषः।
ततः तेषां सुखस्य हेतुरहं इति मत्वा त्यज रोषम्।।१८६।।

जइ जीवहं संतोसु यदि चेदज्ञानिजीवानां संतोषो भवति। केन। अवगुण–गहणइं निर्दोषिपरमात्मनो विलक्षणा ये दोषा अवगुणास्तेषां ग्रहणेन। कथंभूतेन महुतणइं मदीयेन तो तहं सोक्खहं हेउ हउँ यतः कारणान्मदीयदोषग्रहणेन तेषां सुखं जातं ततस्तेषामहं सुखस्य हेतुर्जातः इउ मण्णिवि चउ रोसु केचन परोपकारनिरताः परेषां द्रव्यादिकं दत्त्वा सुखं कुर्वन्ति मया पुनर्द्रव्यादिकं मुक्त्वापि तेषां सुखं कृतमिति मत्वा रोषं त्यज। अथवा मदीया अनन्त–ज्ञानादिगुणा न गृहीतास्तैः किंतु दोषा एव गृहीता इति मत्वा च कोपं त्यज, अथवा ममैते दोषाः सन्ति सत्यमिदमस्य वचनं तथापि रोषं त्यज, अथवा ममैते दोषा न सन्ति तस्य वचनेन किमहं दोषी जातस्तथापि, क्षमितव्यम्, अथवा परोक्षे दोषग्रहणं करोति न च प्रत्यक्षे समीचीनोऽसौ तथापि क्षमितव्यम्, अथवा वचनमात्रेणैव दोषग्रहणं करोति न च शरीरबाधां करोति तथापि क्षमितव्यम्, अथवा शरीरबाधामेव करोति न च प्राणविनाशं तथापि क्षमितव्यम्, अथवा प्राणविनाशमेव करोति न च भेदाभेदरत्नत्रयभावनाविनाशं चेति मत्वा सर्वतात्पर्येण क्षमा कर्तव्येत्यभिप्रायः।।१८६।।

आगे जो कोई अपने दोष ग्रहण करे तो उस पर क्रोध नहीं करना, क्षमा करना, यह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं–

यदि मेरे दोषों को कहकर कोई होता है सन्तुष्ट।
मेरे कारण सुखी हुआ वह ऐसा जान न होना क्रुद्ध।।१८६/३०९।।

अन्वयार्थः– [मदीयेन अवगुणग्रहणेन] अज्ञानी जीवों को पर के दोष ग्रहण करने से हर्ष होता है, मेरे दोष ग्रहण करके [यदि जीवानां संतोषः] जिन जीवों को हर्ष होता

है, [ततः] तो मुझे यही लाभ है, कि [अहं] मैं [तेषां सुखस्य हेतुः] उनको सुख का कारण हुआ, [इति मत्वा] ऐसा मन में विचारकर [रोषम् त्यज] गुस्सा छोड़ो।

भावार्थः– ज्ञानी गुस्सा नहीं करते, ऐसा विचारते हैं, कि जो कोई पर का उपकार करनेवाले परजीवों को द्रव्यादि देकर सुखी करते हैं, मैंने कुछ द्रव्य नहीं दिया, उपकार नहीं किया, मेरे अवगुण ही से सुखी हो गये, तो इसके समान दूसरी क्या बात है? ऐसा जानकर हे भव्य, तू रोष छोड़। अथवा ऐसा विचारे, कि मेरे अनंत ज्ञानादि गुण तो उसने नहीं लिये, दोष लिये वो निस्संक लो। जैसे घर में कोई चोर आया, और उसने रत्न सुवर्णादि नहीं लिये माटी पत्थर लिये तो लो, तुच्छ वस्तु के लेनेवाले पर क्या क्रोध करना, ऐसा जान रोष छोड़ना। अथवा ऐसा विचारे, कि जो यह दोष कहता है, वे सच कहता है, तो सत्यवादी से क्या द्वेष करना। अथवा ये दोष मुझमें नहीं हुआ वह वृथा कहता है, तो उसके वृथा कहने से क्या मैं दोषी हो गया, बिलकुल नहीं हुआ। ऐसा जानकर क्रोध छोड़ क्षमाभाव धारण करना चाहिये। अथवा यह विचारो कि वह मेरे मुँह के आगे नहीं कहता, लेकिन पीठ पीछे कहता है, सो पीठ पीछे तो राजाओं को भी बुरा कहते हैं, ऐसा जानकर उससे क्षमा करना कि प्रत्यक्ष तो मेरा मानभंग नहीं करता है, परोक्ष की बात क्या है। अथवा कदाचित् कोई प्रत्यक्ष मुँह आगे दोष कहे, तो तू यह विचार की वचनमात्र से मेरे दोष ग्रहण करता है, शरीर को तो बाधा नहीं करता, यह गुण है, ऐसा जान क्षमा ही कर। अथवा जो कोई शरीर को भी बाधा करे, तो तू ऐसा विचार, कि मेरे प्राण तो नहीं हरता, यह गुण है। जो कभी कोई पापी प्राण ही हर ले, तो यह विचार कि ये प्राण तो विनाशक हैं, विनाशीक वस्तु के चले जाने की क्या बात है। मेरा ज्ञानभाव अविनश्वर है, उसको तो कोई हर नहीं सकता, इसने तो मेरे बाह्य प्राण हर लिये हैं; परंतु भेदाभेदरत्नत्रय की भावना का विनाश नहीं किया। ऐसा जानकर सर्वथा क्षमा ही करना चाहिये।।१८६।।

गाथा-१८६ पर प्रवचन

१८६। **आगे जो कोई अपने दोष ग्रहण करे तो उस पर क्रोध नहीं करना,...** विशेष लेते जाते हैं न? आहाहा! कोई अपमान करे, दोष ग्रहण करे, दोष ही ग्रहण करे और दोष की ही बात करे। उसके ऊपर क्रोध नहीं करना। वह तो उसे जैसा रुचे, वैसा

करे, उसमें तुझे क्या नुकसान है? आहाहा! यह **क्रोध नहीं करना, क्षमा करना, यह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं:—** लो १८६।

३०९) अवगुण-गहणइँ महुतणइँ जइ जीवहँ संतोसु।
तो तहँ सोक्खहं हेउ हउँ इउ मण्णिवि चइ रोसु।।१८६।।

अन्वयार्थः—अज्ञानी जीवों को पर के दोष ग्रहण करने में हर्ष होता है,... अज्ञानी को दूसरों के दोष देखकर हर्ष होता है। आहाहा! अपने गुण को देखने के लिये फुरसत में नहीं। जिसे जाननेवाला... जाननेवाला जानना चाहिए, उसे निवृत्ति नहीं, उसे दोष ग्रहण की इच्छा है। आहाहा! क्योंकि उसकी दोष बुद्धि है। अज्ञानी को परमात्मतत्त्व की बुद्धि नहीं। पुण्य-पाप के दोषों की बुद्धि, अर्थात् दूसरों के दोष को ग्रहण करे। आहाहा! समझ में आया?

दोष ग्रहण नहीं करना, कहते हैं। अर्थात् कि कोई दोष ग्रहण करे तो क्रोध नहीं करना। आहाहा! कौन क्रोध नहीं कर सकता? जिसे धर्म आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है, निर्दोषस्वरूप है। जिसमें विकार ही नहीं। ऐसे स्वभाव की दृष्टिवाला दूसरे दोष ग्रहण करे तो उनके प्रति क्रोध नहीं करे। आहाहा! समझ में आया? दोष को ग्रहण करनेवाला जो अज्ञानी, जो निर्दोष आत्मस्वभाव का ग्रहण करनेवाला ज्ञानी। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि जो निर्दोष भगवान आत्मा के आनन्द गुण का पिण्ड है, उसका आदर करता हो वह (सम्यग्दृष्टि है)। समझ में आया? यह धर्म की शुरुआतवाला उसे कहते हैं। आहाहा! ऐसा जो धर्म आत्मा का स्वभाव, पुण्य दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से रहित। क्योंकि वह परिणाम भी आस्रव है। आस्रव कहा न? आहाहा! उन आस्रव के परिणाम से रहित जिसे निर्दोष भगवान आत्मतत्त्व दृष्टि में और आश्रय में आया है, ऐसा जो धर्मी; वह दूसरे अज्ञानी तेरे दोष को ग्रहण करे (तो) क्रोध नहीं करना। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म। बाहर से लोग मान बैठे हैं न! मानो यह व्रत पालना, अपवास करना, यात्रा करना, वह मानो धर्म है। अटक गये हैं वहाँ बेचारे। अनादि से अटके हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि एक बार **'मदीयेन अवगुणग्रहणेन' अज्ञानी जीवों को पर के दोष ग्रहण करने से हर्ष होता है, मेरे दोष ग्रहण करके...** ओहो! **'यदि जीवानां संतोषः' जिन जीवों को हर्ष होता है, तो मुझे ही लाभ है,...** दूसरे मेरे दोष ग्रहण करके सुखी होओ तो भले। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! मुझसे वह दोष मेरे ग्रहण करके सुखी... (भले वे दोष मुझमें) हो या न हो, परन्तु ग्रहण करके वे सुखी होते हों तो इतना लाभ है। सुखी होता है न बेचारा। आहाहा! गजब बात! मुझसे सभी प्राणी सुखी होओ। मुझसे कोई दुःखी न होओ। ऐसे करते हुए दोष को ग्रहण करके भी यदि तुम सुखी होते हों तो होओ। पण्डितजी! आहाहा!

मेरे दोष ग्रहण करके जीवों को... सन्तोष। पाठ है न? पाठ में सन्तोष है। **हर्ष होता है, तो मुझे ही लाभ है, कि मैं उनको सुख कारण हुआ,...** आहाहा! कितनी समता है वहाँ! आत्मा आनन्द प्रभु, शुद्ध आनन्द और वीतरागमूर्ति, ऐसा जहाँ अन्दर भान हुआ, उसे कहते हैं कि कोई तेरे दोष हों, उन्हें देख, ग्रहण न हो और माने और हो उसे जाने, भले जाने। सुखी होता है न वह जीव। आहाहा! वीतरागभाव है। जहाँ आगे आत्मा वीतरागस्वरूपी है प्रभु, उसकी दृष्टि में वीतरागता तैरती है धर्मी को तो। आहाहा! धर्मी जीव को तो वीतरागी स्वरूप आत्मा का, वह तैरता है। आहाहा! दया, दान, व्रत के परिणाम आवे परन्तु वह तो आस्रव, विकार और दुःख है। आहाहा! वहाँ उसकी दृष्टि होती नहीं। इसलिए उस निर्दोष वस्तु को देखनेवाला प्राणी, उसके कोई दोष ग्रहण करे तो शान्ति रखना। सुखी तो होता है। आहाहा! समझ में आया? यह किस प्रकार की रीति है?

वह सुखी होता है, वह तो राग के हर्ष के कारण से है। परन्तु स्वयं कहता है कि भले वह ऐसा हो। इस प्रकार मुझसे प्रसन्न तो होता है न! दोष ग्रहण करके प्रसन्न होता है न! उसमें मुझे क्या है? आहाहा! मैं तो आत्मा आनन्दस्वरूप मेरा है। धर्मी जीव को, अपने आत्मा के आनन्दस्वरूप का भान होने से उसके दोष को ग्रहण करनेवाले के प्रति, उसे वह सन्तोष पाता है, ऐसी उसकी बुद्धि है। भले दोष ग्रहण करके सन्तोष पाता है न, कहते हैं। आहाहा!

मैं उनको सुख का कारण हुआ,... लो, ठीक! उसने माना हुआ सुख तो राग का

है, परन्तु उसमें निमित्त मैं हुआ, मेरे दोष से सुखी होता है। मैं तो जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। आहाहा! वह दोष ग्रहण करनेवाले के प्रति भी जिसे द्वेष नहीं। आहाहा! परन्तु दोष ग्रहण करके सुखी होता है, ऐसी उसे समभाव बुद्धि है। कोई ऐसा कहे कि दोष ग्रहण करके वह सुखी होता है तो होओ। इसका अर्थ क्या हुआ? उसे हर्ष से सुखी होता है, वह होओ ऐसा? ऐसा नहीं है। इसका अर्थ यह होता है, हो। मुझे उसमें क्या नुकसान है? समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है। परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त १३०० वर्ष पहले हुए। वे जगत को प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु! तूने जो आत्मा-परमात्मतत्त्व को जाना हो सम्यग्दर्शन में। आहाहा!

यह उसमें लिया है न पंचाध्यायी में से। भाई! अकेली शास्त्र की श्रद्धा करना, वह भी श्रद्धा नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा यह? शास्त्र से सुनकर श्रद्धा की, वह कहीं श्रद्धा नहीं, वह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! परन्तु जिसमें गुणी स्वरूप भगवान आत्मा ग्रहण हुआ है, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लिया है न उसमें श्रद्धा, प्रतीति और रुचि। वह तो सब ऐसा कि ज्ञान की पर्याय है। वह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! मात्र अनुभूति के साथ होवे तो उसे गुण कहा जाता है। वहाँ अनुभूति का प्रसंग लिया है। ऐसा नहीं लिया कि शास्त्र की श्रद्धा, वह श्रद्धा है। आहाहा!

आत्मा अन्तर ज्ञायकस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सागर भगवान, ऐसा जिसे ज्ञान में भासित हुआ है, अनुभव किया है। जानकर प्रतीति की है। वस्तु को जानकर प्रतीति की है। शास्त्र से प्रतीति की है, वह प्रतीति नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन अर्थात् शास्त्र से नौ तत्त्व को जानना कि आत्मा परमात्मा जैसा है, ऐसा शास्त्र से जाना और प्रतीति, वह प्रतीति नहीं। आहाहा! जिसके ज्ञान की दशा में वस्तु जो है, वह भासित नहीं हुई। वस्तु आती नहीं। ज्ञान में वस्तु आती नहीं। पूरी चीज़ परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा है। परन्तु उसका ज्ञान जिसकी पर्याय में नहीं आया, उसकी प्रतीति उसे सच्ची कैसी? कहते हैं। आहाहा!

ऐसी जिसे अन्तर में ज्ञायकस्वरूप भगवान का जहाँ अनुभव और भान होकर

पदार्थ को जाना है, ऐसे जीव को कोई दोष ग्रहण करे तो कहे हों, सन्तोष करे तो करो, प्रभु! मुझे उसके प्रति कुछ द्वेष की आवश्यकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! वीतराग जिनेश्वर का मार्ग बहुत सूक्ष्म। लोगों को बेचारों को वाडा में मिला नहीं। 'वाडा बाँधकर बैठे रे अपना पंथ करने को।' वे कहते हैं कि दया, दान, करें तो धर्म होता है। वे कहें भक्ति और यात्रा करें तो धर्म होता है। यह सब वाडा है। वह धर्म वीतराग का मार्ग वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग जिनवर का मार्ग तो वह पुण्य-पाप की क्रिया है, उससे भिन्न उसका आस्रव है न कहा? और वह आस्रव हो थोड़ा और दूसरे दोष ग्रहण करे, परन्तु उससे तू सन्तोष रखना। क्योंकि तुझमें दोष का भाग है और उसे देखे और अज्ञानी तो छोटे दोष को मेरु जितना करके देखता है। थोड़ा दोष हो, उसे बड़ा करके देखे। सन्तोष कर न! तुझे क्या है? आहाहा! पाँच-दस लाख की पूँजी हो और उसे करोड़पति कहे, तो प्रसन्न होता है न, या इनकार करता है कि नहीं भाई! इतने अधिक पैसे मेरे पास नहीं। मौन रहता है। दो-पाँच लाख हों तो भी उसे करोड़पति कहे कि इसके पास करोड़ रुपये हैं और पाँच-दस लाख की आमदनी है। मौन रहे। पोपटभाई!

इसी प्रकार कहते हैं कि तेरे दोष थोड़े हों और देखनेवाला हो और बड़े दोष करके माने। सुखी है न वह? सन्तोष प्राप्त कर और सन्तोष रख। तुझे क्या है? आहाहा! कितना भाव! समभाव में कितनी सिद्धि है! आहाहा! इसका नाम समभाव और इसका नाम धर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार से क्षमा कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार नहीं, यथार्थ क्षमा है। यह तो एक कल्पना से ऐसा कहता है इसलिए। यथार्थ व्यवहार है। यह तो बात करते हैं कि उस जाति का सुखी होता है और इतनी एक बात करते हैं, परन्तु अन्दर में तो वीतरागता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् वीतरागता। आहाहा! और वह वीतरागता, वीतरागस्वरूप प्रभु, जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा, वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। वीतराग की मूर्ति ही प्रभु आत्मा है। कैसे बैठे? आहाहा! ऐसा जो परमात्मा वीतरागस्वरूप जहाँ बैठा अन्दर दृष्टि में,

कहते हैं कि उसकी दशा में वीतरागता आयी, इसलिए उसमें कोई दोष हो और दूसरा कहे तो वीतरागता रहती है, उसे शान्ति रहती है। ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा धर्म अब।

अब यहाँ जरा प्रतिकूलता कुछ बोले तो द्वेष करे, अनुकूलता बोले तो उसके ऊपर राग—प्रेम करे। आहाहा! बापू! मार्ग अलग, प्रभु! यह वीतरागमार्ग है। जिसमें वीतरागता उत्पन्न हो, ऐसे दोष देखनेवाले को भी सुखी होता है न, ऐसा मानकर वीतरागता सेवन करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? **उनको सुख हुआ, ऐसा मन में विचारकर गुस्सा छोड़े।** गुस्सा न होने दे।

भावार्थः—ज्ञानी गुस्सा नहीं करते,... धर्मी गुस्सा, क्रोध नहीं करता। आहाहा! धर्मी जीव को तो दया, दान, व्रत और भक्ति और तपस्या के भाव, उनका वह कर्ता धर्मी नहीं। उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वह राग की क्रिया है, राग को करे, वह मिथ्यादृष्टि है, उसे धर्म की खबर नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि जिसे **ज्ञानी गुस्सा नहीं करते,...** शुभभाव करता नहीं कर्ताबुद्धि से तो गुस्सा तो कैसे करे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग, सुनने को मिले नहीं बेचारे को। और ऐसे का ऐसा धर्म होता है पूरे दिन। जिन्दगी चली जाती है ५०-५०, ६०, ७० वर्ष, जाओ। एकाध यात्रा की सम्मेदशिखर की, एकाध गिरनार की, शत्रुंजय की दो-चार एक बारह महीने में एक बार करे पूर्णिमा की। हो गया, जाओ धर्म हो गया। पाप धुल गया। धूल भी नहीं, अब सुन न! ऐसा तो अनन्त बार किया है। भगवान के साक्षात् समवसरण में साक्षात् परमात्मा की पूजा भी अनन्त बार की है। वह कहीं धर्म नहीं। वह तो शुभभाव-पुण्य है। पाप से बचने जितना पुण्य है।

परन्तु जिसे पुण्य के आस्रव का भी जहाँ दृष्टि में त्याग है। आहाहा! ऐसे धर्मी के कोई दोष देखे, तो भी सन्तोष रखता है, ऐसा कहते हैं। उसे सन्तोष होता है न? आहाहा! है? **ज्ञानी गुस्सा नहीं करते, ऐसा विचारते हैं कि जो कोई पर का उपकार करनेवाले परजीवों को द्रव्यादि देकर सुखी करते हैं,...** लोक में लौकिक प्राणी दूसरे को आहार देकर, पैसा देकर उसे जरा अनुकूल देता है। मैं तो किसी को देता नहीं, मुझे

मेरे दोष देखकर सुखी होता है तो होओ। आहाहा! है? **मैंने कुछ द्रव्य नहीं दिया,...** क्या कहते हैं? देखो। जो कोई पर का उपकार करता है। व्यवहार से बात है। परजीवों की द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव **द्रव्यादि देकर सुखी करते हैं, मैंने कुछ द्रव्य नहीं दिया,...** मैंने तो उसे कुछ दिया नहीं। दोष ग्रहण करके सुखी होता है तो होवे न! आहाहा! समझ में आया?

इसका सिद्धान्त ऐसा नहीं लेना कि कोई उपकार करनेवाले परजीव को सुखी करता है। यहाँ तो दृष्टान्त है। समझ में आया? परजीवों को सुखी करने की बुद्धि ही झूठी है। मैं पर को आहार दूँ, पानी दूँ, पैसा दूँ, लक्ष्मी दूँ तो सुखी होगा, यह दृष्टि ही मिथ्या है। क्योंकि परपदार्थ की क्रिया मुझसे होती है और मैं करता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी की है। यहाँ तो मात्र दृष्टान्त का अंश लेना है। दृष्टान्त के लिये दृष्टान्त यहाँ लागू करना नहीं है। दृष्टान्त का अंश नहीं आता कहीं? आता है न दृष्टान्त? एकदेश ग्रहण करता है। दृष्टान्त का एकदेश जानना कि दूसरे को पैसा दे, आहार दे, पानी दे, इसलिए वह सुखी होता है। वह तो सुखी तो राग है उसे। और देनेवाला जो कुछ क्रिया करे कि मैंने यह दिया, वह तो मिथ्या अहंकार, मिथ्याभाव है। यह तो उसमें से एक दृष्टान्त का एकदेश लेना। कि वह प्राणी किसी को पैसा दे, पाँच, दस लाख, दो-पाँच हजार, पैसा, मकान रहने को, रोगी को औषध दे और वह मानता है कि हम सुखी हैं। यह मान्यता अज्ञानी की है। और देनेवाला भी मैं देता हूँ, यह भी मान्यता अज्ञानी की है। परन्तु उसमें से दृष्टान्त तो इतना लेना कि वह देता है और वह सुखी होता है। मैं किसी को देता नहीं और सुखी होता है। पण्डितजी! ऐसी बात है। यह मार्ग अलग, बापू! जन्म-मरण रहित होने का मार्ग, वीतराग परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा!

कहते हैं कि **परजीवों को द्रव्यादि देकर सुखी करते हैं,...** परन्तु इसका सिद्धान्त नहीं लेना कि वह सुखी करता है और दे सकता है। यह तो उसमें से दृष्टान्त का एक अंश लेना। समझ में आया? यह तो अपने आ गया है। मैं परजीव को सुखी करूँ या दुःखी करूँ, परजीव की दया पालूँ, यह भाव सब मिथ्यादृष्टि का मिथ्याभाव है। आहाहा! पर की दया कौन पाल सकता है? उसका आयुष्य हो तो बचता है और न हो

तो नहीं बचता। तू कहे, मैंने उसे बचाया। यह दृष्टि मिथ्यात्व की, अज्ञानी की है। आहाहा! समझ में आया? बात-बात में अन्तर है।

कहो, पोपटभाई! तुम्हारा दृष्टान्त दिया था एक बार तुम्हारे साले का। इन्होंने कहा था जरा। भाई! अब पैसे बहुत हुए और अब (व्यापार) न करो तो। शान्तिलाल खुशाल। इनका साला। गोवा, गोवा। दो अरब चालीस करोड़। धूल। दो अरब चालीस करोड़। २४० करोड़। अभी गुजर गया। डेढ़ वर्ष पहले। इन पोपटभाई का साला। गोवा में। गोवा में। पानशणा है न? पानशणा। फिर बहुत पैसे, (तो) पोपटभाई ने कहा, उसके बहनोई है न यह तो उसने क्या कहा कि परन्तु अब किसलिए तुम यह सब करते हो? इतने पैसे, दो अरब चालीस करोड़, दशाश्रीमाली बनिया। आहाहा! तब उसका जवाब दिया सामने, कि क्या हम इसके लिये धन्धा करते हैं? हजारों लोग निभते हैं। देखो, यह सब पैसेवाले के अभिमान। आहाहा! ऐसा कहा न भाई? पोपटभाई ने कहा। पोपटभाई कहते थे। सबको निभाते हैं। उसके लिये यह धन्धा करते हैं। उसके लिये करते होंगे? ममता करते हैं।

मुमुक्षु : निभाते हैं, निमित्त से निभता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निभे। धूल भी नहीं। ऐसे के ऐसे सब। पैसे के अभिमानी, वे दूसरे को निभा देते हैं। वीतराग कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि उस मिथ्यात्व और अनन्त संसार को सेवन करता है। आहाहा! ऐसा मार्ग। समझ में आया? यह मिलवाले, जीनवाले होते हैं न? बहुत ऐसा कहते हैं। सबको निभाते हैं। तेरे भाव से पाप करता है, उसका तुझे भान नहीं और निभाते हैं धूल में। आहाहा!

एक बार हमारे दामोदर सेठ थे, दामनगर। अब पास में पैसे बहुत हुए। तब पैसे अपने बनियों में बहुत नहीं थे। उसके पास तब दस लाख, तब साठ वर्ष पहले। चालीस हजार की आमदनी, फिर एक बार ऐसी बात निकली कि सेठ! तुम यह ओटाई क्यों नहीं करते? घर में खेती बड़ी, बड़ी खेती। चमरबंद और बड़ा। किसान बड़ा। घर में अरबी घोड़े, घर में घोड़े... फिर किसी ने पूछा कि सेठ! तुम... क्या कहा? ओटाई क्यों नहीं करते? तब उसने ऐसा जवाब दिया तब, हों! कि हमारे इतना पुण्य नहीं कि ओटाई

करें और पुण्य बचे। आहाहा! ऐई! रतिभाई! पहिचानते या नहीं दामोदर सेठ दामनगर? वे तो (संवत्) २००० में गुजर गये बेचारे। परन्तु उससे पहले बहुत। चालीस हजार की आमदनी थी। एक गाँव घर में था। दस हजार का गाँव। तब साठ वर्ष पहले की बात है। फिर उसने इतना कहा हों! कि हम ओटाई करें और पुण्य बचे, इतना हमारा पुण्य नहीं। ओटाई करने में पुण्य जल जाता है। पाप में पुण्य जल जाता है, इतना पुण्य हमारा नहीं। तब ऐसा जवाब दिया था। आहाहा!

अरेरे! जगत कहाँ लगा है? कहाँ है? बड़े कारखाना करे मानो ओहोहो! कुछ पैसा हो ५०-५० लाख। फिर पाँच लाख का यहाँ कारखाना करे, पाँच लाख का यहाँ करे, पाँच लाख का यहाँ करे और भागीदार रखे। एक प्रतिशत का ब्याज ले। महीने-महीने में जाँच करने आवे। आधा भागीदार दे, आधी आमदनी दे और एक प्रतिशत का ब्याज ले और माने कि हम दूसरे को निभाते हैं। मूढ़ है। मात्र पाप का सेवन है तेरा। आहाहा!

यहाँ तो दृष्टान्त का एक अंश लेना है कि दूसरे को जैसे देते हैं, वह प्राणी जैसे सुखी होता है, ऐसा मानता है तो मैं तो किसी को कुछ देता नहीं और मुझे दोष देखकर सुखी होता है तो भले होओ। आहाहा! गजब बात, बापू! ऐसी समता करता है। ऐसा मार्ग है। आहाहा! है? **मेरे अवगुण ही से सुखी हो गये, तो इसके समान दूसरी क्या बात है? ऐसा जानकर हे भव्य! तू रोष छोड़।** आहाहा! दूसरे के प्रति, दूसरे के कारण से रोष छोड़। समझ में आया? आहाहा! कमजोरी से जरा रोष आवे, वह अलग चीज़ है। और इसने ऐसा किया, इसलिए रोष आया, यह अलग चीज़ है। वह मिथ्यारोष है, ऐसा कहना है। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा!

अपनी कमजोरी के कारण जरा द्वेष आ जाये, राग आ जाये, परन्तु इसने यह मेरे दोष ग्रहण किये, इसलिए आता है, यह मिथ्यादोष है। क्योंकि उसने मेरे दोष ग्रहण किये, इसलिए मुझे यह दोष आया है। यह झूठी बात है। समझ में आया? आहाहा! किसी ने मुझे गाली दी, इसलिए क्रोध आया, मिथ्याश्रद्धा है। अपनी निर्बलता के कारण जरा आवे तो उसका कहीं स्वामी नहीं। वह दोष है। जानता है। आहाहा! समझ में

आया? परन्तु पर के कारण से मुझे यह आया है। बहुत गाली देता था और बहुत कहासुनी करता था, फिर क्रोध हुए बिना रहे मुझे? आहाहा! मूर्ख है, सुन न! पर के कारण से क्रोध होता है, यह मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। उसे जैन की खबर ही नहीं। आहाहा!

हे भव्य! तू रोष छोड़। अथवा ऐसा विचारे, कि मेरे अनन्त ज्ञानादि गुण तो उसने नहीं लिये,... दोष ग्रहण करके सुखी है। परन्तु मेरा गुण तो नहीं ले लिया। आहाहा! है? **अनन्त ज्ञानादि गुण तो उसने नहीं लिये,...** मेरे ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण है। शक्ति में से प्रगट हुए अनन्त गुण हैं। समझ में आया? वह दोष उसने ग्रहण किये, परन्तु मेरे गुण तो उसने नहीं लिये। आहाहा! **गुण तो उसने नहीं लिये, दोष लिये वो निःशंक लो।** मुझे दोष छोड़ना है और वह लेता है तो भले लो। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का।

जैसे घर में कोई चोर आया, और उसने रत्न, सुवर्ण आदि नहीं लिये... घर में चोर आया और रत्न, सोना नहीं लिया। **मिट्टी, पत्थर लिया तो लो।** कोई मिट्टी ले गया, भले ले जाये। रत्न और सुवर्ण नहीं लिया। आहाहा! लो। **तुच्छ वस्तु के ले जाने पर क्या क्रोध करना?** आहाहा! **ऐसा जान रोष छोड़ना।** ज्ञाता-दृष्टा मेरा स्वभाव है, मैं तो जाननेवाला-देखनेवाला, ऐसा भान है, उसे यह बात करते हैं। समझ में आया? कि मेरे गुण तो नहीं लिये, दोष लिये हैं तो लो। आहाहा! **अथवा ऐसा विचारे कि जो यह दोष कहता है, वे सच कहता है, तो सत्यवादी से क्या द्वेष करना।** आहाहा! मुझमें जरा रागादि दोष हैं। वह दे तो ग्रहण करे, वह तो सत्यवादी है। उसके प्रति द्वेष किसका? आहाहा! समझ में आया?

सच कहता है, तो सत्यवादी से क्या द्वेष करना। आहाहा! **अथवा ये दोष मुझमें नहीं हुआ, वह वृथा कहता है, तो उसके वृथा कहने से क्या मैं दोषी हो गया,...** आहाहा! कितना न्याय रखा है! वह दोष ग्रहण करे तो सन्तोष पाओ। वह पावे तो तू भी समता रख। मेरे गुण तो लिये नहीं। आहाहा! और वे दोष यदि मुझमें हों तो वह तो सत्यवादी है, कहता है उसमें द्वेष क्या करना? और मुझमें न हो और कहे तो उसके प्रति

द्वेष किसका करना? वृथा कहता है उसमें? आहाहा! यह समता को प्रगट करने की यह एक कला है। आहाहा! समझ में आया?

बिल्कुल नहीं हुआ। ऐसा जानकर क्रोध छोड़ क्षमाभाव धारण करना चाहिए। अथवा यह विचारो कि वह मेरे मुँह के आगे तो नहीं कहता,... मेरे सामने तो कहता नहीं, पीछे से कहता है तो उसमें क्या? राजा के भी पीछे से लोग दोष निकालते हैं। **विचारो कि वह मेरे मुँह के आगे तो नहीं कहता, लेकिन पीठ पीछे कहता है, सो पीठ पीछे तो राजाओं को भी बुरा कहते हैं,...** आहाहा! समझे? **ऐसा जानकर उसे क्षमा करना कि प्रत्यक्ष तो मेरा मानभंग नहीं करता है,...** आहाहा! प्रत्यक्ष तो मेरा मान भंग आकर करता नहीं, पीछे से करे तो करो, उसमें मुझे क्या है? आहाहा! **परोक्ष की बात क्या है।**

कदाच कोई प्रत्यक्ष मुँह आगे दोष कहे,... आहाहा! **तो तू यह विचार की वचनमात्र से मेरे दोष ग्रहण करता है, शरीर को तो बाधा नहीं करता,...** आहाहा! शरीर से तो मारता नहीं। वचन से ग्रहण करे तो करो। आहाहा! **शरीर को तो बाधा नहीं करता, यह गुण है,...** यह मुझे लाभ है। समझ में आया? **ऐसा जान क्षमा ही कर।** आहाहा! **अथवा कोई शरीर को भी बाधा करे, तो तू ऐसा विचार, कि मेरे प्राण तो नहीं हरता,...** मार तो नहीं डालता शरीर को। आहाहा! **मेरे प्राण तो नहीं हरता, यह गुण है।** यह लाभ है। शरीर को बाधा करे तो करो। आहाहा!

जो कभी कोई पापी प्राण ही हर ले,... पाँच इन्द्रिय को मारे। आहाहा! **तो यह विचार कि ये प्राण तो विनाशीक हैं, विनाशीक वस्तु के चले जाने की क्या बात है।** आहाहा! श्रीमद् में नहीं आया? जंगल में प्राणी सिंह... सिंह। 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में।' आहाहा! 'अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब।' आहाहा! फिर? 'अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो, परम मित्र का मानो पाया योग-संयोग जब।' सिंह आया तो मित्र मिला। शरीर मेरा नहीं। मुझे रखना नहीं और वह ले जाता है तो भले ले। आहाहा! ऐसी वीतरागता कब प्रगट होगी? ऐसी भावना की है। श्रीमद् ने सम्यग्दर्शन भानसहित में ऐसी भावना की है। आहाहा! कब वह क्षमा ऐसी होगी, आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं, प्राण हरे तो भी विचार करे कि वे तो नाशवान हैं, तो हर ले। आहाहा! **विनाशीक वस्तु के चले जाने की क्या बात है। मेरा ज्ञानभाव अविनश्वर है, उसको तो कोई हर नहीं सकता,...** मेरी ज्ञानशक्ति आदि है, वह तो शाश्वत् वस्तु है। उसे तो वह ग्रहण नहीं कर सकता। आहाहा! **उसको तो कोई हर नहीं सकता, इसने तो मेरे बाह्य प्राण हर लिये हैं,...** परन्तु अपना जो ज्ञान, दर्शन और आनन्द प्राण आत्मा का, उसे तो वह हरता नहीं। आहाहा!

परन्तु भेदाभेदरत्नत्रय की भावना का विनाश नहीं किया। आहाहा! क्या कहते हैं? मैं जो आत्मा, उसका जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र निश्चय, उसे तो हरता नहीं। आत्मा वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी अभेददृष्टि, वस्तु के स्वभाव की सम्यक् अभेद दृष्टि, वस्तु का ज्ञान और वस्तु की स्थिरता, वह अभेद। भेद में जरा विकल्प है। देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प आदि होता है। उस **भेदाभेदरत्नत्रय की भावना का विनाश नहीं किया। ऐसा जानकर सर्वथा क्षमा ही करना चाहिए।** लो! '**सर्वतात्पर्येण**' ऐसा है। '**सर्वतात्पर्येण क्षमा कर्तव्येत्यभिप्रायः**' सर्वथा। समझ में आया? **सर्वथा क्षमा ही करना...** और सर्वथा तात्पर्य क्षमा करना। इसका तात्पर्य यह है, ऐसा। सर्वथा क्षमा करना, वह तो जरा विशेष है। संस्कृत इतनी है। '**सर्वतात्पर्येण क्षमा**' इसका तात्पर्य वह क्षमा करना, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! १८६ हुई। भेदाभेद रत्न की भावना हुई, हों! एकाग्रता। है न? निश्चय के साथ व्यवहार लिया।

अभेदरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग जो आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की निर्विकल्प वीतरागीदशा, वह मोक्ष का मार्ग, अभेद निश्चय। उसके साथ जरा विकल्प आवे, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत उसके साथ वह व्यवहार। यह उसकी भावना को तू लूटता नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? १८६ हुई।

गाथा - १८७

अथ सर्वचिन्तां निषेधयति युग्मेन–

३१०) जोइय चिंति म किं पि तुहुँ जइ बीहउ दुक्खस्स।
तिल–तुस–मित्तु वि सल्लडा वेयण करइ अवस्स।।१८७।।

योगिन् चिन्तय मा किमपि त्वं यदि भीतः दुःखस्य।
तिलतुषमात्रमपि शल्यं वेदनां करोत्यवश्यम्।।१८७।।

चिंति म चिन्तां मा कार्षीः किं पि तुहुं कामपि त्वं जोइय हे योगिन्। यदि किम्। जइ बीहउ यदि बिभेषि। कस्य। दुक्खस्स वीतरागतात्त्विकानन्दैकरुपात् पारमार्थिकसुखात्प्रतिपक्ष–भूतस्य नारकादिदुःखस्य। यतः कारणात् तिल–तुस–मित्तु वि सल्लडा तिलतुषमात्रमपि शल्यं वेयण करइ अवस्स वेदनां बाधां करोत्यवश्यं नियमेन। अत्र चिन्तारहितात्परमात्मनः सकाशाद्वि–लक्षणा या विषयकषायादिचिन्ता सा न कर्तव्या। काण्डादिशल्यमिव दुःखकारणत्वादिति भावार्थः।।१८७।।

आगे सब चिन्ताओं का निषेध करते हैं–

यदि दुख से डरते हो तो तुम कुछ भी चिंता नहीं करो।
तिल तुष मात्र शल्य भी हो तो कष्ट नियम से हो तुझको।।१८७।।

अन्वयार्थः– [योगिन्] हे योगी, [त्वं] तू [यदि] जो [दुःखस्य] वीतराग परम आनंद के शत्रु जो नरकादि चारों गतियों के दुःख उनसे [भीतः] डर गया है, तो तू निश्चिंत होकर परलोक का साधन कर, इस लोक की [किमपि मा चिंतय] कुछ भी चिंता मत कर। क्योंकि [तिलतुषमात्रमपि शल्यं] तिल के भूसे मात्र भी शल्य [वेदनां] मन को वेदना [अवश्यम् करोति] निश्चय से करती है।

भावार्थः– चिन्ता रहित आत्म–ज्ञान से उलटे जो विषय कषाय आदि विकल्पजाल उनकी चिन्ता कुछ भी नहीं करना। यह चिन्ता दुःख का ही कारण है, जैसे बाण आदि की तृणप्रमाण भी सलाई महा दुःख का कारण है, जब वह शल्य निकाले, तभी सुख होता है।।१८७।।

गाथा-१८७ पर प्रवचन

आगे सब चिन्ताओं का निषेध करते हैं—'चिन्ता बड़ी अभागणी चिन्ता आग समान।' नहीं आता? आता है।

मुमुक्षु : चता समान।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिता समान। पहला शब्द आता है कुछ उसका। १८७।

३१०) जोइय चिंति म किं पि तुहुँ जइ बीहउ दुक्खस्स।
तिल-तुस-मित्तु वि सल्लडा वेयण करइ अवस्स।।१८७।।

आहाहा! **हे योगी!...** योगी अर्थात् कि आत्मा का स्वभाव, आनन्द का जिसने जुड़ान किया है सम्यग्दर्शन में। उसे योगी कहा जाता है। अन्यमति के जो बाबा योगी उनकी यह बात नहीं है। आहाहा! आत्मा जो अनन्त गुण का पिण्ड है, परमात्मस्वरूप, उसमें जिसने वर्तमान परिणति-पर्याय को जोड़ दिया है, वह योग करता है, उसे यहाँ योगी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

हे योगी! तू जो वीतराग परम आनन्द के शत्रु जो नरकादि चारों गतियों के दुःख... आहाहा! **उनसे जो डर गया है,...** वीतरागी परमानन्द ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव और उसकी प्रगटता वीतराग परमानन्द स्वरूप, वह मोक्ष का मार्ग। उसके शत्रु नरकादि गतियों में दुःख करनेवाले, उनसे जो डर गया हो। आहाहा! नरकादि में चारों गतियाँ ली हैं, हों! स्वर्ग में भी दुःख है। बहुत पैसे यहाँ पाँच, पचास लाख हों, करोड़ (हों) वहाँ विशेष है। परन्तु सब दुःखी, देव दुःखी है। राग के सुलगे-जले दुःखी हैं वे प्राणी। और यह अरबोंपति, करोड़ोंपति जो कहलाते हैं, वे बेचारे दुःखी हैं। राग में जले, सुलगे रहते हैं ये। आहाहा! समझ में आया?

यह यदि तुझे... आहाहा! वीतराग परमानन्द के शत्रु ऐसे नरकादि चार गति। देखा! स्वर्ग भी वीतराग परमानन्द का शत्रु है स्वर्ग। आहाहा! उस स्वर्ग का भव भी परमानन्द के वीतराग से वैरी है वह तो। आहाहा! और यह अरबोंपति सब भव जो सेठिया कहलाते हैं, धूल के सेठिया। वे सब दुःखी हैं। यह वीतराग परमानन्द के ये सब

शत्रु हैं। आहाहा! माणेकलालजी! कैसे होगा? ऐसा होगा? यह दुनिया तो भाई! ऐसा कहती है कि दो करोड़, पाँच करोड़ हो तो सुखी है, लो। दुनिया—पागल ऐसा कहते हैं। सब पागल इकट्ठे होकर ऐसे पागलों को सुखी कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वीतराग परमानन्द प्रभु आत्मा, ऐसा जिसे भाव प्रगट हुआ है। वीतरागी परमानन्द की दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं। वे जीव को उसके शत्रु चार गति के दुःख, वह उसके शत्रु हैं। आहाहा! यहाँ तो जरा पाँच, पचास लाख मिले तो ऐसा हो कि हम सुखी हैं। धूल में भी नहीं। दुःखी है। आत्मा के सम्यग्दर्शन के आनन्द बिना वे सब प्राणी मात्र दुःखी हैं। आहाहा! और दुःख का लक्षण यह। वहाँ ऐसा कहा था न? कहा था। पंचाध्यायी में (कहा था) कि जहाँ आनन्द का अभाव भगवान के आनन्द का अभाव है, वे सब प्राणी दुःखी हैं। आहाहा!

सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना आत्मा का आनन्द नहीं होता। और उस आत्मा के आनन्द बिना सभी प्राणी राग की एकताबुद्धि में दुःखी है। आहाहा! ऐसा तो कहते हैं न 'शरीर से सुखी वह सुखी सर्व बातें।' धूल में भी नहीं अब सुन न! अच्छी मूर्खाई का पार है तेरा? शरीर तो मिट्टी, जड़ है, वह तो धूल है, पुद्गल मिट्टी है अजीव मिट्टी। आहाहा! तो शरीर से सुखी वह सुखी सर्व बातें। अथवा पहला सुख निरोगी काया। शरीर की निरोगता वह पहला सुख। दूसरा सुख घर में चार पुत्र। आठ पुत्र हों, छह। उठानेवाले चार और एक अग्नि ले। आहाहा! तीसरा सुख घर में सुकुल की नारी। चौथा कोठी में अनाज। यह अज्ञानी के सुख। आहाहा! उसे कहते हैं मूढ़ जीव! छोड़ दे यह बात, यह तो सब दुःख हैं। वीतराग परमानन्द के शत्रु हैं। ऐसे दुःख से यदि डरा हो तो **कुछ भी चिन्ता मत कर।** यह विशेष लेंगे अब।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, चैत्र शुक्ल ३, मंगलवार
दिनांक- २२-०३-१९७७, गाथा - १८७ - १८८, प्रवचन-२२९

परमात्मप्रकाश १८७ गाथा है। थोड़ा चला है। फिर से। **आगे सब चिन्ताओं का निषेध करते हैं—** अपना जो परमात्म ज्ञायकस्वभाव, उसकी साधना के अतिरिक्त जितने विकल्प, वे सब छोड़नेयोग्य हैं। जिसे परलोक अर्थात् आत्मा का साधन करना हो, उसे दूसरी चिन्ता छोड़कर आत्मा का ध्यान करने योग्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अन्वयार्थः—हे योगी! तू वीतराग परमानन्द के शत्रु... आत्मा का स्वभाव वीतराग परमानन्द है। और उसके आश्रय से होनेवाली दशा, वह वीतराग परमानन्दरूप दशा है। सम्यग्दर्शन दशा, वह वीतरागी परमानन्ददशा है। उस दशा से वैरी / शत्रु चार गति के दुःख, वे सब आनन्द के शत्रु हैं। आहाहा! चाहे तो स्वर्ग का भव हो। समझ में आया? लालूभाई गये?

मुमुक्षु : डॉक्टर को दिखाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक, डॉक्टर को।

योगी शब्द से उनके शिष्य को कहते हैं। परन्तु दूसरे आत्माओं का उसमें गर्भित समावेश है। कि जिसे भगवान आत्मा परमानन्द वीतराग मूर्ति प्रभु आत्मा का स्वरूप, उसमें जिसे जुड़ान हुआ है। वर्तमान वीतराग परिणति द्वारा जिसने त्रिकाली वीतराग परमानन्द में जुड़ान किया है। योग किया है, उसे यहाँ योगी कहा जाता है। आहाहा! अब ऐसी बातें। बाहर के सब ठाठ-बाठ हिले, गजरथ चलावे दस-दस लाख लोग इकट्ठे हों, अब उसे यह कहे कि यह सब धर्म नहीं। कठोर पड़े बेचारे को। यह मार्ग तो यह है, कहते हैं।

परमात्मस्वरूप वीतराग परमानन्द की मूर्ति प्रभु है। उसका आश्रय करने से वीतरागी परमानन्ददशा प्रगट होती है। उससे वैरी यह चार गति की दशायें दुःखरूप हैं, यह आनन्द से वेरी-शत्रु दशा है सब। आहाहा! चाहे तो सेठाई की दशा मिले अरबोंपति, करोड़ोंपति या राजा हो या बड़े देव हों। परमानन्दस्वरूप भगवान के आश्रय से होनेवाली

वीतरागी परमानन्ददशा, उससे यह सब चार गति के दुःख वैरी-शत्रु हैं। आहाहा! समझ में आया?

चार गतियों के दुःख उनसे डर गया है,... यदि तुझे उसका भय हुआ हो, प्रभु! आहाहा! बहुत संक्षिप्त में। आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान से विरुद्ध चार गति के दुःख, यह देव के, इन्द्राणी के दुःख और इन्द्र के दुःख, ये सुख वह दुःख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह शरीर तो धान का पिण्ड है। जिसे धान नहीं जिसके कण्ठ में हजारों वर्ष में अमृत झरे ऐसे देव और देवियाँ, इन्द्र और इन्द्राणियाँ उनके सुख, वह आत्मा की शान्ति के वैरी हैं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! बहुत संक्षिप्त किया। जिस भाव से स्वर्ग मिले, वह भाव आत्मा के वीतरागी आनन्द से शत्रु, उसका बन्ध पड़े प्रकृति, वह शत्रु और उसका फल आवे, वह शत्रु। आहाहा!

यह जो चार गति के दुःख, प्रभु! परन्तु यह दुनिया सुखी कहती है न इन पैसेवालों को। राजा सुखी। शरीर जिसकी सुन्दर दशा, यह सुन्दर शरीर और सुन्दर सामग्री। आहाहा! मणिभाई गये, नहीं? कल आये थे न। गये हैं। रसिकभाई के बहनोई कल आये थे।

मुमुक्षु : पालीताणा गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : पालीताणा गये हैं? गये होंगे। कल आये थे। शान्ताबेन के बहनोई के बहनोई हैं। पैसे पाँच करोड़ रुपये। कल आये थे। उनके यहाँ आहार करने गये थे न? गत वर्ष... गत वर्ष न? वहाँ उनके मकान में देखो तो मखमल बिछाया हुआ। कल आये थे। कल उनका आहार था। आज का। वहाँ आवे तो आवे। सुनने आवे। परन्तु पैसे इतने अधिक न, पाँच करोड़ रुपये, कहे बड़ी आमदनी है परदेश में, अफ्रीका में। बड़ी दुकान है। ऐसे सर्वत्र चरण किये। सर्वत्र मखमल बिछाया हुआ। लगभग पाँच लाख की तो सामग्री होगी। फर्नीचर है न वह। अरर! चरण, मैंने कहा अरेरे! इसमें से निकलना भारी मुश्किल पड़ेगा।

तब भाई वहाँ गये थे न, उस विजयकुमार को देखने गये थे। उसको दर्शन देने। एक विजयकुमार था न! गुना का कहीं का था। बहुत लड़का... उसे यहाँ का रस बहुत

है। जवान लड़का, विवाहित। एक वर्ष का विवाह। उसको कुछ भानेज के... इन्दौर में नहीं अपने प्रकाश पाण्डया। प्रकाश पाण्डया, उनकी बहिन की पुत्री, बारह महीने का विवाह। कोई किडनी का यह क्या कहलाता है? किडनी... किडनी। आहाहा! लड़का ऐसा। शाम को आहार उनके यहाँ—मणिभाई के यहाँ था। उनसे आगे मकान था, दर्शन करने दूर बहुत था। इनका बहुत दूर और उसका दूर। टाटा का—जमशेदपुर का टाटा का बड़ा कारखाना है। उसमें वह नौकर था। छोटी उम्र २५-२७ वर्ष। आहाहा! किडनी की व्याधि। अन्त में दर्शन करने आया था वापस दूज के दिन वहाँ। दादर। फिर किडनी का किया वह क्या कहलाता है? ऑपरेशन। उसकी माँ ने एक किडनी दी। लागू नहीं पड़ा, लड़का मर गया। वहाँ देखने गये थे। दर्शन देने, बेचारे को बहुत लगन। लड़का बहुत नरम था। यहाँ १५-१५ दिन रह जाता था। महीने-महीने। विवाह से पहले और विवाह के बाद। वह एक क्षण में उड़ गया। उसे यहाँ यह देखा यहाँ। पाँच लाख की सब वह सामग्री। अरर्र! यह सब। बापू! कहीं सुख नहीं, भाई! उसकी ओर के झुकाव का भाव, वह आत्मा के आनन्द का शत्रु है। आहाहा!

भगवान आनन्द की मूर्ति प्रभु अतीन्द्रिय अनाकुल शान्त रस का कन्द प्रभु है। आहाहा! उससे यह सब भोग के और सामग्री के और यह क्या कहा वह? फर्नीचर। आहाहा! पाँच लाख का तो फर्नीचर होगा। पाटनीजी! कल आये थे न भाई ये। अपने बहिन शान्ताबहिन है न, उनके बहनोई हैं राजकोट, उनके वे बहनोई हैं। आया था बेचारा कल। आवे। परन्तु बाहर की बात में चमक में मार डाला जगत को। पोपटभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं नरक के दुःख, पशु में दुःख, मनुष्य में दुःख, देव में दुःख। आहाहा! चार गति तो दुःख है। यह भव में दुःख है। उस दुःख का तुझे... आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा शत्रु है वह। उसका यदि तुझे डर लगा हो। आहाहा! दुनिया की दुनिया जाने। आहाहा! कहो, माणेकलालभाई! और अभी व्याधि हो गयी है। देखो न मुख हो गया है वैसा। वह जड़ शरीर है यह तो। आहाहा! यदि तुझे डर लगा हो। है? यह उसकी शर्त है। चार गति के दुःखों का डर लगा, दुःख लगा हो तुझे उसका डर लगा हो, अरेरे! कहाँ जाऊँगा? क्या होगा? देह छूटकर किस अवतार भवसिन्धु, भव का बड़ा

समुद्र। चौरासी लाख योनि के अनन्त अवतार। वे सब दुःख के समुद्र में डुबकी मारनी है। आहाहा!

उसका तुझे यदि डर लगा हो... आहाहा! **तो तू निश्चिन्त होकर...** सब चिन्ता छोड़ दे। शरीर का होना हो वह होगा, वाणी का, जगत का (होना हो वह होगा)। आहाहा! **निश्चिन्त होकर परलोक का साधन कर,...** यह आत्मा का साधन कर। आहाहा! आत्मा का आस्तिक होकर आत्मा का साधन कर। आहाहा! यह सब आस्तिकपना उसका है, उसे छोड़ दे। उसमें सुख है और स्वर्ग गति में यह है। आहाहा! मनुष्यगति को दुःख की कही। अब यह मनुष्यगति धर्म का साधन! मोक्ष के धर्म का साधन, लो! आहाहा! यह मनुष्यपने का लक्ष्य करने से भी दुःख होता है तुझे, कहते हैं। क्योंकि वह परवस्तु है। आहाहा! ऐसे दुःख के पर्वत में डोल रहा है अनन्त काल से। आहाहा! भगवान! तुझे एक बार यदि दुःख का डर लगे, उसका साधन कर न प्रभु का। ऐसा कहते हैं। आहाहा! है?

निश्चिन्त होकर परलोक का साधन कर,... आहाहा! परलोक अर्थात् आत्मा आनन्द स्वरूप भगवान, उसका साधन कर, वह परलोक का साधन है। आहाहा! यह लोक और परलोक, यह चिन्ता में आता है न सात भय में? वह सब परलोक है। वह नहीं। उससे यह है, वह परलोक है। आहाहा! जाननेवाले को जान, देखनेवाले को देख, देखनेवाले को देख, रमण करनेवाले में रमण कर। आहाहा! दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की व्याख्या हुई। आहाहा! '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' भगवान अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आनन्द में स्थिर हो, वह आत्मा। उसे स्वसमय कहते हैं न, दूसरी गाथा में? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण**' स्वसमय अर्थात् यह आत्मा। और राग में स्थिर हो, वह अनात्मा जड़ है। आहाहा!

राग अर्थात् चाहे तो शुभ हो, वह अजीव है, अशुचि है, दुःखरूप है। आहाहा! ऐसे दुःख का तुझे यदि डर लगे तो भगवान के पास जा। आहाहा! वहाँ तुझे आनन्द मिलेगा। समझ में आया? भगवान अर्थात् यह आत्मा, हों! भग अर्थात् अनन्त आनन्द और दर्शन, आनन्द की लक्ष्मीवान प्रभु है। यह सब लक्ष्मीवाले करोड़पति, अरबपति वे

तो सब धूल के पति। यह तो अनन्त लक्ष्मी का पति प्रभु है। आहाहा! भगवान। भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान और शान्ति, ऐसी लक्ष्मी, उसका वान अर्थात् उसका स्वरूप उसका है। उसकी चिन्ता कर न अब। आहाहा! उसका साधन कर न! ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

क्योंकि... 'तिलतुषमात्रमपि शल्यं' क्या कहते हैं? **तिल के भूसा मात्र भी शल्य...** तिल-तिल, उसका भूसा। उसका एक अंशरूपी शल्य **मन को वेदना निश्चय से करती है।** आहाहा! सूक्ष्म रागमात्र की भावना अन्दर है, वह मन को पीड़ा—चोट मारती है दुःख को। आहाहा! ऐसा कहते हैं। चाहे तो शुभ-अशुभ विकल्प हो, सूक्ष्म शुभविकल्प हो। आहाहा! कि भगवान पूर्णानन्द वस्तु है और उसमें अनन्त आनन्द है, ऐसे गुणी-गुण के भेद का विकल्प सूक्ष्म शल्य है, कहते हैं। आहाहा! वह सूक्ष्म **तिल के भूसा मात्र भी शल्य मन को वेदना...** आहाहा! क्या कहना चाहते हैं? मन के सम्बन्ध से होनेवाला सूक्ष्म राग, वह भी शल्य है, कहते हैं। आहाहा! पीड़ा देता है। दृष्टान्त देंगे। समझ में आया? कि व्यवहार का राग वह मन का दुःख है, ऐसा कहते हैं। और वह शल्य है कि यह मुझे लाभ करेगा। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञायक चिदानन्द प्रभु को छोड़कर जितना विकल्प-शुभराग हो, परन्तु वह शल्य है, उससे मुझे लाभ होगा, बड़ा शल्य है। आहाहा! वह शल्य तुझे दुःख करेगा। समझ में आया? किसकी भाँति? निश्चय से। स्पष्टीकरण करेंगे अन्दर। **'तिलतुषमात्रमपि शल्यं वेयण करइ अवस्स'** आहाहा!

भावार्थः—चिन्तारहित आत्म-ज्ञान से उल्टे जो विषय कषाय... जितना पर के आश्रय से होते विकल्प, वे सब विषय-कषाय हैं। आहाहा! चिन्तारहित भगवान तो उन विकल्परहित है। अन्दर निर्विकल्प आनन्द का नाथ प्रभु है। ऐसी विकल्प की चिन्तारहित आत्मा। आहाहा! ऐसे **चिन्तारहित आत्म-ज्ञान से उल्टे...** क्या कहा यह? विकल्परहित आत्मज्ञान से उल्टा। यह शैली है न! जयसेनाचार्य की शैली यह है। यह शैली इसमें ली है। जो कुछ कहना हो कि राग, वह कैसा? कि आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध ऐसा जो राग। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार यह ऐसा कहते हैं, **चिन्तारहित आत्म-ज्ञान से उल्टे जो विषय कषाय आदि विकल्प...** आदि अर्थात् भेद पड़े अन्दर में, वह भी एक विकल्प सूक्ष्म शल्य है, वह दुःख है, मन को पीड़ा उपजाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग लोगों को कठिन पड़े। परन्तु मार्ग, बापू! यह है। यह करने से ही छुटकारा है। दूसरा कोई रास्ता नहीं। आहाहा! जिसे सुख की प्राप्ति करना हो, उसे ऐसे विकल्प मात्र दुःख के जाल हैं। उन्हें छोड़कर आत्मा का साधन करना पड़ेगा। आहाहा! ऐसी बातें, लो। है?

विषय-कषाय आदि विकल्प... आदि अर्थात् यह गुणगुणी का भेद पड़े, ऐसा भी विकल्प मन का सम्बन्ध, वह मन को पीड़ा करनेवाला है। आहाहा! **उनकी चिन्ता कुछ भी नहीं करना। यह चिन्ता दुःख का ही कारण है,...** आहाहा! शरीर की चिन्ता, परिवार की चिन्ता, कमाने की चिन्ता, परिवार का पालन-पोषण करना, ऐसी चिन्ता, वह सब दुःखदायक है, कहते हैं। आहाहा! उसे छोड़कर। आहाहा!

दृष्टान्त देते हैं। **जैसे बाण आदि की तृण प्रमाण भी सलाई...** बाण लगा हो न, बाण लोहे का। इतना कण रह गया हो लोहे का अन्दर यदि बाण का शरीर में। वह सड़ान करे। आहाहा! यह बाण लगता है न, बाण लोहे का और सूक्ष्म टुकड़ा अन्दर रह जाये और बाण निकल जाये, इतना जरा टुकड़ा लोहे का। वह शल्य अन्दर सड़े। आहाहा! ऐसा कहते हैं सूक्ष्म विकल्प जो है। आहाहा! वह सड़ान है, शल्य है। आहाहा! यह गुणगुणी के भेद का विकल्प भी मन को पीड़ा उपजावे ऐसा शल्य है, कहते हैं। आहाहा! फिर ऐसा कठिन पड़े न लोगों को! बाबूभाई! फिर सब हा...हो... हा...हो... करे। यह व्रत पालना, यह करे उसका लोप कर डाले। प्रभु! तू कहे चाहे जिस प्रकार, हों! परन्तु मार्ग तो दूसरा नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा तो चिन्तारहित है। ऐसा कहा न? चैतन्य चिन्तारहित है। चैतन्य में चिन्ता का त्रिकाल अभाव है। क्योंकि आस्रव और भावबन्ध वह चिन्ता, उसका तो तत्त्व-ज्ञायक में अभाव है। वरना वह तत्त्व भिन्न हो नहीं सकते। आहाहा! समझ में आया? चिन्ता का विकल्प जो शुभ का हो, तो भी वह राग और आस्रव है। और उस

आस्रव का तो स्वभाव में अभाव है। आहाहा! उस आस्रव की चिन्ता छोड़ और अन्दर भगवान में जा न, भाई! आहाहा! छोड़ न दुनिया की तेरी, ऐसा कहते हैं।

चिन्ता दुःख का कारण है, जैसे बाण आदि... बाण लगा हो, लोहा लगा हो कुछ। शल्य रह गया हो अन्दर थोड़ा। ऊपर चमड़ी आ जाये। अन्दर सड़ान रह जाये टुकड़ा। फिर सड़े। सड़-सड़कर बाहर आवे। आहाहा! **तृण प्रमाण भी सलाई महादुःख का कारण है,...** आहाहा! **जब यह शल्य निकाले, तभी सुख होता है।** इसी प्रकार जब राग की चिन्ता छूटे और भगवान आत्मा की एकाग्रता करे, तब दुःख छूटे। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो मक्खन की बात है अन्तिम। परमात्मप्रकाश है न! परमात्मप्रकाश है न अर्थात् परमात्मस्वरूप अपना है, उसके सिवाय जितनी चिन्ता, वह दुःखदायक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह भगवान की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह सब विकल्प चिन्ता दुःखरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आवे, धर्मी को भी वह शुभभाव आवे, परन्तु है दुःखरूप। आहाहा! ऐसी बातें बहुत कठिन। समझ में आया?

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उनकी भक्ति, वात्सल्यता, वह अशुभ से बचने के लये भाव आता है, अस्थान से दूर होने के लिये वह भाव आता है, परन्तु है तो दुःख। आहाहा! चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का रसकन्द। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा का साधन कर न अब, कहते हैं। यह सब साधन दूसरे विकल्प आदि हैं। लो, यहाँ तो साधन का इनकार करते हैं। यहाँ विकल्प आदि व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है,... आहाहा! परन्तु शास्त्र में कहा है न पंचास्तिकाय में। भिन्न साध्यसाधनभाव। बहुत जगह आता है। भिन्न साध्यसाधन। राग है, वह भिन्न व्यवहार और उसका साध्य है निश्चय भिन्न। पंचास्तिकाय में आता है, परमात्मप्रकाश में आता है। वह क्या कहलाता है? बहुत जगह आता है।

भिन्न साध्यसाधन। वहाँ चिपटते हैं ये। वह तो आरोपित, जिसने आत्मा का वास्तविक साधन आत्मा के सन्मुख का झुकाव प्रगट किया है, ऐसे साधनवाले को राग की जाति बन्ध की क्या है, उसे आरोप करके, साधन करके निमित्त का ज्ञान कराया है। आहाहा! ऐसे लेख बहुत हैं। क्या कहलाती है वह दूसरी नहीं? पुस्तक नहीं दूसरी? बहुत व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, आता है न।

मुमुक्षु : छहढाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहढाला नहीं, वह दूसरी पुस्तक।

मुमुक्षु : आत्मावलोकन

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मावलोकन नहीं। आचार्य-साधु का बनाया हुआ नहीं, मुनि का। तरंगिणी। तत्त्वज्ञान तरंगिणी। तत्त्वज्ञान तरंगिणी। उसमें बहुत आता है। तत्त्वज्ञान तरंगिणी में आता है व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। लो। व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, ऐसा आता है। लो। वह दूसरी बात है। वह तो जिसने अन्दर स्वरूप का साधन किया है, जिसे छठवें गुणस्थान की भूमिका हुई है, उसे जो राग बाकी है, उसे साधन का आरोप देकर व्यवहार साध्य-साधन कहा है। आहाहा! उस राग को साधन कहकर आत्मा की निर्विकल्पदशा को साध्य कहा है। आत्मा को। परन्तु पहले से राग साधन और निश्चय सम्यक्त्व साध्य, ऐसा कहीं है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वह शल्य निकाले, तभी सुख होता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में से सभी चिन्ताओं के शुभ के विकल्प निकलें, तब वह सुखी होता है। आहाहा! तब वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान को पाता है। आहाहा! १८७ (गाथा हुई)।

गाथा - १८८

किंच-

३११) मोक्खु म चिंतहि जोइया मोक्खु ण चिंतिउ होइ।
जेण णिबद्धउ जीवडउ मोक्खु करेसइ सोइ।।१८८।।

मोक्षं मा चिन्तय योगिन् मोक्षो न चिन्तितो भवति।
येन निबद्धो जीवः मोक्षं करिष्यति तदेव।।१८८।।

मोक्खु इत्यादि। मोक्खु म चिंतहि मोक्षचिन्तां मा कार्षीस्त्वं जोइया हे योगिन्। यतः कारणात् मोक्खु ण चिंतिउ होउ रागादिचिन्ताजालरहितः केवलज्ञानाधनन्त गुणव्यक्तिसहितो मोक्षः चिन्तितो न भवति। तर्हि कथं भवति। जेण णिबद्धउ जीवडउ येन मिथ्यात्वरागादिचिन्ता-जालोपार्जितेन कर्मणा बद्धो जीवः सोइ तदेव कर्म शुभाशुभविकल्पसमूहरहिते शुद्धात्मतत्त्वस्वरुपे स्थितानां परमयोगिनां मोक्खु करेसइ अनन्तज्ञानादिगुणोपलम्भरुपं मोक्षं करिष्यतीति। अत्र यधपि सविकल्पावस्थायां विषयकषायाद्यपध्यानवञ्चनार्थं मोक्षमार्गे भावनादृढीकरणार्थं च ''दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगईगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होइ मज्झं'' इत्यादि भावना कर्तव्या तथापि वीतरागनिर्विकल्पपरमसमाधिकाले न कर्तव्येति भावार्थः।।१८८।।

आगे मोक्ष की भी चिन्ता नहीं करना, ऐसा कहते हैं-

चिन्ता करो नहीं मुक्ति की हे योगी! नहिं चिन्ता से-
कभी मुक्ति हो, क्योंकि बँधा है जिससे वह ही मोक्ष करे।।१८८।।

अन्वयार्थः- [योगिन्] हे योगी, अन्य चिन्ता की तो बात क्या रही, [मोक्षं मा चिंतय] मोक्ष की भी चिन्ता मत कर, [मोक्षः] क्योंकि मोक्ष [चिंतितो न भवति] चिन्ता करने से नहीं होता, वाँछा के त्याग से ही होता है, रागादि चिन्ताजाल से रहित केवलज्ञानादि अनंत गुणों को प्रगटता सहित जो मोक्ष है, वह चिंता के त्याग से होता है। यही कहते हैं-[येन] जिन मिथ्यात्व-रागादि चिन्ता-जालों से उपार्जन किये कर्मों से [जीवः] यह जीव [निबद्धः] बँधा हुआ है, [तदेव] वे कर्म ही (कर्मक्षय) [मोक्षं] शुभाशुभ विकल्प के समूह से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व का स्वरुप उसमें लीन हुए परमयोगियों की मोक्ष [करिष्यति] करेंगे।

भावार्थः– वह चिन्ता का त्याग ही तुझको निस्संदेह मोक्ष करेगा। अनंत ज्ञानादि गुणों की प्रगटता वह मोक्ष है। यधपि विकल्प सहित जो प्रथम अवस्था उसमें विषय कषायादि खोटे ध्यान के निवारण करने के लिये और मोक्ष–मार्गमें परिणाम दृढ करने के लिये ज्ञानीजन ऐसी भावना करते हैं, कि चतुर्गति के दुःखों का क्षय हो, अष्ट कर्मों का क्षय हो, ज्ञान का लाभ हो, पंचम गति में गमन हो, समाधि मरण हो, और जिनराज के गुणों की सम्पत्ति मुझको हो। यह भावना चौथे, पाँचवें, छट्ठे गुणस्थान में करने योग्य है, तो भी ऊपर के गुणस्थानों में वीतराग निर्विकल्पसमाधि के समय नहीं होती।।१८८।।

गाथा-१८८ पर प्रवचन

१८८। **आगे मोक्ष की भी चिन्ता नहीं करना, ऐसा कहते हैंः—** यहाँ ले गये अब। मोक्ष की चिन्ता करोगे तो वह राग है। आहाहा! **मोक्ष की भी चिन्ता नहीं करना, ऐसा कहते हैंः—**१८८।

३११) मोक्खु म चिंतहि जोइया मोक्खु ण चिंतिउ होइ।
जेण णिबद्धउ जीवडउ मोक्खु करेसइ सोइ।।१८८।।

हे मुनि, **हे योगी, अन्य चिन्ता की तो बात क्या रही,... 'मोक्खु म चिंतहि' मोक्ष की भी चिन्ता मत कर,...** आहाहा! पंचाध्यायी में तो ऐसा लिया है कि कोई भी अभिलाषा, वह मिथ्यात्वभाव है। ऐसा लिया है। अभिलाषा। किसी भी प्रकार की अभिलाषा। उससे तू लाभ मानता है, वह मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वहाँ तो यहाँ तक लिया है। शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि की इच्छा, अभिलाषा, वह समकिती को है शुद्धात्मतत्त्व। उसे अभिलाषा किसकी? और मिथ्यादृष्टि को नहीं, उसे अभिलाषा किसकी? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो मोक्ष नहीं, वे जीव मोक्ष की इच्छा करे तो भी मोक्ष दूर होता है। आहाहा! मोक्ष की इच्छा। देव–गुरु–शास्त्र की इच्छा, प्रसंग, सत्संग, भक्ति, वह तो राग है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन पड़े। भक्तिवालों को मोक्ष मानना और यह दया, दान के परिणाम से मोक्ष मानना। सब एक प्रकार है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि '**मोक्खु म**

चिंतहि जोइया' मोक्ष की चिन्ता न कर, प्रभु! आहाहा! योगी करके कहा है न! शिष्य को बुलाया। प्रभु! तू योगी है न! भगवान आनन्द के नाथ की ओर के झुकाववाली तेरी दशा, वह पर की चिन्ता मोक्ष की भी छोड़ दे। आहाहा! अन्तिम गाथायें हैं न! बस १८८, १२ और १४ = २६ रही हैं। (कुल) २१४ हैं। आहाहा!

'मोक्षः चिंतितो न भवति' मोक्ष की चिन्ता से मोक्ष नहीं होता। आहाहा! स्वरूप में लीन होने से मोक्ष होगा। आहाहा! ऐसा कठिन काम। वे तो अभी व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होगा, इसलिए पहले, ऐसा न माने वह एकान्त है। ऐसा शोर मचाते हैं सब। आहाहा! वह ज्ञानमति है न, उसका कोई भाई आया था यहाँ, कहते हैं। ज्ञानमति नहीं वह दिल्ली? जम्बुद्वीप बनाती है न। वह फिर चारों अनुयोग की पत्रिका निकालती है। चारों अनुयोग का सब डालती है। सबको लाभ माने। चरणानुयोग में लाभ। परन्तु वह तो कथन है। आहाहा! वह इसके लिये एकान्त कहते हैं। क्योंकि यह सब आचरण हम करते हैं, वह साधन नहीं? वह साधन कहाँ है? धूल में भी साधन नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। कहा था तब मैंने वहाँ उन्हें दिल्ली (में)। उसे यह सब अभ्यास है। गणित का बहुत अभ्यास है। तिलोयपण्णत्ती संस्कृत में कहा है। अष्टसहस्री का संस्कृत में से हिन्दी किया है। उन्हें अभ्यास है। वे सब मन्दिर हैं न, वहाँ दर्शन करना। उसे खबर है कि यह अभी आयेंगे यहाँ। इसलिए तीन आर्यिका बैठी थीं और दो साधु थे, बेचारे नरम थे। गणित की भाषा बोले बस, कोई एक भी व्यक्ति नहीं था। मेरे पास फिर सब सेठ थे, शाहूजी, कौन? कैलाशचन्दजी खिलौनेवाले। खिलौने नहीं बेचते हैं? कैलाशचन्दजी। उनकी बहू को प्रेम है, यहाँ आते हैं बेचारे। सब आते हैं। गणित की बातें करे बड़ी-बड़ी।

माता! समकित अलग चीज़ है, कहा। इतना कहा। क्या कहें परन्तु उसे बेचारे को एक-दो मिनिट आये हों उन्हें। वे साधु बेचारे दोनों नरम थे, हों! बराबर ध्यान रखते। क्या कहते हैं? और वह सबको भावलिंगी साधु ठहरावे। अरे! बापू! उसमें नुकसान है, प्रभु! उस नुकसान के पंथ में जाता है, भाई! लाभ हो ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार तेरे आत्मा को मना दे और दुनिया माने, इसलिए कहीं अन्दर वस्तु होगी। आहाहा!

उसका तत्त्व भगवान भिन्न है, उसके सन्मुख होकर सत्मुख होकर, सत् का मुख, सत्मुख होकर और पर्याय को रागादि विमुख होकर साधन कर तो होगा। आहाहा! यह साधन है। यह कोई व्यक्ति के लिये नहीं, प्रभु! नुकसान होगा तो उस जीव को उसके परिणाम का फल आयेगा। दूसरे को उसका कुछ आता नहीं। परन्तु वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! तेरे आत्मा के लिये भी आनन्द का नाथ, उसमें नहीं जाये, तब तक तेरा कल्याण नहीं। लाख शास्त्र पढ़ना, पढ़ना। और शास्त्र बनावे बड़े-बड़े, लो न! आहाहा! उससे क्या है?

यहाँ तो कहते हैं कि मोक्ष की चिन्ता भी छोड़ दे। **वाँछा के त्याग से ही होता है,...** वाँछा के त्याग से मोक्ष होता है। उस चिन्ता के अभाव से मोक्ष होता है, चिन्ता से होता नहीं। आहाहा! **रागादि चिन्ता जाल से रहित, केवलज्ञानादि अनन्त गुणों को प्रगटता सहित जो मोक्ष है,...** आहाहा! देखो, मोक्ष की व्याख्या की। **रागादि चिन्ता जाल से रहित, केवलज्ञानादि अनन्त गुणों को प्रगटता सहित जो मोक्ष है,...** लो, यह मोक्ष। सवेरे आया था न? अभव्य मोक्ष की श्रद्धा नहीं करता, क्योंकि शुद्धज्ञानमय आत्मा, उसे वह मानता नहीं और मोक्ष में तो शुद्धज्ञानमय आत्मा ही रहता है। सवेरे आया था न! शुद्धज्ञानमय आत्मा। अकेला ज्ञायक आत्मा। आहाहा! जिसमें कोई विकल्प नहीं, चिन्ता नहीं, कुछ नहीं। समाधि आनन्द है। ऐसे मोक्ष की चिन्ता से मोक्ष नहीं मिलता, कहते हैं। आहाहा! तो फिर व्यवहार साधन से निश्चय मिले, ऐसा आता है या नहीं? आहाहा! वह चिन्ता विकल्प है, भाई! प्रभु! यह तो हित का मार्ग है, ऐसा अनन्त काल में, आहाहा! मुश्किल से इसे मनुष्यपना मिला, क्षयोपशम का कुछ भाग आया है। बाहर से निगोद में से निकलकर कहाँ आया है अभी? आहाहा! समझ में आया? परन्तु कोई कहे कि यह पंचम काल की बात है और मोक्ष की चिन्ता छोड़ने की तुम बात करते हो? पंचम काल के साधु तो यह कहते हैं।

मुमुक्षु : मोक्ष की तैयारी तो करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तैयारी मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा है। उसके सन्मुख हुआ तो सम्यग्दृष्टि मोक्षस्वरूप ही है। पर्याय में मोक्ष होगा, परन्तु वस्तु तो मोक्ष है, ऐसा

भान है, अबद्धस्पृष्ट है। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट है न आत्मा? और उसे जो जाने, वह जैनशासन को जानता है, ऐसा कहा है। व्यवहार को जाने, रागवाले को जाने, आत्मा का मोक्षस्वरूप अबद्धस्वरूप का अस्तित्व जो है, ऐसे अस्तित्व को जो अनुभव करे, उसे जैनशासन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

आस्तिक गुण है न पाँच। नहीं आते? सम, संवेग, निर्वेग, अनुकम्पा और आस्था। वास्तव में तो यह आस्था की व्याख्या ऐसी है कि वह परम आनन्दस्वरूप, पूर्णस्वरूप स्वयं, हों! परमात्मा (की) यहाँ बात नहीं। आहाहा! यह कहा न? **केवलज्ञानादि अनन्त गुणों को प्रगटता सहित...** यह प्रगटता की—मोक्ष की बात है। और वस्तुरूप से केवलज्ञानादि गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है। वह प्रगट हुआ कहाँ से? वह वस्तु में से। आहाहा! ऐसी व्याख्या है। कहो, चिमनभाई! चिमनभाई कहे सवेरे ऐसी बात आती है, इसलिए उस समय मानो... आहाहा! भगवान तो भिन्न पड़ा है न, प्रभु! आहाहा! तुझे उसकी आस्था का विश्वास नहीं। आहाहा!

बुखार आया हो और थोड़ी कुनैन ले, यह उसकी आस्था (कि) उससे बुखार मिट जायेगा। आहाहा! यहाँ हो छोटा वह है। इतना बड़ा ग्रास लेकर डाले तो फँसेगा? ऐसा नहीं, उसकी आस्था है उसे कि यह सब उतर जायेगा। छिद्र छोटा है न अन्दर? बड़ा ऐसा ग्रास ले अच्छा लड्डू-बड्डू हो न ठीक सा। यहाँ क्या होगा, उसकी खबर है उसे देखा है? कितना छिद्र है छोटा-बड़ा। यह डालते-डालते कहीं फँस जायेगा? परन्तु उसे विश्वास है। नहीं दिखता तो भी उसका विश्वास! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु तेरी आस्था का विश्वास तो एकबार ला। तू मोक्षस्वयप ही है। यह उस ३२० गाथा में नहीं आया? यह शक्ति अर्थात् मोक्ष की व्याख्या नहीं, यहाँ तो व्यक्तिरूप मोक्ष की व्याख्या है। ३२० में आता है। जयसेनाचार्य की टीका में नहीं? बन्ध-मोक्ष के परिणाम का भी आत्मा कर्ता नहीं। मोक्ष और मोक्ष के कारण के परिणाम का भी प्रभु कर्ता नहीं। '**जीवो न बंधो मोक्खो करेई**' आहाहा! भगवान आनन्द और ज्ञान का पिण्ड प्रभु ध्रुव, वह ध्रुव जो वस्तु है, वह मोक्ष और मोक्ष के परिणाम को, पर्याय को कैसे करे वह? आहाहा!

बन्ध और बन्ध के कारण, मोक्ष और मोक्ष के कारण जीव नहीं करता, उसे जीव कहते हैं। आहाहा! गजब है न? ध्रुव वस्तु जो परमस्वभावभाव एक समय की पर्याय उसका लक्ष्य करती है, परन्तु वह पर्याय, पर्याय का लक्ष्य नहीं करती। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! पूरे जन्म-मरण के अन्त की बात है। वह अलौकिक है। कोई बाहर से मान बैठता है, ऐसी वह वस्तु नहीं, भाई! आहाहा! उसकी आस्था में वस्तु जो है पूर्ण आनन्दस्वरूप, जहाँ बन्ध और मोक्ष के परिणाम भी जहाँ नहीं, और मोक्ष के कारणरूप मार्ग के परिणाम भी जहाँ नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान की आस्था, वह आस्था है पर्याय, परन्तु उस पर्याय में आस्था आयी किसकी? पर्याय की? पर्याय की नहीं, त्रिकाल की। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहाँ मिले बेचारे को। सुनने को मिलता नहीं और कहीं-कहीं रुक जाता है।

एक तो संसार के काम के कारण निवृत्ति नहीं मिलती, निवृत्त हो तो मिले वाँचने 'द्रव्य क्रिया रुचि, जीवड़ा भावधर्म रुचि हीन, उपदेशक भी वैसे ही क्या करे जीव नवीन?' बेचारा क्या कर सकता है? उसे जिसे पुण्य-पाप के परिणाम, व्यवहार की रुचि है। ११वीं (गाथा समयसार) में कहा है न, भेद की तो अनादि की रुचि है। व्यवहार की। और परस्पर यह बात भी की, कहते हैं। गुरु यह कहे और शिष्य यह कहे, हाँ। मार्ग यह बराबर, राग से होता है, व्यवहार से होता है, भगवान की भक्ति से होता है, यह कहनेवाले कहे और वह सुननेवाले को रुचा है। आहाहा! 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा भावधर्म रुचि हीन।' त्रिकाली आनन्द के नाथ की रुचि का जिसे अभाव है। 'उपदेशक भी वैसे ही।' उसे उपदेश ऐसा मिला। 'क्या करे जीव नवीन?' नया क्या करे, अनन्त काल में नहीं किया, ऐसा क्या करे? जो किया है, वह उसे सुनने का मिलता है। और ऐसा करने का कहते हैं उसे। बाबूभाई! आहाहा! थोड़ा भी परन्तु सत्य होना चाहिए। शशीभाई! आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो! आहाहा!

रागादि चिन्ताजाल से रहित केवलज्ञानादि... अकेला ज्ञान-दर्शन-आनन्द ऐसे अनन्त गुण, गुण अर्थात् प्रगट पर्याय की बात है, हों! गुणों की प्रगटता है न यहाँ? पर्याय की बात है। वस्तु है, वह केवलज्ञान अनन्त गुण शक्ति का पिण्ड है। है? परन्तु

मोक्ष, वह अनन्त गुण की प्रगटता सहित है। वह पर्याय है। है? **अनन्त गुणों को प्रगटता सहित जो मोक्ष है, वह चिन्ता के त्याग से होता है।** चिन्ता के त्याग से होता है। आहाहा! अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, समाधि सुख, ऐसी मोक्षदशा उस चिन्ता के त्याग से होती है। चिन्ता से वह मोक्ष नहीं होता। आहाहा! मोक्ष की चिन्ता से मोक्ष नहीं होता तो व्यवहार से मोक्ष होगा? आहाहा! यह वे गये? उनके साथ गये होंगे। समझ में आया? ऐसी बातें लोगों को सूक्ष्म पड़ती हैं। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! उसकी पहले तुझे आस्था (होनी चाहिए)।

जो वस्तु अस्तित्वरूप से परिपूर्ण है, परिपूर्ण बादशाह भगवान आनन्द का नाथ है, उसकी पर्याय के पीछे पूरा तत्त्व है और तेरी लीनता सब एक समय की पर्याय में आनादि से लीनता है। इसलिए पर्याय के अंश के पीछे पूरा तत्त्व है, उसका तुझे भरोसा, भाव आता नहीं और उस भाव के भासन बिना; भासन अर्थात् ज्ञान। आहाहा! सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन नहीं होता। यह बात है। आहाहा! समझ में आया?

चिन्ता के त्याग से... यह कहते हैं। यह न, **मिथ्यात्व रागादि चिन्ताजालों से उपार्जन किये कर्मों से...** आहाहा! राग से धर्म होगा, विकल्प से धर्म होगा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। आहाहा! **मिथ्यात्व रागादि चिन्ता...** आहाहा! उससे **उपार्जन किये कर्मों से यह जीव बँधा हुआ है,...** ऐसे कर्म से बँधा हुआ है। चिन्ता से उत्पन्न हुआ बन्धन, उससे बँधा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? वास्तव में तो चिन्ता है, वह भावबन्ध है और उसका निमित्त पाकर कर्म बँधता है, वह जड़बन्ध है, द्रव्यबन्ध है। समझ में आया?

वह **बँधा हुआ है,...** आहाहा! **वे कर्म ही शुभाशुभ विकल्प के समूह से रहित,** आहाहा! **जो शुद्धात्मतत्त्व का स्वरूप उसमें लीन हुए...** आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प के समूह से रहित। अशुभ तो ठीक, परन्तु शुभ के विकल्प से रहित। आहाहा! दया, दान, भक्ति, पूजा, वह सब राग है। आहाहा! ऐसा बैठना कठिन। उस **शुभाशुभ विकल्प के समूह से रहित जो शुद्धात्मतत्त्व का स्वरूप, उसमें लीन हुए...** जो शुभ-अशुभ विकल्प है, उससे रहित शुद्धात्मतत्त्व के स्वरूप में लीन हुए। आहाहा! **परमयोगियों**

की मोक्ष करेंगे। उन सन्तों को, उन सन्तों का मोक्ष होगा। आहाहा! शुभाशुभ विकल्प से रहित होकर शुद्धचैतन्य की रमणता में रमेंगे ऐसे सन्तों का मोक्ष होगा। व्यवहारवाले का मोक्ष नहीं होगा। आहाहा! व्यवहार का निषेध आया इसमें। यह तो सवेरे अधिकार चलता है न! आहाहा! लो। **परमयोगियों की मोक्ष करेंगे।**

भावार्थः—वह चिन्ता का त्याग ही तुझको निःसन्देह मोक्ष करेगा। आहाहा! मोक्ष की भी विकल्प की चिन्ता का त्याग। आहाहा! निःसन्देह तेरी दशा में मोक्ष होगा। आहाहा! चिन्ता का त्याग समझ में आये ऐसा है। यहाँ स्थिर होता है, तो चिन्ता की उत्पत्ति नहीं होती, वह चिन्ता का त्याग कहा जाता है। वास्तविक तो ऐसा है, परन्तु समझाने की शैली क्या करना? चिन्ता मोक्ष की छोड़, तो यह चिन्ता है, छोड़ूँ ऐसा है? आहाहा!

वस्तु के स्वरूप में स्थिर होने से चिन्ता छूट जाती है। उत्पन्न नहीं होती। उस चिन्ता को छोड़ने से तेरी दशा मोक्ष को पायेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह रूखी बातें हैं। वीतरागभाव की। राग में चिकनाई-मिठास आवे। वह छहढाला वाँचन होती है न? छहढाला नहीं। वह तुम्हारे छहढाला, वह नहीं। ढाल सागर आयेगा। ढाल सागर एक ग्रन्थ आता है। उसमें रावण और राम का बड़ा (कथन आता है)। वे लोग आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा से दोपहर को वाँचते हैं। लोग इकट्ठे होते हैं। सवेरे शास्त्र का व्याख्यान और दोपहर में यह ढाल सागर है। परन्तु ऐसी बात छोड़े न उसमें कि कल राम रावण को मारेगा। ऐसा करके छोड़े, तो दूसरे दिन लोग बहुत सुनने आवे। अषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा से वह भाद्र शुक्ल पंचमी तक वाँचते हैं। ७० के वर्ष की बात है। पहली दीक्षा हुई न? तब उम्र छोटी और कण्ठ मीठा (मधुर) इसलिए भावसार कहने आये। रतनसिंह भावसार। महाराज! आप वाँचने आओ न, बहुत लोग इकट्ठे होते हैं। क्या है परन्तु बापू? उसमें तो सब विकथा है। यह रावण और राम इकट्ठे लक्ष्मण को मारा बाण और फिर मूर्च्छा आ गयी। लक्ष्मण को मूर्च्छा आयी, ऐसा आता है न? रावण ने बाण मारा तो मूर्च्छा आ गयी। रामचन्द्रजी कहते हैं, अरे! आये थे तब तीन जणे अरु जाऊँ एकाएक। राम, सीता और लक्ष्मण तीन आये थे। सीता तो ले गया। यह तुम अब मूर्च्छा

में पड़े। माताजी खबरें पूछेंगी। माताजी पूछेंगी कि भाई क्या हुआ? क्या खबर दूँगा, कह। वे लोग ऐसा जुड़ान, लोग—सुननेवाले ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा!

ऐसी बात में रखे कि इस प्रकार से रावण आया है। अब उस रावण ने मारी मूर्च्छा (शक्ति), वह मूर्च्छा उतर जाती है। उतरकर, कहाँ गया रावण? वापस ऐसा बोलते हैं। अब रावण को कल मारेंगे, इतना रखकर कल दोपहर में लोग आवे। महाराज! यह वाँचने आओ न नीचे। मैंने कहा भाई! यह सब विकथायें हैं। कि तुम्हारे गुरु वाँचते हैं न? गुरु वाँचे तो भी क्या? यह तो (संवत्) १९७० के वर्ष। जिसमें आत्मा का वैराग्य नहीं, ऐसी बात क्या सब? दुनिया को प्रसन्न रखकर इकट्ठे करना। आहाहा! यहाँ तो मोक्ष की चिन्ता का त्याग। आहाहा! ऐसी विकथायें इसने ऐसा किया, इसने ऐसा किया। आहाहा! लो!

अनन्त ज्ञानादि गुणों की प्रगटता, वह मोक्ष है। भावार्थ में से। पर्याय है न? अनन्त ज्ञानादिगुण जो शक्तिरूप थे, उनकी पर्याय में प्रगटता, इसका नाम मोक्ष। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता।' श्रीमद् में आता है न! 'वह पावे सो पंथ, समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' निर्ग्रन्थ मार्ग वीतराग ने यह समझाया है, कहे। आहाहा! उन **गुणों की प्रगटता, वह मोक्ष है। यद्यपि विकल्पसहित जो प्रथम अवस्था उसमें विषय-कषायादि खोटे ध्यान के निवारण करने के लिये और मोक्षमार्ग में परिणाम दृढ़ करने के लिये ज्ञानीजन ऐसी भावना करते हैं।** देखा! ऐसी भावना करे। यह कुन्दकुन्दाचार्य रखते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य की भक्ति है न?

कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत सिद्ध भक्ति है। सिद्ध भक्ति का श्लोक है। देखो! **मोक्षमार्ग में परिणाम दृढ़ करने के लिये ज्ञानीजन ऐसी भावना करते हैं कि चतुर्गति के दुःखों का क्षय हो,... 'दुक्खक्खओ कम्मक्खओ'** कुन्दकुन्दाचार्य का है, हों! **'बोहिलाहो'** ज्ञान का लाभ होओ। आहाहा! **पंचम गति में गमन हो।** है न? **'सुगईगमणं' 'सुगई'** जो **'सुगई'** है मोक्ष। बाकी **'सुगई'** है नहीं। चार गति दुर्गति है। **'सुगईगमणं'** हमको सुगति का गमन होओ।

मुमुक्षु : समाधिमरण हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधिमरण हो। देह छूटने से आनन्द की लहर में देह छूटे। आहाहा! समाधि-समाधि। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। कहा था न एक बार? सम—आधि, व्याधि, आधि, उपाधि, समाधि, इन तीनों में आधि... आधि है। एक तो मन का संकल्प-विकल्प वह आधि। आधि, व्याधि, वि—विशेष यह जो शरीर का रोग आधि, व्याधि। उपाधि—उप समीप में जो सब वह सब उपाधि। उससे रहित सम—आधि। सबमें आधि। समझ में आया? आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। लोगस्स में आता है। 'समाहिवरदिंतु' लोगस्स में। आहाहा!

यह भावना करते हैं, हों! क्या? समाधिमरण हो। आनन्द की लहर में अनुभव में देह छूटे। आहाहा! समझ में आया? भले कदाचित विकल्प हो, परन्तु समाधिमरण हो। निर्विकल्प अनुभव में हो और कभी विकल्प भी हो, परन्तु मरण समाधि, शान्ति... शान्ति... शान्ति... जिसने समाधिमरण के साधन किये हैं, उसे समाधि होगी। समझ में आया? ऐसी भावना करे। **और जिनराज के गुणों की सम्पत्ति मुझको हो।** सर्वज्ञ भगवान को जितने गुणों की पर्याय प्रगट हुई है, वह मुझे प्रगट होओ, वह मुझे मिलो। आहाहा! है न पाठ? '**समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति**' जिन वीतरागगुण की पर्याय की सम्पत्ति, वह सम्पदा मुझे हो। आहाहा! यह लिखते हैं न सवेरे बनिया? लाभ सवाया। अभय, अभयकुमार की बुद्धि होओ। शालिभद्र की ऋद्धि होओ।

मुमुक्षु : अभयकुमार की....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अभयकुमार की। शालिभद्र की ऋद्धि होओ, यहाँ कहते हैं कि हमारी आत्मऋद्धि हमको होओ। आहाहा! भगवान के गुण जो पर्याय में प्रगट हुए वे हमको होओ। यह बहियों के नामा यह है। आहाहा! बहियों में लिखते हैं न वे? आहाहा!

यह भावना चौथे, पाँचवें, छठ्ठे गुणस्थान में करने योग्य है,... देखा! चौथे, पाँचवें और छठवें में यह समकित में करनेयोग्य है। **तो भी ऊपर के गुणस्थानों में वीतराग निर्विकल्प समाधि के समय नहीं होती।** यह भावना सातवें के बाद होती नहीं। चौथे, पाँचवें, छठवें तक यह भावना होती है। मेरा मन ऐसा होने से। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १८९

अथ चतुर्विंशतिसूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये परमसमाधिव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रषट्कमन्तर स्थलं कथ्यते। तधथा–

३१२) परम–समाहि–महा–सरहिँ जे बुड्डुहिँ पइसेवि।
अप्पा थक्कइ विमलु तहँ भव–मल जंति वहेवि।।१८९।।

परमसमाधिमहासरसि ये मज्जन्ति प्रविश्य।
आत्मा तिष्ठति विमलः तेषां भवमलानि यान्ति ऊढ्वा।।१८९।।

जे बुड्डुहिं ये केचना पुरुषा मग्ना भवन्ति। क्व। परम–समाहि–महा–सरहिं परमसमाधि–महासरोवरे। किं कृत्वा मग्ना भवन्ति। पइसेवि प्रविश्य सर्वात्मप्रदेशैरवगाह्य अप्पा थक्कइ चिदानन्दैकस्वभावः परमात्मा तिष्ठति। कथंभूतः। विमलु द्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुण–नरकादिविभावपर्यायमलरहितः तहं तेषां परमसमाधिरत– पुरुषाणां भव–मल जंति भवरहितात् शुद्धात्मद्रव्याद्विलक्षणानि यानि कर्माणि भवमलकारणभूतानि गच्छन्ति। किं कृत्वा। वहेवि। शुद्धपरिणामनीरप्रवाहेण ऊद्वेति भावार्थः।।१८९।।

आगे चौबीस दोहों के स्थल में परमसमाधि के व्याख्यान की मुख्यता से छह दोहा–सूत्र कहते हैं–

परम समाधि महासरवर में कर प्रवेश जो मग्न हुए।
वे अति निर्मल आत्म लीन हो भवमल धोकर शुद्ध हुए।।१८९।।

अन्वयार्थः– [ये] जो कोई महान पुरुष [परमसमाधिमहासरसि] परमसमाधिरुप सरोवर में [प्रविश्य] घुसकर [मज्जन्ति] मग्न होते हैं, उनके सब प्रदेश समाधिरस में भींग जाते हैं, [आत्मा तिष्ठति] उन्ही के चिदानंद अखंड स्वभाव आत्मा का ध्यान स्थिर होता है। जो कि आत्मा [विमलः] द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित महा निर्मल है, [तेषां] जो योगी परमसाधि में रत हैं, उन्हीं पुरुषों के [भवमलानि] शुद्धात्म द्रव्य से विपरीत अशुद्ध भाव के कारण जो कर्म हैं, वे सब [(ऊढ्वा) बहित्वा यांति] शुद्धात्म परिणामरुप जो जल का प्रवाह उसमें बह जाते हैं।

भावार्थः– जहाँ जल का प्रवाह आवे, वहाँ मल कैसे रह सकता है, कभी नहीं रहता।।१८९।।

वीर संवत् २५०२, चैत्र शुक्ल ४, बुधवार
दिनांक- २३-०३-१९७७, गाथा - १८९-१९०, प्रवचन-२३०

परमात्मप्रकाश, १८९ गाथा। **आगे चौबीस दोहों के स्थल में परमसमाधि के व्याख्यान की मुख्यता से छह दोहा कहते हैं—**समाधि। समाधि। सम्यग्दर्शन, वह समाधि है। सम्यग्ज्ञान, मति-श्रुतज्ञान, वह भी समाधि है। जिसमें शान्ति प्राप्त हो, उसका नाम समाधि। शुभाशुभभाव में अशान्ति प्राप्त होती है। इससे वह असमाधि है। समाधि अर्थात् शान्ति। रागरहित आत्मा की वीतरागीदशा, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। कल कहा था न? आधि, व्याधि, उपाधिरहित समाधि। आधि अर्थात् मन में उठते पुण्य-पाप के विकल्प, उन्हें आधि कहते हैं। शरीर के रोगादि को व्याधि कहते हैं और संयोगी चीज़ को उपाधि कहते हैं। आधि, व्याधि, उपाधिरहित समाधि। आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या है।

समाधि वे अन्यमति बाबा लगावें, वह यह नहीं। आहाहा! यह तो आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान में दृष्टि लगाकर उसमें घुस जाना, उसका नाम समाधि है। आहाहा! पुण्य-पाप में अनादि से घुसा हुआ है, वह असमाधि है, दुःख है। उससे हटकर, यह कहते हैं, देखो!

३१२) परम-समाहि-महा-सरहिँ जे बुड्डुहिँ पइसेवि।
अप्पा थक्कइ विमलु तहँ भव-मल जंति वहेवि।।१८९।।

जो कोई महानपुरुष... आत्मा '**परमसमाधिमहासरसि**' **परमसमाधिरूप सरोवर...** आहाहा! यहाँ तो एकदम मोक्ष का मार्ग वर्णन करना है न! **परमसमाधिरूप सरोवर...** भगवान आत्मा परमसमाधिस्वरूप ही है। उसके अवलम्बन से परमसमाधिस्वरूप पर्याय, शान्ति की अविकारी निर्दोष समभाव की परिणति प्रगट होना, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। उसे यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अथवा उसे यहाँ धर्म कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। वह परमसमाधि, ऐसा जो महासरोवर। आहाहा! **परमसमाधिरूप सरोवर...** आहाहा! आत्मा का स्वभाव शीतल अविकारी निर्दोष वीतरागस्वभाव से भरपूर परम

उपशमरस, वह उसका स्वरूप है। वह उसके स्वरूप में प्रवेश करे, शान्ति से उसमें अन्दर में घुस जाये। आहाहा! ऐसा मार्ग लोगों को....

पुण्य-पाप के विकल्पों से रहित निर्विकल्प शान्तिस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी ओर सन्मुख होकर, झुकाव करके, अन्दर में लीन-घुस जाये। आहाहा! उसमें **घुसकर मग्न होते हैं,...** आहाहा! एक समय की पर्याय में पुण्य-पाप और विकार दिखता है, उसे छोड़कर निर्विकारी चैतन्य शान्ति का सागर, वीतराग स्वभाव की शान्तिरस का सागर, उसमें से एकाग्र घुस जाये तो वह सरोवर हुआ। शान्ति का सरोवर आया। आहाहा! स्वभाव तो शान्ति का सागर है।

'परमसमाधिमहासरसि' घुसकर मग्न होते हैं,... आहाहा! ऐसी परमसमाधि स्वरूप भगवान आत्मा में जो मग्न—घुस जाता है, लीन होता है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन। श्वेताम्बर में आता है, वह चित्समाधि हुए दस बोले। यह एक शब्द कहा था। ७८। वह चित्समाधि है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान की शान्ति है। आहाहा! उन लोगों का कोई दशासूत्र है। उसके दस बोल आते हैं। चित्समाधि हुए दस बोले, सम्यग्दर्शन, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, जातिस्मरणज्ञान उन सबको समाधि में गिन लिया है। शान्ति में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि परमसमाधि ऐसा जो महासमाधिरूप सरोवर। वह तो महासमुद्र है अन्दर, कहते हैं। उसमें घुसकर, उसमें एकाग्र होकर मग्न होता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और उसे समाधि प्राप्त होती है। आहाहा! अब ऐसी बात। वे बाबा लगावें, वह समाधि, वह नहीं, हों! यह तो सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने जिसे आत्मा कहा। भाई एक नहीं आये? सवेरे आते थे। दो-तीन दिन से। कहीं से नये भाई से सही। तीन-चार दिन से थे, हों! अभी नहीं? अनजाने थे। प्रेम से सुनते थे। यह तो वह घर की बात है और ऐसी बात अभी मिलती नहीं इसलिए। आहाहा!

यह सरोवर ही परमशान्ति का सरोवर प्रभु है। जैसे मनुष्य पानी पीने जाता है, पशु भी जाता है और मनुष्य भी जाता है। आहाहा! इसी प्रकार परम शान्तरस अकषायस्वभाव अर्थात्? कि जो वर्तमान समाधि वीतराग परिणति प्रगट हो तो वह

आत्मा वीतराग समाधिस्वरूप ही है। उसमें से प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? प्रायश्चित (अधिकार) में नहीं कहा नियमसार में? प्रायश्चित। प्रायश्चित किसे कहना? कि वर्तमान में वीतरागी परिणति प्रगट हो और राग को छेदे, उसे प्रायश्चित, परन्तु वह प्रायश्चित आत्मा प्रायश्चितस्वरूप ही है, ऐसा वहाँ कहा। प्रायश्चित पुष्ट बहुलता से, चित्त अर्थात् ज्ञानस्वरूपी भगवान है। आहाहा! अब यह।

प्रायश्चित। प्राय अर्थात् बहुलता से, चित्त अर्थात् ज्ञानस्वरूप। स्वयं आत्मा प्रायश्चित स्वरूप है। यहाँ कहना क्या है? कि जो कुछ प्रायश्चित परिणति में वीतरागीदशा आती है, उस स्वरूप स्वयं है। आहाहा! ऐसी यह बात अन्दर में, बापू! यह तो धीरज की बातें हैं। यह कहीं कोई वाद-विवाद और शास्त्र में यह है और ऐसा है। आहाहा! भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप, यहाँ परमसमाधिस्वरूप लेना है। समाधि का अधिकार है न! परमसमाधि स्वरूप ही स्वयं, सरोवर है, सागर है। आहाहा! उसमें जो घुसकर अर्थात् सन्मुख होकर प्रवेश करे। आहाहा! जैसे राग में प्रवेश है, वह स्वरूप में प्रवेश करे। प्रवेश का अर्थ कहीं ध्रुव में घुस नहीं जाता, परन्तु ध्रुव की ओर की सन्मुखता करे, वह ध्रुव में प्रवेश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी व्याख्या। चन्दुभाई!

लोग बेचारे चिल्लाहट मचाते हैं। चारों ओर, हों! आहाहा! अन्दर की चीज़ का माहात्म्य आया नहीं और परचीज़ का कुछ करें, उसमें से कषाय करते-करते अकषाय -स्वभाव प्रगट होगा (ऐसा वे मानते हैं)। यहाँ कहते हैं कि परमसमाधिस्वरूप प्रभु है, तुझे बैठता है? आहाहा! जिसका स्वभाव ही शान्त, अविकारी। 'ज्यों निर्मलता स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव।' स्फटिक जैसे निर्मल है, वह किसी से नहीं है। वह तो उसका स्वरूप ही निर्मल है। 'ज्यों निर्मलता स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव।' भगवान का स्वभाव स्फटिक की, जैसे निर्मल का बाद में कहेंगे, परन्तु अभी तो समाधिस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

परसन्मुख से झुकाव सब छोड़कर भगवान परम समाधि का सरोवर भगवान स्थित है, उसमें से निर्विकल्प पानी पी। आहाहा! ऐसी बातें हैं, कहे। तेरे जन्म-मरण

मिटेंगे। आहाहा! उसमें से तुझे परम आनन्दमूर्ति मोक्ष की प्राप्ति होगी। ऐसा है, भाई! आहाहा! उसमें घुसकर मग्न होता है। देखा! ऐसे विकल्प जो हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति, उसमें प्रवेश किया है, वह अनादि का विभाव है। आहाहा! टीका में तो ऐसा लिया है।

द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म... मतिज्ञानादि विभावगुण। क्या कहा? उससे रहित प्रभु है। आहाहा! द्रव्यकर्म अर्थात् जड़कर्म, नोकर्म अर्थात् वाणी और शरीर। द्रव्यकर्म, नोकर्म है न? और मतिज्ञानादि विभावगुण। ऐसा लिया, देखा! आहाहा! मतिज्ञानादि श्रुतज्ञान की पर्याय जो निर्मल है, उसे विभाव गुण कहा है। टीका में है। समझ में आया? है पर्याय, परन्तु कर्म के निमित्त का संग है न, इसलिए चार ज्ञान मति-श्रुत निर्मल। आहाहा! उसे विभावगुण कहा है। नियमसार में कहा है न, भाई! चार ज्ञान विभावज्ञान है। केवलज्ञान स्वभावज्ञान है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय का ज्ञान जो है, विभाविकपर्याय है ज्ञान। उससे रहित भगवान निर्मल समाधि शान्तस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? और नरनारकादि विभावपर्याय। उसे पर्याय ली है। उनको गुण लेकर, है तो वह पर्याय। चार ज्ञान है, वह विभाविक पर्याय है, परन्तु उन्हें गुण गिना, वे निर्मल हैं। और नरनारकादि व्यंजनपर्याय है, उसे विभाविक पर्याय गिना। उससे रहित। आहाहा! है? यह यहाँ कहते हैं, देखो।

परमसमाधिरूप सरोवर में घुसकर मग्न होते हैं, उनके सब... अर्थात् कि मतिज्ञानादि की पर्याय है, आहाहा! उससे भी रहित ध्रुव स्वरूप चिदानन्द है। आहाहा! है तो वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय। अन्दर घुसकर स्थिर होता है। परन्तु वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर अन्दर जाता है, तब जो मतिज्ञान होता है, श्रुतज्ञान होता है, वह समाधि है। आहाहा! अब ऐसी बातें! वे कहे, एकेन्द्रिय की दया पालना, छहकाय की दया पालना, लो। भाई! मेरे तू प्रभु, तेरी दया पाल न! तू जितना है उतना मान तो दया पालन की, कहलाये और जितना है उससे न्यून-अधिक माने तो हिंसा की कहलाये। जिसका जीवत्व है जगत का आयुष्य का, उसे उस प्रकार से वह उसे जाने और रखे तो उसका जीवत्व किया कहलाये। इसी प्रकार भगवान का

जीवत्व। जीवत्वशक्ति ली है न पहली? पहली जीवत्वशक्ति ली है। वह कहाँ से? कि **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** (समयसार) दूसरी गाथा से उठाया है। वहाँ से उठाया तो जीवत्वशक्ति सैंतालीस (शक्तियों) में पहली ली।

ज्ञान, दर्शन, आनन्द के प्राण से जीवित, टिकता भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसे उस प्रकार से स्वीकार करना और उस प्रकार से सत्कार करना और उस प्रकार से उसमें एकाग्र होना, तब उसका माहात्म्य आया, तब उसमें लीन हुआ, तब उसने जीव की, आत्मा की दया पालन की। आहाहा! पर की दया तो पाल सकता नहीं, प्रभु! वह तो आयुष्य हो तो। समझ में आया? ऐसी भाषा है। ले, पर की दया! कि वह तो राग है। स्व की दया, इस प्रकार से, वह अराग है। आहाहा!

भाई ये बैठे हैं। अभी आये? ठीक! यह तुम्हारी बात करते थे। आओ सामने, आओ सामने। सुनने में प्रेम है। इनके मुख पर दिखता है न। मार्ग ऐसा है, बापू! बहुत मार्ग... है गुजराती परन्तु थोड़ा-थोड़ा समझ में आये। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त, वे ऐसा कहते हैं, एक बार सुन तो सही प्रभु! तेरी चीज़ कितनी है? कि परमसमाधिस्वरूप इतनी है। आहाहा! रागवाली तो नहीं, पुण्य-पापवाली तो चीज़ नहीं। कर्मवाली नहीं। परन्तु मतिज्ञानादि निर्मलपर्याय है, उतनी भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह मतिज्ञानादि निर्मलपर्याय चार। आहाहा! उनसे प्रभु निर्मल समाधि शान्ति से भरपूर पदार्थ है। उसे उतना और इतना है, ऐसा मानकर स्थिर होना, उसने आत्मा की दया पालन की। आहाहा! उस आत्मा को राग से लाभ होता है, ऐसा मानकर जीव की हिंसा की। उसे मतिज्ञानादि निर्मलपर्याय जितना मानना, वह भी पर्याय जितना मानना, उसने द्रव्य के स्वभाव की हिंसा की। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! लोगों को ऐसा लगे—पक्षपात लगे। निश्चय... निश्चय। बापू! सत्य यह है, भाई! व्यवहार होता है। मतिज्ञानादि कहा न! है तो सही। आहाहा!

राग भी होता है, परन्तु उससे रहित प्रभु स्वयं पूर्णानन्द का समाधि शान्त.. शान्त.. शान्त.. वह उपशमरस का समुद्र है। आहाहा! उसमें घुसकर प्रवेश कर। उस ओर ढल। राग में नहीं, वर्तमान पर्याय में भी नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा

दिगम्बर सन्त आचार्य केवली के पथानुगामी हैं, वे ऐसा कहते हैं, प्रभु! तेरा रास्ता यह है। समझ में आया? आहाहा! देखो! '**मज्जन्ति**' है न! प्रवेश करके '**मज्जन्ति**' स्नान करता है अर्थात् मग्न होता है। आहाहा! **उनके सब प्रदेश...** आहाहा! क्योंकि सर्वज्ञ के अतिरिक्त असंख्य प्रदेश जीव के किसी ने माने ही नहीं। केवली जिनेश्वर, परमेश्वर ने एक-एक आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, वह ऐसे प्रदेश की व्याख्या सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि तेरे आत्मा में मग्न होने से तेरे सर्व प्रदेश **समाधि रस में भींग जाते हैं,...** आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत जानना, ऐसा है यह। आहाहा! भगवान आत्मा, अरे! उसे कैसे बैठे? क्योंकि साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ, परन्तु अनादि की—अनादि की इसकी सब लीनता पर्याय में और राग में। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया दिगम्बर साधु, पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण (पालन किये), परन्तु वह सब क्रीड़ा राग और पर्याय की क्रीड़ा। पर्यायबुद्धि की क्रीड़ा, वह यहाँ पर्यायबुद्धि को छुड़ाकर द्रव्यबुद्धि की क्रीड़ा कराते हैं। आहाहा! भारी कठिन बातें।

सब प्रदेश समाधि रस में भींग जाते हैं,... जीवडा पड़ जाते हैं। आहाहा! अथवा वह पूरणपोली नहीं होती? रोटी... रोटी। पूरणपोली कहते हैं? क्या कहते हैं? वह रोटी नहीं होती पूरण डालकर? पूरणपोली। वह गर्म-गर्म पूरणपोली हो और घी का तपेला भरा हो, उसमें डाले और ऊँचा करे तो सराबोर हो जाये ऐसे। आहाहा! पहले ऐसा रिवाज था। छोटी उम्र के लड़के मर जायें न तो उसे—मेहमानों को सुखड़ी नहीं खिलाते। यह तो घर में देखा था तब। (संवत्) १९५७ की बात है। घर साधारण हो तो भी उसे सुखड़ी नहीं दी जाती। क्योंकि मर गया है परन्तु गर्म-गर्म रोटी बनाकर, घी की तपेली में डालकर, उसमें कितना खर्च हो, उसका कुछ नहीं परन्तु सुखड़ी (मिठाई) नहीं। सुखड़ी सूमझे? सुखड़ी को क्या कहते हैं? मिष्ठान्न नहीं होता गुड़, गेहूँ और घी। वह घी की गर्म गर्म रोटी घी में डाले। तब तो सस्ता था। परन्तु यह तो। तब तो २० रुपये का मण।

यहाँ कहते हैं कि सराबोर हो जाये अन्दर जहाँ जाता है वहाँ, ऐसा कहते हैं।

उसके असंख्य प्रदेश शान्ति से सराबोर हो जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? है? **सब प्रदेश समाधि रस से...** समाधिरस से। आहाहा! जो पुण्य के परिणाम के रस में रुक कर विकार के रस में सराबोर था। आहाहा! वह अन्तर भगवान आत्मा स्वरूप का जो स्वरूप है, आत्मा का जो स्वरूप शुद्धचैतन्यघन समाधि, शान्तिरस, उसमें मग्न होने पर असंख्य प्रदेश समाधिरस से सराबोर हो जाते हैं। आहाहा! ऐसा कहकर यह कहते हैं कि वे असंख्य प्रदेश हैं और उसमें शान्ति आवे तो अमुक प्रदेश में शान्ति और अमुक प्रदेश में शान्ति नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! पूरा आत्मा असंख्य प्रदेशी और प्रदेश-प्रदेश में अनन्त शान्ति से भरपूर पूरा तत्त्व। उसमें जो प्रवेश करता है, उसके असंख्य प्रदेश समाधिरस से सराबोर होते हैं। आहाहा! यह व्याख्या। कहो, इसका नाम धर्म। अब यह क्या कहते हैं? आहाहा! है?

जो कि आत्मा... भींग जाते हैं, उन्हीं के चिदानन्द अखण्ड स्वभाव आत्मा का ध्यान स्थिर होता है। आहाहा! है? बहुत थोड़े शब्द। **उन्हीं के चिदानन्द अखण्ड स्वभाव आत्मा...** देखो! आत्मा की व्याख्या। आत्मा कैसा है? चिदानन्द अखण्ड स्वभाव। आहाहा! ज्ञानानन्द और वह भी अखण्ड, एकरूप स्वभाव। पर्याय का भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा अन्दर? **चिदानन्द अखण्ड स्वभाव आत्मा...** यह तो वस्तु की स्थिति कही। उसका ध्यान। प्रवेश किया न अन्दर एकाग्र? यह पर्याय हुई। यह **ध्यान स्थिर होता है।** उसका ध्यान स्थिर होता है।

अखण्ड चिदानन्दस्वभाव ध्रुव अनादि-अनन्त प्रभु अखण्ड ज्ञानानन्दस्वभाव में उसकी परिणति / पर्याय स्थिर होती है। आहाहा! ध्यान स्थिर होता है, कहा न? ध्यान कहो या पर्याय कहो। आहाहा! भारी कठिन (बात)। कोई भी कहे यह तो सीधे निश्चय की बात, परन्तु इसका साधन? साधन ही यह है। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। राग को साधन मानने जायेगा प्रभु! तुझे कलंक लगेगा। तेरी जाति से विजाति से कुजाति से सजाति प्रगट हो, यह तो कलंक है। आहाहा! उसमें नहीं आया? चाण्डालिनी के गर्भ से दो पुत्र। फिर एक रहा ब्राह्मण के यहाँ और एक रहा चाण्डाल में। परन्तु है तो दोनों चाण्डालिनी के पुत्र। पुण्य-पाप अधिकार में (आता है)। उसमें भी है कहीं

आगे। समझ में आया? इसी प्रकार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प और हिंसा, झूठ, चोरी, भोग, विषय का विकल्प, दोनों चाण्डालिनी के पुत्र, विभाव के पुत्र हैं दोनों। आहाहा! विभावरूपी चाण्डालिनी। यहाँ तो मतिज्ञान को विभाव कहा है। वह बात तो एक ओर रखी। आहाहा!

द्रव्यकर्म... उसका ध्यान स्थिर होता है। **जो कि आत्मा... 'विमलः'** है। **द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित...** अर्थात् मतिज्ञानादि पर्याय से रहित। **महा निर्मल हैं,...** आहाहा! भगवान तो अन्दर जड़कर्म, भाव-विकल्परूपी भावकर्म और शरीर तथा वाणी नोकर्म। और मतिज्ञानादि विभावगुण तथा नरकादि, मनुष्यगति आदि विभावी पर्याय से रहित निर्मल है। आहाहा! **महा निर्मल है,...** ऐसा है न? **'विमलः'** है न? **'विमलः'** आहाहा! मलरहित निर्मल है।

जो योगी परमसमाधि में रत हैं,... जो कोई धर्मात्मा आनन्दस्वरूप भगवान। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पाती है। आहाहा! तब आत्मा के आनन्द में रस में वह लीन होती है। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन समाधि कहने में आता है। समझ में आया? एक बात आयी थी उसमें कि भाई! यह तो सब निश्चय की बात है, परन्तु वापस व्यवहार से भी कहा है न अन्यत्र? नय दो हैं न? परन्तु जब निश्चय से कहा है, वह सत्य है और व्यवहार से कहा है, वह उपचार से कहा है। ऐसा उसका अर्थ चाहिए। यह बहुत ऐसा कहते हैं। कि यह हो, इससे होता है, यह तो सब निश्चय की बात है। यह निश्चयनय का अधिकार है, परन्तु व्यवहारनय का अधिकार आवे। वहाँ भी व्यवहारनय का अधिकार आवे, वहाँ उपचार से उसे साधन कहा है। वास्तव में नहीं है। आहाहा! व्यवहार से कहा न?

मुमुक्षु : जो वास्तव में साधन न हो, उसे साधन कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा जाये। व्यवहारनय है न! इसीलिए तो यहाँ बात है। कोई कहता है कि यह अधिकार... सवेरे का आया था न कि भाई! यह तो निश्चय की बात है परन्तु दूसरी जगह व्यवहार से कहा। परन्तु व्यवहार से कहा, इसका अर्थ क्या? निश्चय से कहा है, वह यथार्थ है, व्यवहार से कहा वह आरोपित कथन है। आहाहा!

ऐसा ये कहते हैं कि इसमें निश्चय कहा है परन्तु अन्यत्र व्यवहार कहा है न? व्यवहार कहा अर्थात् क्या? वह उपचार से कथन किया है। आहाहा! समझ में आया? भिन्न साध्यसाधन। आता है न? पंचास्तिकाय, वह तत्त्वज्ञानतरंगिणी, उसमें परमात्मप्रकाश में पहले आया है। यह तो व्यवहार के साधन निमित्त हैं, उनका ज्ञान कराया है। साधन नहीं उसे साधन कहकर व्यवहारनय से उसका कथन किया है। आहाहा! यह झगड़े दो के। ऐसा कि निश्चय परन्तु वापस व्यवहार है या नहीं? परन्तु व्यवहार है अर्थात् क्या? व्यवहार है, वह उपचारिक कथन है। और निश्चयकथन है, वह यथार्थ कथन है।

मुमुक्षु : तब ही अनेकान्त होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब ही अनेकान्त होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों समान माने तो अनेकान्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों समान तो दो नय किसलिए रहे? दोनों समान माने तो दो कैसे रहे? और दो हैं, वह विरोध है, निश्चय है, वह आदरणीय है और व्यवहार है, वह हेय है। निश्चय है, वह अबन्ध परिणाम है और व्यवहार है, वह बन्ध परिणाम है। दोनों विरोध है। आहाहा! ऐसा कहते हैं वे लोग कि यह अध्यात्म की... अध्यात्म की तुम बातें करो, वह तो निश्चय की है परन्तु वापस व्यवहार से चरणानुयोग में कहा है न व्रत ऐसे करना, भक्ति ऐसी करनी। परन्तु यह कहा है, वह व्यवहार से-उपचार से कथन है। आहाहा! समझ में आया? इससे विरुद्ध हो तत्त्व तो विरुद्ध हो गया। आहाहा! न्याय समझ में आता है? आहाहा!

वह धर्मात्मा **परमसमाधि में रत हैं,...** आनन्द जल से भरपूर भगवान, अतीन्द्रिय अमृत के सागर से भरपूर भगवान। आहाहा! उसमें जो सन्मुख होकर लीन होता है। आहाहा! **उन्हीं पुरुषों के शुद्धात्मद्रव्य की विपरीत... 'भवमल' 'भवमल'** की व्याख्या करते हैं। आहाहा! निर्मलानन्द में लीन होते हैं, उसके भवमल का नाश होता है। भवमल वह निर्मल आनन्द की परिणति में चला जाता है, नाश हो जाता है। आहाहा! जैसे पानी में पैर चला जाये, वैसे यह जड़ प्रवाह में चला जाता है, नाश हो जाता है। आहाहा!

विपरीत अशुद्धभाव के कारण जो कर्म हैं, वे सब... 'बहित्वा यांति' शुद्धात्म

परिणामरूप जो जल का प्रवाह उसमें बह जाते हैं। आहाहा! पानी का प्रपात सम्यक् शान्ति का प्रगट हुआ, उसमें राग का नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह बह जाता है। नाश करता है, ऐसा भी नहीं कहा। यहाँ ऐसा स्थिर हुआ तो राग उत्पन्न नहीं होता और राग नाश होता है, चला जाता है, जल प्रवाह में। ऐसा कहने में आता है। आहाहा! कठिन बातें, बापू! ऐसी बातें। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वर के दरबार की बातें हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ का भरत में विरह पड़ा और सब झगड़े खड़े हुए। आहाहा!

पिता मर जाये, लक्ष्मी नाश हो, फिर लड़के लड़ें। आहाहा! एक ही ओटले में सबके मकान हों। दो-दो खम्भे रखते हैं न? दो खम्भे रखते हैं तो बीच में जरा दीवार डाल दे। एक बरामदे में चार लड़के हों तो आठ कमरे बनाये हों ऐसे। पहले से रखे हों। भिन्न पड़े तब दो-दो खम्भों का छोर... दरवाजा न रखे बड़ा बरामदा हो। बीच में उसका दरवाजा अलग, उसका दरवाजा अलग। उसका पहले से बँटवारा करे। यह पहले से बँटवारा कर डालते हैं। आहाहा! यह राग और मतिज्ञान की पर्याय से रहित। आहाहा! निर्मलानन्द प्रभु के ध्यान से '**भवमलानि बहित्वा**' भव का मैल जो रागादि है, वह चला जाता है। मैल चला जाता है। आहाहा! अरे! व्याख्या ऐसी।

भव और भव के भावरहित प्रभु परमसमाधिस्वरूप, उसमें लीन होने से, आहाहा! भव का मैल चला जाता है, कहते हैं। पानी के प्रपात के धोरे से जैसे मैल, कंकड़ हों वे भी ऐसे हट जाते हैं। पानी का प्रवाह अधिक हो तो। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अपवास करे तो कर्म हटे, ऐसा यहाँ नहीं कहा। हाँ, कहा यहाँ परन्तु उपवास का कहा। जो परमसमाधि शान्तरूप प्रभु (के) उप अर्थात् समीप में, वास अर्थात् बसे, तो उससे भव का मैल नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? बात-बात में अन्तर लगता है इसलिए फिर क्या हो? आहाहा!

और यह तो इसमें है, उसका स्पष्टीकरण होता है। इसलिए ऐसे स्पष्टीकरण को ऐसा कहे कि घर का अनुवाद किया। लालभाई! ऐसा वे कहते हैं। प्रभु! ऐसा रहने दे बापू! भगवान! यह तो भगवान की बातें, भगवान के सन्देश हैं। आहाहा! भाई! तूने

अनन्त काल से चौरासी के अनन्त अवतार किये परन्तु तेरे प्रभु का माहात्म्य तुझे नही आया। प्रभु का माहात्म्य किया, परमेश्वर का, वीतराग का (माहात्म्य किया), परन्तु तेरा माहात्म्य नहीं आया। आहाहा! क्योंकि वह माहात्म्यवाली चीज़ है, वह पर्याय में आती नहीं। आहाहा! और पर्याय में रमणता इसकी अनादि की, वहाँ यह रुचि में पड़ा है। आहाहा! '**पज्जयमूढा हि परसमया**'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, द्रव्य-गुण-पर्याय का विवाद करते थे एक बार। इन्दौर में चलता था। शिविर में। द्रव्य, गुण और पर्याय यह तीन क्या, अरे! यह भी सुना नहीं। जो जैन का एकड़ा अभी। एकड़ा का शून्य। द्रव्य, गुण। द्रव्य अर्थात् वस्तु। अनन्त शक्ति का सागर वह द्रव्य और उसकी शक्तियाँ, वे गुण और उनकी वर्तमान दशा, वह पर्याय।

मुमुक्षु : यह बात चलती ही नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलती। आहाहा! परन्तु यहाँ तो अब बहुत वर्षों से चलती है। ४२ वर्ष तो यहाँ हुए। चैत्र कृष्ण ३, (संवत्) १९९१ में आये हैं और इस चैत्र कृष्ण ३ (गुजराती फाल्गुन कृष्ण ३) (को) ४२ (वर्ष) पूरे हो गये। आहाहा! यहाँ तो पहले से यह लगायी है। आहाहा! भाई! तू कौन है, देख तुझे। तेरी तुझे जितनी कीमत है, वह कीमत तूने आँकी नहीं। आहाहा! एक लकड़ी का भारा लेकर आवे और उसे ऐसा हो कि यदि इसका एक रुपया लिया जायेगा। वह कहे कि आठ आना लेना है? चल, चल, तुझे कीमत करना नहीं आता। वह कोली हो, वह कहे सेठिया को।

मुमुक्षु : लिया... लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिया... लिया अब। सेठानी को कहे, वे सेठानियाँ बोलीं हो न, आठ आने में दो, आठ आना। अभी महँगा हो गया न यह लकड़ी का। भारा उठाकर लाया हो बेचारा मण का कहीं आगे से। वापस ऐसे रखा हो वापस पोला और पोचा अन्दर। परन्तु एक रुपय से कम नहीं होगा। बोल, आठ आना, देना है? लिया... लिया कहे।

इसी प्रकार यहाँ परमात्मा कहते हैं कि परमात्मा पूर्ण आनन्द का नाथ, उसे पुण्य

परिणाम से मुझे मिले ऐसा है? कि लिया... लिया चल। आहाहा! उसकी पर्याय के लक्ष्य से मिले ऐसा है? चल, चल। आगे चले। यहाँ तो यह कहते हैं। वह सब मैल नाश हो जाता है। आहाहा! **शुद्धात्म परिणामरूप जो जल का प्रवाह, उसमें बह जाते हैं।**

भावार्थः—जहाँ जल का प्रवाह आवे, वहाँ मल कैसे रह सकता है,... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खीचड़ा चला जाता है सब। या किनारे निकाल डाले, या समुद्र इकट्ठा कर डाले। आहाहा!

वह नदी नहीं? वैचाक पर्वत में दो नदियाँ हैं। भगवान ने, वैचाक पर्वत है न! उसमें बीच में दो नदियाँ हैं। एक उन्मग्न और (दूसरी) निमग्न। एक नदी ऐसी है, कोई भी वस्तु अन्दर गिरे तो नीचे ले जाये। और एक नदी ऐसी है कि कोई भी वस्तु अन्दर गिरे तो बाहर निकाल दे। समझ में आया? आहाहा! इसी प्रकार मिथ्यात्व और अज्ञानभाव है, वे इसे संसार में गहरे ले जाते हैं और यह सम्यग्दर्शन भाव है, वह तिरा देता है। नदी है, वह शास्त्र में लिखी है। उस नदी का ही ऐसा स्वभाव है। उसमें जो कोई मनुष्य गिरे तो गहरे में ले जाये। और एक, दूसरी निमग्न (नदी) है, उसमें गिरे तो पानी का प्रवाह का स्वभाव है कि उसे निकाल दे। आहाहा! इसी प्रकार जीव का स्वभाव ऐसा प्रवाह है। आहाहा! ऐई!

यह कहते हैं न, देखो न। '**भवमलानि बहित्वा यांति**' **शुद्धात्मपरिणामरूप जो जल का प्रवाह उसमें बह जाते हैं।** आहाहा! यह गाथा। १८९ हुई न?

गाथा - १९०

अथ-

३१३) सयल-वियप्पहँ जो विलउ परम-समाहि भणंति।
तेण सुहासुह-भावडा मुणि सयल वि मेल्लंति।।१९०।।

सकलविकल्पानां यः विलयः (तं) परमसमाधिं भणन्ति।
तेन शुभाशुभभावान् मुनयः सकलानपि मुञ्चन्ति।।१९०।।

भणंति कथयन्ति। के ते। वीतरागसर्वज्ञाः। कं भणन्ति। परम-समाहि वीतरागपरम-सामायिकरुपं परमसमाधिं जो विलउ यं विलयं विनाशम्। केषाम्। सयल-वियप्पहं निर्विकल्पात्परमात्मस्वरुपात्प्रतिकूलानां समस्तविकल्पानां तेण तेन कारणेन मेल्लंति मुञ्चन्ति। के कर्तारः। मुणि परमाराध्यध्यानरतास्तपोधनाः। कान् मुञ्चन्ति। सुहासुह-भावडा शुभाशुभमनोवचनकाय व्यापार रहितान् शुद्धात्मद्रव्याद्विपरीतान् शुभाशुभभावान् परिणामान्। कति संख्योपेतान्। सयल वि समस्तानपि। अयं भावार्थः। समस्तपरद्रव्याशारहितात् स्वशुद्धात्मस्वभावाद्विपरीता या आशापीहलोकपरलोकाशा यावत्तिष्ठति मनसि तावद् दुःखी जीव इति ज्ञात्वा सर्वपरद्रव्याशारहितशुद्धात्मद्रव्यभावना कर्तव्येति। तथा चोक्तम्- ''आसापिसायगहिओ जीवो पावेइ दारुणं दुक्खं। आसा जाहं णियत्ता ताहं णियत्ताइं सयलुदुक्खाइं।।''।।१९०।।

आगे परमसमाधि का लक्षण कहते हैं-

परम समाधि वही है जिसमें सब विकल्प होते हैं नष्ट।
उसमें लीन मुनीश्वर छोड़ें शुभ अरु अशुभ विभाव समस्त।।१९०।।

अन्वयार्थः- [यः] जो [सकलविकल्पानां] निर्विकल्प परमात्मस्वरुप से विपरीत रागादि समस्त विकल्पों का [विलयः] नाश होना, उसको [परमसमाधिं भणंति] परमसमाधि कहते हैं, [तेन] इस परसमाधि से [मुनयः] मुनिराज [सकलानपि] सभी [शुभाशुभविकल्पान्] शुभ-अशुभ भावों को [मुंचंति] छोड़ देते हैं।

भावार्थः- परम आराध्य जो आत्मस्वरुप उसके ध्यान में लीन जो तपोधन वे शुभ-अशुभ मन, वचन, काय के व्यापार से रहित जो शुद्धात्मद्रव्य उससे विपरीत जो

अच्छे-बुरे भाव उन सबको छोड़ देते हैं, समस्त परद्रव्य की आशा से रहित जो निज शुद्धात्मस्वभाव उससे विपरीत जो इस लोक परलोक की आशा, वह जब तक मन में स्थित है, तबतक यह जीव दुःखी है। ऐसा जानकर सब परद्रव्य की आशा से रहित जो शुद्धात्मद्रव्य उसकी भावना करनी चाहिये। ऐसा ही कथन अन्य जगह भी है- आशारुप पिशाच से धिरा हुआ यह जीव महान् भयंकर दुःख पाता है, जिन मुनियों ने आशा छोड़ी, उन्होंने सब दुःख दूर किये, क्योंकि दुःखका मूल आशा ही है।।१९०।।

गाथा-१९० पर प्रवचन

१९०। **आगे परमसमाधि का लक्षण कहते हैं**—अब लक्षण कहते हैं।

३१३) सयल-वियप्पहँ जो विलउ परम-समाहि भणंति।
तेण सुहासुह-भावडा मुणि सयल वि मेल्लंति।।१९०।।

आहाहा! **जो... 'सकलविकल्पानां' निर्विकल्प परमात्मस्वरूप से विपरीत...** विकल्प की व्याख्या करते हैं। विकल्प अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प हैं कैसे? कि निर्विकल्प परमात्मतत्त्व से विपरीत हैं वे तो। समझ में आया? '**सकलविकल्पानां' निर्विकल्प परमात्मस्वरूप...** व्याख्या की पहली। कैसा है भगवान आत्मा? यह परमात्मा की व्याख्या है न? यह परमात्मस्वरूप है न? यह परमात्मस्वरूप ही निर्विकल्प आत्मा है। आहाहा! निर्विकल्प अर्थात् रागरहित चीज़ और अभेद परमात्मतत्त्वस्वरूप ऐसा प्रभु, उससे विपरीत **समस्त रागादि समस्त विकल्पों का...** लो! आहाहा!

यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय को तो परमात्मतत्त्व से विपरीत भाव कहा। विपरीत भाव से यह आत्मा प्राप्त होगा? लोगों को बहुत कठिन पड़ता है। सूझ पड़ी नहीं, सुनने को मिला नहीं। इसलिए बेचारे बहार के क्रियाकाण्ड में धर्म करते हैं, वह भी बाह्य क्रियादि व्यवहार शास्त्र कहते हैं, वह भी अभी कहाँ है? आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया, तब जो क्रिया की थी, वैसी क्रिया तो अभी है कहाँ? आहाहा! ऐसी सब क्रियाओं के विकल्प से रहित निर्विकल्प प्रभु अन्दर है। आहाहा!

समस्त विकल्पों का नाश होना,... आहाहा! तीन बातें कीं। परमात्मतत्त्व निर्विकल्प

है, अभेद है, सामान्य शुद्धचैतन्य। उससे विपरीत विकल्प। आहाहा! उसका नाश होना। आहाहा! है? **उसको परमसमाधि कहते हैं,...** निर्विकल्प भगवान से विपरीत विकल्प का नाश होना। आहाहा! उसे भी धर्म कहते हैं। आहाहा! ऐसा है। इसे फिर अब ऐसा होता है कि अरेरे! खबर नहीं। पाखण्ड धर्म है यह पाखण्ड। अरे! प्रभु! भाई! तुझे यह शोभा नहीं देता, प्रभु भाई! आहाहा! पाखण्ड है सही, परन्तु पाप को खण्डे, वह पाखण्ड। आता है न, पाखण्डी नहीं? समयसार की अन्तिम ४१२-१३ गाथा। पाखण्डी। पाखण्डी उसे कहा है कि मुनि को पाखण्डी कहा है। आहाहा! आनन्द के नाथ में झूलते हैं, वे पाखण्डी, पाप का खण्ड करनेवाले। पाप शब्द से संसार का सब विकारीभाव। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! तू ऐसा है। तू भी ऐसा है। उसे तू हीन न मान, उसे तू राग से लाभ होता है, ऐसा न मान, भाई! आहाहा! तुझे कलंक लगता है। समझ में आया? आहाहा!

वे सेठ थे न, सेठ दीपचन्दजी सेठिया। यह सुना, दीपचन्दजी सेठिया। वहाँ के सब लोग आये थे, कहते हैं। वहाँ थे तुम? भाई ने कहा था बाबूभाई ने। सब परिवार आया था वहाँ। थे न तुम? सेठ कह गये हैं चार दिन पहले। तुम बराबर जाना... हमारे दर्शन करना है, इतना जरा कुछ भाव बारह महीने में सुना हो, अभी तक सुना नहीं था। आहाहा! उनके जो मामा थे। उनके पास बहुत पैसा। अभी तो पैसे की कीमत रही नहीं। दस करोड़ तो तब थे। दस करोड़। अभी तो पैसे की कीमत घट गयी है न, इसलिए दस करोड़ पैसा, अकेला अन्दर सोना और रत्न और हीरा घर में। सरदारशहर। सरदारशहर न! तेरापंथी, हों! यह उन्हें पैसा बहुत। फिर एक बार उनके मामा को किसी ने कहा कि तुम पैसे तुम्हारे गये हैं और नाश हो गये पैसे तुम्हारे। ऐसा लिख गया कोई बाहर लिख गया।

मुमुक्षु : दिवाला निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिवाला निकाला। सेठ ने दिवाला निकाला। भाई! वहाँ बाहर लिखे क्या, यहाँ आकर लिख जीने पर। मेरे पास क्या है, वह उसे कहाँ खबर है? उसे कहाँ खबर है? पैसे दस करोड़, हों! यह तो तब की बात है। २५-३०-४० वर्ष पहले।

अकेले हीरे और माणेक संग्रहित किये हुए। सोना, हीरा और माणेक। आहाहा! उसे फिर कोई कहे, सेठ ने दीवाला निकाला। उसने बाहर लिखा। अन्दर नहीं लिखा। परन्तु यहाँ आकार जीने पर लिखे नहीं? मेरे पास है, वह मुझे खबर नहीं?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि आत्मा रागवाला है। उसने दिवाला निकाला है। बापू! वह नहीं। आहाहा! वह तो दिन को जलानेवाली ऐसी दिवाली है यह। आहाहा! भगवान अमृत का सागर, जिसमें अमृत का रस ठसाठस भरा है। अमृत रसवाला आत्मा, अनन्त ज्ञानवाला आत्मा, जिस गुण से कहो, उस गुणवाला पूरा आत्मा। आहाहा! बैठना कठिन, भाई! इसे बिठाना पड़ेगा, भाई! हित के लिये करना हो तो। बाकी तो क्या करे?

कहते हैं कि **समाधि से मुनिराज सभी शुभ-अशुभभावों को छोड़ देते हैं।** ऐसा आता है। शुभ और अशुभ दोनों भाव को छोड़ता है। आहाहा! ऐसा नहीं कि शुभभाव से उसे निश्चय का लाभ होगा, इसलिए शुभभाव करता है। आहाहा! ऐसी बातें प्रभु की। वीतरागमार्ग वीतरागभाव से प्रगट होता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! मुनि परमात्मतत्त्व से विपरीत राग का नाश करते हैं। उसे परम समाधि कहते हैं। उस **परमसमाधि से मुनिराज सभी शुभ-अशुभभावों को छोड़ देते हैं।** आहाहा! '**मुंचंति**' छूट जाते हैं न, उसे छोड़ते हैं, ऐसा कहने में आता है। बाकी यह शुभ-अशुभ छोड़ता हूँ, वह वहाँ कहाँ है? आनन्दस्वरूप में मग्न होने पर शुभाशुभभाव उत्पन्न नहीं होते, उसे छोड़ता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। **शुभ-अशुभभावों को छोड़ देते हैं।**

भावार्थः—परम आराध्य जो आत्मस्वरूप... आहाहा! भाषा देखो। है? मुनि। '**परमाराध्यध्यानरतास्तपोधनाः**' है न? संस्कृत में है। '**परमाराध्यध्यानरतास्तपोधनाः**' आहाहा! कैसे हैं मुनि? **परम आराध्य जो आत्मस्वरूप...** आहाहा! वे सेवनयोग्य, आराधनेयोग्य भगवान का स्वरूप आत्मा का अपना है। देव-गुरु को आराधना है, वह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? परम आराध्य, परम सेवनयोग्य, आराधना करनेयोग्य ऐसा जो भगवान आत्मा। आहाहा! यह परम आराध्य, उत्कृष्ट आराधनायोग्य

हो तो प्रभु आत्मा है, ऐसा कहते हैं। देव, गुरु और शास्त्र का आराधना तथा यात्रा और पर्वत को आराधना, वह तो सब शुभ विकल्प है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसमें है, उसका स्पष्टीकरण है। है?

परम आराध्य जो आत्मस्वरूप उसके ध्यान में लीन... उसके ध्यान में लीन वे तपोधन हैं। वे मुनि हैं। आहाहा! जिन्हें तपरूपी धन है। अर्थात्? वीतरागी आनन्द की दशारूपी धन जिसे है। तप अर्थात् यह। आहाहा!

मुमुक्षु : तपोधन तो ब्राह्मण भी होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्राह्मण भी तपोधन होते हैं। हमारे गढडा में है। एक वकील है। तपोधन है। वे तपोधन अलग। वे जाति के तपोधन। उस जाति के तपोधन। उनकी जाति ही तपोधन है। आहाहा! मुनि, बापू! किसे कहना? आहाहा! गजब बातें हैं भाई! मुनि अर्थात् परमेश्वर। पंच परमेष्ठी, वे मुनि हैं। आहाहा! वे परम आराध्य आत्मा को आराधते हैं। पर्याय को आराधते नहीं, राग को आराधते नहीं, निमित्त के आधीन नहीं। आहाहा!

ध्यान में लीन जो तपोधन वे शुभ-अशुभ मन, वचन, काय के व्यापार से रहित... लो! क्योंकि शुभ-अशुभभाव तो बन्ध के कारण हैं। आत्मा का आराधन, वह अबन्ध का कारण है। आहाहा! स्वआश्रय। स्व अधिकारी। पंचाध्यायी में आया था न, कहा है। यह शब्द है स्वअधिकारी। स्व-आत्मा का अधिकारी आत्मा। आहाहा! जिसका स्व, स्व अर्थात् द्रव्यस्वरूप, परमात्मस्वरूप, निर्विकल्पस्वरूप का अधिकार समकिती है। आहाहा! स्व का अधिकारी समकिती है। पर का अधिकारी पर्याय का अधिकारी आत्मा नहीं। आहाहा!

वह आया है न (समयसार) १७-१८ में, नहीं? ऐसी गाथा ली है यहाँ कि ज्ञान की पर्याय में आत्मा ही अनुभव में आता है। है न १७-१८? है, यहाँ, नहीं आया? नहीं आया। उसमें यह गाथा आयी है। भाई को बतायी थी। ऐसी ही। आबाल-गोपाल आत्मा को अनुभव आत्मा ही आता है। पंचाध्यायी। यह तो १७-१८ गाथा समयसार की। उसमें आता है। यह बात वहाँ रखी है इन्होंने। वे लोग पूर्व के पण्डित तो शास्त्र में पूछे क्या है, उसका स्पष्टीकरण किया है। घर का कुछ नहीं। सब शास्त्र देखो तो शास्त्र

में से बात निकाली है। यह गाथा है। वहाँ लाईन की है। बतायी है उनको—चन्दुभाई को। ...ऐसा करके कुछ है। स्वतन्त्ररूप से... अर्थात् आबाल-गोपाल। वहाँ आबाल-गोपाल है न? वहाँ यहाँ वृद्ध से बाल, उन सब जीवों को आत्मा ही अनुभव में आता है। आहाहा! परन्तु दृष्टि में विपरीत को लेकर, वह ज्ञान में आनन्द आता है, आत्मा ज्ञात होता है, वह इसे आता नहीं। आहाहा! देखो न! पंचाध्यायीकार ने शास्त्र के आधार की बातें समयसार की १७-१८ की बात उसमें है, लो! आहाहा! आज आया था कि देखो इसमें आचार्य जो कहते हैं, उस बात को ये लोग डालते हैं। पण्डित कोई घर का नहीं (डालते)। उसका स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा! आबाल-गोपाल को आत्मा अनुभव में ही आता है। तथापि मिथ्यादृष्टि, भ्रान्ति के कारण उसे वह भगवान भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। ऐसा कहीं चले? लो। निश्चय... निश्चय... निश्चय अर्थात् परमसत्य प्रभु। इसकी यह बात है। आहाहा!

परमसत्य साहेब महा परमसत्य जगत का तत्त्व स्वयं है। आहाहा! उसे अपनी अपेक्षा से तो दूसरी कोई चीज़ है ही नहीं। उसकी अपेक्षा से भले हो, इसकी अपेक्षा से सब असत् है। स्वयं ही परमसत्य है। आहाहा! स्वयं आप परमसत्य प्रभु। आहाहा!

कहते हैं, **परम आराध्य जो आत्मस्वरूप उसके ध्यान में लीन जो तपोधन शुभ-अशुभ मन, वचन, काय के व्यापार से रहित...** आहाहा! **शुद्धात्मद्रव्य उससे विपरीत...** अब शुद्धात्मद्रव्य से विपरीत क्या? **जो अच्छे-बुरे भाव...** यह शुभ-अशुभभाव शुद्धात्मा के द्रव्य से विपरीत है। है न? चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव शुद्धात्मतत्त्व से विपरीत है। आहाहा! ऐसी बातें। **अच्छे-बुरे भाव उन सबको छोड़ देते हैं,...** यह शुभ है और यह अच्छा है, यह कुछ नहीं। दोनों छोड़ दे। आहाहा! तब उसे आत्मा का ध्यान अर्थात् लीनता होती है। यह लीनता, वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

समस्त परद्रव्य की आशा से रहित... लो! **जो निज शुद्धात्मस्वभाव उससे विपरीत जो इस लोक परलोक की आशा, वह जब तक मन में स्थित है, तब तक यह जीव दुःखी है।** इसकी विशेष व्याख्या आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, चैत्र शुक्ल ५, गुरुवार
दिनांक- २४-०३-१९७७, गाथा - १९०-१९१, प्रवचन-२३१

परमात्मप्रकाश, १९० का अन्तिम कलश बाकी है न थोड़ा? थोड़ा लिया था। फिर से थोड़ा। **आशारूप पिशाच से घिरा हुआ...** क्या कहते हैं? जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा अनुभव नहीं, उसकी उसे भावना नहीं। वह आशा—पर की आशा से घिर गया है। है? **आशारूप पिशाच...** इच्छा। शुभ-अशुभभाव की इच्छा, वह स्वयं पिशाच है। आहाहा! भगवान तो आशारहित स्वरूप है उसका। ऐसे स्वरूप को विकल्परहित चीज़ है, उसका जिसे ध्यान और श्रद्धा और ज्ञान नहीं, वह जीव पर की आशा में घिर गया है।

वह **आशारूप पिशाच से घिरा हुआ यह जीव महान भयंकर दुःख पाता है, जिन मुनियों ने आशा छोड़ी,...** मुनि उसे कहते हैं कि जिसे शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ है। समझ में आया? महाव्रत आदि के विकल्प हैं, वह कहीं मुनिपना नहीं। जिसे शुद्धस्वभाव का शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ है, उस मुनि को। ऐसा कहते हैं। उसने आशा छोड़ी है। पर की आशा छोड़ी है। स्व की भावना में रहा हुआ पर की आशा छोड़ी है। आहाहा! मुनि अर्थात् तो चारित्रवन्त। चारित्रवन्त अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित अर्थात् कि शुद्ध उपयोगी। आहाहा! उसे शुद्ध उपयोग में अपनी भावना है। पर की आशा है नहीं। आहाहा!

उन्होंने सब दुःख दूर किये,... जिसने परसन्मुख की आशा, विकल्प छोड़ा, उसने सब दुःखों को दूर किया। क्योंकि विकल्प स्वयं आशा, वह दुःख है। आहाहा! **क्योंकि दुःख का मूल आशा ही है।** आहाहा! स्वपदार्थ के अतिरिक्त परपदार्थ की कोई भी आशा। आहाहा! वह दुःखरूप है। पैसा, इज्जत, कीर्ति, वह तो बाहर की धूल है। उसकी आशा तो पाप है, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की आशा रखना, आहाहा! वह आशा दुःख है और उस आशा का जिसने नाश किया, उसने दुःख का नाश किया। आहाहा!

मुमुक्षु : शिष्यों को गुरु की आशा तो होती है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ आशा किसी को नहीं। कौन गुरु और कौन शिष्य है कहाँ? कौन किसका गुरु? गुरु स्वयं अपना है। आहाहा! पर्याय में स्वयं को आनन्दस्वरूप का साक्षात्कार किया, उस पर्याय का पिता आत्मा, वह गुरु है। ऐसी बात है। बाह्य तो फिर निमित्त से गुरु कहने में व्यवहार से कहते हैं। जो अपने को अपने आनन्दस्वभाव से रमणता में रमे, उसे गुरु कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो मार्ग अलग प्रकार का है, भाई!

मुमुक्षु : भगवान ने दो नय कहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो नय तो दूसरा नय है। उससे कहाँ इनकार है? परन्तु वह तो उपचारिक है। आरोपित है, वास्तविक नहीं। और व्यवहारनय को तो द्रव्यसंग्रह में लौकिक नय कहा है। लौकिक नय है। वास्तव में नय तो शुद्धनय है, वह नय है। आहाहा! वहाँ आता है न आस्रव अधिकार में? नयच्युत्ता—नय से च्युत होता है। इतना ही पाठ है। वह नय अर्थात् शुद्धनय। आहाहा! आस्रव (अधिकार) में है।

परमानन्दस्वरूप प्रभु, पूर्ण अनाकुल आनन्द का स्वामी प्रभु, उसे नय कहते हैं और उसे जाने, उसे नय कहते हैं। आहाहा! उसे ही नय कहा गया है। आहाहा! पाठ तो ऐसा लिया है कि नय परिच्युत्ता। ऐसा नहीं कि व्यवहार और निश्चयनय, दो नय। वह नय ही वास्तविक है। व्यवहारनय तो उपचारिक लौकिक (नय है)। जानने के लिये है इतना। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। जिसने आशा दूर की है, उसने दुःख दूर किये। उसे जरा भी आशा ही नहीं।

गाथा - १९१

अथ–

३१४) घोरु करंतु वि तव–चरणु सयल वि सत्थु मुणंतु।
परम–समाहि–विवज्जयउ णवि देक्खइ सिउ संतु।।१९१।।

घोरं कुर्वन् अपि तपश्चरणं सकलान्यपि शास्त्राणि मन्यमान।
परमसमाधिविवर्जितः नैव पश्यति शिवं शान्तम्।।१९१।।

करंतु वि कुर्वाणाडपि। किम्। तव–चरणु समस्तपरद्रव्येच्छावर्जितं शुद्धात्मानुभूतिरहितं तपश्चरणम्। कथंभूतम्। घोरु घोरं दुर्धरं वृक्षमूलातापनादिरुपम्। न केवलं तपश्चरणं कुर्वन्। सयल वि सत्थ मुणंतु शास्त्रजनितविकल्पतात्पर्यरहितात् परमात्मस्वरुपात् प्रतिपक्षभूतानि सर्वशास्त्राण्यपि जानन्। इत्थंभूतोडपि सन् परम–समाहि–विवज्जयउ यदि चेद्रागादिविकल्प–रहितपरमसमाधिविवर्जितो भवति तर्हि णवि देक्खइ न पश्यति। कम्। सिउ शिवं शिवशब्दवाच्यं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं स्वदेहस्थमपि च परमात्मानम्। कथंभूतम्। संतु रागद्वेषमोहरहितत्वेन शान्तं परमोपशमरुपमिति। इदमत्र तात्पर्यम्। यदि निजशुद्धात्मैवोपादेय इति मत्वा तत्साधकत्वेन तदनुकूलं तपश्चरणं करोति तत्परिज्ञानसाधकं च पठति तदा परंपरया मोक्षसाधकं भवति, नो चेत् पुण्यबन्धकारणं तमेवेति। निर्विकल्पसमाधिरहिताः सन्तः आत्मरुपं न पश्यन्ति। तथा चोक्तम्–''आनन्दं ब्रह्मणो रुपं निजदेहे व्यवस्थितम्। ध्यानहीना न पश्यन्ति जात्यन्धा इव भास्करम्।।''।।१९१।।

आगे ऐसा कहते हैं, कि जो परमसमाधि के रहित है, वह शुद्ध आत्मा को नहीं देख सकता–

घोर तपस्या करता हो अरु सकल शास्त्र का पठन करे।
किन्तु न परम समाधि जिसे वह शान्त शिवात्मा नहिं देखे।।१९१/३१४।।

अन्वयार्थः– [घोरं तपश्चरणं कुर्वन् अपि] जो मुनि महा दुर्धर तपश्चरण करता हुआ भी और [सकलानि शास्त्राणि] सब शास्त्रों को [जानन्] जानता हुआ भी [परमसमाधिविवर्जितः] जो परमसमाधि से रहित है, वह [शांतम् शिवं] शांतरुप शुद्धात्मा को [नैव पश्यति] नहीं देख सकता।

भावार्थः– तप उसे कहते हैं, कि जिसमें किसी वस्तु की इच्छा न हो। सो इच्छा का अभाव तो हुआ नहीं, परंतु कायक्लेश करता है, शीतकाल में नदी के तीर, ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर, वर्षाकाल में वृक्ष की मूल में महान् दुर्धर तप करता है। केवल तप ही नहीं करता शास्त्र भी पढ़ता है, सकल शास्त्रों के प्रबंध से रहित जो निर्विकल्प परमात्मस्वरुप उससे रहित हुआ सीखता है, शास्त्रों का रहस्य जानता है, परंतु परमसमाधि से रहित है, अर्थात् रागादि विकल्प से रहित समाधि जिसके प्रगट न हुई, तो वह परमसमाधि के बिना तप करता हुआ और श्रुत पढ़ता हुआ भी निर्मल ज्ञान दर्शनस्वरुप तथा इस देह में बिराजमान ऐसे निज परमात्मा को नहीं देख सकता। जो आत्मस्वरुप राग द्वेष मोह रहित परमशांत है। परमसमाधि के बिना तप और श्रुत से भी शुद्धात्मा को नहीं देख सकता। जो निज शुद्धात्मा को उपादेय जानकर ज्ञान का साधक तप करता है, और ज्ञान की प्राप्ति का उपाय जो जैनशास्त्र उनको पढ़ता है, तो परम्परा मोक्ष का साधक है। और जो आत्मा के श्रद्धान बिना कायक्लेशरुप तप ही करे, तथा शब्दरुप ही श्रुत पढ़े, तो मोक्ष का कारण नहीं है, पुण्यबंध के कारण होते हैं। ऐसा ही परमानंदस्तोत्र में कहा है, कि जो निर्विकल्प समाधि रहित जीव हैं, वे आत्मस्वरुप को नहीं देख सकते। ब्रह्म का रुप आनंद है, वह ब्रह्म निज देह में मौजूद है; परंतु ध्यान से रहित जीव ब्रह्म को नहीं देख सकते, जैसे जन्म का अंधा सूर्य को नहीं देख सकता है।।१९१।।

गाथा-१९१ पर प्रवचन

अब गाथा आयी है १९१।

३१४) घोरु करंतु वि तव–चरणु सयल वि सत्थु मुणंतु।
परम–समाहि–विवज्जयउ णवि देक्खइ सिउ संतु।।१९१।।

आगे ऐसा कहते हैं कि जो परमसमाधि के रहित है, वह शुद्ध आत्मा को नहीं देख सकता... आहाहा! शुद्ध उपयोग पुण्य और पाप के राग से रहित, वह शुद्ध उपयोग, वह समाधि है। उसके बिना आत्मा को नहीं देख सकता, नहीं जान सकता। आहाहा! ऐसी बातें। कहते हैं न? **जो मुनि महा दुर्धर तपश्चरण करता हुआ...** बारह-बारह

महीने, छह-छह महीने के अपवास करे। महाव्रत पालन करे, वे सब क्लेश हैं, राग है। आहाहा! महा दुर्धर तपश्चरण। देखा! **और सब शास्त्रों को जानता हुआ भी...** शास्त्र को जाने ग्यारह अंग और नौ पूर्व। आहाहा! उससे क्या हुआ? वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा!

वर्तन दुर्धर करे, रस परित्याग करे, गुड़, खांड, मिश्री, पकवान आजीवन न ले, परन्तु वह तो बाहर का क्रियाकाण्ड है। आत्मा के आनन्दरस के समक्ष... समझ में आया? **शास्त्रों को जानता हुआ...** आहाहा! पाठ कैसा लिया है? '**सकलानि शास्त्राणि**' सब शास्त्र पढ़े। द्रव्यानुयोग के, चरणानुयोग के, करणानुयोग के। यह समयसार और यह पढ़ा। आहाहा! **सब शास्त्रों को जानता हुआ...** उसमें क्या कहा? '**घोरं तपश्चरणं**' इतना यह शब्द प्रयोग किया है। दुर्धर तपस्या और यहाँ सब शास्त्र दोनों पूरे किये। दोनों पूरे। आहाहा!

दुर्धर तपश्चरण करता हुआ... आहाहा! जंगल में बसे, महीने-महीने के अपवास करे। अपवास के पारणे रस का त्याग। एक रोटी चले, दाल ही चले। आहाहा! ऐसी दुर्धर तपस्या और **सब शास्त्रों को जानता हुआ भी जो परमसमाधिरहित है,...** आहाहा! **जो परमसमाधिरहित है,...** आहाहा! उस विकल्प की शास्त्र की और दुर्धरतप की क्रिया का जो विकल्प है वह तो। आहाहा! उससे रहित निर्विकल्प भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि में और अनुभव में न आवे, उसे धर्म नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह तो अपने सवेरे चलता है न वह। यह चला। वह इसमें आया। आहाहा! व्रत और तप...।

बात यह है कि प्रभु आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसमें जो विकल्प उठाना कि यह अपवास करूँ, यह करूँ और वह करूँ, व्रत पालन करूँ। वह सब शुभराग दुःखरूप बन्ध का कारण है। आहाहा! वह परमशान्तरूप समाधि अर्थात् कि विकल्प से रहित निर्विकल्प दृष्टि-ज्ञानरूपी समाधि। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह समाधि है। आहाहा! जिसमें शान्ति की प्राप्ति है, उस शान्ति की प्राप्ति बिना और उस शान्ति की प्राप्ति में शान्तस्वरूप भगवान प्राप्त होता है। आहाहा! उसे जो यह करे तथापि... आहाहा! है?

जो परमसमाधि से रहित है,... आहाहा! बहुत संक्षिप्त और बहुत थोड़ा। आहाहा! सम्यग्दर्शन में आत्मा शान्तरूप अनुभव में न आवे, तब तक उसकी सब क्रियायें घोर तपस्यायें और शास्त्र के पठन संसार दुःख के लिये है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह कहते हैं कि '**शांतम् शिवं नैव पश्यति**' है न? भगवान आत्मा को नहीं देखे वहाँ। ऐसा कहते हैं। है न? ।'**णवि देक्खइ सिउ संतु।**' आहाहा! शिव सन्त ऐसा प्रभु शान्त आत्मा। उसे परमसमाधि शुद्ध उपयोग बिना ज्ञात हो, ऐसा नहीं। '**सिउ संतु**' **शान्तरूप शुद्धात्मा को...** '**शांतम् शिवं**' ऐसा। शान्तरूप शिव। शिव अर्थात् शुद्धात्मा स्वयं। आहाहा! '**नैव पश्यति**' **नहीं देख सकता।**

घोर तपस्या करे, सब शास्त्र को पढ़े, वाँचे, परन्तु शिव शान्त, ऐसा भगवान आत्मा, उसे उसमें नहीं देख सकता। आहाहा! पर को देखे वह तो पराधीन वस्तु, परप्रकाशक वस्तु मिथ्या है। आहाहा! शिव शान्त। आत्मा की व्याख्या की। आत्मा शान्त शिव है। निरुपद्रव, सुखरूप और शान्त है। आहाहा! उसे नहीं देख सकता। ऐसी घोर तपस्या से, इसका अर्थ यह आ गया न? अपने तप की व्याख्या में तो आ गया। शिवमं, तपं, परिपूर्णम्। २७३, ७३। तो तप में तो विनय आता है न? अनशन, ऊनोदरी, रसत्याग, कायक्लेश, प्रायश्चित, विनय। देव-गुरु और शास्त्र का अधिक बहुत ही विनय करे। घोर विनय करे। परिपूर्ण करे, ऐसा आया था न? शिल तवं परिपूर्णम्। आहाहा!

तथापि अन्तर निर्विकल्प शान्ति बिना शिवशान्त आत्मा को नहीं देख सकता। आहाहा! कहो, समझ में आया? साधारण मनुष्य बेचारे अभी निवृत्ति से। चौबीस घण्टे में घण्टे, दो घण्टे पूजा, भक्ति, श्रवण करना यह ले सकते न हों कि जो पुण्य है। यह दुनिया के धन्धे, चन्दुभाई! पूरे दिन वहाँ चौबीस घण्टे रुके, छह-सात घण्टे नींद में जाये, छह-सात घण्टे दूसरे में जाये, ऐसा करते हुए घण्टे, दो घण्टे खाने में जाये। आहाहा! परिवार और स्त्री आदि को प्रसन्न रखने में जाये। घण्टा मिले, सुनने जाये तो उसे पुण्य बाँधे, शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसकी भी दिक्कत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी भी दिक्कत है। आहाहा!

अब वह जिसे धर्म का-पुण्य का ठिकाना नहीं, वह धर्म कब करे? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य के भाव किये। घोर तपस्या में यह आ जाता है। आहाहा! तथापि उससे पक्ष बदलकर निज के पक्ष में निर्विकल्प शान्ति से जब तक न आवे, तब तक उसे—शिवशान्त आत्मा को नहीं जान सकता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह दिगम्बर सन्त कहते हैं। आहाहा!

शान्तरूप शुद्धात्मा... आहाहा! यह शान्तरूप निरुपद्रव, आनन्दरूप आत्मा ऐसा। **'शांतम् शिवम्'** शान्तरूप शिव अर्थात् निरुपद्रव अर्थात् आनन्दरूप। शान्तरूप आनन्दरूप शुद्धात्मा, वह आनन्दरूप, वह शुद्धात्मा। आहाहा! समझ में आया? अपने स्व को नहीं पा सकता। ऐसी विकल्प की क्रियायें अनन्त बार करे, वह संसार खाते है वे तो सब। आहाहा! विकल्प रहित निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प उपयोग, उसके बिना परम शान्त, **'शांतम् शिवम्'** शान्त अकषायस्वरूप और शिव आनन्दरूप, उपद्रवरहित आनन्दरूप, ऐसा जो भगवान आत्मा को निर्विकल्प समाधि बिना पा नहीं सकता, देख नहीं सकता। आहाहा! कहो, समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। भारी कठिन। इससे सोनगढ़ के नाम से लोग बेचारे ऐई! वहाँ तो व्यवहार का लोप करते हैं। (ऐसा लोग) कहते हैं, बापा! बापू! वस्तु ऐसी है, भाई! परन्तु उसे यह सुहाता नहीं। व्यवहार तो, तुम यह व्यवहार नहीं करते? पूरे दिन यह। तुम यह वाँचना, सुनना, मन्दिर, पूजा, बापू! यह बीच में आवे, वह तो विकल्प है। वह हेयरूप से है। उससे लाभ हो उसरूप से वे नहीं। अन्दर में स्थिर नहीं हो सकता, तब वह भाव आये बिना रहता नहीं, तथापि उस भाव से आत्मा को धर्म हो, आहाहा! ऐसा नहीं। दुनिया मानो, न मानो; रुचे, न रुचे, वस्तु यह है।

भगवान अन्दर आनन्द का बड़ा डिब्बा पड़ा है, कहते हैं। उसे खोलने के लिये निर्विकल्प शान्ति चाहिए। वह उसकी चाबी यह है। आहाहा! दुनिया को दिखाना नहीं इसमें कुछ। अपने को देखना है। आहाहा! और इसमें कोई धन का व्यय, शरीर का जीर्ण होना, ऐसा इसमें कुछ हे नहीं। यहाँ तो विकल्प का भी जहाँ आधार नहीं।

आहाहा! ऐसा जो भगवान शान्त शिव, अकषाय आनन्दरूप, उसे शुद्धात्मा कहा। अकषाय आनन्दरूप। णमोत्थुणं में आता है या नहीं? शिव। शिवमय... स्थानकवासी श्वेताम्बर में आता है। अपने आता है परन्तु वह दिगम्बर में बहुत प्रचार नहीं। णमोत्थुण आता है। सामायिक में। णमोत्थुणं अरिहंताणं आता है। परन्तु यह श्वेताम्बर में अधिक। पहाड़े का। वस्तु की तो खबर कहाँ वहाँ? आहाहा! और वहाँ यह मार्ग भी कहाँ है? आहाहा!

दिगम्बर सन्तों ने जो कहा, वह मार्ग तो अन्यत्र कहीं है नहीं। यह भाषा तो देखो सन्तों की। आहाहा! जिसे समाज समतौल रहेगा या नहीं? यह कहते और सुनते हुए समाज में गड़बड़ी होगी या नहीं? दरकार नहीं। मार्ग यह है। समझ में आया? '**शांतम् शिवं**' आहाहा! **नहीं देख सकता।** आहाहा! भगवान को देखना हो तो निर्विकल्पदृष्टि से दिखेगा। भगवान को देखना हो, दर्शन करना हो तो आत्मा के तो विकल्प से नहीं दिखेगा। आहाहा! जो-जो समकिती हुए अनन्त, उन्होंने निर्विकल्प दृष्टि से आत्मा को देखा है। आहाहा! ऐसी बात है। इसलिए व्यवहारवालों को यह बहुत कठोर लगता है। यह बात थी नहीं। बात ही सब व्यवहार से चलती थी। यह करो... यह करो... यह करो... व्रत करो... दान करो, मन्दिर बनाओ, गजरथ करो। अब यह सब राग की क्रिया की बातें थीं। यह तो उसके काल में हुए शुभभाव होता है, परन्तु वह कहीं अन्दर साधन नहीं। आहाहा! पाप से बचने के लिये ऐसे शुभभाव होते हैं, परन्तु वह कहीं धर्म का साधन नहीं। आहाहा!

भावार्थः—तप उसे कहते हैं,... देखो! अब तप की व्याख्या करते हैं। **कि जिसमें किसी वस्तु की इच्छा न हो।** कोई इच्छामात्र ही नहीं है। आहाहा! **इच्छा का अभाव तो हुआ नहीं,...** इच्छा का अभाव, वृत्ति का, इच्छा-विकल्प उठे, उसका तो अभाव हुआ नहीं। आहाहा! **परन्तु कायक्लेश करता है,...** आहाहा! अपवास और छठ और आठम, आठ-आठ दिन के अपवास, महीने के अपवास, रसत्याग है। यह कायक्लेश है। इच्छा का तो अभाव हुआ नहीं। आहाहा! इच्छा निरोध तप। आता है न? इच्छा अर्थात् कि पुण्य और पाप दोनों की इच्छारहित चीज़। आहाहा!

जैसे सोना गेरुं से ओपता और शोभता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा इच्छा बिना की निर्विकल्प दृष्टि से, निर्विकल्प शान्ति से शोभे, उसे यहाँ तप कहा जाता है। आहाहा! सोना तो एक तो स्वयं ही प्रकाशवाला है और उसमें गेरु लगावे तो अधिक प्रकाश (चमक) हो। इसी प्रकार जिसे आत्मा का स्वभाव चैतन्यमूर्ति शान्तशील, उसका दृष्टि और अनुभव किया, उसमें स्थिरता हुई, तदुपरान्त जिसने इच्छा का निरोध किया, वह आत्मा बहुत ओपित हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला हो, उसे तप होता है। चारित्र अर्थात् सम्यग्दर्शन हो, उसे चारित्र होता है। अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, उसकी खबर नहीं। करो वर्तन, करो वर्तन, करो सदाचरण। आहाहा!

मुमुक्षु : सदाचार करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सदाचार करो यह, बापू! क्या सदाचार, बापू? आहाहा! यह तो वह सदाव्रत नहीं देते? यह नहीं लेने आते बाबा साधु? सदाव्रत। ऐसा वह व्रत और क्रिया सब सदाव्रत, सदाचरण, सदाव्रत जैसा व्यवहार है। वह सदाचरण है ही नहीं। आहाहा! सदाचरण तो सत्स्वरूप भगवान आत्मा शिवशान्त वीतरागी मूर्ति प्रभु, उसे निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प शान्ति से अनुभव करना, उसे यहाँ तप कहा जाता है। आहाहा! व्याख्या में बहुत अन्तर। प्रत्येक बात में अन्तर।

कायक्लेश करता है, शीतकाल में नदी के तीर,... बैठे। ऐसे हिम पड़ा हो हिम। सरोवर पानी से ऐसे उछलता हो, किनारे बैठे मुनि नग्न होकर। उससे क्या कहते हैं? यह सब कायक्लेश है। आहाहा! लोगों को कठिन लगे। क्या हो परन्तु बापू? मार्ग ऐसा है, उसकी तुझे खबर ही नहीं। आहाहा! नदी के किनारे जाकर, आहाहा! और तपस्या करे। खुल्ले शरीर से उसमें नदी के पानी का पूर चलता हो, उसकी हवा, बाहर बैठे उसकी हवा ठण्डी ऐसी झपट लगती हो। आहाहा! और उसमें भी जब शीत अन्दर पड़ी हो विशेष। क्या कहलाती है वह? हिम-हिम। हिम पड़ी हो। कहते हैं कि वह तो क्रिया है। अन्दर आनन्द के नाथ को जाने बिना। आहाहा!

शिवशान्त प्रभु शान्त शिव। आहाहा! अरागी अकषायस्वरूप और शिवस्वरूप प्रभु। आनन्दस्वरूप को पहिचाने बिना, उसके अनुभव बिना, सम्यक्त्व बिना, यह सब

थोथे हैं। आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन पड़े। लोग मार्ग तो ऐसा है अभी बापू! जहाँ आत्मा मूल धर्म... धर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव। वस्तु भगवान आत्मा का स्वभाव क्या? उसका धर्म क्या? वह तो आनन्द और ज्ञान उसका धर्म त्रिकाली, हों! त्रिकाली। वस्तु, अब वह त्रिकाली ज्ञान और आनन्द की दृष्टि में, अनुभव में आवे नहीं, तब तक आनन्द और शान्ति न आवे निर्विकल्प, तब तक धर्म नहीं। वस्तु का स्वभाव, वह धर्म पर्याय में आना चाहिए। पर्याय में राग आवे, वह कहीं धर्म है? आहाहा!

यह कहते हैं कि ऐसे नदी के किनारे भले पड़ा हो, तीर (किनारे) हों! आहाहा! यह तो एक बात आयी थी मस्तिष्क में वह। राम-लक्ष्मणजी ने रावण को मारा है न ऐसे? लक्ष्मण ने रावण को मारा। फिर राम और लक्ष्मण दोनों उसके उसमें (दाहसंस्कार में) गये हैं। जो जलाते हैं न रावण को, जहाँ वहाँ साथ में गये हैं। पुरुषोत्तम पुरुष हैं न, धर्मात्मा है। आहाहा! यह तो पदवी है इसलिए जरा। सरोवर के किनारे रामचन्द्रजी और लक्ष्मण दोनों बैठे हैं। रावण को जलाते हैं तो साथ में गये थे। तो मार डाला तुमने उसे। बापू! परन्तु दूसरा क्या हो? यह पदवी ही ऐसी है बलदेव, वासुदेव की कि प्रतिकूल कोई सामने नहीं रह सकता। इस पदवी के कारण से यह हुआ। हमारा कोई शत्रु नहीं। आहाहा! है? लालचन्दभाई! यह तो उसमें से... आहाहा!

रामचन्द्रजी, लक्ष्मण आनन्दस्वरूपी भगवान आत्मा के अनुभवी हैं। आहाहा! ऐसे रावण को मारते हैं और जलाने साथ में जाते हैं। मन्दोदरी के पास जाते हैं। माँ! तू हमारी माता है, तू हमारी बहिन है। यह हुआ है, वह इस प्रमाण पदवी का कारण है और यह स्थिति खड़ी हुई है। माता! हम जलाने साथ में आये हैं। आहाहा! अन्दर में उसके प्रति वैर नहीं था एकताबुद्धि का। (अस्थिरता का) राग था। और पदवी हमारी ऐसी है, उसमें यह नहीं हो सकता। हमारे अतिरिक्त क्या कहलाता है तीन खण्ड? उसका स्वामी कोई नहीं हो सकता, बापू! यह तो हमारा पुण्य इतना है और इस कारण से यह हुआ है, परन्तु हम अभी खेद में हैं। आहाहा! जलाते हैं रावण को। राम और लक्ष्मण बैठे थे। सरोवरे के किनारे बैठे हैं। आहाहा!

धर्मात्मा ज्ञानी है न? अभी राग छूटा नहीं, इसलिए इन क्रियाओं में सब आ गये

परन्तु अन्तर में उसका स्वामीपना राग का नहीं। आहाहा! यह कहते हैं, उससे विरुद्ध आत्मा के जाननेवाले नहीं। वे तो आत्मा के ज्ञानी थे। आहाहा! यह जाननेवाला नहीं वह नदी के किनारे बैठे, वह पानी का लोढ चलता हो समुद्र के जैसा। जहाज चलते हों और उसकी हवा लगे। वह क्या? वह तो बाहर की क्रिया है, कहते हैं। आहाहा! भगवान को स्पर्शा नहीं अन्दर। और वह भगवान आत्मा का स्पर्श तो निर्विकल्प अनुभव से होता है। आहाहा!

यह करे तो क्या होता है, कहते हैं। **ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर,...** नीचे नहीं। तेज धूप १०८-१०-१० डिग्री और पर्वत के ऊपर से... जो जाये, तप जाये। आहाहा! तो यह क्या बापू? यह कोई वस्तु है? आहाहा! तीन लोक का नाथ आनन्द का कन्द प्रभु, उसे तू अन्दर में स्पर्शा नहीं, वह वेदन में आया नहीं। वह तेरे ज्ञान में ज्ञेय होकर ज्ञात हुआ नहीं। आहाहा! भले पर्याय में वह वस्तु आती नहीं, परन्तु पर्याय में उसका ज्ञान पर्याय में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू, क्या हो? यह बड़े के सन्देश तो यह है। आहाहा! सत्कार कर ले भाई! अच्छे घर की कन्या आती हो तो कैसे बड़े के घर में आवे तो सत्कार करते हैं। लड़का साधारण हो परन्तु करोड़पति स्वयं हो और सामने करोड़पति हो और उसे दूसरा पुत्र न हो और एक ही पुत्री हो, दिखने में जरा शिथिल-पतली हो तो भी स्वीकार लेता है। करोड़पति है, अभी दस लाख देगा। मर जायेगा तो यह कहीं उसके हैं नहीं, यहाँ आयेंगे। अरे! यह बड़े का सन्देश वहाँ तो स्वीकार। प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ का सन्देश आया है न तेरे घर में। आहाहा!

ऐसी तपस्या करने पर भी तेज धूप, नीचे लाल (तप्त) पत्थर। ऐसा तपा हो और खुल्ला शरीर, नग्न शरीर। आहाहा! 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब।' यह तो भानसहित की भावना करते हैं। आहाहा! 'अडोल आसन और मन में नहीं क्षोभता।' यह कहते हैं। ऐसे स्थान में भी आनन्द के नाथ को जहाँ अनुभव करता है। आहाहा! उसके बिना का कायक्लेश, वह कुछ लाभ करे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर,... ऐसा वापस यह पर्वत और उसका शिखर। आहाहा! चारों ओर का कहीं वृक्ष, हरियाली नहीं, कुछ नहीं। आहाहा! छाया नहीं, जहाँ एकदम धूप, सूर्य की किरणें ऐसी। इससे क्या हुआ, कहते हैं। आहाहा! प्रभु अन्दर है आनन्द का नाथ वीतरागमूर्ति शान्त शिव। शान्त शिव। आहाहा! वीतरागी आनन्दमूर्ति प्रभु शुद्धात्मा है न! आहाहा! उसे अन्दर में निर्विकल्प समाधि द्वारा अर्थात् कि निर्विकल्प शान्ति... शान्ति द्वारा; विकल्प है, वह तो अशान्ति है। उससे रहित अन्दर निर्विकल्प शान्ति द्वारा उसे न देखे, वहाँ वह सब क्लेश सब बिना एक का शून्य है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा व्याख्यान कैसा? ऐसा बापू! मार्ग यह है, भाई! चौरासी के अवतार का अन्त लेना हो तो यह अवसर है। भगवान के पास जाना, यह अवसर है। राग के पास जाना, वह तो संसार में उतरना है। आहाहा! समझ में आया? जिसके ज्ञान और श्रद्धा का अभी ठिकाना नहीं होता। आहाहा! उसे संसार का पार कब आवे, भाई! आहाहा! भवसिन्धु। एक ओर चैतन्य सिन्धु। आहाहा! 'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ।' कहे विचिक्षण ज्ञानी कहे कि मैं सदा एकरूप आनन्द शान्त शिव हूँ। 'कहे विचिक्षण सदा अपने रस से भर्यो अनादि टेक हूँ।' मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति के रस से भरपूर अनादि का हूँ। आहाहा!

'मोहकर्म मम नाहीं, नाहीं भ्रमकूप है, शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' 'मोहकर्म मम नाहीं।' राग की, विकल्प की भ्रान्ति तो कहाँ रही? परन्तु विकल्प का जहाँ अवकाश नहीं। मोहरूपी कूपळ बड़ा कुँआ। आहाहा! अर्थात्? पर में सावधानी का विशाल कुँआ, वह मैं नहीं। आहाहा! 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' हम आत्मा शुद्धचैतन्य सिन्धु के स्वरूप से रूपवाले हैं। आहाहा! उससे हम रूपवाले हैं, कहते। आहाहा! कठिन बातें, भाई! यह गर्मी में ऐस हों तो भी क्या कहते हैं।

वर्षाकाल में वृक्ष के मूल में... आहाहा! वृक्ष बड़े वड़ के, पीपल के नीचे बैठे। ऊपर से पानी का प्रपात गिरे, धारा गिरे पानी में। ऐसे अवसर में साधु बैठे हों, कहते हैं। आहाहा! उससे क्या? वह तो कायक्लेश है। आहाहा! जिसे भगवान अन्दर वीतरागमूर्ति

शान्त उसका जिसे स्पर्श हुआ नहीं, वेदन में आया नहीं, जाना नहीं, देखा नहीं, देखा नहीं। उसे यह सब कायक्लेश है, कहते हैं। आहाहा! लो, वे माने धर्म तो यहाँ कहते हैं कि कायक्लेश है। है न?

वर्षाकाल में वृक्ष के मूल में महान दुर्धर तप करता है। मूल में बैठा हो अन्दर। ऊपर से पानी, पत्ते, ऊपर पानी भरकर धड़ाक... धड़ाक। आहाहा! उससे क्या? कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा तप करे। **केवल तप ही नहीं करता...** अभी तो तप करे तो भी कहते हैं कि इतना नहीं, परन्तु साथ में शास्त्र का पठन है उसे। आहाहा! **केवल तप ही नहीं करता, शास्त्र भी पढ़ता है,...** आहाहा! शास्त्र वाँचे, लाखों-करोड़ों श्लोक कण्ठस्थ करे, परायण करे, परन्तु वह तो बापू! सब विकल्प दशा है। अकेली ऐसी तपस्या नहीं, परन्तु साथ में शास्त्र का पठन भी है, कहते हैं। आहाहा!

सकल शास्त्रों के प्रबन्ध से रहित... आहाहा! **निर्विकल्प परमात्मस्वरूप उससे रहित हुआ...** आहाहा! **रहित हुआ सीखता है,...** है न वजन? आहाहा! भगवान को पकड़ा नहीं, आनन्द का नाथ, उसे निर्विकल्प दृष्टि से पकड़े बिना यह सब शास्त्र पढ़े। आहाहा! ऐसी व्याख्या है। देखो, यह दिगम्बर सन्त १३०० वर्ष पहले योगीन्द्रदेव हुए। कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले। सब सन्तों की एक ही बात है। दिगम्बर सन्त, हों! अन्यत्र कहीं यह बात है नहीं। आहाहा! उनके घर में जन्मे, उन्हें भी खबर नहीं। कहो, ...भाई! तुम तो अन्यत्र जन्मे थे। आहाहा! बात तो ऐसी है, बापू! आहाहा! स्थिर होकर हिम हो जाये ऐसी बात है।

विकल्प की वृत्तियाँ सब अशान्त हैं। उससे प्रभु शिवशान्त और शान्ति द्वारा देखा नहीं अर्थात् कि जाना नहीं। अनुभव नहीं किया। उसका यह सब पठन और तपस्या निरर्थक है। आहाहा! चार गति में रुलने के लिये है। उसमें यात्रा भी आ जाती होगी न! यह सब। सम्मेदशिखर की यात्रा करे। आहाहा! वह कुत्ता निकला था न अभी एक। मुम्बई से यात्रा निकली है न एक श्वेताम्बर में। उसमें एक कुत्ता साथ में कहीं थाणा में मिल गया होगा। बिना भान के होगी जरा संज्ञा, उसमें फिर साधु ने उसे... बराबर खाने का दे, एक बार व्यवस्थित और पानी पिलावे। फिर क्या करे? और वापस उसे एक...

दूसरी... उसे बड़ी पदवी दी। उसका विरोध किया है, यहाँ आया था। जैन नहीं, जैन सन्देश? यहाँ आता है न श्वेताम्बर का। यहाँ आता है। वह अपने आया था उसमें उसका विरोध किया है। उसे इतनी अधिक पदवी क्या है उसके लिये? परन्तु दुनिया बाहर से, बाहर की भभक में। आहाहा! उसने वापस महिमा की है कुत्ते की। साथ में है यात्रा। मुम्बई से निकले हैं। अब आयेंगे। मोहनविजय के शिष्य प्रतापविजय। भाई जानते हैं। मैं भी तीनों को जानता हूँ। मैंने तो ६९ वर्ष में तीनों को देखा है। मोहनविजय, उसका शिष्य प्रतापविजय, उसका शिष्य धर्मविजय। धर्मविजय तो यहाँ आते थे। यहाँ आवे न तब आवे। वढवाण में आये थे। वहाँ उतरे थे न उसमें? कैसा कहलाता है वह? सोमपरा। वढवाण सोमपरा। कैसा?

मुमुक्षु : उदयभाई सोमपरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोमपरा नहीं वापस? उसमें उतरे थे न हम। ९९ के (वर्ष)। यह तब तुम्हारे पैसे का खर्च था वह। उन सबको पैसा खर्च किया था न तब? उसने जीमाने में बहुत खर्च किये थे। चन्दुभाई। उसने। तब मिलने आते थे। आते थे बेचारे। यहाँ आवे तो आवे यहाँ। अब वह निकले हैं अभी बहुत लोग लेकर। उसमें एक कुत्ता आया है तो महिमा की है। कुछ पूर्व का अधूरा रहा होगा। परन्तु अधूरा अभी तुझे ठिकाना नहीं। उसमें अधूरा क्या? आहाहा! ऐसी तो क्रियाएँ करे, चढ़ गया हो उस जाति का लक्ष्य। आहाहा! अरेरे! यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा शास्त्र के पठनवाला ऐसी तपस्या करता है। अकेला अजाण और अनपढ़, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! **परन्तु...** आहाहा! **शास्त्रों का रहस्य जानता है,...** ऐसा लिखा है, देखा!

मुमुक्षु : आत्मा का रहस्य जानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। शास्त्र का रहस्य जानते हैं। आहाहा! शास्त्रजनित विकल्प तात्पर्य। '**मुणंतु शास्त्रजनितविकल्पतात्पर्य**' है न वह? आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा शान्तशील अकषायस्वरूप और आनन्दस्वरूप, ऐसा जो भगवान आत्मा है, उसे वह देखता नहीं। यह सब क्रियाकाण्ड को देखे, परन्तु वस्तु को देखता नहीं तो सब व्यर्थ है। वर रहित बारात जोड़ दी है। आहाहा! वह बारात भी नहीं कहलाती। मनुष्यों

का झुण्ड। कीड़ी के ढ़ेर होते हैं न कीड़ी के? करोड़ों कीड़ियाँ नहीं निकलती झुण्ड में? इसी प्रकार यह वर बिना की बारात नहीं, वह तो मनुष्यों का झुण्ड कहलाता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा के अनुभव के बिना यह सब झुण्ड वर रहित बारात है। आत्मा का अनुभव करके हो फिर विकल्प, तो उस पुण्य को व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आँखें मींच जायेंगी, देखो न चले जायेंगे। आहाहा! उस गादी पर बैठा आज कोई कहता है वह मोरारजी। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। ८२ वर्ष में। बड़ी उम्र है। कोई आज कहता था। आज वहाँ आ गया है। इन्दिरा (गाँधी) के ठिकाने वहाँ अब वह बैठा। वहाँ ऐसे प्रसन्न... प्रसन्न। आहाहा! हो जाये। किसका राज, बापू! राज्यते इति शोभते इति राजा। आता है न! भगवान आत्मा वीतरागस्वभाव से शोभे, वह राजा, वह राज। आता है न राजा का? (समयसार गाथा) १७-१८ में नहीं? राजा की सेवा करे, नहीं आता? राजा को पहिचाने परन्तु यह सब बुद्धिवाला है न ऐसा। इसी प्रकार भगवान राजा को जो पहिचाने, बापू! उसकी कीमत बहुत अलग है। आहाहा! वह कहीं शास्त्र के पठन से ज्ञात हो ऐसा नहीं है। ऐसे क्रियाकाण्ड से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो उसके सन्मुख की शान्ति की अविकारी परिणति द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! ऐसा कहकर यह कहते हैं कि यह सब महँगा कर दिया। और एक व्यक्ति ऐसा कहता है। सोनगढ़वालों ने समकित महँगा कर दिया। उसे सस्ता था उसके घर में। सस्ता-महँगा बापू तुझे। आहाहा! भाई! पूरी जिन्दगी जाती है। उसकी कीमत करना नहीं आता, वह कीमत बाहर की करेगा, तो जिसकी कीमत करेगा, उसमें वह जायेगा, भटकेगा। आहाहा!

परन्तु वह **सकल शास्त्रों के प्रबन्ध से रहित जो निर्विकल्प परमात्मस्वरूप उससे रहित हुआ सीखता है, शास्त्रों का रहस्य जानता है, परन्तु परमसमाधि से रहित है,...** आहाहा! समाधि अर्थात् आधि, व्याधि, उपाधिरहित का विकल्परहित, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। है न? और कोई समाधि कहे, क्या होगा? आहाहा! **परमसमाधि से रहित है, अर्थात् रागादि विकल्प से रहित समाधि...** रागादि विकल्प से

रहित समाधि **जिसके प्रगट न हुई,...** आहाहा! नहीं उसमें?

मुमुक्षु : थोड़े से पृष्ठ बीच में नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : रह गये होंगे, ठीक।

तो वह परमसमाधि के बिना तप करता हुआ और श्रुत पढ़ता हुआ भी निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वरूप... निर्मल ज्ञान-दर्शनरूप भगवान देह में विराजता है। आहाहा! **निर्मल ज्ञान-दर्शनरूप तथा इस देह में विराजमान ऐसे निज परमात्मा को नहीं देख सकता।** आहाहा! भगवान परमात्मा दूसरे को देखे, यह प्रश्न नहीं यहाँ तो। यह निर्मल ज्ञान विराजमान देह में प्रभु। आहाहा! उसे देखता नहीं। उसे आत्मा हेय है। ज्ञानी को राग हेय है, आत्मा उपादेय है। है? टीका में आ गया है। अज्ञानी को राग-विकल्प उपादेय है; भगवान आत्मा हेय है। पहले आ गया है, ३६-३७ गाथा। आहाहा!

आत्मा हेय है, ऐसा अन्यत्र कहीं आया नहीं। व्यवहार हेय है, यह तो आया था। धर्मी को व्यवहार हेय है। तब अज्ञानी को आत्मा हेय है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव जिसे उपादेय है। है न उसमें यह? कितना में है वह? संस्कृत, ३६। नीचे साधारण अर्थ किया है। **वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन साधुओं को तो प्रिय है, किन्तु मूढ़ों को नहीं।** परन्तु संस्कृत में ऐसा है। कि सदैव परमात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधि रतानाम् उपादेयोभवति अदेशां हेय। है न संस्कृत? आहाहा! चन्दुभाई! हेय तो किया। ज्ञानी ने व्यवहार को हेय किया, अज्ञानी ने आत्मा को हेय किया। आहाहा! उसकी तो कहीं कुछ गिनती ही नहीं। आहाहा! पुण्य किये और दान किये और दया की और व्रत पालन किये। आहाहा! यह सब इसने उपादेय माना। उसे भगवान हेय हो गया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कोई बड़ा करोड़पति पुरुष आया हो, दो अरबपति। वह ऐसे आया हो और पाव घण्टे बैठा हो। उसमें दो वर्ष का लड़का आया हो, उसके साथ खेल में चढ़ गया तो वह उठकर चला जाये। आहाहा! इसी प्रकार तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है, महान प्रभु है, उसके समीप न जाकर यहाँ शुभ और अशुभ विकल्प की क्रीड़ा में चढ़ गया। बालबुद्धि से वहाँ चढ़ गया। आहाहा! वह वस्तु पड़ी रही। आहाहा!

निर्मल ज्ञानस्वरूप तथा इस देह में विराजमान ऐसे निज परमात्मा को नहीं देख सकता। जो आत्मस्वरूप... कैसा है ? देखा ! **राग-द्वेष-मोह रहित परम शान्त है।** राग, द्वेष, मोहरहित परम शान्त। वह शान्त थी न व्याख्या ? शान्त शिवं। राग, पुण्य-पाप के विकल्प और भ्रान्तिरहित परमशान्त। **परम समाधि के बिना तप और श्रुत से भी शुद्धात्मा को नहीं देख सकता।** आहाहा ! गजब ! अन्तर-सन्मुख की दृष्टि बिना बहिर्मुख की क्रिया द्वारा उसे नहीं देख सकता। आहाहा ! क्योंकि यह व्रत और तप की क्रिया की दिशा, दशा की दिशा पर के ऊपर है। और आत्मा की दशा, उसकी दिशा स्व के ऊपर है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा है। अब वे कहे कि चर्चा करो, बात करो। लो, करो भाई, भाई के साथ। हुकमचन्दजी और हमारे फूलचन्दजी। और वह चर्चा हो गयी है, नहीं ? खानिया चर्चा। पढ़ लो उसमें से तुम। भाई ! यह मार्ग का मिलान नहीं खाता, बापू ! ऐसे वाद-विवाद से यह पकड़ में नहीं आता। आहाहा !

(समयसार) ११वीं गाथा में तो यह आया है कि अनादि का भेद का—व्यवहार का तो जिसे पक्ष है। परस्पर भी व्यवहार की बातें करते हैं। दो। तीन, व्यवहार की बातों का जैन में भी वीतराग में भी हस्तावलम्ब निमित्त की बहुत की है। आहाहा ! अब यह दृष्टान्त दे तो वहाँ... परन्तु उसका फल संसार है, ऐसा लिखा है। ११वीं गाथा में। वीतराग ने कहा हुआ व्यवहार। इसलिए उसमें आ गया न अभव्य का ? जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार। आहाहा ! शील और तप में परिपूर्ण, गुप्ति और समिति में सावधान, वह वीतराग सर्वज्ञ ने कहा हुआ यह व्यवहार। आहाहा ! परन्तु यह व्यवहार संसार है। आहाहा ! उसमें—११ में यह कहा है। तीनों का फल तो संसार। अब यह वीतराग में बहुत हस्तावलम्ब जानकर बहुत (कथन) किया है। अब इस चर्चा में यह बात सामने रखे। लालचन्दभाई ! कि यह है। परन्तु कहा था न पहले से ? यह जो भगवान ने कहा। भगवान ने किस अपेक्षा से कहा ? व्यवहार से कहा है या वास्तव में कहा है ? आहाहा ! बहुत तो यह लेख आवे। कहा है, स्पष्टीकरण किया है। आहाहा !

परम समाधि के बिना तप और श्रुत से भी शुद्धात्मा को नहीं देख सकता। जो निज शुद्धात्मा को उपादेय जानकर... आहाहा ! **ज्ञान का साधक तप करता है,...** व्यवहार। व्यवहार साधक हो वह विकल्प, आता है, होता है। **और ज्ञान की प्राप्ति का**

उपाय जो जैनशास्त्र उनको पढ़ता है, तो परम्परा मोक्ष का साधक है। परम्परा मोक्ष का साधन। वास्तव में मोक्ष का साधन तो अभी यह है। अधूरा ज्ञान और अधूरी चारित्रदशा, वह परम्परा कारण है। परन्तु वह साधन और परम्परा कारण का उपचार कहा है। यह व्यवहार के वचन हैं। आहाहा! लिखा है परन्तु किस अपेक्षा से और किस नय का वाक्य है? आहाहा!

साधक है। साधक तप करता है, और ज्ञान की प्राप्ति का उपाय जो जैनशास्त्र उनको पढ़ता है, तो परम्परा मोक्ष का साधक है। ऐसा कहा न? आहाहा! इसके बिना आत्मा की **श्रद्धा बिना कायक्लेशरूप तप ही करे, तथा शब्दरूप ही श्रुत पढ़े, तो मोक्ष का कारण नहीं हैं, पुण्यबन्ध के कारण होते हैं।** आहाहा! पुण्यबन्ध का कारण है। **ऐसा ही परमानन्दस्तोत्र में कहा है,...** लो। यह शास्त्र है न? परमानन्दस्तोत्र है।

निर्विकल्प समाधि रहित जीव हैं, वे आत्मस्वरूप को नहीं देख सकते। ब्रह्म का रूप आनन्द है, वह ब्रह्म... निज भावना आत्मा, **निज देह में मौजूद है; परन्तु ध्यान से रहित जीव... 'आनन्दं ब्रह्मणो रूप'** है न? **'निजदेहे व्यवस्थितम्। ध्यानहीना न पश्यन्ति जात्यन्धा इव भास्करम्॥' ध्यान से रहित जीव ब्रह्म को नहीं देख सकते, जैसे जन्म का अन्धा सूर्य को नहीं देख सकता है।** आहाहा! विशेष कहा जायेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १९२

अथ–

३१५) विषय–कसाय वि णिद्दलिवि जे ण समाहि करंति।
ते परमप्पहँ जोइया णवि आराहय होंति।।१९२।।

विषयकषायानपि निर्दल्य ये न समाधि कुर्वन्ति।
ते परमात्नः योगिन् नैव आराधका भवन्ति।।१९२।।

जे ये केचन ण करंति न कुर्वन्ति। कम्। समाहि त्रिगुप्तिगुप्त परमसमाधिम्। किं कृत्वा पूर्वम्। णिद्दलिवि निर्मूल्य। कानपि विषय–कसाय वि निर्विषयकषायात् शुद्धात्मतत्त्वात् प्रतिपक्षभूतान् विषयकषायानपि ते णवि आराहय होंति ते नैवाराधका भवन्ति जोइया हे योगिन्। कस्याराधका न भवन्ति। परमप्पहं निर्दोषिपरमात्मन इति। तथाहि। विषयकषायनिवृत्तिरुपं शुद्धात्मानुभूतिस्वभावं वैराग्यं, शुद्धात्मोपलब्धिरुपं– तत्त्वविज्ञानं, बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागरुपं नैर्ग्रन्थ्यं, निश्चितात्मानुभूतिरुपा वशचित्तता, वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबहिरङ्गसहकारिभूतं जितपरिषहत्वं चेति पञ्चैतान् ध्यानहेतून् ज्ञात्वा भावयित्वा च ध्यानं कर्तव्यमिति भावार्थः तथा चोक्तम्–''वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्यं वशचित्तता। जितपरिषहत्वं च पञ्चैते ध्यानहेतवः।।''।।१९२।।

आगे विषय कषायों का निषेध करते हैं–

विषय कषाय छोड़कर भी जो परम समाधि नहीं करते।
हे योगी! वे परमात्मा के आराधक भी नहिं होते।।१९२।।

अन्वयार्थः– [ये] जो [विषयकषायानपि] समाधि को धारणकर विषय कषायों को [निर्दल्य] मूल से उखाड़कर [समाधि] तीन गुप्तिरुप परमसमाधि को [न कुर्वंति] नहीं धारण करते, [ते] वे [योगिन्] हे योगी, [परमात्माराधकाः] परमात्मा के आराधक [नैव भवंति] नहीं है।

भावार्थः– ये विषय कषाय शुद्धात्मतत्त्व के शत्रु हैं, जो इनका नाश न करे, वह स्वरुप का आराधक कैसा? स्वरुप को वही आराधता है, जिसके विषय कषाय का प्रसंग न हो, सब दोषों से रहित जो निज परमात्मा उसकी आराधना के घातक विषय

कषाय के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं है। विषय कषाय की निवृत्तिरुप शुद्धात्मा की अनुभूति वह वैराग्य से ही देखी जाती है। इसलिये ध्यान का मुख्य कारण वैराग्य है। जब वैराग्य हो तब तत्त्वज्ञान निर्मल हो, सो वैराग्य और तत्त्वज्ञान ये दोनों परस्पर में मित्र हैं। ये ही ध्यान के कारण हैं, और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागरुप निर्ग्रन्थपना वह ध्यान का कारण है। निश्चित आत्मानुभूति ही है स्वरुप जिसका ऐसे जो मन का वश होना, वह वीतराग निर्विकल्पसमाधि का सहकारी है, और बाईस परीषहों को जीतना, वह भी ध्यान का कारण है। ये पाँच ध्यान के कारण जानकर ध्यान करना चाहिये। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है, कि संसार शरीरभोगों से विरक्तता, तत्त्वविज्ञान, सकल परिग्रह का त्याग, मन का वश करना, और बाईस परिषहों का जीतना–ये पाँच आत्म–ध्यान के कारण हैं।।१९२।।

वीर संवत् २५०२, चैत्र शुक्ल ६, शुक्रवार
दिनांक- २५-०३-१९७७, गाथा - १९२, प्रवचन-२३२

परमात्मप्रकाश, १९२ गाथा। **आगे विषय-कषायों का निषेध करते हैं:—** समाधि का अधिकार है न? समाधि का अर्थ स्व चैतन्य के आश्रय में स्थिर होना, वह समाधि। जिसमें आधि, व्याधि और उपाधि का अभाव है। तो यहाँ विषय-कषाय का निषेध करते हैं। प्रथम, विषय-कषाय के परिणाम, सम्यग्दर्शन हो, उसे होते हैं, परन्तु यहाँ तो विशेष विषय-कषाय का त्याग करके शान्ति करना। उसका अधिकार है न? क्योंकि सम्यग्दर्शन का अधिकार तो चला था अन्दर। विषय-कषाय के परिणाम हों, उससे सम्यग्दर्शन को दोष होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु विषय-कषाय के परिणाम हों, वहाँ समाधि में स्थिर नहीं होता। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में, अरे! कषाय की मन्दता हो, अनन्तानुबन्धी आदि। तथापि वहाँ सम्यग्दर्शन नहीं हो। क्योंकि सम्यग्दर्शन तो स्व के आश्रय से होनेवाली निर्विकल्प दृष्टि का नाम सम्यग्दर्शन है। उसमें परिणाम में कषाय की मन्दता किसी को होती है तथापि उसे सम्यग्दर्शन का आश्रय नहीं होता। कषाय की अशुभता की तीव्रता हो, तथापि उसे क्षायिक समकित हो। आहाहा! तदुपरान्त यहाँ तो समाधि की बात लेनी है न? समझ में आया? आहाहा!

उपयोग कषाय की मन्दता में वर्तता हो, तथापि उस अनन्तानुबन्धी की मन्दता हो, तथापि स्वचैतन्य द्रव्य का आश्रय नहीं, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। और तीव्र कषाय के परिणाम हों तो वह राग है, वह कहीं समकित को नुकसान नहीं करता। स्व के आश्रय से जो दृष्टि हुई है, उसे वह नुकसान नहीं करते। वह नुकसान कर्ता स्वरूप की समाधि और स्थिरता में नुकसान करता है। यह बात वर्णन करते हैं। समझ में आया?

क्षायिक समकित हो आत्मा के आश्रय से हुआ, उसे ज्ञान पाँच समिति और तीन गुप्ति का थोड़ा हो। इससे उसके क्षायिक समकित को बाधा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? देखो! कषाय मन्द-तीव्रता की बात की। अब ज्ञान के उपयोग की बात। ज्ञान बहुत हो ग्यारह अंग का और नौ पूर्व का। वह कहीं समकित का कारण नहीं। आहाहा! क्षायिक समकित हो और ज्ञान की पंच समिति, गुप्ति जितना हो और क्षयोपशम ज्ञान हो, क्षयोपशम समकित और बारह अंग का ज्ञान हो तो उसके साथ कोई समकित को और उसे सम्बन्ध नहीं, कि भाई! विशेष ज्ञान हो तो उसका समकित निर्मल। आहाहा! या थोड़ा ज्ञान हो, इसलिए उसे समकित की कमी है, ऐसा उसके साथ उसे सम्बन्ध नहीं है। चन्दुभाई! उस राग की मन्दता-तीव्रता से कहा और फिर ज्ञान की उग्रता और मन्दता के साथ... आहाहा! वस्तु है सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द, उसका जहाँ आश्रय आया है। आया था न, सवेरे सम्यग्दर्शन का कारण आत्मा है। आत्मा कारण है। यह कहीं उपयोग में मन्दता-तीव्रता और राग की मन्दता-तीव्रता, वह कहीं कारण नहीं है। सवेरे (बात आयी थी)। समझ में आया? चन्दुभाई! आहाहा! बहुत आवे और बहुत बोलना आवे और बहुत उघाड़ हो, इसलिए उसे समकित की निर्मलता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और अल्प ज्ञान हो, इसलिए समकित मलिन है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो वस्तु स्वतन्त्र चैतन्यस्वभाव वस्तु परिपूर्ण जिसमें... आहाहा! एक-एक शक्ति अनन्त सामर्थ्य लेकर पड़ी है, ऐसी अनन्त शक्ति के सामर्थ्यरूप आत्मा, वह सम्यग्दर्शन का कारण है। ऐसा आया न? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अब यहाँ से इससे उपरान्त ले जाना है यहाँ तो। जो कोई विषय-कषाय के

परिणाम हैं, वे समाधि में अन्तर स्थिरता को रोकते हैं। सम्यग्दर्शन को नुकसान नहीं करता, परन्तु अन्दर स्थिरता को रोकता है, इसलिए विषय-कषाय को छोड़कर समाधि स्वरूप में स्थिर होना उग्ररूप से मुनि की अपेक्षा से बात है। समझ में आया? यह कहा, देखो! '**विषय-कसाय वि णिद्दलिवि**' '**जे ण समाहि करंति। ते परमप्पहँ जोइया णवि आराहय होंति।**' जो कोई समाधि को धारण करके अन्तर में एकाग्र होने का धारण करके **विषय-कषायों को मूल से उखाड़कर...** आहाहा! विशेष समाधि और शान्ति लेना है? विशेष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उग्रता है वह यहाँ समाधि है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान उपरान्त स्वज्ञेय का ज्ञान है, स्व आश्रय में दर्शन है, परन्तु उसमें अभी आसक्ति का जो भाव है परसन्मुख के झुकाववाली। उस स्वरूप में स्थिरता चारित्ररूप शान्ति प्रगट किये बिना वह समाधि प्रगट नहीं होती, इसलिए मोक्ष का कारण प्रगट नहीं होता। समझ में आया? यह तो बहुत सूक्ष्म बातें हैं, भाई! आहाहा!

मूल से उखाड़कर... भाषा है न, '**निर्दल्य**' '**निर्दल्य**' दल डाले विशेष। आहाहा! स्वरूप में स्थिर होने के लिये शान्ति... शान्ति... शान्ति... समाधि अर्थात् कि चारित्र वीतराग चारित्र। उसमें स्थिर होने के लिये विषय-कषाय को मूल से उखाड़कर नहीं धारण करता, **तीन गुप्तिरूप समाधि को नहीं धारण करते,...** देखा! आहाहा! बाहर से सब समेटकर अन्तर आनन्द प्रभु का नाथ भगवान, उसमें जो विषय-कषाय को छोड़कर स्थिर नहीं होता। आहाहा! **हे योगी! परमात्मा के आराधक नहीं है।** वह परमात्मा ऐसा भगवान आत्मा, उसका वह सेवन करनेवाला नहीं है। आहाहा! समझ में आया? विषय-कषाय परसन्मुख के झुकाववाली दशा, उसे छोड़कर स्वरूप में स्थिर नहीं होता, वह आत्मा का परमात्मा का स्वयं—आत्मा परमात्मा का आराधक नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि की तो पहली बात की। अभी उसे विषय-कषाय है। यह तो उससे अब त्याग की विशेष (बात करते हैं)। सम्यग्दर्शन में सम्यग्ज्ञान है। स्वरूप-आचरण है, परन्तु इतने से मुक्ति का आराधन परमात्मा का नहीं, ऐसा कहते हैं। इकट्ठा चारित्र चाहिए, वह चारित्र यहाँ समाधि को कहते हैं। आहाहा! क्यों? कि

'चारितं खलु धम्मो।' प्रवचनसार (गाथा ७)। चारित्र, वह धर्म है। परन्तु वह चारित्र धर्म है, वह **'दंसण मूलो धम्मो'** क्या कहा यह ? वीतरागता ऐसी चारित्रदशा, वह धर्म। परन्तु उस धर्म का मूल सम्यग्दर्शन। **'दंसण मूलो धम्मो'** धर्म अर्थात् चारित्र जो वीतरागता, वह यह समाधि लेना है। उस समाधिरूपी चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन। यह तो पहली बात की। समझ में आया ? परन्तु सम्यग्दर्शन धर्म का मूल होने पर भी धर्म को कैसे चारित्र क्यों प्रगट करना, उसकी बात है। आहाहा! क्योंकि वास्तव में तो चारित्र, वह धर्म है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह धर्म का कारण है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कारण हो, वहाँ कार्य हो न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कारण हो तो उतना कार्य हो स्वरूपाचरण जितना। परन्तु यहाँ तो विशेष कार्य लेना है।

भाई ने प्रश्न किया था न वारिया ने ? त्रिभुवनभाई। त्रिभुवन वारिया। वीरजीभाई का पुत्र। कि आप जब ऐसा कहते हो कि आत्मा कारणपरमात्मा है। आत्मा कारणपरमात्मा है तो उसका कार्य तो आना चाहिए। कार्य तो आता नहीं। तो कारणपरमात्मा कहाँ गया ? समझ में आया ? प्रश्न किया। कारणपरमात्मा स्वयं भगवान है तो फिर कार्य तो आना चाहिए। उसे कारणपरमात्मा हो और कारण हो और कार्य न आवे ? बापू! कुछ आता नहीं। कारणपरमात्मा तो सब है। भाई! परन्तु कारणपरमात्मा जिसने स्वीकार किया, उसे कारणपरमात्मा है न ?

मुमुक्षु : दूसरे को कारणपरमात्मा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। उसे कब कारणपरमात्मा था ? वह तो भगवान और दूसरे ज्ञानी, ऐसा कहे कि उसे कारणपरमात्मा है। उसे कहाँ है ? कारणपरमात्मा अर्थात् वस्तु भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप है, उसकी अस्ति का 'है', उसका स्वीकार करे, उसे है।

मुमुक्षु : न स्वीकार करे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : न स्वीकार करे तो उसे कारणपरमात्मा नहीं। चन्दुभाई! आहाहा! इसलिए कारणपरमात्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप, वह जिसका स्वीकार दृष्टि में किया, उसे वह है। और उसे है तो कार्य सम्यग्दर्शन हुए बिना रहता ही नहीं

उसे। समझ में आया? ऐसा कहा न? सवेरे ऐसा कहा न? सम्यग्दर्शन, आत्मा वह सम्यग्दर्शन है। अर्थात् सम्यग्दर्शन का कारण वह आत्मा है। इसका अर्थ क्या हुआ? हेतु कहो, कारण कहो, आश्रय कहो, निमित्त कहो, परन्तु उस सम्यग्दर्शन में उसने स्वीकार किया है, तब उसे कारण हुआ है। स्वीकार किये बिना भी उसे कहाँ आया है आत्मा?

मुमुक्षु : कहाँ चला गया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चला गया है उसकी दृष्टि में से। यह तो कहा नहीं था तुम्हारे? भगवानजीभाई पूछते थे, इनके मित्र थे न वकील-वकील। (वे पूछते थे) कि महाराज! ऐसा आत्मा... ऐसा आत्मा आप कहो, धुला हुआ मूला जैसा वह गया कहाँ, कहते हैं। ऐसा पूछा था। वकील भी सब स्थूल बुद्धि। लाखों रुपये इकट्ठे किये, पुण्य के कारण इकट्ठे हों।

यहाँ कहते हैं कि परन्तु वह धुला हुआ मूला गया कहाँ? वह है, उसे माना नहीं, इसलिए गया कहाँ ऐसा हो गया है। वह दृष्टि में से गया है। क्योंकि दृष्टि में तो पर्याय का, राग का, निमित्त का स्वीकार है, इसलिए वह धुले हुए मूला जैसा इसे है ही नहीं इसको। धुला हुआ मूला, अपने दृष्टान्त नहीं देते? यह मूला होता है न, मूला? निकालकर, कीचड़वाला हो, फिर पानी में धोवे। फिर लावे यहाँ बेचने। मूला। उसका कान्दा होता है न सफेद पत्ते। वे गारावाले होते हैं, इसलिए उसे पानी में धोकर लावे। वह धुला हुआ मूला कहलाता है।

मुमुक्षु : .... निकाले तो सही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ निकाले तो मैल इकट्ठा होता है। क्योंकि धुलाई दिखती नहीं मैल के ऊपर। उसे धोवे, धोकर फिर नदी में से बेचने लावे। ऐसा है तो भगवान धुले हुए मूले जैसा कारणपरमात्मा। परन्तु जिसने दृष्टि में स्वीकार किया है, उसे वह है। जिसका स्वीकार ही जिसके ऊपर नहीं। आहाहा! जिसे राग की मन्दता और तीव्रता का उत्साह है। आहाहा! जिसका उल्लास बाहर की अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री में उल्लास और खेद हो जाता है, उसे तो भगवान दृष्टि में है ही नहीं। दृष्टि में तो यह है। आहाहा!

अनुकूल शरीर हो, सुन्दर, रूपवान, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, कीर्ति, फर्नीचर दो-पाँच-दस लाख का। वह नजर वहाँ स्थिर हो उत्साहित वीर्य से। उसका स्वीकार किया है और इसका तो स्वीकार कहीं किया नहीं। आहाहा!

जिसे अपने स्वभाव से भिन्न चीज़ की अधिकता भासित होती है, उसे स्वस्वभाव की प्रतीति नहीं। लालचन्दभाई! आहाहा! ऐसा है। '**णाणसहावाधियं**' यह शास्त्र की भाषा है न! ३१वीं गाथा। ३१वीं गाथा, भाई! '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' आचार्यों ने तो बहुत सरल और सीधा किया है। जिसे यह आत्मा राग से, निमित्त से और पर्याय से भिन्न / अधिक / भिन्न भासित होता है, उसे जितेन्द्रिय और समकिती कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु आत्मा ज्ञानस्वभाव से अधिक अर्थात् भिन्न है, ऐसा न भासकर अपने स्वभाव से भिन्न रागादिक अल्पज्ञता में अपने स्वभाव से अधिकता, विशेषता, आश्रयता, विस्मयता उसमें लगे। आहाहा!

श्रीमद् का एक वाक्य है। अरे! उल्लसित वीर्य बिना यह बात तुझे कैसे बैठेगी? आहाहा! वहाँ भगवान ने ऐसा कहा ३१वीं गाथा (समयसार में) '**णाणसहावाधियं**' अधिक अर्थात् भिन्न। एक समय की पर्याय जितना नहीं, राग जितना, व्यवहार जितना, निमित्त में तो यह है नहीं। यह तो इसकी पर्याय में तो इतना है। राग की मन्दता, पर्याय का क्षयोपशम का अंश, वह तो इसके अस्तित्व में है, परन्तु इतने अस्तित्व से भी कहीं आत्मा का अधिकपना भिन्न नहीं पड़ा। उस अस्तित्व को स्वभाव से अधिक माना और उसे पूर्ण माना। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। लोगों को पसन्द पड़े, न पड़े, भाई! बापू! यह तो पसन्द पड़े ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : अमृत जैसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है, बापू! यह बात नहीं उपदेश को करना, उसके लिये यह नहीं, यह तो तत्त्व ऐसा है। जिसे ज्ञायकस्वभाव स्वरूप प्रभु, उससे जिसे एक समय की पर्याय का क्षयोपशम विशेष, उसकी जिसे अधिकता भासित होती है, उसे उससे भिन्न आत्मा भासित नहीं होता। आहाहा! उस पर्याय में क्षयोपशम बहुत भासित हुआ। ग्यारह अंग पढ़ा और यह पढ़ा, यह पढ़ा। ओहोहो! भाई! यह पढ़ा, सब पठन पर

के आश्रय के। वह तो शब्दश्रुत है। कहा न सवेरे? वह तो शब्दश्रुत, शब्द का ज्ञान है। वे शब्द हैं, उनका ज्ञान है। आत्मा का नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! यह तो परम सत्य वीतराग परमात्मा के घर की बात है। आहाहा!

कहते हैं, जिसे आत्मा परमात्मस्वरूप, यहाँ यह कहते हैं न! विषय-कषाय को छोड़कर अर्थात् कि पर की आसक्ति की अधिकता है, उसे भी छोड़कर स्वरूप में स्थिर नहीं होता, उसे आत्मा का आराधक नहीं कहा जाता। वह परमात्मा का सेवक नहीं कहलाता। आहाहा! वह तो राग और पुण्य-पाप के परिणाम और एक समय की पर्याय का सेवक-दास है। आहाहा! दासोहं। वहाँ भी यह है। प्रभु! तुम पूर्ण हो। मैं एक दास हूँ। दास हूँ निकाल डाले तो अहं। दास हूँ, ऐसा नहीं कहते? दासोहं। दास निकाल डाले तो अहं हूँ। सोहं है न? परन्तु दासोहं। दासोहं, दास निकाल डाले तो सोहं रहा। वह मैं हूँ। उसे निकाल दे तो अहं मैं हूँ। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में स्वरूप की एकता अहंता, परिपूर्णता उसे सेवन करना है, आराधना है, उसे तो परसन्मुख के झुकाववाले विषय-कषाय को छोड़ना पड़ेंगे। आहाहा! सामग्री की बात नहीं। यह परिणाम है, वे छोड़ना पड़ेंगे। आहाहा! क्योंकि चारित्र, वह धर्म है और चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण चारित्र है। धर्म, वह मोक्ष का कारण है। धर्म, वह चारित्र है और सम्यग्दर्शन, वह तो चारित्र का कारण मूल है। '**दंसण मूलो धम्मो**' आहाहा! परन्तु उस दर्शनपूर्वक ज्ञान स्वपूर्वक अन्तर में विषय-कषाय की आसक्ति का त्याग नहीं करे तो वह परमात्मा का आराधक नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया?

जिसे विषयसुखों में सुख भासित होता है, वह तो यहाँ लिया नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! जिसे आत्मा में आनन्द भासित होता है, उसे कोई इन्द्र के इन्द्रासन और इन्द्राणियों के भोग भी जिसे सुखरूप नहीं दिखते। आहाहा! ऐसी जिसे दृष्टि स्वरूप-सन्मुख की सुखबुद्धि स्व की प्रगट हुई है, पर में से सुखबुद्धि जिसकी उड़ गयी है, उस जीव को सुख की बुद्धि उड़ जाने के बाद भी आसक्ति के जो परिणाम हैं, उसे छोड़ेगा तो आराधक होगा। विशेष लेना है न? आहाहा!

मुमुक्षु : मुनिपना लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिपना लिया है। बात तो यह है। आहाहा! यह मुनिपना अर्थात् कि यह बाह्य से नग्न हो, वह कहीं मुनिपना नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम हैं, वे कहीं मुनिपना नहीं। आहाहा! मोह अर्थात् मिथ्यात्व और क्षोभ अर्थात् अस्थिरता के परिणाम, उनसे रहित हुई, आहाहा! स्व सावधानी और शान्ति, स्वसावधानी और शान्ति अन्तर में वीतरागता का प्रत्यक्ष अनुभव वेदन, उसे मुनिपना कहते हैं। आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है कि यह हम सब करते हैं। बापू! तेरी लिये नहीं। यह तो वस्तु की स्थिति है। यह तेरे लिये नहीं कि तू ऐसा कर, इसलिए उसकी यह निन्दा है, ऐसा नहीं है।

जिसमें भगवान पूर्णानन्द प्रभु सुखरूप है, वैसा जिसे स्वाद और भान आया नहीं। आहाहा! उसे तो यह स्थिरता की समाधि हो नहीं सकती। समझ में आया? आहाहा! शुभराग से लेकर जगत की अनुकूल चीजेंमात्र इन्द्र के इन्द्रासन जैसे साधन, उसमें से भी धर्मी को सुखबुद्धि उड़ गयी है। क्योंकि उससे अधिक / भिन्न भगवान देखा है, उसमें सुख है, इसलिए पर में सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! यह तो अन्तर की बातें हैं। बाहर से छोड़ दिया स्त्री, पुत्र, परिवार, इसलिए....

मुमुक्षु : वह तो संयोग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो संयोग है। आहाहा! समझ में आया? परकारण मुझे हित के कारण हैं, सुख के कारण हैं, ऐसा माननेवाले को भी पर में सुखबुद्धि पड़ी है। आहाहा! वह यहाँ अब स्थिरता की बात करते हैं। वह सुखबुद्धि भी जिसने उड़ायी है। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु सच्चिदानन्द ज्ञान, ब्रह्म आनन्द—ऐसी जिसे प्रतीति और पर्याय तथा राग से भिन्न जिसे भासित हुआ है, उसे जो अब विषय-कषाय के परिणाम रहे हैं, वह उन्हें भी छोड़ेगा तो परमात्मा का आराधक होगा। आहाहा! समझ में आया? कहो, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान जितना आराधक भले, परन्तु यहाँ तो तीन का पूर्णरूप लेकर आराधक करना है। यह तो अन्तिम गाथायें हैं न? परमात्मप्रकाश की। आहाहा!

हे योगी, परमात्मा के आराधक नहीं है। जिसे अभी परसन्मुख के झुकाववाली सुखबुद्धि है, उसकी तो यहाँ बात है नहीं। आहाहा! यह तो उसने घर देखा नहीं और घर में सुख है, ऐसा देखा नहीं, इसलिए जहाँ-तहाँ झपट्टे मारता है। पैसे में सुख, स्त्री

में सुख, इज्जत में सुख, भोग में सुख, रमना स्त्री आदि में सुख, प्रभु! वे सब जहर के प्याले हैं। आहाहा! ऐसी दृष्टि और स्व का आश्रय होने पर भी जिसे आसक्ति के परिणाम हैं, उसे आराधक पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए उसे छोड़ना पड़ेगा, भाई! आसक्ति भी जो विषय-कषाय की है, छोड़ना अर्थात् कि आत्मा में विशेष तत्पर होने से वे विषय-कषाय के परिणाम उत्पन्न नहीं होते, वे उसने छोड़े, ऐसा कहा जाता है। ऐसा है।

यह तो वह बाहर में धमाधम करे। देखो न, दो-दो हजार लोग निकले हुए। पहले दो हजार लोग कच्छ में से आये थे। संघ आया था यहाँ। उतरे थे। लोग बहुत आते थे। यह सब समझे कि आहाहा! ऐसे चलते हैं न एक बार खाते हैं। छरी कुछ कहलाती है। छ-छरी। यह चेतनजी कहते थे। उन्हें खबर होगी। एकलविहारी, ब्रह्मचारी इस प्रकार ऐसे कोई छह बोल हैं। वह छह पालन करे। वह संघ मुम्बई से निकला। अब यहाँ आवे या न आवे। निकला है। यहाँ धांधळी तक तो आया है, कहते हैं। वे सब कल लड़के आये थे, वे कहे। मानों कि, आहाहा! कैसा हम धर्म करते हैं! उत्साह और जोश मानो। अरे भाई! यह पर की ओर का उत्साह तो राग है। आहाहा!

भावार्थः—ये विषय-कषाय शुद्धात्मतत्त्व के शत्रु हैं,... है? भावार्थ। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि को विषय-कषाय क्या हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो, इसलिए छुड़ाते हैं न। हो नहीं इसलिए तो छोड़ते हैं यहाँ तो। मुनिपना कराना चाहते हैं न!

विषय-कषाय इस शुद्धात्मतत्त्व का शत्रु है। आहाहा! पर में रसबुद्धि, वह तो समकित का शत्रु है और पर में आसक्ति, वह चारित्र का वैरी है। चारित्र का शत्रु है। आहाहा! **जो इनका नाश न करे, वह स्वरूप का आराधक कैसा?** आहाहा! स्वरूप जो भगवान आत्मा, परसन्मुख के आसक्ति के रागादि का त्याग न करे तो स्वरूप का सेवन किस प्रकार करेगा? आहाहा! अरे! समझ में आया? समझे, वे समा गये। आता है न श्रीमद् में? वह अन्दर में समा गये, वे आराधक सेवन है। आहाहा! यहाँ तो देव-गुरु की भक्ति का भाव, वह भी परसन्मुख का भाव विषयकषाय है। विषय पर है और उसका वह कषायभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : इन्द्रिया का विषय।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय की ओर परसन्मुख का झुकाव है न! उसमें स्वविषय नहीं आया। देव, गुरु श्रद्धान के विषय में परवस्तु विषय है। आहाहा! उसे छोड़कर स्वरूप का जो आराधक नहीं होता, वह आत्मा का सेवन कैसे करेगा? कहते हैं। आहाहा! कठिन बातें पड़े लोगों को। किंचित् आधार चाहिए, कुछ सहारा चाहिए। वे छोटालालजी कहते थे। गुजर गये। इन्दौर के ब्रह्मचारी नहीं? छोटेलालजी। पहले बदल गये, तब कहते थे। व्यवहार है, वह विश्राम है। विश्राम ले तो जरा इसे फिर अन्दर में जाने का अनुकूल पड़े। ऐसा कहते थे। अखबार में आया था। फिर तो बदल गये बेचारे आये यहाँ। सब खोटा, सब खोटा। मैंने कहा, बापू! पहले ठीक था, बीच में अठीक हो गया था। क्योंकि वहाँ गये, वहाँ यहाँ की मान्यता की बात की तो। यहाँ की रोटियाँ नहीं खाओ, बाहर जाओ। अब रोटियों के लिये फिर, भाई! बात सच्ची तुम्हारी जाओ। व्यवहार से होता है। फिर आये, हों! मेरी भूल है सब। अरे! रोटियों के लिये इस व्यवहार के लिये सत्य के भाव को तिलांजलि देना! दुनिया हो, न हो। माने, न माने, रोटियाँ दे, न दे भिखारी अकेला हो नहीं। आहाहा! उसके साथ क्या सम्बन्ध है? व्यवहार से और पर की भक्ति से आत्मा में कल्याण नहीं होता, यह बात उसे हृदय में से हटनी नहीं चाहिए।

वह यहाँ कहते हैं। **स्वरूप को वही आराधता है, जिसके विषय-कषाय का प्रसंग न हो,...** देखा! आहाहा! स्वविषय को बताकर ध्यान का विषय बनाकर ध्येय को, पर के विषय का त्याग करता नहीं, वह आराधक नहीं हो सकता।

जिसके विषय-कषाय का प्रसंग न हो, सब दोषों से रहित... ऐसा बताना है न यहाँ तो मुनिपना एकदम। **जो निज परमात्मा उनकी आराधना के घातक।** निज परमात्मा का स्वभाव ही अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन। इस चतुष्टय स्वरूप ही उसका त्रिकाल है। ऐसा निजपरमात्मा अनन्त स्वभाव जिसका आनन्द का, ज्ञान का, ऐसा जो निज परमात्मा। आहाहा! उसकी **उनकी आराधना के घातक।** आहाहा! **विषय-कषाय के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं है।** आहाहा! स्वविषय में जाने को

परविषय घातक है। आहाहा! स्व झुकाववाले को परसन्मुख का झुकाव चाहे तो शुभ हो तो वह घातक है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा है। अब यहाँ तो राग की ओर का, जो व्यवहार की ओर लक्ष्य जाता है, वह भी कषाय है, उसे छोड़कर, उसे छोड़ तो यहाँ सेवन होगा। तब वे कहे कि व्यवहार से यह होगा।

मुमुक्षु : व्यवहार पराश्रितभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार पराश्रित और यह तो पर का निषेध करे, इसलिए उसका आश्रय छोड़े तो अन्दर में जाये, ऐसा कहते हैं। उससे जाया जाता है या उसका आश्रय छोड़े तो जाया जाता है? यह तो घातक है। आहाहा! बहुत कठिन काम। साधु को कठोर पड़ता है। भाई! यह बात तेरे लिये कुछ नहीं। यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है और तू भी उसे स्वीकार करे तो तुझे गुण का कारण है। आहाहा! तेरे आत्मा की शान्ति का कारण है, भाई! वह तो दुःख का कारण, भाई! उस दुःख का वेदन कठिन पड़ेगा। आहाहा! श्रद्धा में ही जहाँ परसन्मुख के झुकाववाले भाव से स्वसन्मुख का झुकाव होगा, यह श्रद्धा ही मिथ्यात्व है। आहाहा! लो!

विषय-कषाय के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं है। विषय-कषाय की निवृत्तिरूप... आहाहा! **शुद्धात्मा की अनुभूति, वह वैराग्य से ही देखी जाती है।** आहाहा! क्या कहा यह? विषय-कषाय की निवृत्ति परसन्मुख की और शुद्धात्मा की अनुभूति, वह शुद्धात्मा का अनुभव और वैराग्य, वहाँ दोनों दिखते हैं। पूर्णानन्द की प्रतीतिरूपी अनुभूति और राग से रहित वैराग्य। निर्जरा अधिकार में आया है न? यह बात ली है। ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ ज्ञानी को—धर्मी को होती हैं। (समयसार) निर्जरा अधिकार। अर्थात्? ज्ञान अर्थात् कि आत्मा परिपूर्ण वस्तु है, वह ज्ञान। उसका ज्ञान। वह अस्ति का ज्ञान और इस ओर राग का अभाव, वह वैराग्य। आहाहा! वह ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ ज्ञानी को साथ में होती हैं। यहाँ विशेष वैराग्य लिया है। मुनि के योग्य की दशा। उस निर्जरा (अधिकार) में साधारण सम्यग्दृष्टि को भी ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ तो होती ही हैं। ऐसे जहाँ स्व की परिपूर्णता की प्रतीति की, वहाँ राग के अभाव का वैराग्य तो साथ में होता है। अस्ति की जहाँ श्रद्धा की, वहाँ राग और नास्ति की श्रद्धा साथ में आ जाती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो विशेष लेते हैं। **विषय-कषाय की निवृत्तिरूप शुद्धात्मा की अनुभूति...** यह विषय-कषाय की ओर के अभावस्वरूप, वह शुद्धात्मा की अनुभूति। आहाहा! **वह वैराग्य से ही देखी जाती है।** परसन्मुख के उदासभाव से और राग के अभाव से दिखता है। आहाहा! यह वस्तु है, उसकी अभी इसे खबर जहाँ नहीं, उसे धर्म कैसे हो, भाई! बाहर के सब... आहाहा! उसको कुत्ते को धर्मनिष्ठ ठहराया। तब तो सब साथ में हैं तो वे तो सब धर्मनिष्ठ हो गये। अरे बापू! भगवान! ठगा जाता है, भाई! यह उसका परिणाम आयेगा, तब खबर भी नहीं पड़ेगी। आहाहा! मूढ़ है।

बापू! चैतन्य जागती ज्योति परमात्मा स्वयं अन्दर है। उसके झुकाववाला भाव किया नहीं और पर के झुकाव से आत्मा का झुकाव होगा, वह तो शत्रु है, कहते हैं। आहाहा! व्यवहार है, वह निश्चय का शत्रु है। आहाहा! इसलिए उसका निषेध करने में, पराश्रित निषेध, स्वआश्रय का प्रतिषेधक। स्वआश्रय उसे प्रतिषेध करता है कि नहीं यह। आहाहा! समझ में आया? यह तो कहे, अकेली निश्चय की बातें करे, उसमें व्यवहार साधन है तो उड़ा देते हैं, ऐसा कहते हैं। भाई! वह व्यवहार साधन नहीं। व्यवहार के लक्ष्य को छोड़कर, स्व में जा, वह साधक है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वस्तु तो नहीं थी न, इसलिए लोगों को नयी लगे। यह नयी (नहीं), अनादि की, वीतरागमार्ग बापू! यह ही पन्थ चलता है।

क्या कहा यह? **विषय-कषाय की निवृत्तिरूप...** परसन्मुख के झुकाव के विकल्प से छूटनेरूप **शुद्धात्मा की अनुभूति...** अर्थात् त्रिकाली भगवान का अनुभव और पर से वैराग्य। **वह वैराग्य से ही देखी जाती है।** आहाहा! है इसमें? है न? **इसलिए ध्यान का मुख्य कारण वैराग्य है।** वह विषय-कषाय का अभाव कहा न? वह वैराग्य। विषय-कषाय का अभाव, वह वैराग्य। अपना जो स्वभाव है, उसका संवेग, सम्यक् प्रकार का वेग उल्लसित वीर्य से जो भगवान को पकड़ा है, उसमें राग के अभावरूप वैराग्य साथ में होता है। वह ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ साथ में दिखती हैं। दिखती है, ऐसा कहा न? **इसलिए ध्यान का मुख्य कारण वैराग्य है।** परसन्मुख से हटकर स्थिर होना, वह उसका कारण मूल वैराग्य है। आहाहा! उस राग के व्यवहार के राग से

भी हटना, वह वैराग्य, वह ध्यान का कारण है। यह राग, वह ध्यान का कारण नहीं। आहाहा! हट जाना।

उसने कहा था न भाई एक नहीं थे? क्षुल्लक थे न, क्षुल्लक। क्या नाम? आदि...।

मुमुक्षु : आदिसागर।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदिसागर। बेचारे यहाँ आते थे। यहाँ आते थे। फिर सुने, परन्तु दिमाग बहुत थोड़ा, इसलिए, बहुत पुस्तकें ले जाये, वाँचने करावे, वाँचन करे, फिर संक्षिप्त एक शब्द किया उन्होंने कि 'पर से खस, स्व में बस, इतना संक्षिप्त, इतना बस।' पर से खस, यह वैराग्य। स्व में बस अनुभूति। इतना बस, यह अत्यन्त संक्षिप्त। उसकी यह सब व्याख्या बारह अंग की है। ऐसा वे बेचारे कहते थे। बुद्धि बहुत नहीं थी परन्तु उन्हें प्रेम था कि मार्ग तो यह कहते हैं। क्षुल्लक थे, परन्तु मार्ग तो यह है, ऐसा कहते थे।

एक भव्यसागर साधु है अपने दिगम्बर, नहीं? कर्नाटक। १८-१९ वर्ष दीक्षा है। कवि है, आशुकवि। उनके दस पत्र यहाँ आये हैं। ओहोहो! यह मार्ग तो २०० वर्ष में नहीं था, ऐसा मार्ग आपका है, कहे। ऐसा बेचारे पत्र में लिखते हैं। भाई! मार्ग तो यह है, बापू! दस पत्र आये थे। आना है, ऐसा लिखते हैं। आत्मधर्म के पाँच सौ ग्राहक बनाऊँ, फिर आऊँगा। २००-२००। २०० न? ५००। ठीक है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि यहाँ इस राग से हटकर यहाँ (अन्दर में) जा, तब आराधक होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। देखा!

जब वैराग्य हो, तब तत्त्वज्ञान निर्मल हो,... यह तो अपेक्षा से बात की। तत्त्वज्ञान अर्थात् वस्तु में स्थिरता की निर्मलता हो, ऐसा। राग से हटे तो वस्तु में स्थिर हो तो तत्त्व अर्थात् आत्मा से निर्मल हो। मोक्षमार्गप्रकाशक में यह लिया है कि शास्त्र पढ़े तो आत्मा का तत्त्वज्ञान निर्मल हो। वह पर के लक्ष्यवाला ज्ञान निर्मल होता है। आहाहा! उसमें यह है। शास्त्र का विशेष पढ़े। बात यह कि पर के लक्ष्यवाला ज्ञान विशेष हो। आहाहा! शैली ऐसी है न! ऊँचे प्रकार की।

मुमुक्षु : हितरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह हितरूप है। आहाहा! क्योंकि इन्द्रिय की ओर से जानकर ज्ञान करना, वह ज्ञान परोक्ष पहले करने से विशेष निर्मल होता है परन्तु वह निर्मल क्या? परलक्ष्यी ज्ञान निर्मल होता है। स्वलक्ष्यी ज्ञान उससे निर्मल हो, ऐसा नहीं है। और इसीलिए कहा है न, उस परमार्थ वचनिका (में)? कि परसत्तावलम्बी ज्ञान को ज्ञानी मोक्षमार्ग नहीं कहते। आहाहा! है? परमार्थवचनिका। परसत्तावलम्बी। जितना परलक्ष्यवाला ज्ञान सूत्र से कहा, सवेरे जो कहा शब्दश्रुत ज्ञान। वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें! है इसमें वह। परसत्तावलम्बी ज्ञान को धर्मी मोक्षमार्ग नहीं कहते। होता है परसत्तावलम्बी। जब तक पूर्ण नहीं, उसे उतना हो भले, परन्तु वह कहीं मोक्षमार्ग में नहीं है। आहाहा! वहाँ मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में ऐसा कहा, जितना पढ़ेगा, उतना विशेष निर्मल ज्ञान होगा। क्या अपेक्षा है?

मुमुक्षु : अपेक्षा फेर।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा फेर है, वह इसे जानना चाहिए। आहाहा!

जब वैराग्य हो, तब तत्त्वज्ञान निर्मल हो, सो वैराग्य और तत्त्वज्ञान ये दोनों परस्पर में मित्र हैं। अर्थात् यह। वस्तु के पूर्ण स्वरूप का ज्ञान, प्रतीति, स्वआश्रय और राग से हटकर वैराग्य, दो की मैत्री है। यह कलश आता है न समयसार का पीछे। व्यवहार और निश्चय की मैत्री है, ऐसा अर्थ किया भाई पण्डित जयचन्दजी ने। परन्तु राजमलजी ने ऐसा अर्थ किया कि वस्तु का स्वरूप का ज्ञान, भान, प्रतीति और अशुद्धता का अभाव, इन्हें मैत्री है। आहाहा! पण्डित जयचन्दजी ने ऐसा अर्थ किया। दो का होता है न निमित्तरूप से, निमित्त से निमित्तरूप से। और यहाँ तो कहा कि वस्तु के स्वभाव का भान और राग के अशुद्धता के भाव का अभाव, उन दोनों को मैत्री है। वह व्यवहार से जरा कहा है कि उस समय उसे ऐसा होता है। भिन्न साध्यसाधन कहा है न? इसका अर्थ कि जो साध्य प्रगट हुआ है, उसे ऐसा निमित्तपना ऐसी ही उसे राग की मन्दता, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, ऐसा भाव उसे होता है। उसका उसे ज्ञान कराया है। समझ में आया?

वरना निश्चय से कहा, उसका यह विरोध व्यवहार से तो वापस विरोध हुआ। विरोध वाक्य हो वीतरागमार्ग में? पूर्वापरविरोध कहीं नहीं होता। आहाहा! अब उसकी चर्चा करे वापस यह। इसमें कहा साधन, इसमें कहा साधन। किस नय का कथन है? और व्यवहारनय का कथन है तो इसका अर्थ है कि वह तो अभूतार्थनय का कथन है। ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त का ज्ञान कराया है। है न मोक्षमार्गप्रकाशक में। व्यवहार से, निश्चय से कहा वहाँ यथार्थ है, व्यवहार से कहा वहाँ ऐसा नहीं परन्तु निमित्त कैसा है, उसका ज्ञान कराया है। ऐसा तो स्पष्टीकरण टोडरमलजी करते हैं, लो! आहाहा! अब उन्हें उड़ाना। टोडरमलजी और बनारसीदासजी अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं। अरे! प्रभु! आहाहा! अध्यात्म से पागल हो गये हैं, ऐसा (वे लोग) कहते हैं। आहाहा! प्रभु! वे तो विचिक्षण थे। उन्हें पागल कहना, बापू! तुझे (खबर नहीं)। आहाहा! वस्तु दूसरी बैठी हो न, इसलिए उसे यह व्यवहार से होता है, इससे होता है, यह बात ही करते नहीं और व्यवहार को उत्थापित करते हैं, ऐसा (अज्ञानी कहते हैं)। आहाहा! अभिप्राय पर चोट पड़ती है न! आत्मा के ऊपर चोट पड़ती है। अभिप्राय है, वह आत्मा हो गया उसे। इसलिए क्या हो उसे बेचारे को? मार्ग तो यह है, बापू! आहाहा!

है? **दोनों परस्पर में मित्र हैं।** कौन? यह शुद्धस्वरूप की ओर की दृष्टि और ज्ञान और इस ओर अशुद्धता का अभाव, विषय-कषाय के परसन्मुख के परिणाम का अभाव वह वैराग्य, दोनों को मैत्री है। साथ में होते हैं। आहाहा! वहाँ वे और ऐसा अर्थ करते हैं, निमित्त का अर्थ करते हैं। निमित्त महा है न अर्थ, नि-विशेष, मि-मित्र। वह मित्ररूप से सहायता करता है। निमित्त का ऐसा अर्थ किया है। उसमें किया है। खानिया चर्चा में (किया है)। सहायता करता है, इसका अर्थ कि है। आत्मा गति करे, तब धर्मास्ति निमित्त है, बस! इतनी ही बात है। निमित्त गति कराता है, ऐसा है? वह तब अनुकूल को निमित्त क्यों कहा? सबको क्यों नहीं कहा? परन्तु वह अनुकूल हो, उसे ही निमित्त कहा जाता है। जो गति में निमित्त होने के योग्य हो, उसे यहाँ निमित्त कहा जाता है। वह धर्मास्ति निमित्त इसे गति कराता है? यदि गति करावे तो धर्मास्ति सदा है तो गति ही करे। तो स्थिर हो ही नहीं। और अधर्मास्ति स्थिर कराता है? वह गति करने की परिणति में वह निमित्त धर्मास्ति है। ऐसे गति करता तत्त्व स्थिर हो, उसे अधर्मास्ति

निमित्त है। उसे यह तत्त्व गति ही करावे, यह तत्त्व स्थिर करावे, ऐसा उसमें कहाँ है? आहाहा! यह दोनों की मैत्री कहलाती है। समझ में आया?

व्यवहार के राग और निश्चय के परिणाम को यह मैत्री, वह तो व्यवहार से कथन है, परन्तु वास्तव में तो भगवान आत्मा पूर्ण ध्रुव शुद्ध चैतन्य आत्मा, उसकी दृष्टि जो ज्ञान, उसकी दृष्टि और ज्ञान के साथ राग की अशुद्धता का अभाव—वैराग्य, इन दो की मैत्री है। आहाहा! वह ध्यान के कारण है। स्वभाव की दृष्टि और राग का अभाव, वह एक ध्यान का कारण है। विषय-कषाय का विकल्प जो है, वह ध्यान का कारण है, ऐसा नहीं। ध्यान अर्थात् स्वरूप में एकाग्र होने में राग कारण है, ऐसा नहीं। परन्तु राग का अभाव और स्वभाव की प्रतीति दो होकर मैत्री, वह वैराग्य का कारण है। ध्यान का वह कारण है। आहाहा! वस्तु तो ऐसी है, देखो न!

मुमुक्षु : स्पष्ट बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट बात, इसमें सन्देह को स्थान कहाँ है? यह बात तो जहाँ इसे सुहावे नहीं और व्यवहार की बात आवे, इसे सुहावे, यह तो अनादि से है, यह कोई नयी बात नहीं। आहाहा!

है? **और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागरूप...** अब मुनि की बात विशेष लेते हैं। **बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागरूप निर्ग्रन्थपना वह ध्यान का कारण है।** बाह्य वस्त्र-पात्र भी छूट गये हैं और अन्दर में राग से छूटा है, वह ध्यान का कारण मुनि को है। आहाहा! वह मूल बात तो पड़ी रही। रह गयी यह बाहर की। राग की—करते हैं, पंच महाव्रत पालते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि उसका अभाव। बाह्य और अभ्यन्तर ऐसा जो राग, अभ्यन्तर राग और बाह्य में राग के निमित्त, इन दो का त्याग, उसका नाम निर्ग्रन्थपना, **वह ध्यान का कारण है।** आहाहा!

जिसने तीन कषाय का नाश किया है, परसन्मुख के झुकाव की जिसे नास्ति हुई है, और स्वरूप की परिपूर्णता की जिसे अस्ति हुई है, वे दो होकर मैत्री, वह ध्यान का कारण है। आहाहा! अनजाने को तो पकड़ना कठिन लगे। नये लोगों को (ऐसा लगे कि) क्या ऐसा धर्म! ऐसी बातें क्या करते हैं? दया कैसे पालन करना, कैसे व्रत पालना,

कैसे अपवास करना, यह बातें तो करते नहीं। यही दया है। यह पंचाध्यायी में आया है। स्वकृपा। जैसा है, वैसी दृष्टि—ज्ञान का स्थिर होना, वही उसकी स्वकृपा है, स्वदया है। आहाहा! जितना जैसा है, उसे वैसा न मानना, वह हिंसा है। आहाहा! अपनी हिंसा है, हों! आहाहा!

श्रीमद् में आया नहीं? 'क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है?' बहु पुण्यपुंज प्रसंग (काव्य) में आता है? 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण में अहो क्यों चकचूर है?' क्षण-क्षण में राग और पर की एकत्वबुद्धि में भावमरण चैतन्य की जागृति का वहाँ अभाव होता है, ऐसा भावमरण क्षण-क्षण में कर रहा है, वहाँ क्यों चकचूर है? १६ वर्ष में कहते हैं। क्षण-क्षण भयंकर, भयंकर भावमरण। वह विकल्प की एकता और उससे लाभ, वह भयंकर भावमरण है। कहो, ...भाई! आता है या नहीं यह? और फिर (अज्ञानी) कहते हैं कि पर की भक्ति से धर्म न माने वह एकान्त है। अरे भाई! होता है। पूर्ण न हो वहाँ शुभभाव होता है। पाप से बचने के लिये वह होता है, परन्तु वह कहीं धर्म का कारण है और धर्मरूप है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्यागरूप निर्ग्रन्थपना, वह ध्यान का कारण है। निश्चिन्त आत्मानुभूति ही है स्वरूप जिसका, ऐसे जो मन का वश होना,... यह ध्यान का कारण है। यह ध्यान के कारण देते हैं। **निश्चिन्त आत्मानुभूति ही है स्वरूप जिसका ऐसे जो मन का वश होना,...** यह ध्यान का कारण है। **वह वीतराग निर्विकल्पसमाधि का सहकारी...** आहाहा! **और बाईस परीषहों को जीतना, वह भी ध्यान का कारण है।** निमित्तरूप से। परसन्मुख का झुकाव परीषह सहन करना। परीषह सहन में फिर यह व्याख्या बदलते हैं। कि जब प्रतिकूलता आवे अर्थात् विकल्प तो आवे कि यह है। फिर विकल्प को छोड़ना, ऐसा नहीं। वह आवे, उस ओर का झुकाव ही जहाँ नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा की ओर झुकाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की ओर, उसका नाम परीषह समस्त प्रकार से सहन करना अर्थात् ज्ञातादृष्टारूप से रहना। उसमें व्याख्या में अन्तर करते हैं। क्या हो परन्तु अब? जिसे जो बात बैठे, वह बात करे। परन्तु वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

ये पाँच ध्यान के कारण जानकर ध्यान करना चाहिए। लो, इस प्रकार राग के त्याग का भाव जो कहा, मनवश कर्म इत्यादि, वे पाँचों ही अन्तर में झुकाव के लिये है, यह बात। आहाहा! दूसरी जगह कहा। **संसार शरीरभोगों से विरक्तता, तत्त्वविज्ञान, सकल परीषह का त्याग,...** यह श्लोक है। **मन का वश करना और बाईस परीषहों का जीतना—ये पाँच आत्म-ध्यान के कारण हैं।** पहले कह गये, उसका श्लोक दिया है। अन्तर में झुकाव के लिये यह पाँच कारण हैं। बाहर का झुकाव छोड़ने के लिये। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १९३

अथ–

३१६) परम–समाहि धरेवि मुणि जे परबंभु ण जंति।
ते भव–दुक्खइँ बहुविहइँ कालु अणंतु सहंति।।१९३।।

परमसमाधिं धृत्वापि मुनयः ये परब्रह्म न यान्ति।
ते भवदुःखानि बहुविधानि कालं अनन्तं सहन्ते।।१९३।।

जे ये केचन मुणि मुनयः ण जंति न गच्छन्ति। कं कर्मतापन्नम्। परबंभु परमब्रह्म परब्रह्मशब्दवाच्यं निजदेहस्थं केवलज्ञानाधनन्तगुणस्वभावं परमात्मस्वरुपम्। किं कृत्वा पूर्वम्। परम–समाहि धरेवि वीतरागतात्त्विकचिदानन्दैकानुभूतिरुपं परमसमाधिं धृत्वा ते पूर्वोक्त–शुद्धात्मभावनारहिताः पुरुषाः सहंति सहन्ते। कानि कर्मतापन्नानि। भव–दुक्खइँ वीतराग–परमाह्लादरुपात् पारमार्थिकसुखात् प्रतिपक्षभूतानि नरनारकादिभवदुःखानि। कतिसंख्योपेतानि। बहुविहइं शारीरमानसादिभेदेन बहुविधानि। कियन्तं कालम्। कालु अणंतु अनन्तकाल–पर्यन्तमिति। अत्रेदं ज्ञात्वा निजशुद्धात्मनि स्थित्वा रागद्वेषादिसमस्तविभावत्यागेन भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।।१९३।।

आगे परमसमाधि की महिमा कहते हैं–

परम समाधि धरें फिर भी जो परम ब्रह्म को नहिं जानें।
वे नर बहुविध भव दुःखों को ही चिरकाल पर्यन्त सहें।।१९३।।

अन्वयार्थः– [ये मुनयः] जो कोई मुनि [परमसमाधिं] परमसमाधि को [धृत्वापि] धारण करके भी [परब्रह्म] निज देह में ठहरे हुए केवलज्ञानादि अनंतगुणरुप निज आत्मा को [न यांति] नहीं जानते हैं, [ते] वे शुद्धात्मभावना से रहित पुरुष [बहुविधानि] अनेक प्रकार के [भवदुःखानि] नारकादि भवदुःख आधि व्याधिरुप [अनंतं कालं] अनंत काल तक [सहंते] भोगते हैं।

भावार्थः– मन के दुःख को आधि कहते हैं, और तनुसंबंधी दुःखों को व्याधि कहते हैं, नाना प्रकार के दुःखों को अज्ञानी जीव भोगता है। ये दुःख वीतराग परम आह्लादरुप जो पारमार्थिक–सुख उससे विमुख हैं। यह जीव अनन्त काल एक निजस्वरुप

के ज्ञान बिना चारों गतियों के नाना प्रकार के दुःख भोग रहा है। ऐसा व्याख्यान जानकर निज शुद्धात्म में स्थिर होके राग द्वेषादि समस्त विभावों का त्यागकर निज स्वरुप की ही भावना करनी चाहिये।।१९३।।

वीर संवत् २५०२, चैत्र शुक्ल ८, सोमवार
दिनांक- ११-०४-१९७७, गाथा - १९३, प्रवचन-२३३

परमात्मप्रकाश, १९३ गाथा। **आगे परमसमाधि की महिमा कहते हैं:**—अर्थात् क्या? क्या कहते हैं? १९३। यह आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित परमसमाधि अर्थात् कि आधि, व्याधि, उपाधि से रहित। नीचे अर्थ करेंगे। शरीर की व्याधि से भगवान आत्मा भिन्न है। यह उपाधि बाहर के धन्धे, इससे आत्मा भिन्न है। आधि—मन में होनेवाले शुभ-अशुभ विकल्प राग, वह आधि है। व्याधि शरीर, आधि वह, उपाधि यह सब। उससे रहित आत्मा, वह समाधिस्वरूप है। लोगस्स में आता है। 'समाहिवरमत्तु' किसे खबर क्या है, इसका अर्थ? पहाड़े बोले। 'समाहिवरमित्तु' आता है? चन्दुभाई! किया है लोगस्स? ठीक। समाहिवर... हे नाथ! तुम मुझे समाधि फल—वर दो। यह तो भगवान की प्रार्थना है। भगवान कुछ देते नहीं। मिलता है यहाँ से (अन्तर से)। आहाहा!

जितने व्यापार, धन्धे आदि के विकल्प सब पाप। आहाहा! वह आधि है। आत्मा में शान्ति के अतिरिक्त वह सब आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। आहाहा! जिसे शान्ति चाहिए हो। सम्यग्दर्शन वह समाधि है। सम्यग्दर्शन वह समाधि है। श्वेताम्बर में आता है चित्त समाधि होय दस बोल से। चित्त समाधि... परन्तु उसमें यह स्पष्टीकरण नहीं कि आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, त्रिकाल अनाकुल शान्तरस का कन्द, उसकी अनुभूति होना, उसका नाम समाधि और धर्म है। आहाहा! उस समाधि से यह परमसमाधि की महिमा कहते हैं। गाथा।

३१६) परम-समाहि धरेवि मुणि जे परबंभु ण जंति।
ते भव-दुक्खइँ बहुविहइँ कालु अणंतु सहंति।।१९३।।

जो कोई मुनि... नाम धराकर, यहाँ उत्कृष्ट बात है न? **परमसमाधि को...** अर्थात् साधुपना ग्रहण करते हुए **धारण करके भी निज देह में ठहरे हुए...** निज देह में ठहरे हुए। आहाहा! **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप निज आत्माओं को नहीं जानते हैं,...** आहाहा! भगवान आत्मा केवल एक ज्ञानमूर्ति, आनन्दमूर्ति, शान्तमूर्ति, दर्शनस्वरूप ऐसा जो अनन्त चतुष्टयस्वरूप भगवान आत्मा, उसे जो नहीं जानता और परमसमाधि अर्थात् मुनिपना ग्रहण करके मानता है कि हम साधु हैं, वह धर्म का आराधक नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो कोई मुनि परमसमाधि को धारण करके... अर्थात् मुनिपना धारे बाहर से। **निज देह में ठहरे हुए...** भगवान आत्मा इस देह में रहा है प्रभु। अनन्त शान्त और आनन्द रस से यह भरपूर भगवान है। आहाहा! ऐसे निज देह में ठहरा है। **ठहरे हुए केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप...** आहाहा! जिसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान ऐसी अनन्त शक्तियाँ, एक-एक शक्ति की अनन्त महिमा, ऐसा शक्तिवान परमात्मा स्वयं। आहाहा! उसे नहीं जानता। और सब क्रियाकाण्ड करे दया, व्रत, भक्ति और पूजा। समझ में आया? उस ठिकाने वहाँ जाये। यहाँ तो अभी पाप के कारण निवृत्त कहाँ है?

सवेरे कहा था न? कि एक तो संसारी ज्ञान जितना यह वकालत का और तुम्हारा जज का, यह डॉक्टर का। वह सब कुज्ञान, पापज्ञान है। बराबर होगा?

मुमुक्षु : दूसरे का न्याय करे तो भी पाप?

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय करे, न्याय वहाँ कहाँ था? यह जवाहरात का धन्धा, हीरा-माणेक का धन्धा। क्या तुम्हारे कहा?

मुमुक्षु : खजूर और खारेक।

पूज्य गुरुदेवश्री : खजूर और खारेक बड़ा अरबस्तान में से उतारे। जहाज के जहाज उतारते हैं मुम्बई।

मुमुक्षु : इसलिए उसमें साथ में सोना भी आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह सबकी कला जो है जानपना, वह तो अकेला

पाप। आहाहा! यहाँ तो इससे आगे जाकर। सवेरे तो बहुत कहा था। शास्त्रज्ञान करे, वाँचे, वणे अन्दर शास्त्र का, वह पुण्यज्ञान है, धर्मज्ञान नहीं। आहाहा! धर्मज्ञान तो देह में स्थिर वह केवलज्ञानादि अनन्त गुण निजात्मा। आहाहा! उस आत्मा का ज्ञान करना। वह आत्मा अनन्त केवलज्ञानादि गुण का भण्डार, अनन्त शक्ति का साहेबा वह है प्रभु। आहाहा! उसका अंश, ज्ञेय बनाकर उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान करना, उसे ध्येय बनाकर श्रद्धा करना और ध्येय में स्थिर होना, ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसे शुद्धोपयोग कहते हैं। समाधि का अर्थ वहाँ शुद्धोपयोग है। समझ में आया?

इस ओर है। ९४ है न? उसमें है, देखो। परमसमाधि ९४ में है न? **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धोपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी परमसमाधि...** है न डाह्याभाई! अर्थात् क्या? कि शुभ-अशुभ विकल्प जो है पाप और पुण्य दोनों। वे दोनों अधर्म हैं। उनसे भिन्न पड़कर आत्मा आनन्द ज्ञायक चैतन्यबिम्ब प्रभु, निर्मल विज्ञानघन की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, ऐसा जो निश्चय सत्य मोक्षमार्ग, वह शुद्धोपयोग, वह समाधि है। वे बाबा चढ़ा दे समाधि-फमाधि, वह यहाँ नहीं। अन्यमति में कहते हैं न बाबा की समाधि लगाकर। धूल भी नहीं वहाँ। आहाहा! समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने जो अन्दर आनन्द का दल प्रभु अनाकुल शान्तरस का कन्द आत्मा, उसका ज्ञान, दर्शन, प्रतीति, स्थिरता—ऐसा जो शुद्धोपयोग पुण्य और पाप के अशुद्ध उपयोग से रहित और स्वभाव के उपयोग से सहित उसे समाधि, उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र है न? वह सम्यग्दर्शनरूपी समाधि, सम्यग्ज्ञानरूपी समाधि, चारित्ररूपी शुद्धोपयोग जिसका लक्षण, वह समाधि। आहाहा!

...जिसे नहीं, उसे आत्मा जानने में नहीं, उसके सब पुण्य और पाप के भाव चार गति में दुःख के रास्ते हैं। आहाहा! समझ में आया? फिर भले यहाँ करोड़ोंपति और अरबोंपति के बाहर में कहलाते बादशाह लक्ष्मी का। आहाहा! धूल में भी नहीं कुछ। अभी नहीं कहा था वह? मणिभाई के मकान में आहार करने गये, मुम्बई। मणिभाई। रसिकभाई के बहनोई। पाँच लाख का तो फर्नीचर। रेशम के गद्दे बिछाये रेशम। क्या कहलाती है, मखमल। मखमल बिछाया हुआ। पाँच करोड़, छह करोड़ रुपये हैं। इन बहिन के बहनोई हैं न? राजकोट रसिकभाई उनके बहनोई हैं। आहार करने गये थे।

मुमुक्षु : बहुत सुखी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया ऐसा कहती है। मुझे ऐसा लगा कि अरे रे! इसमें से निकलना मुश्किल पड़ेगा।

मुमुक्षु : आप बहुत जगह ऐसा कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लीलाधरभाई को ऐसा कहा था राजकोट। यह सब पाप। लकड़ी-बकड़ी क्या कहलाती है तुम्हारे? पॉलिश। सीढ़ियों में वह लकड़ियाँ और वह सब यह अपने यहाँ वह है न नानुभाई को। अमरेली। खारा... खारा। उन्हें सब। साफ सुथरी पॉलिश। वह अधिक पैसावाला। लकड़ी अधिक बाहर पैसा देकर। सब साफ सुथरा। देखकर कहा अरेरे! इसको निकलना मुश्किल पड़ेगा। और पीछे वह टेबिल हो न टेबिल? उसमें वस्त्र बिछाया हो और चारों ओर कुर्सियाँ हों, चाय पीने बैठे। उसमें बिस्किट। आहाहा! यह सब तैयार किया हुआ। अरेरे! कहा, निकलना मुश्किल। कहाँ फँस गया।

यहाँ तो उससे रहित अन्दर विकल्प में फँस गया है। तो बाहर की एकाग्रता में गया। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं मुनिपना लिया, नग्नपना लिया, हजारों रानियाँ छोड़ी, परन्तु अन्दर में मन में से विकल्प छोड़कर सम्यग्दर्शन की समाधि शुद्धोपयोग, वह प्रगट नहीं किया, तो कुछ नहीं किया। आहाहा! समझ में आया? कहो, मनसुखभाई! यह पैसा बैसा इकट्ठा किया और फिर चार भाईयों ने बाँट लिये। धूल में भी कुछ नहीं वहाँ, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो ऐसा ही कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह तो यहाँ कहते हैं, देखो न! निजदेह परमब्रह्म। परमब्रह्म भगवान आत्मा। आहाहा! परम उत्कृष्ट तो आनन्दकन्द, परमब्रह्म शब्द है न? डाह्याभाई! परमब्रह्म। कहा था एक बार उन बहिन को। दस वर्ष की उम्र थी। ७७ वर्ष पहले की है। साथ में एक ब्राह्मण पड़ोसी थे। वे हमारी माँ के ननिहाल के थे, इसलिए उन्हें मामा कहते थे। मूलजी मामा। वे नहाकर फिर बोले। वस्त्र पहने जरा नहाकर। 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे, भजना परिब्रह्म को दूसरा कुछ न कहना रे।'

भाषा कुछ समझे नहीं परन्तु ७७ वर्ष पहले की बात यह याद है। आहाहा! वह यह परमब्रह्म। है?

मुमुक्षु : परमब्रह्म अर्थात् भगवान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो वे भगवान ईश्वर परमब्रह्म। यह तो निजदेह में रहा हुआ परमब्रह्म निजदेह में स्थिर हो केवलज्ञानादि। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा। भाई! उसके स्वभाव की महिमा उसे नहीं आती। उसकी एक समय की वर्तमान प्रगट अवस्था-पर्याय में रुक गया है और वहाँ उसकी पूरी क्रीड़ा है। आहाहा! बहुत तो दया, दान, व्रत और मुनिपना पाले महाव्रत, और यह सब महा शुभराग की क्रीड़ा में रमता है। धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा करते-करते होगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे न? आहाहा! आती होगी? वह तो ऐसा कहते हैं परमब्रह्म। आहाहा!

निज देह में ठहरे हुए केवलज्ञानादि... निजात्मा देखा! परमब्रह्म की व्याख्या। निज आत्मा। कैसा? कि अनन्त केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप निजात्मा, उसे यहाँ परमब्रह्म कहा है। भगवान परमब्रह्म हो गये, वे तो उनके घर में रहे। वे कहीं यहाँ नहीं आते और इसे कुछ नहीं देते। समझ में आया? आहाहा! परमब्रह्म नहीं जाना। आहाहा! वह मुनिपना धारण किया, नग्नपना धारण किया, पंच महाव्रत कदाचित् पालन किये, परन्तु वह परमब्रह्म भगवान केवलज्ञान की मूर्ति प्रभु, अनन्त सुख की साहेबी का साहेबा प्रभु, उसे जिसने अन्तर में जाना नहीं। शुद्धोपयोग से उसे पकड़ा नहीं। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं, उसे शुद्धउपयोग नहीं, इसलिए उसे शान्ति और समाधि नहीं। समझ में आया? मार्ग ऐसा सूक्ष्म है बापू! आहाहा! लोगों ने तो बाहर में यह व्रत करना, दया पालना, ब्रह्मचर्य पालना उसी और उसी में रुक गये हैं। यह सब विकल्प की वृत्तियाँ तो राग की वृत्तियाँ हैं। आहाहा! उसे परमब्रह्म नहीं कहते। उस राग से भिन्न पड़ी हुई चीज़ अस्ति है, मौजूदगी है, महा चैतन्य परमब्रह्म सत्ता है। अस्तिरूप से भगवान परमानन्दस्वरूप है। उसे जिसने अन्तर सन्मुख होकर नहीं जाना, नहीं माना,

नहीं पहिचाना, स्थिर नहीं हुआ, वह सब अज्ञानी चार गति में भटकनेवाले हैं। यह कहते हैं न देखो।

वे शुद्धात्मभावना से रहित... आहाहा! शुद्धात्मा पवित्र अन्तर्मुख होने की दशावाला भगवान, बहिर्मुख से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह सब विवाद उठे हैं न कि व्यवहार करते-करते होता है, व्रत पाले पहला और पहला सोपान वह है। फिर दूसरा शुद्ध का सोपान आता है। एकदम झूठी बात है। आहाहा! जिसे जन्म-मरण के दुःख से दुःखी हुए जीव को, आहाहा! स्त्री विधवा हो, तब नहीं कहते कि यह दुखियारी है। धूल में नहीं वहाँ दुखियारी। उसने माना है। यह तो दुखियारा है आत्मा। जिसने चैतन्य को स्वामी नहीं किया, आनन्द के नाथ को जिसने स्वामीरूप से धणीरूप से नहीं किया, वह सब राग और पुण्य की क्रिया में माननेवाले, रंडुआ दुःखी है। समझ में आया? आहाहा!

नहीं जानते हैं, वे शुद्धात्मभावना से रहित... शुद्धात्मभावना कहो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो, शुद्ध उपयोग कहो, वीतरागीदशा कहो, अखण्ड आत्मा की ओर की शुद्धपरिणति कहो, वह सब शुद्धात्मा की भावना की व्याख्या है। आहाहा! समझ में आया? उससे रहित पुरुष... **'बहुविधानि' अनेक प्रकार के नारकादि भवदुःख...** आहाहा! एक अभी गोला आया था भाई! नारियल का। कल कोई रख गया है। ...निकालकर। परन्तु उसमें यह दिखलाया मानो उसमें बताया नहीं था? दो आँखें और मुख एकेन्द्रिय जीव। आहाहा! वह एकेन्द्रिय जीव होता है न! जीव यह तो घोटाला हुआ घोटाला। ऐसा था सब दिखाव। आहाहा! अरे! जीव कहाँ गया? ओहोहो! उसे यह इन्द्रियाँ नहीं आँख की। नाक नहीं। तथापि अन्दर की आकृति उस प्रकार की दिखलाने में आयी। आहाहा! यह गोला नहीं निकालते नारियल? गड़गडिया? गड़गडिया। कोई रख गया था। आहाहा! प्रभु कहते हैं कि तेरी प्रभुता केवलज्ञान और आनन्द की है, वह यदि तूने अनुभव नहीं की, उसे नहीं जाना, उसमें नहीं रमा तो नरकादि दुःख में रमना पड़ेगा, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : नरक का भय किसलिए बताया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है न!

नारकादि... स्वर्ग भी दु:ख है। यह करोड़ोंपति, अरबोंपति सेठिया कहलाते हैं, वे बेचारे दु:खी हैं। भिखारी, भिखारी, अनन्त आनन्द की लक्ष्मी को नहीं स्वीकार करते, धूल की लक्ष्मी को स्वीकार करनेवाले भिखारी रंक, वरांका, ऐसा शास्त्र में पाठ है। मनसुखभाई! यहाँ तो अलग बात है। आहाहा! जिसे एक दिन के पाँच-पाँच... दस लाख की आमदनी। आहाहा! है न वह एक राजा।

मुमुक्षु : ईराक।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजा। ऐसा कुछ है नहीं? एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी। एक घण्टे में डेढ़ लाख की आमदनी। चौबीस दु छत्तीस ऐसा नहीं। आधा अरब है, हों! पचास। आधे अरब की आमदनी एक दिन की। अभी है। उसे गद्दी पर था, उसे उसके अपनों ने मार दिया। मारकर स्वयं बैठा। वे सब नरक में जानेवाले हैं। आहाहा! अभिमान, उनके पुत्र निकले दस-दस लाख की मोटर में तो सामने कोई मर जाये तो ऐ... नहीं। राजकुमार निकले हैं, तुमने ध्यान क्यों नहीं रखा। बीच में लड़के आवें, बालक आवें कुचल जायें। मोटर खड़ी न रहे। तुमने ध्यान क्यों नहीं रखा? दरबार राजकुमार निकलते हैं। अरे! मार डाला। आहाहा! यह सब नरक की गति की पार्लियामेन्ट भरती है वहाँ। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो नरकादि चारों ही गति ली है। है? नरकादि है न? नीचे नारकी हैं, उनके दु:ख। आहाहा! यह वादीराज मुनि कहते हैं। कोढ़ हुआ था न कोढ़, शरीर में। मुनि धर्मात्मा थे। वीतराग शान्ति। शरीर में कोढ़ हुआ। आहाहा! फिर तो उसे श्रावक से कहा गया राजा को—साहेब हमारे मुनि ऐसे हैं। कोढ़ है तेरे मुनि को, सुना है। (श्रावक) कहे नहीं, नहीं। ऐ... महाराज! मैं वहाँ राजा के पास ऐसा कह गया हूँ। भगवान... भगवान... भगवान की फिर प्रार्थना करते हैं। हे नाथ! जब आप माता के हृदय में आते हो, प्रभु! तब सोना के गढ़ और चाँदी के कंगूरे ऐसा तो नगर बसता है। प्रभु! आप मेरे हृदय में आओ और यह शरीर ऐसा रहे! यह वह राज्य में कहा गया था न। वे प्रार्थना करते... करते... करते... करते... करते... कोढ़ मिट गया। तथापि वह राजा झूठा न

पड़े, इसलिए जरा कोढ़ रखा। इसलिए भाई! यह राजा ने कहा था तो कोढ़। अब इस प्रकार अभी शरीर कोढ़रहित हो गया है।

परन्तु वे मुनिराज स्वयं कहते हैं, वीतराग शान्ति को वेदन करनेवाले, हों! प्रभु! गत भव के दुःख को याद करूँ... नरक के दुःख, एकेन्द्रिय निगोद के दुःख, लट, कीड़ी, मकोड़ा। आहाहा! अग्नि में होमे। हल... हल... हल... हल जल जाये। और साधारण कीडी, मकोड़ा तो मरते हों। प्रभु! मैंने ऐसे दुःख सहन किये हैं, उस दुःख को याद करता हूँ। (तो) जैसे आयुध की चोट लगती है। मुनि कहते हैं। आहाहा! यह नरक के एकेन्द्रिय के, दो इन्द्रिय के, तीन इन्द्रिय के... आहाहा! यह प्याज और लहसुन, एक-एक टुकड़े में अनन्त जीव, वे जब अग्नि में सेंके, डाले। आहाहा!

यह तो ठीक, परन्तु एक बार मैंने मुम्बई में देखा था। पालेज से माल लेने गये थे। यह तो ६५-६६ की बात होगी १९००। उसमें एक हलवाई था। तो मुर्गे के बच्चे इतने... इतने... इतने... २५-५० उन्हें चने के आटे में डालकर तेल में तलता था। नजरों से देखा था। बाजार में निकले। माल लेने जाते थे न पालेज से मुम्बई। मुर्गी के बच्चे के भुजिया करता था। जीवित-जीवित। ऐसे फिरे और चने का आटा रखा हुआ। अभी नजरों में तैरता है। तेल की कडाही। चने के आटे में डुबोकर जीवित जीवित। तेल (में तल देता है)। आहाहा! बापू! उस पीड़ा से नरकगति की दस हजार वर्ष की स्थिति जो दुःख है, वह अनन्तगुणा है। आहाहा! साहेब भूल गया। बाहर की जरा सुविधा मिली शरीर की अपेक्षा इज्जत, कीर्ति, स्त्री, पुत्र। आहाहा! मनसुखभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! यहाँ तो भूल गया, मुनि ऐसा कहते हैं। हे नाथ! मैं भूतकाल के मेरे दुःख को एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय को मैं याद करता हूँ तो आयुध की चोट लगती है। आहाहा! ऐसे आत्मा के भान बिना नरकादि महादुःख है न? साधारण दुःख नहीं कहा। आहाहा! ९३ है न? नारकादि है। '**पारमार्थिकसुखात् प्रतिपक्षभूतानि नरनारकादिभवदुःखानि**' आहाहा! '**बहुविधानि**' बहुत प्रकार के दुःख। ओहोहो! यह लहसुन और प्याज अनन्त जीव। उसे धगधगते तेल में डाले, उसमें एक क्षण में सब समाप्त हो जाये। बापू! यह अस्ति है, गोला है। आहाहा!

श्रीमद् तो एक बार ऐसा कहते, कोई हरितकाय को काटता है, वह हमारे से देखा नहीं जाता। आत्मा है, बापू! तू अस्ति में और श्रद्धा में ले। वह अनन्त निगोद के लहसुन के, प्याज के जीव अनन्त हैं। उन्हें क्षण-क्षण में उनकी अन्तर में हीनदशा के दुःख से वेदन में आ गये हैं। आहाहा! जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में अठारह भव करते हैं, ऐसे दुःख में। आहाहा! उस दुःख की परा... भ्रमणा में फिरा करते हैं। आहाहा! महिलाओं को जैसे दस-पन्द्रह प्रकार की साड़ियाँ होती हैं, क्या कहलाता है? सन्दूक-सन्दूक। सन्दूक में। दस-पन्द्रह प्रकार की (साड़ियाँ)। दिशा को जाये तो दूसरी, पकाये तब दूसरी साड़ी। महिलाओं के साथ इकट्ठी हो, तब दूसरी, बाहर कोई मर जाये (और) रोने जाये तो दूसरी। साड़ियाँ बदलो, सब बदला-बदली। यह ऐसी तीव्रता... की बताते हैं।....

मुमुक्षु : सवेरे का अलग, दोपहर का अलग, शाम का अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अलग प्रकार के। अरे! चप्पलें अलग प्रकार के। घर में रहे उसकी चप्पल अलग, बाहर जाये उसकी चप्पल अलग। भावनगर दरबार निकले तो मर गये तो ३०० जोड़े निकले बाहर। जूतों की ३०० जोड़ी। वह मनुष्य तो बड़ा राजा भावनगर। अरेरे! क्या किया बापू! फर्र-फर्र फिरकर। यह जैसे फिराया करता है अनादि से निगोद के जीव भव को फिराया बदला, फिराया बदला करते हैं। आहाहा! एक अन्तर्मुहूर्त में तो अठारह भव, ऐसे अनन्त भव किये। यह आत्मा के आनन्द के भान बिना। समझ में आया? आहाहा! करने जैसा किया नहीं, नहीं करने जैसे के बड़े आसन बिछाये। आहाहा! यह किया और मैंने यह किया और मैंने यह किया। बापू! क्या करे बापू तू? एक रजकण की अवस्था भी नहीं कर सकता। आहाहा! उसमें नहीं आया था? हुकमचन्दजी। ईश्वर है वह एक कर्ता है जगत का, ऐसा अज्ञानी मानता है, यह ऐसा कहते हैं, मैं रजकण को करूँ, दूसरे आत्मा का कुछ करूँ, वह तो अनन्त द्रव्य का कर्ता होता है। आहाहा! वह तो—ईश्वर तो एक कर्ता मानता है अज्ञानी। अज्ञानी मानता है, उसे ईश्वर (को कर्ता)। इसे शरीर को करूँ, वाणी को करूँ, दूसरे को सुख दूँ, दूसरे को दुःख दूँ, दूसरे को अनुकूलता दूँ, सुविधा दूँ, दुविधा दिलाऊँ। आहाहा! कितना तुझे

कहते हैं कि यह किया तुम्हारा? कितने का कर्ता? अनन्त का कर्ता। आहाहा! वह एक कर्ता है, अलग है।

दो-पाँच हजार मिले दिन के, वहाँ ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! लाख, दो लाख की आमदनी हो दिन की तो कौन जाने आकाश को मारता होगा पाटा। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है? प्रभु! तू क्या करता है? आहाहा! कहते हैं कि तेरी जाति को जाने बिना ऐसे नरक के दुःख वे अनन्त भोगे। वह कर्तापने की बुद्धियाँ मिथ्यात्व की है। आहाहा! 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है।' दुकान की व्यवस्था में स्वयं जब पेढी पर बैठे तब यह सब व्यवस्था मैं करता हूँ। हमारे कुँवरजीभाई को ऐसा बहुत था। आहाहा! ढाई रुपये का, तीन रुपये का महीना मिलता हो उसका बक्सा उसका। क्या कहलाता है? लगेज। वह उसे मिलता दो लाख की आमदनी वर्ष की। अभिमान चढ़ गया। मैंने यह किया, मैंने यह किया है, मैं दुकान सम्हाली है।

मुमुक्षु : यह बात सच्ची है। दूसरों से दुकान नहीं चलती थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पुण्य के रजकणों के कारण से है। उससे क्या था धूल में? आहाहा! ६६ के वर्ष में मैंने उससे कहा था। ६६-६६। कितने वर्ष हुए? ६७ वर्ष हुए। ६७ वर्ष पहले कहा था, भाई! ऐई! कुँवरजीभाई! तुम्हारी यह... देखकर मुझे तो ऐसा लगता है। मैं तो भगत ही कहलाता था न छोटी उम्र से। २० वर्ष की उम्र की बात है। ६७ वर्ष पहले। भाई! तुमको देखकर मुझे ऐसा लगता है कि तुम ढोर में जाओगे, हों! डाह्याभाई! क्योंकि यह तुम्हारे लक्षण कहीं नरक में जाने के अपने नहीं हैं। हम बनिया हैं, माँस-मदिरा खाते (-पीते) नहीं, इसलिए नरक में तो नहीं जायेंगे। देव में जाने के लक्षण नहीं, कहा और मरकर मनुष्य होओ, यह मुझे लगता नहीं। तुम्हारे लिये एक गति ढोर की रही। आहाहा! दुकान पर बैठे थे ऐसे गद्दी पर (बैठे थे)। दुकान चलती थी। तब तो वर्ष की पाँच हजार की आमदनी। फिर अधिक हो गयी, बढ़ गयी। यह सब देखा था न तुम्हारा? उसे कहा, हों! भाई! परन्तु बोले नहीं, हों! मेरे सामने बोले नहीं। भगत है। भगत बोले। उसके सामने मश्करी नहीं होती, उसके सामने... नहीं होता। भाई! ऐसा लगता है, हों! हम सब इकट्ठे होते हैं यहाँ... ३० व्यक्ति हैं अपने। दो

दुकानों में। मैं खाने आया हूँ मुझे... तुमको देखकर तो ऐसा होता है। अरेरे! भाई! तुझे कहाँ जाना है? तू कहाँ का है? कहाँ भटकता है? आहाहा!

अनाकुल आनन्द का नाथ परम समाधिस्वरूप, उसकी दर्शन और ज्ञान की समाधि नहीं की। आहाहा! उसने क्या किया? उसने किया नरकादि दुःख। आहाहा! है? महा दुःख आदि **व्याधिरूप...** उसे व्याधि कहा, देखा! **अनन्त काल तक भोगते हैं।** आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य चाहिए बापू! खोटा लम्बा... लम्बा... लम्बा... करके सत्य हाथ न आवे। आहाहा!

भावार्थः—मन के दुःख को आधि कहते हैं,... देखा! मन में संकल्प-विकल्प करना। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव और यह कमाने के, भोग के, विषय के, इज्जत के भाव, वे सब **मन के दुःख को आधि...** वह आधि चढ़ी आधि। भगवान आनन्द के नाथ पर आधि चढ़ी यह तो। आधि नहीं कहते? अन्धेरा हो जाये। क्या कहलाये बरसात। धुन्ध आवे। धुन्ध... धुन्ध। बहुत धुन्ध ऐसी आवे न, साथ में मनुष्य खड़ा हो, वह न दिखाई दे। देखा न हमारे तो... आवे न। साथ में कोहरा... कोहरा। इतना कोहरा हो कि साथ में चलते यहाँ मनुष्य हो तो दिखाई न दे, इतनी। पोरबन्दर में तो बहुत कोहरा। एक बार पोरबन्दर जाते थे, उसमें देखा रास्ते में। एक ओर नंगे पैर हों, उसमें पत्थर बड़े और उसमें यह कोहरा। आहाहा! और उस समय तो जवान अवस्था इसलिए कुछ... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **मन के दुःख को आधि...** आधि चढ़ी नहीं कहते? ऐसा कुछ कहते हैं। आधि चढ़ी, ऐसी कुछ कहते हैं। इसी प्रकार यह संकल्प-विकल्प जो चढ़े, वह बड़ी आधि चढ़ी। आहाहा! उससे रहित भगवान ने यदि इसने सम्यग्दर्शन नहीं किया... आहाहा! ऐसे आधि में वेदन में आता है। आहाहा! आत्मा की शान्ति वेदन में नहीं आती। **और तनुसम्बन्धी दुःखों को व्याधि कहते हैं,...** लो, आया न? उपाधि नहीं ली यहाँ। **नाना प्रकार के दुःखों को अज्ञानी...** नरकादि की उपाधि है न बाहर की? वह उपाधि। **जीव भोगता है।** आहाहा! नाना अर्थात् अनेक। अनेक प्रकार के दुःखों को अज्ञानी भोगता है। आहाहा!

ये दुःख वीतराग परम आह्लादरूप जो पारमार्थिक सुख उससे विमुख है। कहते

हैं कि वह दुःख है कैसा? आहाहा! **वीतराग परम आह्लादरूप जो पारमार्थिक सुख, उससे (-उल्टा) विमुख है।** उल्टा है। आहाहा! आत्मा वीतरागी परम आनन्दस्वरूप प्रभु है। अरे! कैसे बैठे? एक गोबर का पोहटा यह लड़कियाँ निकले न, और बड़ी भैंस हो और एक पोहटा... आहाहा! अनन्त-अनन्त अवतार किये बापू! एक आत्मा में आनन्द के ज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना यह सब आचरण किया, उसका फल चार गति है। स्वर्ग में भी दुःख है। चारों गतियाँ ली हैं न!

दुःख किसे कहते हैं? संयोगी चीज़ दुःख नहीं, ऐसा कहते हैं। प्रतिकूल संयोग आवे, रोग आवे, निर्धनता, वह दुःख नहीं। आत्मा वीतरागी परम आनन्द सुखस्वरूप है, उससे उल्टा। है? **पारमार्थिक सुख...** परम आर्थिक सुख। जिसके आनन्द के स्वाद के स्वादिया आगे जिसे दुःख ऐसा लगता है, कहते हैं। आहाहा! शुभभाव भी दुःख है। मन का कहा न? मन का दुःख आधि। वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह शुभभाव दुःख है। अशुभभाव तो तीव्र दुःख है। यह दुःख है। क्योंकि परम वीतरागी आनन्द पारमार्थिक आनन्द सुख भगवान का जो परम आनन्द चाहिए, उससे यह दुःख है, वह विमुख अर्थात् उल्टा है। आहाहा! दुःख, संयोग को दुःख यहाँ नहीं कहा। आहाहा! नारकी को ऐसा कि संयोग है, इसलिए दुःख, यह नहीं। आनन्द से उल्टा जो विकार करता है, वह दुःख शुभ-अशुभभाव। आहाहा! स्वभाव की विमुखता के परिणाम वह दुःख। स्वभाव की सन्मुखता के परिणाम, वह सुख। यह व्याख्या है। आहाहा! समझ में आया? यह लोग ऐसा कहते हैं कि ऐसा यह मार्ग! साधारण को हमारे क्या समझना? हम कुछ समझते न हो। धन्धा करना पूरे दिन। मर जाता है अब पूरे दिन करके, क्या करता था? यह समझे बिना मर जायेगा चौरासी के अवतार में। पता नहीं लगेगा। भाई! आहाहा! तेरे देह का टुकड़ा साथ में नहीं रहेगा। पैसे तो कहीं रह गये धूल। आहाहा!

पारमार्थिक सुख उससे विमुख है। यह जीव अनन्त काल एक निजस्वरूप के ज्ञान बिना... आहाहा! चारों गति वापस ली, हों! स्वर्ग में अनन्त बार गया। यह सेठाई में तो अनन्त बार आया। अरबों रुपये की आमदनी, ऐसा सेठ अनन्त बार हुआ। वह प्राणी दुःखी है बेचारा। आहाहा! परमानन्द प्रभु आत्मा से विरुद्ध भाव, वह दुःख है, इसलिए कोई सेठिया को पैसेवाले सुखी कहते हों तो मूढ़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरी दुनिया ऐसा कहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया पागल है। पागल, पागल की महिमा करते हैं। यह पैसेवाले हैं, यह सामग्री है। अपने इसे पुत्री दो तो सुखी होगी। ऐसे के ऐसे। पागल के गाँव कहीं अलग होते हैं? पागल के गाँव भरे हैं पूरे। पागल के। वीतराग परमात्मा कहते हैं, प्रभु! यह वीतरागी परम आनन्द परम सुख से विकल्प सब जो शुभ-अशुभ हैं, वे दुःखरूप हैं। आहाहा! अब कोई ऐसा कहे कि परमात्मा की भक्ति करते-करते कल्याण होगा तो परमात्मा की भक्ति का राग, वह दुःख है।

मुमुक्षु : परसन्मुख का भाव दुःख ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य की ओर का झुकाव है, वह दुःख ही है। आहाहा! बहुत बात। लोगों को सत्य मिला नहीं, बेचारे क्या करें? आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दर्शन वह समाधि और उस सम्यग्दर्शन का भेद द्रव्य, उसमें सुख की प्राप्ति होती है, उसके सम्यग्दर्शन की सुख की प्राप्ति, उससे पुण्य और पाप के विकल्प वे मात्र दुःख हैं। आहाहा! समझ में आया? यह **अनन्त काल एक निजस्वरूप के ज्ञान बिना...** आत्मज्ञान नहीं, चैतन्य का ज्ञान नहीं, आनन्द का ज्ञान नहीं। जिसने वर्तमान ज्ञान की दशा में पूर्णानन्द के नाथ को ज्ञेय नहीं बनाया। आहाहा! यह बात कैसी यह सब!

वर्तमान ज्ञान की एक समय की पर्याय में त्रिकाली भगवान का ज्ञान आया नहीं। आहाहा! वह ज्ञान कहाँ से? उसे ज्ञान क्या कहना? ज्ञानी भगवान आत्मा का ज्ञान पर्याय में आवे, तब वह समाधि और वह समकित है। उसके विरुद्ध का जितना यह ज्ञान शास्त्र का या दूसरा, आहाहा! वह दुःखरूप है। उसमें नहीं आता परमार्थवचनिका में? परसत्तावलम्बी ज्ञान को मोक्षमार्ग नहीं कहते। परमार्थवचनिका। मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में पीछे (परिशिष्ट) आता है। आहाहा! धर्मी जीव जितना ज्ञान परसत्तावलम्बी लक्ष्य में आवे शास्त्र का, वह भी मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! चिट्ठी है न, परमार्थवचनिका? आहाहा! परसत्तावलम्बी, स्वसत्तावलम्बी ऐसा ज्ञान। आहाहा!

भगवान की सत्ता प्रभु आत्मा की वीतरागी निराकुल आनन्द की जिसकी सत्ता

है। अर्थात् कि जिसका अस्तित्व वह है। आहाहा! ऐसा उपदेश करते हैं। आहाहा! अरिहन्तदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहे। उसमें है कहीं। बाद में है। केवली भगवान है न। ९४ है। **ऐसा केवली भगवान कहते हैं।** १९४ में है। १९४-१९४ में है? आहाहा! **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धोपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी परमसमाधि इस जीव के नहीं हो सकती ऐसा केवली भगवान कहते हैं।** यह शुभादि क्रिया के काण्ड में रुका हुआ, उसे समाधि संवर नहीं होता। ऐसा केवली भगवान कहते हैं। आहाहा! वे कहते हैं कि केवली पण्णतो धम्मो शरणं। क्या? यह पर की दया पालना और यह। मार डाला बेचारे को। उसे भान नहीं कहनेवाले को, सुननेवाले को नहीं। जय नारायण। जय... जय... जय... वह हुँकार दे न फिर वह। आहाहा!

यहाँ केवली भगवान ऐसा कहते हैं। ऊपर शुभाशुभ शब्द है। शब्द है अन्दर यह, हों! देखो! शुभाशुभ है न? **सकल विकल्पजाल से रहित जो परमात्मा उससे विपरीत शुभाशुभ परिणाम...** अन्दर १९४ में है। सकल पुण्य-पाप के विकल्प से रहित भगवान की शुद्धपरिणति उपयोग से शुभभाव आदि वह विपरीत है। आहाहा! कहो, समझ में आया? है ऊपर? ऐसा आयेगा। **शुभाशुभ परिणाम दूर न हों—मिटें नहीं, तबतक रागादि विकल्प रहित शुद्ध चित्त में सम्यग्दर्शन-ज्ञान...** आहाहा! यह पुण्य के विकल्प भी मिटते नहीं, तब तक उसे अन्तर में सम्यग्दर्शन नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग कठिन भाई! ऐसी युवा अवस्था हो २०-२५-३० वर्ष की उम्र। उसमें पाँच-सात हजार की मासिक आमदनी हो। स्त्री ऐसी मिली हो, पुत्र ऐसे हों, आहाहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। हम मानो कुछ हैं। धूल भी नहीं, सुन न! शुभाशुभ विकल्प से रहित परमानन्द के नाथ को परखा नहीं, स्पर्शा नहीं, वेदन किया नहीं, जाना नहीं। आहाहा! वे सब दुःखी हैं। समझ में आया?

निज स्वरूप के ज्ञान बिना चारों गतियों के नाना प्रकार के दुःख... आहाहा! चारों ही गति का दुःख यहाँ तो वर्णन किया है। प्रतिकूलता नरक में, इसलिए वह दुःख और स्वर्ग में अनुकूलता, इसलिए सुख—ऐसा है नहीं। स्वर्ग में भी राग का दुःख ही है। आहाहा! वहाँ तो बहुत अशुभराग है। यहाँ तो शुभराग हो तो दुःख है, कहते हैं।

मुमुक्षु : मन्दकषाय दुःख?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है। आहाहा! मन्द। यह तो टीका में है? अभव्य को भी मन्द मिथ्यात्व और मन्द अनन्तानुबन्धी यह है। बन्ध अधिकार की यह गाथायें चलती हैं। मन्द मिथ्यात्व और मन्द अनन्तानुबन्धी, वह कहीं वस्तु नहीं है। आहाहा! उसमें कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा नहीं होती और शास्त्र का ज्ञान होता है, छह काय की दया का भाव होता है, वह सब मन्द कषाय, परन्तु वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अकषायस्वरूप उसे कषाय के विकल्प से जरा भी लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। उसे वर्तमान विकल्प से रहित ऐसी दशा बिना। है न?

निज स्वरूप के ज्ञान बिना चारों गतियों के नाना प्रकार के दुःख भोग रहा है। आहाहा! यह दुनिया में तो ऐसा कहते हैं न कि पहला सुख वह निरोगी काया। लोग ऐसी बात करते हैं न पागल। पहला सुख निरोगी काया। शरीर निरोगी, वह सुख। दूसरा सुख चार पुत्र। अर्थी उठानेवाले चाहिए न! तीसरा सुख सुकुल की नारी। अच्छे घर की नारी। चौथा सुख कोठी में अनाज। पागल परन्तु। लो, मनसुखभाई! यह सुख। दुःख है अकेला दुःख का समुद्र है। आनन्द का नाथ आनन्द से भरपूर प्रभु, वहाँ तो तेरी नजर नहीं। उस निधान को परखा नहीं और इस राग में सुख मानकर पड़ा है। आहाहा! चार गति के दुःख सहे, प्रभु। स्वर्ग में जायेगा तो वहाँ से वापस पशु में जाकर नरक में जायेगा। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, भव के अभाव की दृष्टि की नहीं। आहाहा! वह चारों गति के दुःख भोगता है। **ऐसा व्याख्यान जानकर...** ऐसा सुनकर—ऐसा कहते हैं। ऐसा प्रवचन सुनकर। **निज शुद्धात्मा में स्थिर होके...** आहाहा! वापस यह अपना भगवान आत्मा, हों! वीतराग में और मन्दिर में, वह नहीं, वह तो शुभभाव है। अशुभ से टलने के लिये शुभ हो, परन्तु वह वस्तु नहीं, धर्म नहीं।

निज शुद्धात्मा में स्थिर होके... लो! अपना निज आत्मा पवित्र भगवान सच्चिदानन्द प्रभु में **स्थिर होके राग-द्वेषादि समस्त विभावों का त्याग कर...** देखो! शुभाशुभ विकल्प का त्याग करके। **निज स्वरूप की ही भावना करनी चाहिए।** निज स्वरूप जो शुद्धचैतन्य, उसके सन्मुख होकर एकाग्रता करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह बात है। परन्तु ये लोग ऐसा कहते हैं कि परन्तु वह निश्चय बराबर है। अगास गये न! बात सुनी,

घण्टे भर व्याख्यान (सुना)। परन्तु उसका साधन? ऐसा पूछे। यह साधन क्या? यह वाँचन और....

मुमुक्षु : परसन्मुख के साधन से धर्म होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! बापू! साधन यहाँ निषेध राग है। उसे साधन कहा जाता है? आहाहा! उस राग से भिन्न पड़कर प्रज्ञाब्रह्म भगवान आत्मा की एकाग्रता वह साधन है। समझ में आया? परन्तु उन लोगों में यह आता है न, 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोही' उसमें यह आता है। साधन अर्थात् विकल्प। लोग साधारण मनुष्य। यहाँ तो साधन भगवान पुण्य-पाप के विकल्प से रहित निजस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और साधन, वह साधन है। साधन का भी विवाद।

समस्त विभावों को त्यागकर निज स्वरूप की ही... देखो! यह तो एकान्त कर दिया। निजस्वरूप की 'ही' **भावना करनी चाहिए।** १९३ हुई।

यह योगफल निजस्वरूप की भावना करना, यह है। आहाहा! भावना शब्द से सन्मुखता, एकाग्रता। यह करनेयोग्य है। परसन्मुख में जितना विकल्प जाता है, वह सब दुःखरूप है। और उसे साधन मानकर अन्दर में आयेगा, जायेगा (ऐसी) मान्यता मिथ्या भ्रम है। आहाहा! बाहर से छोड़ नहीं सकता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १९४

अथ–

३१७) जामु सुहासुह–भावडा णवि सयल वि तुट्टंति।
परम–समाहि ण तामुमणि केवलि एहु भणंति।।१९४।।

यावत् शुभाशुभभावाः नैव सकला अपि त्रुटयन्ति।
परमसमाधिर्न तावत् मनसि केवलिन एवं भणन्ति।।१९४।।

जामु इत्यादि। जामु यावत्कालं णवि तुट्टंति नैव नश्यन्ति। के कर्तारः। सुहासुह–भावडा शुभाशुभविकल्पजालरहितात् परमात्मद्रव्यद्विपरीताः शुभाशुभभावाः। परिणामा कतिसंख्योपेता अपि। सयल वि समस्ता अपि तामु ण तावत्कालं न। कोडसौ। परम–समाहि शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरुपः शुद्धोपयोगलक्षणः परमसमाधिः। क्व। मणि रागादि–विकल्पत्वेन शुद्धचेतसि केवलि एहु भणंति केवलिनो वीतरागसर्वज्ञा एवं कथयन्तीति भावार्थः।।१९४।। इति चतुर्विंशतिसूत्रमितमहास्थलमध्ये परमसमाधिप्रतिपादकसूत्रषट्केन प्रथममन्तरस्थलं गतम्।

आगे यह कहते हैं, कि जब तक इस जीव के शुभाशुभ भाव सब दूर न हों, तब तक परमसमाधि नहीं हो सकती–

जब तक सारे भाव शुभाशुभ नष्ट नहीं हो जाते हैं।
तब तक परम समाधि न मन में केवलि भगवन कहते हैं।।१९४।।

अन्वयार्थः– [यावत्] जब तक [सकला अपि] समस्त [शुभाशुभभावाः] सकल विकल्प–जाल से रहित जो परमात्मा उससे विपरीत शुभाशुभ परिणाम [नैव त्रुट्यंति] दूर न हों–मिटें नहीं, [तावत्] तब तक [मनसि] रागादि विकल्प रहित शुद्ध चित्त में [परम–समाधिः न] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररुप शुद्धोपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी परमसमाधि इस जीव के नहीं हो सकती [एवं] ऐसा [केवलीनः] केवलीभगवान् [भणंति] कहते हैं।

भावार्थः– शुभाशुभ विकल्प जब मिटें, तभी परमसमाधि होवे, ऐसी जिनेश्वरदेव की आज्ञा है।।१९४।।

इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में परमसमाधि के कथनरुप छह दोहों का अंतरस्थल समाप्त हुआ।

वीर संवत् २५०२, वैशाख कृष्ण ८, मंगलवार
दिनांक- १०-०५-१९७७, गाथा - १९४, प्रवचन-२३४

यह परमात्मप्रकाश, १९४ गाथा। १९३ चल गयी तब अन्तिम। अन्तिम होते हैं न तीन। उसकी चल गयी। यहाँ १९४। परमात्मप्रकाश है, योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त मुनि भावलिंगी प्रचुर तो अतीन्द्रिय आनन्द का जिन्हें वेदन है, मुनि को प्रचुर आनन्द— अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है। उसमें उन्हें विकल्प आया, प्रभाकरभट्ट उनके एक शिष्य थे, उन्हें लक्ष्य करके यह शास्त्र बनाया है। उसमें यह समाधि अधिकार चलता है। १९४ (गाथा)।

आगे यह कहते हैं कि जब तक इस जीव के शुभाशुभभाव सब दूर न हों, तब तक समाधि नहीं हो सकती—समाधि के तीन प्रकार हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। तीनों समाधि हैं। समाधि अर्थात्? आधि, व्याधि, उपाधिरहित वह समाधि। उपाधि अर्थात् संयोगों की चीज़ है, वह उपाधि है, उससे रहित। पुण्य और पाप के विकल्प उठते हैं, वह आधि है। मन की आधि। और शरीर में रोग है, वह व्याधि। आधि, व्याधि, उपाधि रहित, वह आत्मा की समाधि। वह सम्यग्दर्शन, वह समाधि है। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों में समाधि अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अनुभव में, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। वह समाधि शुभाशुभभाव के विकल्प से रहित होती है। क्योंकि शुभ-अशुभभाव दोनों राग हैं। राग है, वह दुःख है। दुःख है, वह असमाधि है। उससे रहित, यह कहा न?

जब तक इस जीव के शुभाशुभ भाव सब दूर न हों,... शुभ और अशुभभाव अन्तर से दूर न हो और स्वभाव सन्मुख न हो **तब तक समाधि नहीं हो सकती—**यहाँ तीनों इकट्ठा लेना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। १९४।

३१७) जामु सुहासुह-भावडा णवि सयल वि तुट्टंति।
परम-समाहि ण तामुमणि केवलि एहु भणंति।।१९४।।

आहाहा! **अन्वयार्थः—जब तक समस्त सकल विकल्पजाल से रहित...**

परमात्मप्रकाश है न यह ? परमात्मा तो अन्दर निर्विकल्प आनन्दस्वरूप 'जिन सोही यह आत्मा'। यह परमात्मस्वरूप, वही आत्मा। उसका द्रव्यस्वरूप द्रव्यदृष्टि का विषय, सम्यग्दर्शन का विषय परमात्मस्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : कल आप कहते थे ध्रुव स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह का वह हुआ। परमात्मस्वभाव कहो, ध्रुवस्वभाव कहो, सामान्यस्वभाव कहो, एकरूप स्वभाव कहो, सदृश कहो, नित्य कहो, अभेद कहो, उसके अनेक नाम हैं। यह तो परमात्मप्रकाश है न! इसलिए परमात्मा को ही मुख्य लिया है स्वयं ने। वस्तु स्वयं पुण्य और पाप के विकल्परहित, क्योंकि पुण्य और पाप इन नव तत्त्व में, पुण्य और पापतत्त्व भिन्न है। और आत्मतत्त्व यह ज्ञायकस्वरूप, वह तो पुण्य-पाप तत्त्व से भिन्न तत्त्व है। आहाहा!

ऐसा जो भाव **जब तक समस्त सकल विकल्पजाल से रहित...** आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह निर्विकल्प समाधि है। निर्विकल्प स्वरूप स्वयं है रागरहित आनन्दस्वरूप भगवान। उस आनन्द में विकल्प से रहित होकर निर्विकल्प आनन्द की दशा का वेदन होना, उसकी प्रतीति, उसका नाम समकित है। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! और वह भी त्रिकाली स्वरूप निर्विकल्प समाधिस्वरूप ही है। जो कुछ दशा के नाम आते हैं, उस स्वरूप त्रिकाल वस्तु है। प्रायश्चित आता है न नियमसार में ? प्रायश्चित। निर्विकल्प वीतरागीदशा होना, उसका नाम पर्याय का प्रायश्चित है। परन्तु वह स्वयं प्रायश्चितस्वरूप आत्मा है। ऐसा वहाँ कहा है। प्रायः अर्थात् बहुलता से, विशेष, चित्त अर्थात् ज्ञान। वह तो अकेला ज्ञान का पिण्ड है। इसलिए उस वस्तु को ही प्रायश्चित कहा है और प्रायश्चित के अवलम्बन से प्रायश्चितदशा सत्य प्रायश्चितदशा प्रगट होती है। अरेरे!

इसी प्रकार यहाँ परमसमाधि जो कहते हैं, वह आत्मा परमसमाधिस्वरूप ही है। अत्यन्त नित्य ध्रुव। जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, सम्यग्दर्शन का जिसके ऊपर लक्ष्य है। लक्ष्य तो ज्ञान है, परन्तु वह श्रद्धा जिसकी ओर ढली है, वह स्वयं परमात्मस्वरूप और ध्रुव समाधिस्वरूप ही है। आहाहा! ऐसी बातें, परन्तु सूक्ष्म पड़े लोगों को। क्या हो ? कहेंगे '**केवलि एहु भणंति**' केवली परमात्मा ने ऐसा कहा है।

कहते हैं, **जब तक समस्त सकल विकल्पजाल से रहित जो परमात्मा...** यह पहली व्याख्या की, देखा परमात्मा की। यह परमात्मा यह स्वयं। त्रिकाल। आहाहा! यह शैली है परमात्मप्रकाश की। समस्त शुभ-अशुभ चाहे तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठे, वह भी राग और दुःखरूप है। तो जो स्थूल शुभ है बाह्य का यह दया, दान, व्रत और भक्ति, पूजा, वह तो दुःखरूप, आकुलतारूप असमाधिरूप, उससे रहित **सकल विकल्पजाल से रहित जो परमात्मा...** जो उसका नाम। परमात्मप्रकाश है तो परमात्मा लिया पहला। परम आत्मा, परमस्वरूप, यह ३२० गाथा में यह आया था, जयसेनाचार्य की टीका में। यह परमात्मप्रकाश की गाथा थी ६८। गाथा ६८ है इसकी। **जीवो 'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।'**

मुमुक्षु : आधाररूप देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आधाररूप उससे दिया है। इसमें है। वहाँ दिया है। यह अभी बहुत व्याख्यान हो गये हैं वहाँ। ६८-६८ है इसमें। आधार दिया है। ३२० की टीका है न जयसेनाचार्य की। ६८, **'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ'** ६८ गाथा है। जो परमात्मस्वरूप जो नित्य ध्रुव है, वह तो पर्याय में आता भी नहीं, कहते हैं। वह जन्मता नहीं तथा वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय भी उपजाता नहीं। आहाहा! कठिन काम! है? **'ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ'** जन्म-मरण तो नहीं, मरता (नहीं) उसमें व्यय भी उसमें नहीं। त्रिकाली जो परमात्मस्वरूप कहते हैं, उसमें उत्पाद-व्यय है ही नहीं। **'उप्पज्जइ'** उत्पाद है और **'मरइ'** वह व्यय है। आहाहा! **'उप्पज्जइ'** आहाहा! बहुत कठिन काम है। क्या हो? अनन्त काल से इसने भटकने की पद्धति इसने छोड़ी नहीं। और भटकने की पद्धति रहित परमात्मा स्वयं **'ण बंधु ण मोक्खु करेइ'** जिसे हम निश्चय से जीव—आत्मा कहते हैं, कहते हैं, वह तो बन्ध को भी करता नहीं और मोक्ष को भी करता नहीं। आहाहा! है? **'बंधु ण मोक्खु करेइ'** जीवो। उसे हम जीव-परमात्मा और आत्मा कहते हैं। **'जिउ परमत्थें जोइया'** हे योगी! **'जिणवरु एउँ भणेइ।'** जिनवर ऐसा फरमाते हैं। आहाहा! ऐसा यहाँ **'केवली एहु भणंति'** कहा है।

जो यहाँ आत्मा निश्चय से आत्मा उसे कहा है कि जिसमें उत्पाद-व्यय, संसार

का उत्पाद और संसार का व्यय भी नहीं तथा मोक्ष का उत्पाद और मोक्ष के मार्ग की उत्पत्ति जिसमें नहीं। क्योंकि वह तो सब पर्यायों में है। मोक्ष का मार्ग, मोक्ष, बन्ध का मार्ग और बन्ध, यह सब अवस्थाओं में पलटती दशा में है। वस्तु है त्रिकाल, उसमें वह है ही नहीं। आहाहा! जो वस्तु है त्रिकाल, उसे यह जीव जिनवर उसे जीव कहते हैं। अरेरे! ऐसी बात है। जिनवर उसे जीव कहते हैं। इसी प्रकार यहाँ केवली उसे समाधि कहते हैं। यहाँ पर्याय से बात ली है। परन्तु पर्याय समाधि जो होती है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह समाधि है, वह आनन्द ही है तीनों में। यह उसका स्वरूप ही परमसमाधि इसलिए पहला लिया। देखो, है न यहाँ? **सकल विकल्पजाल से रहित जो परमात्मा...** आहाहा! भगवान स्वयं तो सकल-विकल्प से रहित ही वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? वह परमात्मा उसे कहा।

उससे विपरीत... यह परमात्मा जो स्वरूप जो नित्यानन्द प्रभु, जिसे ६८ गाथा में जीव कहा, वह जीव तो मोक्ष और मोक्ष के मार्ग को भी करता नहीं। वह तो ध्रुव है। और वह ध्रुव, वह समकित दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन—मोक्षमार्ग का विषय वह है। मोक्षमार्ग का विषय मोक्षमार्ग स्वयं नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, जो **सकल विकल्पजाल से रहित...** सब विकल्प अर्थात्? अशुभ विकल्प तो रहित ही, परन्तु शुभ उपयोग है, जितने असंख्य प्रकार, उससे परमात्मा स्वयं रहित ही है। क्योंकि रहित होता है, वह रहित हो तो रहित होता है। समझ में आया? रहित पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव से रहित हो तो पर्याय में रहित होता है। वस्तु जो हो तो रहित होने का प्रसंग ही उसे नहीं। आहाहा! और जो सम्यग्दर्शन का जो विषय वह यह **सकल विकल्पजाल से रहित जो परमात्मा।** परम आत्मा, परमात्मा, परमस्वरूप ऐसा। त्रिकाली परमपारिणामिक स्वभाव। परमपारिणामिक अर्थात्? सहजस्वरूप। जिसे कर्म के निमित्त की अपेक्षा नहीं। जीव राग करे, परन्तु उसमें कर्म का निमित्त है और क्षयोपशम और क्षायिक पर्याय जीव करे स्वयं से, परन्तु उसमें कर्म के निमित्त का अभाव है। इतना एक में निमित्त और निमित्त का अभाव, ऐसी अपेक्षावाले को पर्याय कहते हैं। परन्तु जिसे वह अपेक्षा ही नहीं, ऐसी त्रिकाली चीज़ जो है, उसे यहाँ परमात्मा और उसे निश्चय आत्मा, निश्चय जीव (कहते हैं), आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का ध्येय है। इसलिए

पर्याय का ध्येय उड़ाकर, द्रव्य के ध्येय की दृष्टि में उसे समकित होता है। आहाहा! समझ में आया? यह ३२० गाथा में जयसेनाचार्य की टीका में बहुत लिखा है, बहुत आया है। ओहोहो!

वहाँ तो यहाँ तक कहा कि यह सब जानकर, जानने को कहा क्या हमने? इसलिए ऐसा जानने में आता है कि ऐसे उसमें शब्द हैं, कि परमस्वभावभाव नित्यानन्द ध्रुव, वह ध्येय है। और उस ध्येय के लक्ष्य से जो यह समाधि होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह पर्याय है। उस पर्याय के ५९ नाम तो द्रव्यसंग्रह में हैं। यह सब वाँचन हो गये हैं। वहाँ वाँचन हुए। क्योंकि उस ज्ञानचक्षु (३२० गाथा के प्रवचन की पुस्तक) में आया है न वह। वरना तो नहीं वाँचा, परन्तु सामने सबके पास ज्ञानचक्षु था। वह तीन दिन चला। आप पुण्य और पाप के विकल्परहित जो अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे अनेक नाम बुलाये हैं हजारों नाम। हजारों नाम से। पर्याय को, हों! यहाँ समाधि नाम से कहा है।

विपरीत शुभाशुभपरिणाम दूर न हों.... उसे टूटे नहीं। आहाहा! अर्थात् कि शुद्ध परमात्मस्वभाव पर दृष्टि न जाये, तब तक शुभ-अशुभ विकल्प टूटते नहीं। सूक्ष्म तो है प्रभु! वीतराग का मार्ग ऐसा बहुत सूक्ष्म है, बापू! लोगों को मिला नहीं। मिला है उतना सब व्यवहार और पुरुषार्थसिद्धिउपाय में तो छठवीं गाथा में तो ऐसा कहा कि कथन तो सब व्यवहार से आयेंगे, परन्तु जो व्यवहार को (ही निश्चय) मानता है, वह तो उपदेश के योग्य नहीं। धर्म के योग्य तो नहीं। आहाहा! पुरुषार्थसिद्धिउपाय छठवीं गाथा। समझ में आया? क्योंकि निमित्त के कथन तो बहुत आते हैं।

यह ११वीं गाथा में आ गया है भावार्थ में। शुद्धनय ध्येय है, उसे समझाने में प्रकार तो बहुत आते हैं भेद डालकर और त्रिकाली जो विषय तो वही है, एक ही है सम्यग्दर्शन का। परन्तु भेद के अनेक प्रकार आवे, ऐसा कथन तो जिनवाणी में भी हस्तावलम्ब सहायक अर्थात् साथ में देखकर बहुत कथन है, परन्तु उसका फल संसार है। है उसमें। ११वीं गाथा समयसार। तीनों का फल संसार। अर्थात् भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो जीवों को अनादि का है, एक। ११वीं गाथा समयसार (का) भावार्थ। पण्डित जयचन्द्रजी (ने) पाठ में लिखा है। क्योंकि पाठ में भूतार्थ है न अकेला? त्रिकाल वस्तु

का आश्रय, वह समकितदर्शन, और पर्याय मात्र असत्य-झूठी है, ऐसा कहा। वह कैसे ? कि सम्यग्दर्शन का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये त्रिकाली भूतार्थ, सत्यार्थ यह जो परमात्मा कहते हैं, वही मुख्य और सत्य है, इसलिए वह नित्य है और पर्यायमात्र है, उसे गौण करके, व्यवहार कहकर असत्य है, ऐसा कहा गया है। अभाव करके 'नहीं'— ऐसा नहीं। समझ में आया ? '**ववहारोऽभूदत्थो**' पर्यायमात्र झूठी है। केवलज्ञान, मोक्ष का मार्ग झूठा है। वहाँ तो ऐसा आया। क्योंकि मोक्ष के मार्ग का ध्येय करना नहीं है। ध्येय तो त्रिकाली का करना है। इस अपेक्षा से पर्याय को गौण करके, गौण करके व्यवहार कहकर उसे असत्य कहा है और त्रिकाली भूतार्थ है, सत्यार्थ परमात्मा है, उसे सत्य कहकर, मुख्य करके निश्चय कहा है। आहाहा! ऐसा है, भाई!

उसमें ऐसा कहा है कि जो व्यवहार के पक्ष को पकड़ेगा, वह धर्म को सुनने के योग्य नहीं है, ऐसा है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय नहीं यहाँ ? नहीं। समझ में आया ? है किसी के हाथ में ? नहीं होगा। छठवीं गाथा है। '**अबुधस्य बोधनार्थं**' '**अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।**' व्यवहार से कहते हैं। '**देशना नास्ति॥**' लो, आया यहाँ। यह छठवीं गाथा आयी। '**अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।**' अभूतार्थ से, व्यवहार से बात करते हैं सन्त, परन्तु '**व्यवहारमेव केवलमवैति**' जो व्यवहार को पकड़कर बैठता है, वह '**यस्तस्य देशना नास्ति॥**' वह सुनने के योग्य नहीं। धर्म के योग्य तो नहीं। क्योंकि व्यवहार की बात आयेगी तो पकड़ेगा। लो, तुमने नहीं कहा ?

कल रात्रि में वह प्रश्न हुआ था। शुद्धात्मा, शुद्धात्मा वह ज्ञान है। ऐसा कि शुद्धात्मा वह ज्ञान है, शुद्धात्मा वह ज्ञान है, ऐसा भेद पड़ गया न ? रात्रि में प्रश्न हुआ था। ऐसा वहाँ नहीं कहना। वह तो शुद्धात्मा जो त्रिकाल है, उसकी दशा जो हुई, वह ज्ञान है, वह निश्चय है। उस ओर का व्यवहार है, वह राग है, उसमें यह निमित्त है। इस ओर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान पर्याय है, वह निश्चय है, उसका विषय है, वह भले परिपूर्ण हो, परन्तु उसका आश्रय करना नहीं। वह आश्रय अर्थात् लक्ष्य जाता है इतना। इसलिए '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' ऐसा आया है। उस ओर लक्ष्य जाता है, परन्तु उस पर्याय में वह द्रव्य आता नहीं, परन्तु पर्याय में द्रव्य का स्वरूप जितना है, वैसा ज्ञान और प्रतीति में आ

जाता है। आहाहा! तो उसे निश्चय कहा। मोक्षमार्ग की बात है न! वह तो परमनिश्चय तो त्रिकाल है। परम भूतार्थ जो है, यह जो परमात्मा यहाँ कहा जाता है।

यहाँ कहते हैं कि व्यवहार के कथन शास्त्र में बहुत आयेंगे। निमित्त और निमित्त का ज्ञान कराने को शुद्धनय के उपदेश का व्यवहार हस्तावलम्ब (सहायक) अर्थ सहचारी—साथ में देखकर कथन बहुत आया है। परन्तु ये तीनों ही, भेद का व्यवहार का पक्ष अनादि का है। परस्पर लोग यह बात करते हैं। भेद और व्यवहार की बात करे तो सामनेवाले को अच्छी लगे और अपने को ऐसा लगे कि मैं कुछ अनेकान्त में हूँ। दो (बातें) और तीसरा, भेद का—व्यवहार का उपदेश हस्तावलम्ब जानकर जैनदर्शन में, जैनवाणी में किया है। परन्तु इन तीनों का फल संसार है। है इसमें। ११वीं गाथा। आहाहा! अब यह क्या करना? जिनवाणी में कथन बहुत आवे, वह जहाँ हो, वहाँ निकाले। परन्तु यह किस नय का वचन है? आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, **सकल विकल्पजाल से रहित परमात्मा...** यह परमात्मा अर्थात् त्रिकाली वस्तु। जिसमें पर्याय भी नहीं आती। समझ में आया? आहाहा! उसकी श्रद्धा-ज्ञान करे, वह पर्याय। समझ में आया? आहाहा! **परमात्मा उससे विपरीत शुभाशुभ परिणाम...** शुभ और अशुभपरिणाम, वह परमात्मा से विपरीत है। आहाहा! संस्कृत में है, देखो! '**शुभाशुभविकल्पजालहितात् परमात्मद्रव्यद्विपरीताः शुभाशुभभावाः। परिणामा**' आहाहा! ऐसे जो शुभाशुभ विपरीत परिणाम दूर न हो। अन्तर में से विकल्प का लक्ष्य छूटे नहीं और अन्तर में परमात्मस्वरूप में जाये नहीं। आहाहा! वहाँ तक उसे रागादिरहित विकल्परहित **चित्त में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धोपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी परमसमाधि इस जीव के नहीं हो सकती...** आहाहा! सम्यग्दर्शन भी शुद्धोपयोग में होता है। आहाहा! इसके नाम दिये हैं उसमें। शुद्धात्म-अभिमुख परिणाम कहो, शुद्धोपयोग कहो, यह (समयसार) ३२० गाथा संस्कृत टीका। १८ व्याख्यान चले वहाँ। बहुत दो पृष्ठ हैं। छपाये हैं। बहुत हजारों छपाये हैं वहाँ। सभा में देने के लिये। उस संस्कृत टीका के।

यहाँ कहते हैं कि आहाहा! परमात्मा किसे कहते हैं? कि सब जितने महाव्रतादि के विकल्प, वह तो स्थूल है। यह तो वहाँ कहा पुण्य-पाप के अधिकार में। सामायिक

की प्रतिज्ञा लेकर भी मोक्ष की इच्छावाला जीव अतिस्थूल संक्लेश परिणाम को छोड़ता है, परन्तु अतिस्थूल विशुद्ध परिणाम को नहीं छोड़ता। जो व्रत, तप, शील, दान, दया, वह शुभकर्म अर्थात् शुभपरिणाम है। उसमें सब शब्द है। १५५, १५४ (गाथा) दोनों। ऐसे शुभराग को छोड़ता नहीं, उसे आत्मा प्राप्त नहीं होता। उसे—पुण्यपरिणाम को अत्यन्त स्थूल कहा है पाठ (में)। अत्यन्त स्थूल।

भगवान आत्मा की पर्याय सूक्ष्म और उसका द्रव्यस्वभाव तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म। आहाहा! उसे उस द्रव्य को, परमात्मा वह शुभाशुभ विकल्प से रहित है। है? परिणाम **विकल्पजाल से रहित जो परमात्मा उससे विपरीत...** तीन बोल करते हैं। यह पण्डित जयचन्द्रजी की शैली ऐसी है कि एक तो शुभाशुभ विकल्प से रहित परमात्मा, उससे विपरीत वह शुभाशुभभाव। ऐसा। है न? समस्त शुभाशुभ **विकल्पजाल से रहित जो परमात्मा...** यह एक बात कही। दूसरी बात, यह जो विपरीत जाल से रहित कहा था **उससे विपरीत शुभाशुभभाव (परिणाम)...** आहाहा! क्या कहा यह? विकल्प का जाल चाहे तो मैं शुद्ध हूँ (ऐसा विकल्प)।

समयसार (में) यहाँ तक आ गया कि व्यवहार का तो हम निषेध करते आये हैं। १४३-१४४ कर्ताकर्म अधिकार। परन्तु अन्दर आत्मा मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, एक हूँ, परमात्मा हूँ—ऐसा जो विकल्प है, वह भी दुःखरूप है और छोड़नेयोग्य है। नयातिक्रान्त कहते हैं न जो १४४ (गाथा समयसार में)। सम्यग्दर्शन ही अभी, हों! यह तो सम्यग्दर्शन ही, इसकी व्याख्या है। १४४ में उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान व्यपदेश। उसे तो सम्यग्दर्शन नाम दिया जाता है। व्यपदेश, ऐसा शब्द है पाठ १४४। किसे? कि जो आत्मा महाव्रतादि के, व्रतादि के विकल्प जो हैं, उसे तो हम छुड़ाते आये हैं, वह तो पहले से। अब यहाँ तो व्यवहारनय का पक्ष करे कि मैं बन्धवाला हूँ, अनेक हूँ, ऐसे बन्ध के विकल्प का हम निषेध करते आये हैं, परन्तु अब तो अबन्धस्वरूप जो भगवान आत्मा, यह परमात्मा स्वरूप है। उसका भी नयपक्ष रहेगा कि मैं शुद्ध हूँ, एक हूँ, अभेद हूँ, परिपूर्ण हूँ, अबन्ध हूँ—ऐसा नयपक्ष रहेगा तो ऐसा कहा है १४२ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य ने, (कि) उससे क्या? यहाँ तक आया, उससे क्या? उससे आत्मा को क्या लाभ है? उससे क्या? पाठ है। समझ में आया?

मैं अबद्ध हूँ, निश्चय हूँ, परमात्मा हूँ, एकरूप हूँ, सच्चिदानन्दस्वरूप परमसमाधिस्वरूप परम वीतरागमूर्ति हूँ—ऐसी जो वृत्ति उठती है विकल्प-विकल्प, उससे क्या? आहाहा! है? वह समयसार में है। समयसार में है। १४२ गाथा के ऊपर। ऐसा पक्ष आया तो क्या कहते हैं? १४१, १४२। **परन्तु उससे क्या?** पाठ में यह है। **'किम्' 'ततः किम्'** ऐसा (शब्द) संस्कृत का है। ये संस्कृत के प्रोफेसर हैं जयपुर में। यहाँ तक आया, उससे क्या? कहते हैं। यह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! **परन्तु उससे क्या? जो आत्मा इन दोनों नयपक्षों को उल्लंघन कर गया है, वही समयसार है,...** आहाहा! व्यवहारपक्ष की तो बात ही क्या करना? वह तो हम छुड़ाते आये हैं, ऐसा पहले कहा है। आहाहा! परन्तु निश्चय का पक्ष। विकल्प-वृत्ति उठती है कि मैं ऐसा हूँ, पूर्ण हूँ, परमात्मा हूँ—ऐसा आँगन में खड़ा, विकल्प को-राग को करे, उससे क्या? उससे आत्मा को लाभ क्या? आहाहा! ऐसी बात है।

वह भी विकल्प को यहाँ कहते हैं, ऐसे छोड़े। देखो! वहाँ भी ऐसा कहा न, उसे छोड़े। है न? १४४, देखो। **अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मरूप समयसार को जब आत्मा अनुभव करता है...** परमात्मा त्रिकाली को। **उस समय ही आत्मा सम्यक्रूप से दिखाई देता है...** उस काल में वह श्रद्धा में आता है। **उस समय ही आत्मा सम्यक्रूप से दिखाई देता है (अर्थात् श्रद्धा में आता है) और ज्ञात होता है, इसलिए समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।** अभी तो यहाँ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? यह वहाँ चला था। १४४ में।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा! अरे! इसे लक्ष्य में भी नहीं आता, सुनने में भी नहीं आता, अभी इसके निश्चय के पक्ष में, ऐसा हूँ ऐसा व्यवहार का पक्ष छोड़कर यहाँ न आवे तो उसे आगे जाने का है ही कहाँ? आहाहा! यहाँ यह कहते हैं कि परमात्मा शुभाशुभ विकल्प से रहित है। एक बात की। यहाँ से ली। फिर से। **उससे विपरीत शुभाशुभ परिणाम...** यह **'नैव त्रुट्यंति'** यह विकल्प टूटे नहीं और अन्तर में निर्विकल्प अनुभव हो नहीं। आहाहा! **तब तक रागादि विकल्प रहित...** यह विकल्प और राग की दुःख की दशा है। चाहे तो यह महा तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भाव दुःखरूप है। राग है। बन्धन धर्म से नहीं होता। बन्धन धर्म

से नहीं होता। बन्धन धर्म से विपरीत भाव से होता है। फिर मीठी भाषा से कहो तो पुण्य, दूसरी भाषा से कहें तो अधर्म।

मुमुक्षु : अधर्म यह मीठी भाषा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क भाषा है अधर्म, ऐसा कहा। मीठी भाषा में पुण्य है। कड़क भाषा यह अधर्म है।

यहाँ कहा था न (संवत्) १९८५ के वर्ष में। बहुत वर्ष हो गये। पौष महीना था। बोटाद में नाम तो हमारा प्रसिद्ध था न पहले से। हजारों, पन्द्रह सौ लोग व्याख्यान में आवे। तीन सौ घर थे न। सेठिया पैसावाला सब। यह हमारे हसमुख वहाँ के-बोटाद के हैं गाँधी। लोग खचाखच भरे हुए। ८५ का पौष शुक्ल। कितने वर्ष हुए? ४८ हुए। तब कहा था व्याख्यान में। बहुत सभा। पन्द्रह सौ लोग। जिस विकल्प से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह धर्म नहीं है। वह अधर्म है। और लोगों में प्रसिद्धि तो थी, इसलिए हमारे सामने कोई बोल न सके। यह तो ४८ वर्ष पहले की बात है। बोटाद सम्प्रदाय में। मुँहपत्ति थी न, वहाँ तक तो ऐसा कि अपने महाराज हैं।

जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं, धर्म से बन्धन होता नहीं, निश्चयमोक्षमार्ग है, उससे राग का छुटकारा होता है, बन्धन नहीं होता। बन्धन जिस भाव से हो, वह धर्म नहीं। यह एक बात कही थी। और दूसरी एक सहज की थी कि धीरे से देकर। यह तो ४८ वर्ष पहले की बात है, हों! पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं; वे धर्म नहीं, पुण्य है, आस्रव है। सभा सुनती थी। एक व्यक्ति—साधु बैठा था। वह ऐसा (बोले) वोसरे... वोसरे। यह श्रद्धा? कौन सुनता था वहाँ? तब तो मुँहपत्ति थी और सामने लोग। कि यह वोसरे... वोसरे। जगजीवनजी थे जगजीवनजी। पुराने व्यक्ति जानते हैं, नये नहीं जानते। जगजीवनजी। खीमचन्दभाई जानते हैं। वोसरे.. वोसरे अर्थात् यह श्रद्धा हमारे नहीं चाहिए, ऐसा। फिर उठ गये। फिर पूरा होने के बाद (हमने) कहा—बैठना था न तुम्हारे। न मानो तो कुछ नहीं, परन्तु उठ गये उसमें तुम्हारा माना किसी ने कहा? तुम्हारा सुना किसी ने? क्योंकि यहाँ हैं, वहाँ तक लोग ऐसा मानते हैं कि अपने महाराज हैं न! समझ में आया? अरे! भगवान! क्या करता है तू? आहाहा!

पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं। तत्त्वार्थसूत्र में उसे आस्रव के अधिकार में डाला है। छठा अध्याय। और यह तीर्थंकरगोत्र सोलह कारण (भावना) से (बँधती है)। प्रसन्न हो जाये ऐसे अन्दर प्रसन्न हो जाये। सोलह कारण से है यह सब। यह सोलह कारण राग है और प्रकृति, वह जड़ है। और उसे विष का फल कहा है। १४८ प्रकृति को विषवृक्ष, विष का फल कहा है, प्रभु! तुझे अमृत का सागर अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? इस परमात्मा से तो विपरीत शुभाशुभ परिणाम है। आहाहा! चाहे तो वह तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, तो भी वह परमात्मस्वरूप से तो विपरीत है। लोगों को कठिन पड़े जगत को।

दूर न हों-मिटें नहीं, तब तक रागादि विकल्परहित शुद्ध चित्त में,... शुद्ध मन, शुद्ध ज्ञान। चित्त वह ज्ञान। शुद्ध ज्ञान त्रिकाली ज्ञानस्वरूप भगवान में '**परमसमाधिः न**' अर्थात् कि उसे सम्यग्दर्शन नहीं। उसे सम्यग्ज्ञान और चारित्र शुद्ध उपयोग लक्षण, यह उसे नहीं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों को शुद्ध उपयोग कहा है। लोग अभी ऐसा कहते हैं कि शुद्ध उपयोग तो सातवें (गुणस्थान में) होता है, फलाने में होता है और ढींकणे में होता है। चौथे से शुद्ध उपयोग में सम्यग्दर्शन के समय शुद्धोपयोग बिना सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। यह यहाँ कहते हैं। अन्तर स्वरूप आनन्द का नाथ भगवान, शुभ के परिणाम तो दुःखरूप है और शुद्ध उपयोग तो सुखरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वाक्य बहुत कठिन पड़े। क्या हो भाई! तीन लोक के नाथ परमात्मा तीर्थंकरों की उपस्थिति नहीं होती, भरतक्षेत्र में परमात्मा का विरह पड़ा, तथा केवलज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान भी नहीं। इसलिए यह सब झगड़े खड़े हुए। मार्ग तो यह है, प्रभु! परमात्मा तो यह कहते हैं। आहाहा!

यह '**परमसमाधिः न**' विकल्प टूटे नहीं, तब तक उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता नहीं। आहाहा! क्योंकि विकल्प है, वह तो राग और दुःख है। पंच महाव्रत के परिणाम भी दुःख है। यह तो छहढाला में भी आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो (पै) निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत धारण किया, मुनिव्रत लिया, पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण, 'परन्तु लेश सुख नहीं पाया।' उसमें आनन्द नहीं मिला। अर्थात् वह तो दुःख है। आहाहा! 'परन्तु लेश सुख नहीं पाया।'

अंश भी वह अशुभ टलकर शुभ हुआ तो कुछ तो सही न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक' अनन्त बार, तो यह साधन नहीं हुआ तो अभी साधन शुभोपयोग हो जायेगा? यह नौवें ग्रैवेयक गया, तब शुभ उपयोग था, ऐसा तो अभी शुभ हो सकता ही नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का शुद्ध उपयोग हो सकता है, परन्तु वह नौवें ग्रैवेयक गया था, ऐसा जो शुभोपयोग, वह तो अभी नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि वह शुभोपयोग भी रागादि विकल्परहित न हो तो शुद्धज्ञान में '**मनसि**' है न? '**मनसि**'? '**मनसि**' का अर्थ शुद्ध चित्त किया, शुद्ध ज्ञान किया। शुद्ध ज्ञान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र... आहाहा! सत्यदर्शन, सम्यक् सत्य अर्थात् सत्यदर्शन। सम्यक् सत्यदर्शन। किसी जगह प्रशस्त दर्शन ऐसा अर्थ किया है सम्यग्दर्शन का। अर्थात्? यह त्रिकाली वस्तु है, वही प्रशस्त है और वही सत्य है। आहाहा! पर्याय को तो व्यवहारनय से अभूतार्थ कहा है भले गौण करके। (समयसार) ११वीं गाथा। त्रिकाल वस्तु आनन्ददल, शुद्धपरमात्मा वह सम्यक्, उसकी सच्ची श्रद्धा, सत्य की सच्ची श्रद्धा, वह सत्य त्रिकाली सत्य है, उसकी सत्यदर्शन। अटपटी बातें हैं। सब खबर है न दुनिया की तो सब बातें। बापू! मार्ग तो यह है भाई! यह कहेंगे।

'**परमसमाधिः न**' फिर केवली का कहेंगे तब तो सर्व विकल्प टूट जायेंगे। यहाँ तो विकल्प टूटे हैं परन्तु अबुद्धिपूर्वक रहे हैं। अभी भले दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों हों मुनि को छठवें (गुणस्थान में)। अबुद्धिपूर्वक विकल्प, छठवें तक अभी बुद्धिपूर्वक विकल्प हैं परन्तु यहाँ टूट गये हैं, उसमें विकल्प नहीं। विकल्प से टूटकर स्वरूप की दृष्टि-ज्ञान हुए हैं, उसमें विकल्प नहीं। फिर ऐसा कहेंगे कि जो वह विकल्प है थोड़ा, उसे तोड़ेगा उसे केवल (ज्ञान) होगा। यह बाद में कहेंगे। समझ में आया? **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्धोपयोग...** देखो, तीनों को शुद्ध उपयोग कहा है। आहाहा! और छहढाला में तीनों को मोक्षमार्गी कहा है। सम्यग्दर्शन हो या मुनि हो या श्रावक हो, तीनों शिवमगचारी। आहाहा! तीनों अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी हैं। आहाहा! मुनि को अतीन्द्रिय आनन्द विशेष है। चौथे में अतीन्द्रिय आनन्द का थोड़ा नमूना आया है। पाँचवें में श्रावक सच्चे हों, उसे अधिक अतीन्द्रिय आनन्द होता है। मुनि को प्रचुर आनन्द है, यह पाँचवीं गाथा में है। कुन्दकुन्दाचार्य के अधिकार में। प्रचुर स्वसंवेदन है,

वह मेरे निजवैभव से कहूँगा, ऐसा कहा है पाँचवीं गाथा में। आती है न पाँचवीं? इन तीनों को शुद्ध उपयोग कहा है।

अब अभी ऐसा चलता है। एक आर्यिका है, २५ लाख का जम्बुद्वीप बनाया, ढींकणा। कल ही लेख आया है। मुनि को पंच महाव्रतादि मूलगुण पहले हों, शुभोपयोग हों, उसमें से शुद्धोपयोग होता है। कल ही आया है। भाई को रात्रि में वँचाया था। सम्यग्ज्ञान (पत्रिका) आती है। चारों अनुयोग की बात आती है, चारों अनुयोग की। सब गप्पें हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रथम सम्यग्दर्शन, वह दर्शन है, वह तो श्रद्धा की पर्याय है। उसके विषय में भेद नहीं होता। वह स्वयं ही निर्भेद निर्विकल्प है, इसलिए उसका विषय तो अभेद त्रिकाली वस्तु। परन्तु उसके साथ हुआ ज्ञान, वह त्रिकाल को जाने और वर्तमान पर्याय अपूर्ण आदि हो, उसे जाने। जानने में कोई ज्ञान का निषेध नहीं। उस काल में वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहार आता अवश्य है, पूर्ण वीतराग न हो तब तक (आता है), तो उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह (समयसार) १२वीं गाथा में कहा है। आदर किया हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा नहीं। संस्कृत में तो ऐसा शब्द है, तदात्वे। तदाआयते। उस समय। उसमें भी विशेषता है। जिस समय सम्यक् अनुभव आदि हुआ, उस समय पर्याय में जितनी अशुद्धता है और शुद्धता है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान। उस समय में। दूसरे समय में वापस शुद्धता बढ़ती है और अशुद्धता घटती है, उस समय में वह जाना हुआ प्रयोजनवान। तीसरे समय में शुद्धता बढ़े और अशुद्धता घटे, उस समय में वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसा लिया जाता है। 'तदात्वे' शब्द पड़ा है। तदात्वे शब्द है। उस काल में है, बस। उस-उस समय में। आहाहा!

जिसका लक्षण है, ऐसी परमसमाधि इस जीव के नहीं हो सकती... कौन कहते हैं यह? **ऐसा केवलीभगवान... 'भणंति'** आहाहा! वह सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर और केवली ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस गाथा में ६८ में यह आया था। **'जिणवरु एउँ भणेइ'** हम उसे जीव कहते हैं, निश्चय जीव अर्थात् निश्चय आत्मा। जिनवर ऐसा कहते हैं कि निश्चय आत्मा है, वह मोक्ष को करता नहीं और मोक्ष के मार्ग

को भी करता नहीं। बन्ध को करता नहीं और बन्ध के कारण को भी करता नहीं, ऐसा जिनवर ऐसा कहते हैं। उसे हम जीव कहते हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई! पर्याय जीव है, परन्तु वह व्यवहार जीव है। मोक्षमार्ग की पर्याय है न, (वह) निर्विकल्प पर्याय है। वह पर्याय है और पर्याय है, वह व्यवहार है। त्रिकाली, वह निश्चय है। यह तो राग को मोक्षमार्ग कहना हो तब व्यवहार से कहे अर्थात् नहीं है, उसे कहना, इससे यहाँ है उसे कहना, उसे निश्चय कहा जाता है। वह तो उस राग की अपेक्षा से। बाकी निश्चयमोक्षमार्ग तो पर्याय है। आहाहा! पर्याय अर्थात् व्यवहार है। पंचाध्यायीकार ने पर्याय को ही व्यवहार कहा है। द्रव्य को निश्चय कहा और परमार्थवचनिका में ऐसा कहा है बनारसीदासजी ने (कहा है), द्रव्य वह निश्चय और निश्चयमोक्षमार्ग, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखा है उन्होंने। बाहर के माननेवालों को इस मान्यता का अभाव है।

वास्तव में तो आत्मा को शुद्ध आत्मा को, यह कल दोपहर में कहा ज्ञान-दर्शन-चारित्र। यह पर्याय स्वयं ही व्यवहार है। पर्याय है न? त्रिकाली द्रव्य, वह निश्चय है। परमार्थवचनिका में बनारसीदास (ने कहा है)। पहले के पण्डित भी बहुत (विचक्षण), मुनियों की तो बात क्या करना! आचार्यों की क्या बात करना! केवली का तो क्या कहना!! पण्डितों ने भी परम्परा सत्य को बनाये रखा है। आहाहा! टोडरमल, बनारसीदास, दौलतराम। परन्तु इसका अर्थ करने में और फलटन में उस शास्त्री परिषद ने तो ऐसा कहा कि अध्यात्म की भाँग पीकर टोडरमल और बनारसीदास नाचे हैं। अध्यात्म की भाँग की है। अरे! प्रभु! क्या कहता है, भाई? अरेरे! वीतराग का विरह पड़ा। कोई सच्चा सत्य क्या, इसकी साक्षी किसे देना? विरह पड़ा परमात्मा का। अवधिज्ञानी—मनःपर्यय (ज्ञानी) का विरह पड़ा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्ध उपयोग है। तब अभी कितने ही कहते हैं, शुद्ध उपयोग तो आठवें में होता है। और बहुत-बहुत ले तो सातवें में होता है, ऐसा कहते हैं। किसी समय ऐसा कहते हैं। परन्तु सातवें में हो तो छठवाँ हो

उसे सातवाँ होगा। जिसे छठवाँ हो, उसे सातवाँ होगा और सातवाँ शुद्ध उपयोग आवे तो फिर दूसरे क्षण में छठवाँ आवे तो विकल्प आवे ही वह। तो छठवाँ-सातवाँ एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार आवे, उसका नाम मुनिपना है। आहाहा!

कहते हैं, **शुद्धोपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी परमसमाधि...** शान्ति... शान्ति... शान्ति... जिसमें कषाय का कण नहीं, जिसमें समाधि की शान्ति, जलहल ज्योति से प्रगट हुई है। आहाहा! उसे शुद्धोपयोगी मुनि कहते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले अध्याय में ऐसा ही लिया है कि मुनि ने—आचार्य, उपाध्याय, साधु ने शुद्धोपयोगपना ग्रहण किया है। महाव्रत ग्रहण किये हैं, ऐसा नहीं लिया। मोक्षमार्गप्रकाशक पहली शुरुआत। आचार्य, उपाध्याय, साधु का स्वरूप। जो विरागी होकर समस्त परिग्रह छोड़कर, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके। पंच महाव्रत अंगीकार करके और अट्ठाईस मूलगुण (अंगीकार करके), ऐसा नहीं लिखा। वह यह बोल प्रवचनसार की पहली पाँच गाथाओं का है। पाँच गाथायें हैं न भाई पहली? परम शुद्धोपयोग तीन पदवी को होता है। पाँच गाथायें प्रवचनसार की पहली है, उसमें है। यह इसमें पुराने पण्डित घर का कुछ नहीं डालते। शास्त्र में था, उसे जरा खोला है-स्पष्ट किया है। बाकी वस्तु अक्षर-अक्षर आचार्यों की है। है? समस्त परिग्रह छोड़कर शुद्धोपयोगरूप मुनिपना। शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म... आहाहा! अंगीकार करके। यहाँ तो (लोग) कहते हैं अभी शुद्धोपयोग नहीं होता। आहाहा! अरे! भगवान!

यहाँ यह कहते हैं। **शुद्ध उपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी परमसमाधि इस जीव के नहीं हो सकती....** विकल्पवाले को, विकल्प तोड़ता नहीं और अन्दर में जाता नहीं, उसे। **ऐसा केवली भगवान कहते हैं।**

भावार्थः—शुभाशुभ विकल्प जब मिटें, तभी परमसमाधि होवे, ऐसी जिनेश्वरदेव की आज्ञा है। आहाहा! लो, यह समाधि का अधिकार कहा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १९५

तदनन्तरमर्हत्पदमिति भावमोक्ष इति जीवन्मोक्ष इति केवलज्ञानोत्पत्तिरित्येकोडर्थः तस्य चतुर्विधनामाभिधेयस्यार्हत्पदस्य प्रतिपादनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयपर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तथथा–

३१८) सयल–वियप्पहँ तुट्टाहँ सिव–पय–मग्गि वसंतु।
कम्म–चउक्कइ विलउ गइ अप्पा हुइ अरहंतु।।१९५।।

सकलविकल्पानां त्रुट्यतां शिवपदमार्गे वसन्।
कर्मचतुष्के विलयं गते आत्मा भवति अर्हन्।।१९५।।

हुइ भवति। कोडसौ। अप्पा आत्मा। कथंभूतो भवति। अरहंतु अरिर्मोहनीयं कर्म तस्य हननाद् रजसी ज्ञानद्दगावरणे तयोरपि हननाद् सहस्यशब्देनान्तरायस्तदभावच्च देवेन्द्रादिवि–निर्मितामतिशयवतीं पूजामर्हतीत्यर्हन्। कस्मिन् सति। कम्म–चउक्कइ विलउ गइ घातिकर्मचतुष्के विलयं गते सति। किं कुर्वन् सन् पूर्वम्। सिव–पय–मग्गि वसंतु शिवशब्दवाच्यं यन्मोक्षपदं तस्य योडसौ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयैकलक्षणो मार्गस्तस्मिन् वसन् सन्। केषां सताम्। सयल–वियप्पहं तुट्टाहं समस्तविकल्पानां नष्टानां समस्तरागादिविकल्पविनाशादनन्तरं भवतीति भावार्थः।।१९५।।

आगे तीन दोहों में अरहंतपद का व्याख्यान करते हैं, अरहंतपद कहो या भावमोक्ष कहो, अथवा जीवन्मोक्ष कहो, या केवलज्ञान की उत्पत्ति कहो–

ये चारों अर्थ एक को ही सूचित करते हैं, अर्थात् चारों शब्दों का अर्थ एक ही है–

मोक्षमार्गमय परिणति होने पर विकल्प हों सारे लीन।
तब होता अर्हन्त आत्मा घाति चतुष्टय होय विलीन।।१९५।।

अन्वयार्थः– [कर्मचतुष्के विलयं गते] ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, और अन्तराय इन चार घातियाकर्मों के नाश होने से [आत्मा] यह जीव [अर्हन् भवति] अर्हंत होता है, अर्थात् जब घातियाकर्म विलय हो जाते हैं, तब अरहंतपद पाता है, देवेंद्रादिकर पूजा के योग्य हो वह अरहंत है, क्योंकि पूजायोग्य को ही अर्हंत कहते हैं। पहले तो महामुनि हुआ [शिवपदमार्गे वसन्] मोक्षपद के मार्गरुप सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र में

ठहरता हुआ [सकलविकल्पानां] समस्त रागादि विकल्पों का [त्रुट्यतां] नाश करता है, अर्थात् जब समस्त रागादि विकल्पों का नाश हो जावे, तब निर्विकल्प ध्यान के प्रसाद से केवलज्ञान होता है। केवलज्ञानी का नाम अर्हंत है, चाहे उसी जीवन्मुक्त कहो। जब अरहंत हुआ, तब भावमोक्ष हुआ, पीछे चार अघातियाकर्मों को नाशकर सिद्ध हो जाता है। सिद्धको विदेहमोक्ष कहते हैं। यही मोक्ष होनेका उपाय है।।१९५।।

वीर संवत् २५०२, वैशाख कृष्ण ९, बुधवार
दिनांक- ११-०५-१९७७, गाथा - १९५-१९६, प्रवचन-२३५

परमात्मप्रकाश, १९५ गाथा। ९४ हो गयी। **आगे तीन दोहों में अरहन्तपद का व्याख्यान करते हैं, १९५। अरहन्तपद कहो...** १९५। अरहन्तपद कहो.... पहले पद की व्याख्या है। णमो अरिहंताणं। **अरहन्तपद कहो, भावमोक्ष कहो अथवा जीवनमोक्ष कहो, या केवलज्ञान की उत्पत्ति कहो—** सब एक है चारों ही। **यह चारों अर्थ एक को सूचित करता है। 'चारों शब्दों का अर्थ एक ही है।'** १९५। उसमें विकल्प टूटते थे। सहज विकल्प टूटते, इतनी बात ली।

३१८) सयल-वियप्पहँ तुट्टाहँ सिव-पय-मग्गि वसंतु।
कम्म-चउक्कइ विलउ गइ अप्पा हुइ अरहंतु।।१९५।।

अन्वयार्थः—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, और अन्तराय इन चार घातियाकर्मों का नाश होने से... घातिकर्म दो प्रकार के हैं। एक जड़घातिकर्म द्रव्य और भावघातिकर्म। १६वीं गाथा, प्रवचनसार। वह भावघातिकर्म स्वयं ने किये हुए, उनका नाश किया तो द्रव्यघातिकर्म अपने आप नष्ट हो जाते हैं। उनके नाश होने का उनका क्रम ही था।

मुमुक्षु : यह भी क्रम था पर्याय का।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी क्रम था परन्तु उस क्रम में इस ओर पुरुषार्थ था। भावघाति, वह अरूपी है। द्रव्यघाति वह जड़ है। इसलिए जिसने आत्मा अनन्त चतुष्टय—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसा अनन्त चतुष्टय सम्पन्न

स्वरूप भगवान आत्मा का जिसने उग्र आश्रय लिया। पहले में था साधारण विकल्प टूटकर मोक्षमार्ग प्रगट करे और यहाँ तो एकदम सर्व विकल्प टूटकर केवलज्ञान ले, यह बात है।

वह भावघाति अर्थात् ज्ञान, दर्शन, आनन्द अर्थात् कि सुख, वीर्य जो विकार में अटका हुआ है, वह अपने पुरुषार्थ से अटका हुआ है। आहाहा! समझ में आया? उसे भावघाति कहते हैं। वह जिसने भावस्वभाव त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, उसका आश्रय लेकर वह भावघाति की उत्पत्ति नहीं हुई, उसने भावघाति नाश किया, ऐसा कहने में आता है और उस काल में द्रव्यघातिकर्म अपनी योग्यता से ही उसके नाश होने का क्रम था तो नाश होते हैं। समझ में आया? वे चार घातिकर्म यह है। यहाँ तो संक्षिप्त भाषा की है। लम्बी-लम्बी भाषा करे, तब तो कुछ लम्बा चले नहीं। वरना बात तो यह है। यह प्रवचनसार १६वीं गाथा में स्वयंभू। 'स्वयंभू', स्वयं आप परमात्मदशा और भू अर्थात् प्राप्त की। आहाहा!

अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द, वीर्य वह स्वयंभू स्वयं अपने से हुआ। अपने स्वभाव के पुरुषार्थ से हुए। तब भावघाति जो विकारीदशा थी, वह उत्पन्न नहीं हुई, उसे नाश किया, ऐसा कहने में आता है। नाश करूँ—ऐसा कुछ कहाँ है? पर्याय का नाश करूँ, वहाँ पर के ऊपर लक्ष्य है? आहाहा! बहुत अन्तर। कथनशैली में अभी इतना अन्तर पड़ गया है, वास्तविक तत्त्व की स्थिति की इतनी विपरीतता कर डाली है। कहीं जिनवर का रहस्य क्या है, यह हाथ ही आवे, ऐसा नहीं। कर्म नाश करे... कर्म नाश करे... कर्म नाश करे... कर्म तो जड़ है। जड़ की पर्याय का आत्मा नाश कर सकता है? परद्रव्य की पर्याय को? समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं।

इन चार घातियाकर्मों के नाश होने से यह जीव अर्हंत होता है,... अरिहन्त होता है, ऐसा न लेकर अर्हंत लेना है। पूजनेयोग्य कहना है न? इसलिए। और ८०वीं गाथा में कहा है, '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' जो कोई अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, वह तो व्यवहार है। परन्तु जानकर अपने आत्मा के साथ उसे मिलान करे कि उनकी पर्याय में तो सर्वज्ञ है। मेरी पर्याय में सर्वज्ञ नहीं। तो मेरा स्वभाव

सर्वज्ञ है, उन्हें प्रगट हो गया है। समझ में आया? उस सर्वज्ञस्वभाव के आश्रय से पर्याय में सर्वज्ञदशा प्रगट होती है। जिसने अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय जाने, वह ऐसे मिलान करे तो होता है। क्योंकि अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय कहने का आशय चारों ही अनुयोग का कहने का आशय वीतरागता। पंचास्तिकाय १७२ गाथा (में कहा है कि) चारों अनयोग का सार १७२ गाथा में कहा है वीतरागता है। वीतरागता कब होती है? चारों अनुयोग। पूरी जिनवाणी का सार वीतरागता, १७२ गाथा पंचास्तिकाय में कहा। परन्तु वीतरागता कब होती है? त्रिकाली ज्ञायकभाव जो पूर्ण वीतराग सुख से भरपूर है, उसका आश्रय ले तो वीतरागता होती है। आहाहा! यह चारों ही अनुयोग को यह कहना है। चन्दुभाई! आहाहा! और कोई चरणानुयोग में दूसरा कहना है और करणानुयोग में दूसरा कहना है। ऐसा कहते हैं अभी लोग कुछ गप्पें मारते हैं आड़े-टेढ़े। वीतराग की वाणी को नोंच डाला है, अपनी कल्पना से।

बाकी तो भगवान तो ऐसा कहते हैं, चारों अनुयोग का तात्पर्य—रहस्य तो वीतरागता है। वीतरागता प्रगट करना, वह सम्यग्दर्शन भी वीतरागता है। निश्चय सम्यग्दर्शन भी वीतरागता है। और वह वीतरागता प्रगट करने के लिये त्रिकाली स्वभाव का आश्रय करे तो होती है, यह उसका पूरा सार है। आहाहा! समझ में आया? बाकी तो कथन व्यवहार के अनेक होते हैं। उनका फल संसार है, यह बात कही जा चुकी है। (समयसार) ११वीं गाथा में। व्यवहारनय के कथनों का पार नहीं होता। क्योंकि भेद से समझाना है, इसलिए दूसरा उपाय नहीं होता। परन्तु सब उसके परिणाम...

मुमुक्षु : यह एक ही उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार है। वीतराग की वाणी जो व्यवहार से कही है, उसका भी फल संसार है। आहाहा! यहाँ तो वीतराग ने कहा, उसका फल तो वीतरागता है। तो इन अरिहन्त को इस प्रकार से जाने। आहाहा! है? **'अर्हन् भवति' घातियाकर्म विलय हो जाते हैं, तब अरहन्तपद पाता है, देवेन्द्रादिकर पूजा के योग्य हो, वह अरहन्त है, क्योंकि पूजायोग्य को ही अर्हंत कहते हैं,...** आहाहा! अब यह कहते हैं कि वे अर्हंत हुए कैसे? यह अरिहन्त की पूजा भी भवभव में अनन्त बार की है। यह पहले आ गया

है इसमें—परमात्मप्रकाश (में)। भवोभव पूजियो। भवोभव, अनन्त भव। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा और वहाँ भगवान का तो विरह कभी है नहीं। समवसरण में अनन्त बार गया, भगवान की पूजा अनन्त बार की है। आगे आ गया है। है? किस पृष्ठ पर है? भवोभव पूजियो। याद होगा? भाव याद होता है, कहीं पृष्ठ याद है? पहले आ गया है। पहले भाग में होगा। बात कही जा चुकी है।

मुमुक्षु : १४३ गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : १४३ पृष्ठ। गाथा? दूसरे भाग की १४३ गाथा, ऐसा न? '**भवि भवि जिण पुज्जिउ वेदिउ**' ऐसा शास्त्र का वचन है। बीच में है। २८८ पृष्ठ। १४३ गाथा का अर्थ। दौलतराम, है? बीच में है। भावार्थ है न वहाँ? काल, जीव, संसार तीनों अनादि। 'अनादि काल से भटकते जीव ने मिथ्यात्व और रागादिवश होकर शुद्धात्मस्वरूप अपना न देखा, न जाना, संसारी जीव अनादि काल से आत्मज्ञान की भावना से रहित है। इस जीव ने स्वर्ग, नरक, राज्य आदि सब पाये हैं। परन्तु दो वस्तु नहीं मिली। एक सम्यग्दर्शन पाया और दूसरी जिनवरस्वामी।' अब इसका अर्थ ऐसा करते हैं। एक सम्यग्दर्शन नहीं और एक जिनराजस्वामी। 'यह जीव अनादि का मिथ्यादृष्टि शुद्ध देवों का उपासक है, जिनराज, भगवान की भक्ति इसके कभी नहीं हुई। अन्य देवों का उपासक हुआ, सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। यहाँ कोई प्रश्न करे कि अनादि का मिथ्यात्व होने से समकित नहीं उत्पन्न हुआ, यह तो ठीक है, परन्तु जिनराजस्वामी नहीं पाये, ऐसा नहीं हो सकता।' वीतराग नहीं मिले न, जिनराज नहीं मिले? प्रश्नकर्ता प्रश्न करता है।

उसका समाधान। 'भावभक्ति इसके कभी नहीं हुई।' आहाहा! वैसे तो अनन्त बार जिनराज मिले, पूजायें की समवसरण में अनन्त बार। मणिरत्न के दीपक और हीरा के थाल, कल्पवृक्ष के फूल, साक्षात् तीर्थंकर समवसरण में, हों! देखो, यह कहते हैं। 'परन्तु जिनराजस्वामी न पाये, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि भव-भव में जिन पूजियो, वेदियो—ऐसा शास्त्र का वचन है।' देखो! 'भव भव में जिन और जिनवर पूजे गुरु वंदे। परन्तु तुम कहते हो कि इस जीव को भव-भव में वन्दते जिनराजस्वामी नहीं पाया। उसका समाधान। भावभक्ति उसके कभी नहीं हुई। भावभक्ति तो सम्यग्दृष्टि को ही होती

है।' आहाहा! जिसे आत्मा वीतरागस्वरूपी ध्रुव जिसे ध्यान में लिया नहीं। पूर्ण स्वरूप जिसे ध्येय बनाया नहीं। उसे सम्यग्दर्शन कभी नहीं होता। और सम्यग्दर्शन बिना वीतराग की भावभक्ति कभी नहीं होती। आहाहा!

समन्तभद्रस्वामी, चौबीस स्तुति में कहते हैं। चौबीस (तीर्थंकरों की) स्तुति की है न भगवान की। प्रभु! अभव्य आपको नहीं वन्दता। उसमें ऐसा लिखा है स्तुति में। क्योंकि अभव्य राग का माननेवाला है। राग का माननेवाला राग से लाभ माननेवाला अभव्य, इन वीतराग को नहीं पूजता। आहाहा! वह तो पूजा करता है सब राग की। आहाहा! समझ में आया? चिमनभाई! ऐसा कहा। लो, अभव्य आपको नहीं पूजता, क्योंकि राग को माननेवाला है। इसी तरह जो मिथ्यादृष्टि है, वह पुण्य को माननेवाला, राग को। राग से लाभ माननेवाला वीतराग को नहीं पूज सकता। भाव से नहीं पूजता। व्यवहार से करेगा अनन्त बार ऐसा भी किया है। आहाहा! उसमें बहुत लम्बी बात है।

'भावभक्ति तो सम्यग्दृष्टि को होती है। बाह्य लौकिक भक्ति इसके संसार के प्रयोजन के लिये हुई, वह गिनती में नहीं। ऊपर की सब बातें थोथी हैं। भाव ही कारण है।' आहाहा! 'भावभक्ति मिथ्यादृष्टि को नहीं होती। ज्ञानी जीव जिनराज के दास हैं, सो समकित बिना भावभक्ति के अभाव से जिनराज स्वामी नहीं पाये।' ऐसे तो भव-भव में पूजियो कहा यहाँ। समझ में आया? आहाहा! वे अरिहन्त **पूजायोग्य को ही अर्हंत कहते हैं। पहले तो महामुनि हुआ...** अब कहते हैं कि अरिहन्त हुए कैसे? केवली परमात्मा अरिहन्तपद को प्राप्त कैसे हुए? कि '**शिवपदमार्गे वसन्**' आहाहा! **मोक्षपद के मार्गरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहरता हुआ...** निश्चय आत्मा का शुद्धस्वरूप आनन्दकन्द प्रभु की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें रमणता निर्विकल्प मोक्षमार्ग में स्थिर हुए, तब वे अरिहन्त पद को पाये हैं। व्यवहार करते हुए पाये हैं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! है? '**शिवपदमार्गे वसन्**' ऐसा शब्द है। '**शिवपदमार्गे वसन्**' आहाहा!

पहले तो महामुनि हुआ... 'शिवपदमार्गे वसन्' शिव के मार्ग में **मोक्षपद के मार्गरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहरता हुआ...** निश्चय, हों! निश्चय। व्यवहार तो बन्ध का कारण है। व्यवहारमोक्षमार्ग वह तो अपने बन्ध अधिकार में चला। भाई ने

प्रश्न नहीं किया था ? भाई ! बन्धमार्ग में निश्चय और व्यवहार क्यों लिया ? अधिकार तो बन्ध का है। यह प्रश्न पहले चल गया है। यह तो बहुत बार चला। यहाँ तो ४२ वर्ष हुए। कि व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है, यह सिद्ध करने के लिये इस बन्ध अधिकार में उसे लिया है। आहाहा ! समझ में आया ? और निश्चय है, वह अबन्धस्वरूप है, उसके सामने हैं। आहाहा !

शुद्धचैतन्यघन स्वभावभाव, उसे जिसने ध्येय बनाया है। अपनी ध्यान की पर्याय में उसे ध्येय बनाया, उसे सम्यक् होता है। बाकी तीन काल—तीन लोक में दूसरे प्रकार से है नहीं। आहाहा ! अनन्त जिनवर और तीर्थंकरों का यह उपदेश है। वीतराग हुए, वह वीतराग होने का उनका उपदेश है। राग की बात करे, आवे उसे बतलावे व्यवहार। परन्तु तात्पर्य तो वीतरागता प्रगट करना, वह है। इसलिए कहते हैं, वह स्वयं पहले **मोक्षपद के मार्गरूप सम्यग्दर्शन...** निश्चय हों ! सम्यग्दर्शन। आत्मा का दर्शन।

(समयसार गाथा) १४४ में आया न, पूर्णानन्द को विकल्परहित होकर जब देखता है, तब ही देखने में आवे और श्रद्धा में आता है। इसके बिना श्रद्धा में आत्मा आता नहीं। आहाहा ! ऐसा अन्तर बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। १४४ में यह कहा है। उस समय ही दिखता है अर्थात् कि उस समय ही श्रद्धा की जाती है, उस समय अर्थात् ? निश्चय का शुद्ध विकल्प है कि मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, एक। वह विकल्प तोड़कर जब आत्मा निर्विकल्प अनुभव करे, तब ही उसकी प्रतीति, देखने में और श्रद्धान में आत्मा आता है। आहाहा ! और वहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान की ही व्याख्या, वहाँ चारित्र की व्याख्या नहीं। १४४ गाथा में मूल पाठ ही है।

'**सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।**' तब उसका नाम पड़ता है, ऐसा पाठ है। १४४ गाथा। चारित्र की व्याख्या वहाँ है नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान दो की ही है। आहाहा ! समझ में आया ? तब तो उसे सम्यग्दर्शन व्यपदेश। संज्ञा / नाम तब पड़ता है। जब वह आत्मा निर्विकल्प वस्तु को शुद्ध ध्रुव को जब देखता है, मानता है, जानता है, अनुभव करता है, तब उसे सम्यग्दर्शन नाम पड़ता है। आहाहा ! ऐसा पाठ १४४ में है। व्यपदेश है। और यह शैली भाई ने—टोडरमलजी ने ली है कि व्यवहार में कुछ है

नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन का नाम तब ही पड़ता है, उसमें ऐसा है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। आहाहा! यह पहले के पण्डितों ने तो आचार्यों के शब्दों को लगकर ही अर्थ किये हैं। सामान्य का विशेष स्पष्टीकरण किया है। घर का कुछ नहीं। आहाहा! बनारसीदास, टोडरमल सब हो गये वे।

यहाँ कहते हैं कि शिव पाये, कैसे अरिहन्त पद? **मोक्षपद के मार्गरूप...** मोक्षपद का मार्ग। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र...** आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध। वहाँ ३२० गाथा में ऐसा कहा है। वहाँ वाँचन हो गया। ध्याता पुरुष किसका ध्यान करे? खण्ड-खण्ड ज्ञान की क्षयोपशमदशा का भी नहीं। नवलचन्दभाई! थे? अन्तिम है। है न उसमें है। निर्विकार स्वसंवेदन लक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है। क्या कहा यह? कि जो मोक्ष का मार्ग है, वह उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव तीन भाता है। उसे एक को तीन नहीं होते। किसी को उपशमभाव, किसी को क्षयोपशमभाव, किसी को क्षायिक। ये तीनों क्षयोपशमज्ञान हैं उसमें। तीनों में ज्ञान क्षयोपशम है। दर्शन (श्रद्धा) की अपेक्षा से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है, परन्तु ज्ञान तीनों में क्षयोपशम है। आहाहा!

क्षायोपशमिक ज्ञान होने से यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है। एक अंश प्रगटरूप है। निश्चयमोक्षमार्ग हों! तो भी ध्यातापुरुष ऐसा भाता है। परन्तु समकिती ध्यान करनेवाला ऐसा भाता है कि जो सकल निरावरण। मैं तो त्रिकाल निरावरण वस्तु हूँ, उसका वह ध्यान करता है। वहाँ उसकी दृष्टि है। आहाहा! 'सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर' सब गाथा बड़ी व्याख्या है। शुद्ध पारिणामिकपरमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ। समकिती ऐसा मानता है। मैं समकिती पर्याय हूँ, ऐसा नहीं। आहाहा! निजपरमात्मद्रव्य, देखो! वापस निज, हों! भगवान, भगवान के पास रह गये। आहाहा! सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय। ज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञात हो जाता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान की पर्याय में पूरा आत्मा प्रत्यक्ष आता है।

मुमुक्षु : अनुभव प्रत्यक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष है। नहीं... नहीं यहाँ पर्याय में प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष

प्रतिभास हो गया, देखा! भाषा कैसी है! ऐसा भास हो गया है। ज्ञान की पर्याय में सम्यग्ज्ञानी को पूरा आत्मा प्रतिभासमय है। पूरा आत्मभास हो जाता है। आत्मा उसमें आता नहीं। पर्याय में आत्मा आता नहीं, परन्तु पर्याय में उसका प्रतिभास होता है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन लोगों को। वीतराग का वास्तविक रहस्य तो यह है। बाकी सब थोथी बातें करे और दुनिया प्रसन्न हो। आहाहा!

'सकल निरावरण...' त्रिकाल निरावरण, वस्तु। 'अखण्ड एक...' वस्तु त्रिकाली, हों! दो भेद नहीं। द्रव्य पर्याय नहीं। 'प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर...' कभी नाश नहीं। पलटे नहीं ऐसा ध्रुव। शुद्ध पारिणामिकभावपरमभाव लक्षण। शुद्ध पारिणामिक सहज परमभाव त्रिकाली, वह निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। ऐसा ध्याता पुरुष ध्याता है। समकिती ऐसे आत्मा का ध्यान करता है। आहाहा! है स्वयं क्षयोपशमज्ञान। है स्वयं उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव की पर्याय। पर्याय। तथापि उसका ध्यान नहीं। आहाहा! यह पूरे बारह अंग का सार है। 'निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ।' निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। पर्याय ऐसा कहती है, ध्याता। आहाहा! मैं पर्याय हूँ और मैं समकित हूँ, ऐसा भी नहीं। आहाहा!

'परन्तु ऐसा नहीं भाता कि खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।' अस्ति-नास्ति यह अनेकान्त किया। क्षयोपशमज्ञान की पर्याय है, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव है। उसे भाता नहीं। उसका उसे ध्यान नहीं। ध्यान त्रिकाल का है। आहाहा! टीका है संस्कृत की जयसेनाचार्य की। बहुत अर्थ है। यहाँ तो १८ व्याख्यान हुए थे।

यहाँ कहते हैं, वे मुनि अरिहन्त कैसे हुए? कि इस प्रकार से हुए। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का ध्येय क्या? कि जो अखण्ड कहा वह। आहाहा! अखण्ड सकल निरावरण एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय वस्तु। निज परमात्मद्रव्य वह मैं, इस सम्यग्दृष्टि का ध्यान वहाँ है। आहाहा! समझ में आया? वह **मोक्षपद के मार्गरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहरता हुआ...** पर्याय है। उसमें **ठहरता हुआ...** दूसरी गाथा में कहा है न समयसार (में)? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण**' दूसरी गाथा। जीव स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर हो, उसे आत्मा कहते

हैं। जो कोई पुण्य और पाप के भाव में स्थिर हो, उसे अनात्मा जड़ कहते हैं। यह दूसरी गाथा है। '**पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।**' आहाहा! समझ में आया?

मोक्षपद के... यह अरिहन्त कैसे हुए अनन्त अरिहन्त। अभी भी भगवान लाखों केवली विराजते हैं। बीस तीर्थंकर महाविदेह में विराजते हैं। वे कैसे हुए? '**शिवपदमार्गे वसन्**' शिव अर्थात् मोक्ष के पद के मार्गरूप **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहरता हुआ...** अब '**सकलविकल्पानां तुट्यतां**' **समस्त रागादि विकल्पों का नाश करता है,...** व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग है, उसका नाश करते हैं। आहाहा! समझ में आया? '**सकलविकल्पानां तुट्यतां**' **नाश करता है, अर्थात् जब समस्त रागादि विकल्पों का नाश हो जावे,...** आहाहा! यह भी नास्ति से कथन है। **विकल्प नाश हो जावे,...** इसका अर्थ? जब यहाँ स्वरूप में स्थिर होता है, तब विकल्प उत्पन्न नहीं होते, यह विकल्पों का नाश होता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें। लेखन कुछ और अर्थ कुछ। यह संक्षिप्त लेखन ऐसा ही होता है शास्त्र का। आहाहा! विकल्प को तोडूँ, ऐसा है वहाँ? इस ओर स्थिर होता है, वहाँ विकल्प उत्पन्न नहीं होता और सर्वविकल्प को तोड़ता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! बात-बात में अन्तर है।

परमात्मप्रकाश है। यहाँ का मिला? यहाँ का है न? आहाहा! यहाँ है। वहाँ होगा तुम्हारे नैरोबी। नैरोबीवालों ने भाई वहाँ जामनगर में इन लोगों ने बहुत भाग लिया था। बहुत दूर से आये हैं। नैरोबी से आये हैं। ये लोग सब पूंजाभाई, रायचन्दभाई, हीराभाई, जेठाभाई, वे करमणभाई बेचारे बहुत ठेठ आये वहाँ से। सबने बहुत पैसा खर्च किया था। पैसे का यह करने का है। पूंजाभाई! पैसा तो ठीक, वह तो जड़ है। वह जड़ तो जहाँ जानेवाला है, वह उसकी क्रियावतीशक्ति उसमें है। यह कोई कहे कि मैं यहाँ पैसा दूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! वह परमाणु की उस समय में क्रियावतीशक्ति से जहाँ जानेवाला हो, वहाँ उसके कारण से जाता है और उसके कारण से रहता है। ऐसी बात है। बोला जाता है, व्यवहार से बोला जाता है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : व्यवहार तो सब उल्टा ही लगे। व्यवहार अर्थात् उल्टा कथन।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से शैली। कहा जाता है। ऐसा बोला जाता है भाषा

से। पद्मनन्दि आचार्य ने ऐसा नहीं कहा? महामुनि वनवासी सन्त (ने कहा) कि, हे जीव! कौवे को जूठन... क्या कहलाती है वह? खुरचन, उस कौवे को खिचड़ी और चावल खुरचन मिले, वह खिचड़ी तो खाया उसने, परन्तु खुरचन हो वह मिले, उसे कौआ अकेला नहीं खाये। जब अशुभभाव टालने की शुभभाव की बात करनी हो, तब तो यह करे न? है भले बन्ध का कारण। आहाहा! तब ऐसा कहा कि वह कौआ अकेला नहीं खाता खुरचन मिले उसे (अकेला नहीं खाता)। इसी प्रकार तुझे पूर्व का पुण्य तो जला था। भाव जो शुभ किया, वह शान्ति जली थी। उसमें तुझे शुभभाव हुआ, पद्मनन्दि पंचविंशति में है। उस शुभभाव से पुण्य बँधा और उससे तुझे धूल मिली पाँच-पच्चीस लाख। यदि अकेला खायेगा तो कौवे से भी गया-बीता है, ऐसा वहाँ कहा है। उन मुनि को कहाँ पड़ी है दुनिया की? उसमें राग घटाना। वहाँ शुभभाव होता है। होता है, उसे बतलाते अवश्य हैं। आहाहा! है वह बन्ध का कारण। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं '**सकलविकल्पानां**' **समस्त रागादि विकल्पों का नाश करता है, अर्थात् जब समस्त रागादि विकल्पों का नाश हो जावे, तब निर्विकल्प ध्यान के प्रसाद से...** लो, यह प्रसाद। **निर्विकल्प ध्यान के प्रसाद से...** आहाहा! **केवलज्ञान होता है।** व्यवहार से केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! क्योंकि प्रभु स्वयं अबन्धस्वरूप आत्मा है। अबद्ध कहो, मोक्षस्वरूप ही है वह। स्वरूप शक्ति से तो मोक्षस्वरूप ही है। उसके अवलम्बन से परिणाम हो, वह अबन्धपरिणाम होते हैं। अबन्धस्वरूप के आश्रय से अबन्धपरिणाम होते हैं और पर के आश्रय से हो, वह बन्धपरिणाम होते हैं। चाहे तो तीन लोक का नाथ कहो। '**परदव्वादो दुग्गइ**' भगवान ऐसा कहते हैं कि हम तुझसे परद्रव्य हैं और हमारे ऊपर लक्ष्य जाने से तेरी दुर्गति है। आहाहा! मोक्षपाहुड़, १६वीं गाथा। मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ**' आहाहा! यह वीतराग ऐसा कहते हैं, दूसरा कोई यह नहीं कहता, हों! वीतराग के अनुयायी कहते हैं। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ**' दुर्गति अर्थात् इस चैतन्य की गति नहीं। शुभभाव, वह चैतन्य का भाव नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! शुभभाव है, होता है। अशुभ से बचने के लिये आता है, परन्तु है बन्ध का कारण।

रायचन्दभाई! यह वहाँ यह बात सब स्पष्ट की। फिर उसने ५० हजार खर्च किये हैं। निश्चित किया है। अभी निश्चित कहाँ करना है अब?

मुमुक्षु : आप कहते हो कि खर्च करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खर्च करे और कौन छोड़े? यह मकान कौन बनावे? किसने बनाया है? परमाणुओं के परिणमन के प्रवाह के कालक्रम में आयी हुई दशा उससे यह बना हुआ है। दूसरा कोई कहे कि मैंने बनाया है, यह अभिमान है, अज्ञान है। ऐसी सब बातें। चिमनभाई! यहाँ तो भाई! सबको स्पष्ट बात की है। अपने शान्तिभाई नहीं, चिमनभाई के? शान्तिभाई ने एक लाख रुपये दिये उसमें अभी भावनगर। सत्साहित्य में। चिमनभाई के पुत्र शान्तिभाई झबेरी। एक लाख वहाँ दिये। बात यह कि रुपये-बुपये में तुम्हारा राग मन्द करो तो पुण्य है। पैसे दिये, इसलिए धर्म होता है और पुण्य होता है, ऐसा भी नहीं। यहाँ तो स्पष्ट बात है। उस समय राग मन्द करो, प्रसिद्धि के लिये नहीं, दुनिया में मैं कुछ प्रसिद्ध होऊँ, मुझे कुछ गिने—ऐसे भाव हो तो पाप है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ने कुछ संकल्प-विकल्प को तोड़ डाला। आहाहा!

समस्त रागादि विकल्पों का नाश हो जावे, तब निर्विकल्प ध्यान के प्रसाद से केवलज्ञान होता है। लो! यह मोक्ष का मार्ग। निर्विकल्प ध्यान, वह मोक्ष का मार्ग। आहाहा! **केवलज्ञानी का नाम अर्हंत है,...** लो! केवलज्ञानी परमात्मा को अर्हंत शब्द से भी कहते हैं। आहाहा! **चाहे उसे जीवनमुक्त कहो।** आहाहा! **जब अर्हंत हुआ, तब भावमोक्ष हुआ,...** चार (अघाति) बाकी है। द्रव्यमोक्ष तो सिद्ध को, भावमोक्ष अरिहन्त को। **पीछे चार अघातियाकर्मों का नाश कर सिद्ध हो जाता है। सिद्ध को विदेह मोक्ष कहते हैं।** अरिहन्त को जीवनमुक्त कहते हैं। आहाहा! एक पद को भी एक ही भाव को भी यथार्थ रीति से जाने तो सब भाव को यथार्थ जाने और एक ही भाव को... श्रीमद् कहते हैं, ज्ञानी के एक वचन में अनन्त आगम रहे हैं। आहाहा! कितने अधिक पहलू उसमें समाहित हैं, ऐसा कहे। श्रीमद् स्वयं। एक आगम में, एक वचन में, अनन्त आगम, अनन्त आगम। आहाहा! उसे अस्ति, नास्ति, एक, अनेक, भाव, अभाव आदि

के पक्षों से लो तो एक-एक मोक्ष की पर्याय में अनन्त सप्तभंगी खड़ी होती है। आहाहा! ऐसा वीतराग का विस्तार विशाल मार्ग है।

यही मोक्ष होने का उपाय है। अन्तिम... अन्तिम। यही मोक्ष होने का उपाय है। आत्मा का निर्विकल्प ध्यान, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह निर्विकल्प है। जिसमें राग का अंश नहीं। वीतरागी पर्याय तीनों हैं। सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी। कोई कहे कि चौथे गुणस्थान में सराग समकित होता है, सातवें, आठवें में वीतराग समकित होता है, वह तो राग का, चारित्र का दोष है, यह बतलाकर कहा है। बाकी समकित तो वीतराग ही होता है, समकित तो वीतराग (मिथ्या) दर्शन का नाश हुआ वहाँ वीतरागी ही पर्याय है। वह तो चारित्र का राग साथ में है, ऐसा बतलाकर कहते हैं। आहाहा! यह तीनों कहा न? तीनों वह वीतराग का मार्ग और **यही मोक्ष होने का उपाय है।** यह मोक्ष का उपाय एक ही है। दूसरा कथन किया है, दो। मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से— निरूपण। सातवें अध्याय में कहा है। परन्तु मोक्षमार्ग एक ही है। दो मोक्षमार्ग माने वह भ्रमणावाला मिथ्यादृष्टि है, ऐसा लिखा है।

तब और अभी एक दूसरा पण्डित है, वह ऐसा कहता है कि दो न माने वे भ्रमणा में हैं। जगत स्वतन्त्र है न! उसके परिणाम की स्वतन्त्रता है, भाई! जिसे जितनी दशा होगी आगे जाने की या रहने की ऐसी होगी। उसमें क्या? आहाहा! 'जामे जितनी बुद्धि है, उतनो दिये बताय, वांको बुरो न मानीये और कहाँ से लाये?' दूसरा कहाँ से लावे? उसे बैठा हो, वह कहे। आहाहा! रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं। दो मोक्षमार्ग न माने, वह मिथ्यादृष्टि है। टोडरमलजी कहते हैं कि दो माने, वे भ्रम में पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यही कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यही कहते हैं, भाई! दूसरा कहे तो भी उसे... वे ऐसा कहते हैं। दो नहीं मानते, वे भ्रम में पड़े हैं, वे ऐसा कहते हैं। दो तो कथन की शैली है। वस्तु कहाँ है? वह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है, नहीं? मोक्षमार्ग तो कहीं दो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। कथन दो प्रकार से है। वस्तु दो प्रकार से नहीं। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपण किया, वह निश्चयमोक्षमार्ग। जहाँ

मोक्षमार्ग तो नहीं, व्यवहार है वह। परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है। निमित्त उसे कहते हैं कि करे कुछ नहीं, उसे निमित्त कहते हैं। आहाहा! अभी भाई ने अर्थ किया है कैलाशचन्दजी ने। भाई! यह निमित्त मानते नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु वे लोग कहते हैं निमित्त से पर में कुछ होता नहीं, ऐसा मानते हैं। यह बात बराबर है। होवे क्या धूल? एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय में हो क्या? (करे क्या?) आहाहा! है?

मोक्ष (मार्ग में) निमित्त है, सहचारी है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं अर्थात् व्यवहार मोक्षमार्ग है। कारण? अब पूरा सिद्धान्त लेते हैं पूरे बारह अंग का। निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है। निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र यही लक्षण है। सच्चा निरूपण, वह निश्चय और व्यवहार का निरूपण, वह व्यवहार। आहाहा! सर्वत्र। जहाँ हो वहाँ बारह अंग में कथन हो। ऐसी बात है। १९५ हुई।

गाथा - १९६

अथ-

३१९) केवल-णाणिं अणवरउ लोयालोउ मुणंतु।
णियमै परमाणंदमउ अप्पा हुइ अरहंतु।।१९६।।

केवलज्ञानेनानवरतं लोकालोकं मन्यानः।
नियमेन परमानन्दमयः आत्मा भवति अर्हन्।।१९६।।

हुइ भवति। कोडसौ। अप्पा आत्मा। कथंभूतो भवति। अरहंतु पूर्वोक्तलक्षणो अर्हन्। किं कुर्वन्। लोयालोउ मुणंतु क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन कालत्रयविषयं लोकालोकं वस्तु वस्तुरुपेण युगपत् जानन् सन्। केन। केवल-णाणि लोकालोकप्रकाशकसकलविमलकेवलज्ञानेन। कथम्। अणवरउ निरन्तरम्। किं विशिष्टो भवति भगवान्। परमाणंदमउ वीतरागपरमसमरसीभाव-लक्षणतात्त्विकपरमानन्दमयः। केन। णियमें निश्चयेन अत्र संदेहो न कर्तव्य इत्यभिप्रायः।।१९६।।

अब केवलज्ञान की ही महिमा कहते हैं-

लोकालोक जानते हैं अर्हन्त ज्ञान-केवल द्वारा।
भोगें परमानन्द आत्मा निश्चय से अर्हत् होता।।१९६।।

अन्वयार्थः- [केवलज्ञानेन] केवलज्ञान से [लोकालोकं] लोक-अलोक को [अनवरतं] निरन्तर [जानन्] जानता हुआ [नियमेन] निश्चय से [परमानंदमयः] परम आनंदमयी [आत्मा] यह आत्मा ही रत्नत्रय के प्रसाद से [अर्हन्] अरहंत [भवति] होता है।

भावार्थः- समस्त लोकालोक को एक ही समय में केवलज्ञान से जानता हुआ अरहंत कहलाता है। जिसका ज्ञान जानने के क्रम से रहित है। एक ही समय में समस्त लोकालोक को प्रत्यक्ष जानता है, आगे पीछे नहीं जानता। सब क्षेत्र, सब काल, सब भाव को निरंतर प्रत्यक्ष जानता है। जो केवलीभगवान् परम आनंदमयी हैं। वीतराग परमसमरसीभावरुप जो परम आनंद अतीन्द्रिय अविनाशी सुख वही जिसका लक्षण है। निश्चय से ज्ञानानंदस्वरुप है, इसमें संदेह नहीं है।।१९६।।

गाथा-१९६ पर प्रवचन

१९६। **अब केवलज्ञान की महिमा कहते हैं:—** अब केवलज्ञान की महिमा। आहाहा! एक समय में अनन्त गुण में से एक ही गुण की एक ही पर्याय। आहाहा! यह द्रव्य, उसके अनन्त गुण, उसमें एक ज्ञानगुण की एक पर्याय केवल (ज्ञान)। एक गुण की एक पर्याय, अनन्त पर्यायें भले साथ में रहीं। आहाहा! केवलज्ञान की जो पर्याय है एक, केवलज्ञान की, हों! यह उसकी महिमा करते हैं।

३१९) केवल-णाणिं अणवरउ लोयालोउ मुणंतु।
णियमैं परमाणंदमउ अप्पा हुइ अरहंतु।।१९६।।

आहाहा! **अन्वयार्थ: —केवलज्ञान से लोक-अलोक को निरन्तर जानता हुआ...** भाषा देखो। भगवान अरिहन्त केवलज्ञान से लोकालोक को निरन्तर, एक-एक समय में निरन्तर जानते हैं। भूत, भविष्य की पर्याय वहाँ होनेवाली है, उसे भी वर्तमान प्रत्यक्ष जानते हैं। कितने ही कहते हैं कि भविष्य की पर्याय अभी हुई नहीं। वह तो होगी, तब जाने। वरना निश्चय हो जाता है। क्योंकि जहाँ-जहाँ पर्याय अनन्त है, जिस समय में जहाँ-जहाँ, उसे भगवान जानते हैं, यह तो क्रमबद्ध हो गया। आड़ी-टेढ़ी कहीं पर्याय है ही नहीं। आहाहा!

केवलज्ञान से लोक-अलोक को निरन्तर जानता हुआ... 'अनवरतं' शब्द पड़ा है। निरन्तर। आहाहा! एक लोकालोक अनन्त सिद्ध, अनन्त केवली। अनन्त द्रव्य, उन्हें एक ज्ञानगुण की, एक समय की एक पर्याय। दूसरे गुणों की पर्यायें अनन्त भले साथ में रहीं। परन्तु एक पर्याय निरन्तर लोकालोक को... आहाहा! **निरन्तर जानता हुआ...** भविष्य की पर्याय जिस द्रव्य में, जब, जिस समय होगी, उसे वर्तमान में जानते हैं। प्रत्यक्ष जानते हैं। ऐसा कि हुई नहीं, उसे किस प्रकार जाने? यह तो छद्मस्थ के लिये बात है। हुई, होती है और होगी। सब वर्तमान एक समय में प्रत्यक्ष देखते हैं उसमें। आहाहा! एक बोल भी यथार्थ समझे न, तो उसमें बहुत बोलों का हल हो जाता है। परन्तु एक भी बोल में ठिकाना नहीं मिलता।

केवलज्ञान से लोक-अलोक को निरन्तर जानता हुआ... अब ऐसा कहते हैं कि

निरन्तर जानते हैं, तो सब जानना इतना सब उसमें कुछ दुःख नहीं? **निश्चय से परम आनन्दमयी यह आत्मा...** आहाहा! वह तो परम आनन्दमय प्रभु है। आहाहा! एक समय में तीन काल—तीन लोक प्रत्यक्ष जाने, तथापि वर्तमान परम आनन्दमय है। आहाहा! जिस द्रव्य की जिस काल में जिस प्रकार से जिस अवसर में होनेवाली... ९९ गाथा प्रवचनसार में है। अपने-अपने अवसर में पर्याय होगी, उल्टी-सीधी नहीं होगी। प्रवचनसार (गाथा) ९९। उसकी १०२ गाथा। प्रत्येक द्रव्य का निजक्षण है। जन्मक्षण है। जिस द्रव्य की जहाँ पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह जन्मक्षण है। उत्पत्ति का उसका वह काल है। आहाहा! गजब बात! तब तो फिर होती है, भगवान ने देखा है ऐसा होता है, तब पुरुषार्थ करना कहाँ रहा? अरे! सुन तो सही! यह प्रश्न तो हमारे बहुत हो गया, ७६ (संवत्) १९७६। दामोदर सेठ। ७६ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? वे कहे, लो भगवान ने देखा, ऐसा होता है, तब तो फिर पुरुषार्थ कहाँ करना रहा? ऐसा। पुरुषार्थ तो हाथ में रहा नहीं। भाई! कहा, भगवान सर्वज्ञ जगत में है, ऐसी एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य है, उसकी सत्ता का जहाँ स्वीकार करने जाता है, तब उसकी दृष्टि ज्ञायक पर जाती है। वह पुरुषार्थ है। यह तो ७६ की बात है। २४ और ३३ = ५७ वर्ष हुए। बड़ा प्रश्न था, दामोदर सेठ है। पैसेवाले थे। इतने में पैसेवाले वे एक ही थे। अब पैसा हुआ है बहुत। उसके पास दस लाख तब थे, ६० वर्ष पहले, हों! आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ एक समय की पर्याय में तीन काल—तीन लोक प्रत्यक्ष देखते हैं। ऐसी एक समय की पर्याय के अस्तित्व की सत्ता का जहाँ स्वीकार है, 'है'—ऐसा स्वीकार करने जाता है, तब उसकी पर्याय के ऊपर दृष्टि नहीं रहती। आहाहा! उसकी दृष्टि द्रव्य-ध्रुव पर जाती है, ज्ञायक पर जाती है, तब उसका निर्णय यथार्थ होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

लोक-अलोक को निरन्तर जानता हुआ निश्चय से परम आनन्दमय यह आत्मा ही रत्नत्रय के प्रसाद से... देखो! आहाहा! उसमें यह आया था। निर्विकल्प ध्यान के प्रसाद से, आया था न? **यह आत्मा ही...** शास्त्र में आवे व्यवहार के कथन बहुत आवे। यह ११वीं गाथा में कहा है। परन्तु उसका फल तो बन्धन है, संसार है। ११वीं गाथा में कहा है। पण्डित जयचन्दजी ने (भावार्थ में कहा है)। व्यवहार के कथन बहुत आते हैं।

क्योंकि उसे भेद से समझाना है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भी हमेशा प्राप्त हो, वह आत्मा। यह व्यवहार है। भेद से कहा है न! इसलिए वहाँ कहा है कि हम भेद से कहते हैं परन्तु सुननेवाले को, कहनेवाले को भेद अनुसरण करना नहीं। वहाँ कहा है ८वीं गाथा (की) टीका। कथन सब आवे। व्यवहार के कथन तो बहुत आते हैं शास्त्र में। उसका फल संसार है, बन्धन है। समझ में आया? ११वीं गाथा है। पण्डित जयचन्दजी के अर्थ में है।

यह आत्मा ही... ऐसा शब्द है। क्या कहा? कि सबको जाने तो भी परम आनन्दमय है। अधिक जाने इसलिए दु:खी है। आहाहा! वह तो लोकालोक को जाने, (ऐसा) कहना वह व्यवहार है। अपनी पर्याय की पूर्णता को ही वे जानते हैं। लोकालोक तो पर है। पर को जाने, वह तो असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसा है। प्रभु तो परम आनन्दमय है। आहाहा! **यह आत्मा ही रत्नत्रय के प्रसाद से...** यह आत्मा ही स्वयं रत्नत्रय के प्रसाद से। निश्चय से, हों! **अरहन्त होता है।** लो! आहाहा!

भावार्थ: —समस्त लोकालोक को एक ही समय में केवलज्ञान से जानता हुआ अरहन्त कहलाता है। जिसका ज्ञान जानने के क्रम से रहित है। भगवान का ज्ञान क्रम से नहीं जानता। पहला भूतकाल जाने, फिर भविष्य जाने और फिर वर्तमान—ऐसा नहीं है। एक समय में तीन काल—तीन लोक एक समय में प्रत्यक्ष वर्तमान भासित हो। वहाँ पर्याय हुई नहीं, उसे वर्तमान में प्रत्यक्ष भासित हो। आहाहा! एक बात बैठे तो कितनी बात बैठ जाये इसे। आहाहा! केवलज्ञान जो पर्याय जहाँ-जहाँ जिस प्रकार से होनेवाली है, जिस क्षेत्र में, जिस काल में—जिस समय में उसका जन्मक्षण है, (प्रवचनसार) १०२ गाथा। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का जन्मक्षण, उत्पत्ति का उसका समय, उस समय में वही उत्पन्न होती है। ऐसी अनन्त अनादि। ऐसी पर्याय को केवलज्ञानी तो एक समय में प्रत्यक्ष जाने। वह है, इसलिए जानते हैं, ऐसा भी नहीं। अपनी पर्याय का सामर्थ्य ही इतना है कि जिसे पर की अपेक्षा नहीं, इतना वह अपना सामर्थ्य है कि स्वयं स्व को, पर को, अपने सामर्थ्य से, अपने में अपने को जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

क्रम से रहित है। भगवान क्रम से नहीं जानते। एक साथ अक्रमबद्ध को जानते हैं। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १९७

अथ-

३२०) जो जिणु केवल-णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
सो परमप्पउ परम-सो जिय अप्प-सहाउ।।१९७।।

यः जिनः केवलज्ञानमयः परमानन्दस्वभावः।
सः परमात्मा परमपरः स जीव आत्मस्वभावः।।१९७।।

जो इत्यादि। जो यः जिणु अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः। कथंभूत। केवल-णाणमउ केवलज्ञानाविनाभूतानन्तगुणमयः। पुनरपि कथंभूतः। परमाणंद-सहाउ इन्द्रियविषयातीतः स्वात्मोत्थः रागादिविकल्परहितः परमानन्दस्वभावः सो परमप्पउ स पूर्वोक्तोडर्हन्नेव परमात्मा परम-परु प्रकृष्टानन्तज्ञानादिगुणरुपा मा लक्ष्मीर्यस्य स भवति परमः संसारिभ्यः पर उत्कृष्टः इत्युच्यते परमश्चासौ परश्च परमपरः सो स पूर्वोक्तो वीतरागः सर्वज्ञः जिय हे जीव अप्प-सहाउ आत्मस्वभाव इति। अत्र योडसौ पूर्वोक्तभणितो भगवान् स एव संसारावस्थायां निश्चयनयेन शक्तिरुपेण जिन इत्युच्यते। केवलज्ञानावस्थायां व्यक्तिरुपेण च। तथैव च परमब्रह्मादिशब्दवाच्यः स एव तदग्रे स्वयमेव कथयति। निश्चयनयेन सर्वे जीवा जिनस्वरुपाः जिनोडपि सर्वजीवस्वरुप इति भावार्थः। तथा चोक्तम्-''जीवा जिणवर जो मुणइ जिणवर जीव मुणेइ। सो समभावि परिट्ठयउ लहु णिव्वाणु लहेइ।।'' ।।१९७।। एवं चतुर्विंशतिसूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये अर्हदवस्थाकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयेण द्वितीयमन्तरस्थलं गतम्।

आगे ऐसा कहते हैं, कि केवलज्ञान ही आत्मा का निजस्वभाव है, और केवली को ही परमात्मा कहते हैं-

परमानन्द स्वभावरूप जिन केवलज्ञानमयी उत्कृष्ट।
यही जीव का निज स्वभाव है वे ही परमात्मा भगवन्त।।१९७।।

अन्वयार्थः- [यः जिनः] जो अनंत संसारीरुपी वन के भ्रमण के कारण ज्ञानावरणादि आठ कर्मरुपी बैरी उनका जीतनेवाला वह [केवलज्ञानमयः] केवलज्ञानादि अनंत गुणमयी है [परमानंदस्वभावः] और इंद्रिय विषय से रहित आत्मीक रागादि विकल्पों से रहित परमानंद ही जिसका स्वभाव है, ऐसा जिनेश्वर केवलज्ञानमयी अरहंतदेव [सः] वही [परमात्मा] उत्कृष्ट अनंत ज्ञानादि गुणरुप लक्ष्मीवाला आत्मा परमात्मा है। उसी को

वीतराग सर्वज्ञ कहते हैं, [जीव] हे जीव, वही [परमपरः] संसारीयों से उत्कृष्ट है, ऐसा जो भगवान् वह तो व्यक्तिरुप है, और [स आत्मस्वभावः] वह आत्मा का ही स्वभाव है।

भावार्थः– संसार अवस्था में निश्चयनयकर शक्तिरुप विराजमान है, इसलिये संसारी को शक्तिरुप जिन कहते हैं, और केवली को व्यक्तिरुप कहते हैं। द्रव्यार्थिकनयकर जैसे भगवान् हैं, वैसे ही सब जीव हैं, इस तरह निश्चयनयकर जीव को परब्रह्म कहो, परमशिव कहो, जितने भगवान् के नाम हैं, उतने ही निश्चयनयकर विचारो तो सब जीवों के हैं, सभी जीव जिनसमान हैं, और जिनराज भी जीवों के समान हैं, ऐसा जानना। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है। जो सम्यग्दृष्टि जीवों को जिनवर जाने, और जिनेश्वर को जीव जाने, जो जीवों की जाति है, वही जिनवर की जाति है, और जो जिनवर की जाति है, वही जीवों की जाति है, ऐसे महामुनि द्रव्यार्थिकनयकर जीव और जिनवर में जातिभेद नहीं मानते, वे मोक्ष पाते हैं।।१९७।।

इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में अरहंतदेव के कथन की मुख्यता से तीन दोहों में दूसरा अंतरस्थल कहा।

वीर संवत् २५०२, वैशाख कृष्ण १०, गुरुवार
दिनांक- १२-०५-१९७७, गाथा - १९७, प्रवचन-२३६

---

१९७ गाथा बहुत सरस है। १९७ **आगे ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान ही आत्मा का निजस्वभाव है,....** प्रत्येक आत्मा को केवलज्ञान ही स्वभाव है, शाश्वत स्वभाव है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो नहीं, कर्म नहीं, राग नहीं, अल्पज्ञपना नहीं। आहाहा! प्रत्येक... है न? **केवलज्ञान ही आत्मा का निजस्वभाव है, और केवली को ही परमात्मा कहते हैं।** शक्तिरूप से प्रत्येक केवलज्ञानस्वभावी भगवान ही है। वहाँ इसे दृष्टि देनी पड़ेगी। पूरा बारह अंग और शास्त्र का सार यह है। कहा कि भूतार्थ त्रिकाल आत्मा शक्तिरूप से स्वभावरूप से केवलज्ञानमय ही है, परमात्मा ही है। आहाहा! प्रत्येक आत्मा। आहाहा! उसे पर्यायबुद्धि उड़ाकर द्रव्यबुद्धि कराते हैं। आहाहा! कराते हैं, इसका अर्थ कि ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! केवलज्ञान, उसका निज स्वभाव है।

मुमुक्षु : स्वभाव हो तो तीनों काल रहना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल है। तीनों काल ही है। केवल-अकेला ज्ञानस्वरूप, उसके साथ आनन्द लेंगे। गाथा बहुत अच्छी है। आहाहा!

तू परमात्मा ही है। यह परमात्मप्रकाश है। ऐसा कहते हैं। प्रत्येक आत्मा अभव्य और भव्य, अनन्त काल में सिद्ध नहीं हो, ऐसे जीव भी परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्तु ऐसी है, वस्तु ऐसी है। द्रव्यदृष्टि का अर्थ—द्रव्य अर्थात् वस्तु। स्वभाव ही ऐसा है। आहाहा! उसमें अल्पज्ञपना जहाँ नहीं, वहाँ फिर राग, पुण्य और व्यवहार और निमित्त तो कहाँ रहे ? आहाहा! ऐसी बात है।

केवलज्ञान ही.... ऐसा शब्द है न ? केवलज्ञान ही **आत्मा का निजस्वभाव है,....** आत्मा का निजस्वभाव ही ऐसा है। आहाहा! कितनी दृष्टि को कहाँ सर्वत्र बाहर से खींचकर अन्दर ले जानी पड़ेगी। आहाहा! पूरी दुनिया उसने एक ओर रखकर, राग भी एक ओर रखकर प्रगट वर्तमान व्यक्त पर्याय है, उसे भी एक ओर रख। आहाहा! एक समय की अवस्था प्रगट है, अस्ति है, उसकी अस्ति की रुचि भी छोड़ दे। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। लोगों को यह परमार्थ बैठना कठिन पड़ता है। व्यवहार के कथन शास्त्र में बहुत आते हैं। यह व्यवहार लिखा। सब लिखा, बापू! सब कहा है। अल्पज्ञ भी कहा है, निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग भी उघाड़ कहा है। वह तो पर्याय की वर्तमान अवस्था की बातें हैं। आहाहा! है, भले हो। उसे उल्लंघकर। त्रिकाल ज्ञानस्वभाव, केवलज्ञान अकेला ज्ञानस्वभाव अर्थात् कि परमात्मस्वभाव ही आत्मा है। आहाहा! और **केवली को ही (व्यक्त) परमात्मा कहते हैं।** व्यक्त है। केवलज्ञानी व्यक्त पर्याय में है। दूसरे सब आत्मायें शक्तिरूप स्वभावरूप परमात्मा हैं। आहाहा!

३२०) जो जिणु केवल-णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
सो परमप्पउ परम-सो जिय अप्प-सहाउ।।१९७।।

लो! यह जीव का अपना स्वभाव ही है, अन्तिम पद में ऐसा कहा। आहाहा!

अन्वयार्थ :- जो अनन्त संसाररूपी वन के भ्रमण के कारण.... 'यः जिनः' जो अनन्त संसाररूपी वन के भ्रमण के कारण ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूपी वैरी.... यह

निमित्त से कथन है। वेरी तो उसका अपना अशुद्ध विपरीत परिणाम, वह वेरी है, परन्तु संक्षिप्त कहने में उसका निमित्त है, उसे वेरी कहा गया है। समझ में आया? यह निमित्त और कोई आत्मा को उल्टी दशा कराता नहीं। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप... आहाहा! सम्यग्दर्शन, उसका विषय जो त्रिकाल, वह तो परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और केवली ने किया क्या? कहते हैं। शक्तिरूप से तो वह भगवान स्वयं थे। अब पर्याय में कैसे आये? प्राप्त की प्राप्ति। जो चीज़ थी, वह दशा में आयी। परमात्मरूप था, वह शक्तिरूप से स्वभावरूप से उसमें सत्त्वरूप से ध्रुव था।

ज्ञानावरणादि भवभ्रमण के कारणरूप, उसे जीतनेवाला '**यः जिनः**' जिन की व्याख्या है न? उन्होंने जीता है। कर्म को जीता, यह कहना तो एकदम असद्भूत व्यवहार है, परन्तु अशुद्धता को जीता, यह भी एक अशुद्धनय का व्यवहारनय का कथन है। 'जिन' शब्द है, इसलिए इसका अर्थ 'जीतना'। आहाहा! बाकी तो परमात्मस्वरूप है, उसमें जहाँ स्थिर होता है, परमात्मस्वरूप स्वयं है, उसका सम्यग्दर्शन करके और उसमें स्थिर होता है, तब विकार की पर्याय उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न सर्वज्ञपना होता है, इसलिए उन्होंने अशुद्धतारूपी भावकर्म को जीता, तब जड़कर्म को जीता, ऐसा असद्भूत व्यवहार उन्हें लागू पड़ा। आहाहा! समझ में आया? जिन शब्द है न, जिन। जिन सो ही आत्मा, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। सब भगवान जिनस्वरूप है। और केवली हुए, वे किस प्रकार से जिन हुए? उनके केवलज्ञानस्वभाव से विरुद्ध भाव जो पर्याय में था, अल्पज्ञ मानता था, रागवाला मानता था, मलिन हूँ मानता था, अपूर्ण हूँ—ऐसी जो मान्यता थी, उसे पूर्ण हूँ, अखण्ड हूँ, अभेद हूँ—ऐसा विकल्प नहीं, परन्तु इस प्रकार श्रद्धा-ज्ञान करके और अन्दर स्थिर हुए, तब भावकर्म की अशुद्धता का जो भाव था, वह उत्पन्न हुआ नहीं; इसलिए उसका नाश किया, ऐसा कहने में आता है। तब उसका निमित्त जो कर्म था, वह तो नाश उसके होने के काल में उसके कारण से हुआ है। समझ में आया? कहीं परद्रव्य का आत्मा स्वामी नहीं कि उसे बाँधे और उसे तोड़े। समझ में आया? आहाहा!

उनको जीतनेवाला वह.... 'केवलज्ञानमयः' केवलज्ञानादि.... पाठ में अकेला केवलज्ञानमय है। **केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी है....** ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता,

प्रभुता ऐसी अनन्त शक्तियों का समूह है। क्षेत्र भले थोड़ा हो, असंख्य प्रदेशी और शरीरप्रमाण, परन्तु उसके अन्दर शक्तियाँ जो हैं—ज्ञान, दर्शन आदि, वह तो अनन्त और अपार और अपरिमित है, संख्या से और स्वभाव से। समझ में आया? संख्या से भी अनन्त है और उस शक्ति का स्वभाव वर्तमान भी अनन्त और अपरिमित है। आहाहा! ऐसा उपदेश, इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)। वह व्रत पालने का कहे, दया का कहे, व्यवहार में कर्म बाधक है और यह कर्म बाधक है (तो समझ में भी आये)। गोम्मटसार में आता है न कि ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को हनन करता है, ऐसी बातें लोगों को अच्छी लगती हैं। बाकी हनन किसका करे?

अस्ति स्वरूप महाप्रभु अनन्त बेहद ज्ञान और अनन्त आनन्द, ऐसा साथ में आनन्द लिया है। यहाँ केवलज्ञानमय, ऐसा लिया है। और परमानन्दस्वभाव। आहाहा! यह बाहर के भभका तो भूल जा, परन्तु अन्दर की अल्पज्ञ पर्याय जितना भी भूल जा। आहाहा! और शुभ रत्नत्रय को राग जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, बारह व्रत के विकल्प या शास्त्र का पठन, वह सब भूल जा। आहाहा! भगवान को याद करना हो तो भी वह सब भूल जा। आहाहा! चार ज्ञान की दशा प्रगट हुई हो तो भी उसे भूल जा और त्रिकाली है, वहाँ दृष्टि को रख। दृष्टि तो वहाँ है ही उसकी। आहाहा! ऐसा मार्ग।

अनन्त केवलज्ञानादि गुणमयी है.... गुणमय कहा है, गुणवाला भी नहीं। गुणमय। अभेद है। ऐसा कहा है न? है न? **केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी....** अनन्त गुणवाला, ऐसा नहीं। अनन्त गुणवाला तो भेद पड़ जाता है। अनन्त गुणमय है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा,.... आहाहा! शरीर के संसर्ग से उत्पन्न होता विकल्प, उसे भी भूल जा, भाई! तूने संसर्ग तो किया ही नहीं। एक देह दूसरे देह को संसर्ग—छूता ही नहीं। परन्तु यहाँ तो भगवान ज्ञानमय कहा। अनन्त ज्ञानमय आदि अनन्त शक्तियाँ, वह राग को छूता नहीं और वर्तमान एक समय की पर्याय को भी वह त्रिकाली ज्ञानमय, ज्ञानमय है, वह उस एक समय की पर्याय को स्पर्श नहीं करता। चिमनभाई! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग। और वह भी ऐसा कहा कि अनन्त ज्ञानमय और परमानन्दस्वभाव। प्रभु! तेरा परम आनन्दस्वभाव है। आहाहा! तेरे आनन्द की क्या बात करना! कल आया

था उसमें। परन्तु किसी का लेकर उधार। जैनप्रकाश में। वह अमरचन्द है न? आत्मा तो अमृत का सागर उछलता है। परन्तु प्रभु! यह तू कहाँ से लाया?

मुमुक्षु : दिगम्बर में से।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ था? बापू! आहाहा! और फिर वापस वहीं का वहीं कहा कि गृहस्थलिंग से भी मोक्ष होता है। वेश गृहस्थ का हो तो भी मोक्ष होता है। और वहाँ ऐसा कहे। कुछ मेल (है)?

मुमुक्षु : वस्त्रसहित हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखा है। भाई ने पढ़ा। चेतनजी ने। मैंने पहले पढ़ा। गृहस्थलिंग से, अन्य लिंग से मोक्ष होता है। अरे! प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर में पन्द्रह भेद से होता है। यह खोटी बात है।

जिसे पूर्णानन्द का नाथ जहाँ अन्दर दृष्टि में आया और जिसमें जिसकी रमणता की जमवट जमी... आहाहा! अनन्त ज्ञान आदि अनन्त गुणमय और परमानन्द, परम अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान जहाँ.... आहाहा! उसमें जिसकी रमझट लगी... आहाहा! उसे लिंग तो नग्न ही होता है, उसे दूसरा लिंग (वेश) होता नहीं। भाई! यह लिंग कहीं केवलज्ञान प्राप्त नहीं कराता, परन्तु निमित्तरूप से होवे तो यह है। निमित्तरूप से होवे, इसका अर्थ कि निमित्त है, परन्तु निमित्त करता नहीं, तब उसे निमित्त कहा जाता है। नग्नपना निमित्त हो, परन्तु निमित्त की व्याख्या यह। स्वयं हो, परन्तु पर को कुछ कर सके, वह निमित्त नहीं कहलाता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म!

परमानन्द **और इन्द्रिय विषय से रहित....** आहाहा! पाँचों इन्द्रियाँ। स्पर्श इन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय, नाक, कान, आँख, यह पाँचों स्पर्श आदि इन्द्रियों के विषयों से रहित। आहाहा! विषयों से रहित। आहाहा! जिसके शरीर के स्पर्श से दूसरे के स्पर्श के साथ स्पर्श नहीं कर सकता, परन्तु उसे ऐसा मानता है कि मैं पर शरीर को और माँस को स्पर्श करता हूँ और उसे भोगता हूँ, ऐसा मानता है। यह मान्यता झूठी है और यह जो भाव है, वह जहर का प्याला है। आहाहा! यह कैसे बैठे? ऐसे अनुकूल लगे, विषय अनुकूल

लगे, माँस, हड्डियाँ, चमड़ी कोमल, रूपवान (लगे) और जवानी फूटी प्रस्फुटित, पच्चीस-तीस वर्ष की उम्र हो... चिमनभाई! उसे ऐसा कहना, बापू! यह तेरे पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का जो भाव है, वह जहर है, वह दुःख है, वह आनन्द को गला डालकर शान्ति को जलाता है। आहाहा!

यह केवलज्ञानमय तो है, परन्तु परम आनन्दस्वभाव है जिसका। भाषा देखी? परम आनन्द उसका स्वभाव है। जैसे केवलज्ञान स्वभाव है, वैसे परम आनन्द स्वभाव है। दो बात ही जहाँ हो, वहाँ लेते हैं। ज्ञान और आनन्द, ज्ञान और आनन्द। बस! फिर दूसरे सब साथ में आ जाते हैं। अरे! इसे पलटा कितना मारना पड़े, भाई! परम केवल(ज्ञान)मय भगवान और परम आनन्द जिसका स्वभाव।

इन्द्रिय विषय से रहित आत्मिक रागादि विकल्पों से रहित.... आहाहा! उसमें होता विकल्प जो राग, चाहे तो शुभराग हो। आत्मिक क्यों कहा? कि उसकी पर्याय में होता है न। **रागादि विकल्पों से रहित परमानन्द ही जिसका स्वभाव है,...** आहाहा! यह तो अरिहन्त की व्याख्या करते हैं, परन्तु इस प्रकार आत्मा का स्वभाव ऐसा ही है। जितने विशेषण केवली को लागू पड़े, उतने ही विशेषण आत्मस्वभाव भगवान को लागू पड़ते हैं। आहाहा! कहते हैं कि पर के संसर्ग में रहना, वह तो तुझे शोभा नहीं देता, परन्तु राग के संसर्ग में रहना, वह भी शोभा नहीं देता। एक पर्याय के अंश के प्रगट पर्याय के प्रेम में रहना, वह तुझे शोभा नहीं देता। आहाहा! बापू! तेरी शोभा पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्दमय है, अरिहन्त ऐसे हैं। यहाँ तो अभी चलता है। पश्चात् कहेंगे कि तू ही इतना है। आहाहा!

ऐसा अरिहन्तपद केवलज्ञानमय और परमानन्दस्वभाव प्रगट हुआ कहाँ से? कहीं बाहर से आता है? आहाहा! परमानन्दस्वभाव **आत्मिक रागादि विकल्पों से रहित परमानन्द ही जिसका स्वभाव है, ऐसा जिनेश्वर केवलज्ञानमयी अरहन्तदेव...** ऐसे जिनेश्वर, ऐसा कहकर कहा है कि कोई जिनेश्वर, जिन ऐसा कोई सम्प्रदाय नहीं कुछ, वह तो वस्तु से केवलज्ञान और आनन्दस्वरूप है। उसमें अन्दर लीनता की रमझट लगायी है। आहाहा! उसमें से इसमें राग और द्वेष की उत्पत्ति छोड़ दी और उन्हें जीता, ऐसा कहकर, वह जिनेश्वर वस्तु का स्वरूप है। यह तो वस्तु का स्वभाव है। जिनमार्ग

कोई एक है और अन्य ईश्वर का कोई दूसरा मार्ग है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा जिनेश्वर.... जिन-ईश्वर। 'जिन' के ईश्वरता जिन्हें प्रगट हुई है। **केवलज्ञानमयी अरहन्तदेव वही....** परम-परम आत्मा। परम... परम। **उत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादि गुणरूप लक्ष्मीवाला....** परम आत्मा की व्याख्या की। आहाहा! अरिहन्तदेव जिनेश्वरदेव कैसे हैं? परमात्मा णमो अरिहन्ताणं। वह अरिहन्तपद कैसा है, उसका यह वर्णन है। जिन्हें परम केवलज्ञान प्रगट हुआ है और जिन्हें परम अतीन्द्रिय आनन्द (प्रगट हुआ है)। आहाहा! वे कैसे हैं? **उत्कृष्ट अनन्त ज्ञानादि गुणरूप लक्ष्मीवाला....** हैं। उसमें भी वापस लक्ष्मी है। यह धूल की लक्ष्मीवाले जो सेठिया कहलाते हैं, वह पाँच-पच्चीस लाख धूल हो न, मिट्टी पैसा, उसके वे सेठिया कहलाते हैं। मिट्टी के, धूल के... धूल के। धूल के धणी! यह केवलज्ञान लक्ष्मी के धणी आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरिहन्त परमेश्वर णमो लोए सव्व अरिहंताणं। संक्षिप्त किया है, णमो अरिहंताणं। है शब्द यह णमो लोए सव्व अरिहंताणं। णमो लोए त्रिकाल सव्व अरिहंताणं। आहाहा! ऐसे भगवान का स्वरूप अकेला ज्ञान और अनन्त आनन्द। आहाहा! ऐसे केवलज्ञानरूपी अरिहन्तदेव परमात्मा हैं। उनका नाम परम आत्मा अर्थात् परम आत्मा है। परमात्मा अर्थात् परम उत्कृष्ट आत्मा है। आहाहा! जिनकी दशा में अनन्त ज्ञान, केवलज्ञान, आनन्द आदि प्रगट हुए, वे परम उत्कृष्ट आत्मा हैं। आहाहा! उन्हें यहाँ अरिहन्तपद में कहने में आया है। उसे णमो अरिहंताणं कहते हैं। यह तो पहिचानकर है। समझे बिना ऐसे का ऐसा किया करे, णमो अरिहंताणं... अनन्त बार।

यह तो ज्ञानादि अनन्त गुणरूप लक्ष्मी... गुण शब्द से यहाँ पर्याय है। ज्ञानादि अनन्त गुणरूप उत्कृष्ट परम अर्थात् उत्कृष्ट लक्ष्मीवाला आत्मा परमात्मा है। **उसी को वीतराग सर्वज्ञ कहते हैं,....** उसे वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। जो भगवान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान सीमन्धर भगवान आदि तीर्थंकर विराजते हैं वर्तमान मनुष्यरूप से। लाखों केवली अभी मनुष्यरूप से विराजते हैं। आहाहा! अरे! जिनका भरतक्षेत्र में विरह पड़ा। कोई केवली नहीं, कोई तीर्थंकर नहीं। किसी को केवल (ज्ञान) उत्पन्न हो, ऐसी योग्यता नहीं। वहाँ तो केवलज्ञान उत्पन्न हो, ऐसे आत्मायें सैकड़ों हैं। उत्पन्न हों

ऐसे, हों! (उत्पन्न) हुए तो लाखों हैं। आहाहा! यह आत्मा की शक्ति की जो प्रगट दशा की, उसे अनन्त लक्ष्मी आयी। उसे अन्तर में लक्ष्मी भरी थी, वह प्रगट दशा में अनन्त लक्ष्मी प्रगट की। ऐसे लक्ष्मीवाले आत्मा, वह परमात्मा हैं। उसे वीतराग सर्वज्ञ (कहते हैं)।

हे जीव.... अब कहते हैं। **वही संसारियों से उत्कृष्ट हैं,....** संसारी प्राणियों से यह परमात्मा-परम आत्मा, परम अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा अरिहन्त है। संसारी प्राणी अल्पज्ञ और विपरीत ज्ञानवाले कितने ही हैं। कितने ही भले अल्पज्ञ और चार ज्ञानवाले हों, परन्तु उस संसारी से यह आत्मायें परम आत्मा-उत्कृष्ट आत्मा है। आहाहा! **ऐसा जो भगवान वह तो व्यक्तिरूप है,....** क्या कहते हैं? ऐसे परमात्मा लाखों, अनन्त सिद्ध व्यक्ति (रूप से है)। अनन्त सिद्ध णमो सिद्धाणं में अनन्त सिद्ध हैं। अरिहन्त अनन्त नहीं होते। अरिहन्त बीस तीर्थंकररूप से (होते हैं), केवलीरूप से लाखों होते हैं। महाविदेह में। वे सब व्यक्तिरूप से परमात्मा हैं, कहते हैं। व्यक्ति अर्थात् प्रगटरूप। आहाहा! अब कहते हैं, **और.... 'स आत्मस्वभावः' वह आत्मा का ही स्वभाव है।** शक्तिरूप सब आत्मा भगवान ही है, कहते हैं। आहाहा! यदि शक्तिरूप भगवान स्वयं न हो तो व्यक्तिरूप भगवानपना आये कहाँ से? कहीं बाहर से आवे, ऐसा है? आहाहा! प्राप्त की प्राप्ति है। जो हो, वह आता है। तो प्रत्येक आत्मायें परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! कैसे जँचे? एक अच्छी सब्जी तेल में तलकर, घी में तलकर (बनायी) हो और उसमें उसके साथ पूरणपोली या बर्फी या चूरमा हो और खाता हो तो मानो... आहाहा! क्या जाने मजा आता हो, ऐसा लगे! अकेला जहर है। राग के जहर के प्याले पीता है।

मुमुक्षु : वह तो परपदार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके ऊपर राग होता है। उसके साथ कहाँ है? उसका राग होता है, उसका प्याला वह पीता है। परपदार्थ को तो छूता ही कहाँ है? आहाहा! मैसूर को कभी छूता है? स्त्री का शरीर माँस, हड्डियाँ, चमड़ी है, उसे छूता है कोई जीव? वह तो मिट्टी, जड़ है। मात्र उसे छूने पर यह मानता है कि यह ठीक है, ऐसी मान्यता में जो राग खड़ा करता है, उस राग को अनुभव करता है, शरीर को नहीं। वह तो मिट्टी

है, वह तो माँस की हड्डियाँ, चमड़ी है। आहाहा! स्त्री का शरीर कहीं आत्मा भोग सके तीन काल में? तीन काल में नहीं। तथा पुरुष के शरीर को भोग सके, यह तीन काल में नहीं। मात्र राग उत्पन्न करके 'यह ठीक है' ऐसी राग की वृत्तियाँ विकार की उत्पन्न करके उसे भोगता है, वह जहर का अनुभव है। आहाहा! वह आत्मा के स्वभाव में नहीं, कहते हैं। तेरे स्वभाव में वह नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान को तो नहीं (परन्तु तेरे स्वभाव में नहीं)। आहाहा! यह अन्तिम शब्द है '**स आत्मस्वभावः' वह तो आत्मा का ही स्वभाव है।** यह कहना है, हों! अन्तिम पद में। जैसे सर्वज्ञ वीतराग व्यक्तिरूप से प्रगटरूप से हुए, ऐसे सब आत्मायें शक्तिरूप से ऐसे ही हैं। आहाहा!

परमानन्द और परम केवलज्ञानमय प्रभु आत्मा है। अन्तर में जिसका स्वभाव मात्र ज्ञान और मात्र आनन्द, अतीन्द्रिय, ऐसा जिसका—प्रत्येक आत्मा का वास्तविक स्वरूप और स्वभाव ही यह है। उसे न जँचे, इसलिए कहीं वस्तु चली जाती है? आहाहा! ऊपर-ऊपर से देखनेवाले वह राग को और पर्याय को देखते हैं। आहाहा! पानी में ऊपर तेल की बूँद पड़ी हो, तेल की बिन्दु, उसे देखनेवाले तेल को देखते हैं, परन्तु पानी का दल है, उसे नहीं देखते। उस पानी के दल में तेल की बूँद ने प्रवेश भी नहीं किया है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर ज्ञान और आनन्दमय पानी जैसा है, वैसा आनन्दमय स्वभाव जिसका है, उसमें शरीर, वाणी, मन तो ऊपर-ऊपर है कहीं, वह तो जड़, मिट्टी धूल है, परन्तु उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, विषयभोग वासना, यह सब विकार ऊपर-ऊपर है, अन्दर में नहीं, उसके स्वभाव में नहीं। आहाहा! निकल जाये, वह उसके स्वभाव नहीं; रहता है, वह उसका स्वभाव। शुभ और अशुभभाव तो निकल जाते हैं। सिद्ध भगवान हों, उन्हें वे होते नहीं। उनका स्वभाव जो है ज्ञान, आनन्द, वह रह जाता है। आहाहा! ऐसा धर्म का उपदेश! ऐसी बात है। वीतरागमार्ग, बापू! वीतराग जिनेश्वर ऐसा फरमाते हैं, तू भी जिन है न, नाथ! आहाहा!

तेरा स्वभाव.... कहा न, ' **स स्वभाव—स आत्मस्वभावः** ' तेरा स्वरूप ही भगवान, तू परमात्मस्वरूप ही अन्दर है। अरे! कैसे जँचे? ऐसे तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में आवाज उपदेश में-वाणी में यह आयी कि तू आत्मस्वभाव

है, प्रभु! जैसे मुझे प्रगट पूर्ण दशा हुई है, ऐसा ही तेरा अन्दर पूर्ण स्वभाव है। मेरे स्वभाव में और तेरे स्वभाव में जरा भी अन्तर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अन्तिम शब्द में ऐसा कहते हैं। व्यक्तरूप से प्रगट दशा मुझे हुई, अरिहन्तपद केवलज्ञान परम आनन्द, परन्तु प्रभु! तू वही है, वैसा ही है, मुझसे कमी और न्यून नहीं है। आहाहा! भाई! तेरे सामर्थ्य की तुझे खबर नहीं है। भगवान तुझे भगवानरूप से बुलाते हैं। आहाहा! तेरे अन्तर के स्वभाव का सामर्थ्य क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं और खबर बिना धर्म कहीं हो जाये, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! कहो, रायचन्दभाई! क्या इस पैसे की कीमत है या किसकी यह कीमत है, यह सब? आहाहा! करोड़ो, अरबों रुपये दे न दान में, तो भी कहते हैं कि यदि कदाचित् राग घटावे तो पुण्य हो; धर्म नहीं। आहाहा! क्योंकि धर्म ज्ञान, आनन्द तो आत्मा के स्वभाव में पड़ा हुआ है। उसकी दृष्टि और रुचि और उसे झेले, वर्तमान दशा में परमात्मा को झेले, परमात्मस्वरूप मेरा ऐसा दृष्टि स्वयं स्वीकार करे.... आहाहा! यह वह सम्यग्दृष्टि, समकित। सम्यग्दृष्टि; सम्यग्दृष्टि अर्थात् सत्य दृष्टि। सत्य दृष्टि अर्थात् जो पूर्ण ज्ञान और आनन्दमय परमसत्य, सत्यस्वरूप है, विद्यमान पदार्थ है, भूतार्थ वस्तु है, यथार्थ चीज़ है, ऐसा आत्मस्वभाव जैसा सर्वज्ञ परमात्मा को प्रगट हुआ, वैसा ही तुझमें है। आहाहा! ऐसे सत्य को सत्यदृष्टि से स्वीकार करे, आहाहा! तब तो उसे धर्म की पहली ऐकड़ा की शुरुआत होती है। आहाहा! अभी चारित्र और वह तो कहीं रह गये। समझ में आया?

भावार्थ :- संसार अवस्था में निश्चयनयकर.... संसारदशा में निश्चय अर्थात् सत्य, सच्ची / सत्य दृष्टि से देखें तो संसारदशा में भी जीव जो अनन्त हैं... आहाहा! लहसुन की एक कली में अनन्त जीव, प्याज की एक कली में, एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव, वे सब जीव भगवानस्वरूप है। आहाहा! कौन माने? यह यहाँ कहते हैं। शक्तिरूप से भगवानस्वरूप ही है। व्यक्तरूप से एन्लार्ज नहीं। एन्लार्ज सर्वज्ञ हो, उसे होता है। आहाहा! यह छोटा चित्र होता है न! फिर लोग एन्लार्ज करते हैं न; उसी प्रकार यह भगवान आत्मा प्रत्येक अनन्त... आहाहा! संसारदशा में निश्चय अर्थात् सच्ची दृष्टि से देखें तो **शक्तिरूप विराजमान है,....** आहाहा! गाथा बहुत सरस है। आहाहा!

तुझे जहाँ दृष्टि देनी है, वह भगवान पूर्णानन्द अन्दर स्थिर है, कहते हैं। आहाहा! तुझे परम सत्य वस्तु है, उसका स्वीकार करना है, वह परम सत्य अन्दर विराजता है। आहाहा! कहाँ जाये? किसे देखे? कहीं निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! भाई! तुझे सत्य स्वीकारना हो, सम्यग्दर्शन सम्यक् अर्थात् सत्य दृष्टि, सत्यदृष्टि, सत्य-सम्यक् देखना। वह सम्यग्दर्शन और सम्यक् देखना हो तो वह भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरपूर पदार्थ है, वह सत्य है, उसका स्वीकार कर और उसके सन्मुख में जा। आहाहा! ऐसी बात। वे तो इच्छामि पडिकमणा... हो गया, जाओ! सामायिक हो गयी, लो। भाई! सामायिक का मुख बड़ा है, बापू! आहाहा!

जो परमानन्द के नाथ को, केवलज्ञानमय प्रभु को सत्य की दृष्टि से सत्य को स्वीकार और फिर आनन्द में लीन होता है, अतीन्द्रिय आनन्द शक्तिरूप से है, वह व्यक्तरूप से अतीन्द्रिय आनन्द आवे, तब उसे सामायिक कहा जाता है। वीतरागदेव उसे सामायिक कहते हैं। यह तो कहीं ठिकाना नहीं होता और खबर नहीं होती। बेगार करके दो घड़ी बैठकर चल निकाल, जाओ! दुकान में जाना पहले। कहते हैं, संसारदशा में द्रव्य तो द्रव्य है। उसकी संसार अवस्था में, ऐसा कहते हैं। यह जीव की संसारपर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि की दशा के काल में भी... आहाहा! निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि से देखें तो, जैसा उसका वास्तविक स्वरूप है, उस रीति से-दृष्टि से देखें तो शक्तिरूप से विराजमान हैं। शक्तिरूप से भगवान जिनस्वरूप विराजमान है। आहाहा! 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म; यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर केवली तीर्थंकर की वाणी का सार जानना हो तो यह है, कहते हैं। आहाहा! ***'जिन सो ही है आत्मा....'*** जिन सो ही आत्मा, अन्य कर्म। पुण्य और पाप आदि सब दूसरी चीज़ है, आत्मा नहीं। आहाहा!

यह कहते हैं, शक्तिरूप से विराजमान है। **इसलिए संसारी को शक्तिरूप जिन कहते हैं,....** देखो! संसार अवस्था में भी उसकी शक्ति सामर्थ्य है। छोटी पीपर की वर्तमान अवस्था में चरपराहट थोड़ी हो और रंग में काली हो, परन्तु उस काल में भी उसकी शक्ति है, वह चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है। चौसठ पहरी अर्थात् रुपया। चौसठ पैसा, सोलह आना, रुपया। इतनी पीपर में सोलह आने, रुपया-चौसठ

पहरी चरपराहट, चरपरा रस और हरा रंग अन्दर पड़ा है; उसी प्रकार इस संसार विकारीदशा के काल में भी भगवान आत्मा में... आहाहा! शक्तिरूप से परमात्मा विराजता है, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात!

विद्यमान वस्तु है, उसे अविद्यमान की है और एक समय की पर्याय और राग, वह अविद्यमान-नाशवान है, उसे इसने विद्यमान और नित्य बनाया है। चिमनभाई! आहाहा! भगवान! मार्ग ऐसा है। तीर्थंकर अरिहन्त परमेश्वर सत्य को इस रीति से फरमाते हैं। लोगों को बेचारों को मिलता नहीं। कान में सच्ची बात पड़ती नहीं। ऐसे के ऐसे जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शक्तिरूप से सर्व **संसारी को 'जिन' कहते हैं,....** उन्हें 'जिन' कहते हैं। चौसठ पहरी चरपरे रसवाली छोटी पीपर, भले बाहर चौसठ पहरी न आयी हो, परन्तु अन्दर में चौसठ पहरी शक्ति तो है। चौसठ अर्थात् रुपया, सोलह आना। उसी प्रकार आत्मा में बाहर में अज्ञानी को राग, द्वेष और मिथ्या भ्रान्ति हो, परन्तु अन्दर में शक्ति में तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानरूपी शक्ति पड़ी है। आहाहा! यह तो दिशा पलटने की बातें हैं, बापू! जो दशा पर के ऊपर झुकी हुई है। राग, द्वेष, दया, दान, व्रत और भक्ति यह सब बाहर की बातें। उस दशा को अन्तर में झुका, अन्दर में प्रभु विराजता है। आहाहा! अरिहन्तपद तुझमें भरा हुआ है। सिद्धपद तुझमें भरा हुआ है। पाँचों पद तेरे स्वरूप में हैं। आहाहा!

संसारी को शक्तिरूप जिन कहते हैं और केवली को व्यक्तिरूप कहते हैं। अरिहन्त परमात्मा प्रगट हुए, वह व्यक्ति अर्थात् प्रगट दशा हुई और दूसरे सब हैं, वह अन्दर शक्तिरूप से भगवान हैं। आहाहा! बात तो बहुत मीठी है। अरे! किसी को सुनने को मिले नहीं, ऐसी बात। अरे! इसे जीवन में जाना कहाँ? मनुष्यपना मिला हो, भले पाँच-पच्चीस लाख रुपये धूल मिली हो। आहाहा! इस सत्य को इस प्रकार से समझे बिना... सुनने को मिले नहीं, वह समझे कब? वह मरकर ढोर में-पशु में जानेवाले हैं। मनुष्यपना गँवाकर ढोर में जायेंगे, ऐसा परमात्मा का फरमान है। जैसी सत्य वस्तु है, वैसी न मानकर इसने वक्रता बहुत की है। यह राग है और पुण्य है और यह मैं हूँ और मुझे लाभ है, अल्पज्ञ है और वही मेरा स्वरूप है। इस वक्रता में मरकर आड़ा तिर्यंच

होगा। मनुष्य खड़ा है, गाय, भैंस, गिलहरी, नेवला, कोळ ऐसे आड़े हैं। बनिये माँस, शराब खाते (पीते) न हों तो नरक में तो न जाये। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं कि मैं परमात्मा हूँ, वैसा ही तेरा स्वभाव अन्दर परमात्मा है। आहाहा! सर्व जीवों का। लहसुन, प्याज के जीव भी शक्ति से परमात्मा है। कैसे जँचे? अभी तो इसे जीव है या नहीं, मानना मुश्किल पड़े। एक बार कहा नहीं था? क्योंकि इसने मनुष्यपना पाकर या पशुपना पाकर आत्मा को लाँछन बहुत दिया। लाँछन दिया। अर्थात्? यह बड़ा... नहीं। मैं तो पुण्यवाला हूँ और पापवाला हूँ और मूर्ख हूँ, पण्डित हूँ, तिर्यंच हूँ और मनुष्य हूँ और... ऐसी जो मान्यता इसकी थी.... आहाहा! ...इस मान्यता ने इसे वहाँ रोक रखा है। अन्दर वस्तुस्वरूप है, वहाँ जाने नहीं दिया। आहाहा! ...अवतार होता है। पशु हो बेचारे। आहाहा! आत्मा कहाँ नाश हो ऐसा है। यहाँ बड़ा करोड़पति सेठ दिखता हो। दस-दस लाख की आमदनी। अरे! देह छूटकर... भाई! जिसे ऐसा आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं होती, उसकी शक्ति के सामर्थ्य की प्रतीति नहीं होती और अल्पज्ञ और राग तथा उसके फलरूप से, पुण्यरूप से धूल मिले, आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख पुण्य के फल की इसे कीमत। कुछ मैं बढ़ा हूँ। माँगीलालजी! इन सबको लागू पड़ता होगा या नहीं जवान, वृद्ध सबको?

जैसे हम, वैसा तू। आहाहा! कहा न? **संसारी को शक्तिरूप जिन कहते हैं,....** है? **केवली को व्यक्तिरूप कहते हैं। द्रव्यार्थिकनयकर जैसे भगवान हैं,....** देखो! क्या कहते हैं! देखो अब। द्रव्य अर्थात् वस्तु, शक्ति त्रिकाली। त्रिकाली शक्ति की दृष्टि से देखें तो, वर्तमान अवस्था और राग की दृष्टि से न देखें तो, आहाहा! समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये ऐसा नहीं। भाषा तो बहुत सादी है, भाव भले ऊँचे हों, परन्तु यह वस्तु से तो यह है। भगवान तीन लोक के नाथ केवली जिनेश्वर ऐसा फरमाते हैं, भाई! आहाहा! उन लोगों को मिले नहीं। ईरिया... तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। देखो, हो गया। तस्सूतरी करणेन... हो गयी सामायिक। अरे! भगवान! बापू! यह कहीं धर्म भी नहीं और यह सामायिक भी नहीं। तुझे खबर नहीं, भाई! वह तो सब राग की क्रियायें हैं। उनमें तू (धर्म) मानता है, वह मिथ्याभ्रान्ति है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, द्रव्यार्थिकनय अर्थात्? द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसका अर्थी

अर्थात् प्रयोजन। जिस ज्ञान का प्रयोजन त्रिकाली वस्तु को देखने का है, जिस ज्ञान की दशा को त्रिकाली वस्तु देखनी है, उस नय से देखो तो **जैसे भगवान हैं, वैसे सब जीव हैं,...** आहाहा! 'सर्व जीव है सिद्धसम, जो समझे वे होय' आता है न, श्रीमद् में आता है। आत्मसिद्धि (में), सर्व जीव है सिद्धसम। परमात्मशक्ति से पड़ा है, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! है?

द्रव्यार्थिक अर्थात् द्रव्य अर्थात् वस्तु। वस्तु का स्वभाव। असली कायमी चीज़। उस कायमी चीज़ को देखनेवाली दृष्टि से यदि कहें तो जैसे भगवान केवली हैं, **वैसे ही सब जीव हैं,....** आहाहा! वह तो पर्याय में, अवस्था में, हालत में अन्तर है। वस्तु तो वस्तु है। **इस तरह निश्चयनयकर जीव को परब्रह्म कहो,....** इस प्रकार सच्ची, निश्चय अर्थात् सत्य। सत्य दृष्टि से यदि देखे तो जीव को परमब्रह्म कहो, वह परमब्रह्म आत्मा है। परमब्रह्म कोई दूसरा ईश्वर कर्ता है, वह कोई नहीं। **परमशिव कहो, जितने भगवान के नाम हैं, उतने ही निश्चयनयकर विचारो तो....** आहाहा! जितने परमात्मा के अनन्त नाम पड़ते हैं। केवली तीर्थंकर को। आदिपुराण में (एक) हजार (और आठ) नाम तो दिये हैं। इन्द्र जब समवसरण में परमात्मा की-प्रभु की स्तुति करता है (तब) एक हजार (आठ) नाम से बुलाता है, (एक) हजार (आठ) नाम से। एक हजार (आठ) नाम है। अरिहन्त परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। इन्द्र वहाँ जाते हैं। सीमन्धर भगवान मनुष्यरूप से विराजते हैं। एक हजार आठ नाम। परन्तु कहते हैं कि अनन्त नाम, हजार क्या? जितने भगवान के उतने **निश्चयनयकर विचारो तो सब जीवों के हैं,....** आहाहा! **सभी जीव जिनसमान हैं,....** भारी गाथा, भाई! **और जिनराज भी जीवों के समान हैं,.... सभी जीव जिनसमान हैं और जिनराज भी जीवों के समान हैं,....** परस्पर। ऐसा जानना। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, वैशाख कृष्ण ११, शुक्रवार
दिनांक- १३-०५-१९७७, गाथा - १९७ से १९९, प्रवचन-२३७

परमात्मप्रकाश, १९७ गाथा। **इस तरह निश्चयनयकर जीव को परब्रह्म कहो,...** क्या कहते हैं? निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि से देखो तो प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! जीव और जिनवर में अन्तर नहीं है।

मुमुक्षु : किस अपेक्षा से?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु-वस्तु। वस्तु है या अवस्तु है? परमात्मस्वरूप ही है। चाहे तो एकेन्द्रिय हो या चाहे तो पंचेन्द्रिय हो, मनुष्य हो या देव हो, वह तो पर्याय में अन्तर है। संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष तो पर्याय है। वस्तुरूप से तो मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! जिसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर से हटी और जिसकी दृष्टि द्रव्यवस्तु पर हुई है, वस्तु-वस्तु, आत्मा पदार्थ, वह तो अपने को परमात्मस्वरूप देखता है। उस दृष्टि से द्रव्यार्थिकनय से प्रत्येक जीव जिन समान है, ऐसा देखता है। आहाहा! वस्तु में कुछ अन्तर नहीं। यह कहते हैं न?

निश्चयनयकर विचारो... निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि। वस्तु के वास्तविक सत्य स्वरूप से देखो तो **सब जीवों के हैं, सभी जीव जिन-समान हैं,...** आहाहा! सब जीव जिन-समान हैं। यह समभाव होने की विधि है। आहाहा! **और जिनराज भी जीवों के समान हैं,...** जिनराज की पर्याय में प्रगट दशा हुई है। परन्तु वह दशा प्रगट हुई कहाँ से? थी उसमें से। वह तो था, वह जिनराज स्वभाव है। जो स्वभाव है, वह जिनस्वभाव है उसका। **ऐसा जानना।** कल यहाँ तक आया था।

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है। यह षट्प्राभृत की टीका है। ३४२ पृष्ठ। टीका है न षट्प्राभृत की? पृष्ठ-३४२। षट्प्राभृत। अष्टप्राभृत नहीं। अष्टप्राभृत में टीका नहीं। षट्प्राभृत की टीका है न यह? षट्प्राभृत की। आठ की टीका नहीं कुछ। ३४२ पृष्ठ पर यह गाथा वहाँ रखी है। क्या (कहते हैं)? **सम्यग्दृष्टि...** आहाहा! सत्यदृष्टि। जिसका स्वभाव जिनवर जैसा, ऐसा जीव का स्वभाव, ऐसा जिसने दृष्टि में लिया है, वह

सत्यदृष्टि है। आहाहा! **जिनराज भी जीवों के समान हैं, ऐसा जानना। 'सम्यग्दृष्टि जीवों को जिनवर जाने,...'** सम्यग्दृष्टि। इतनी बात। **सम्यग्दृष्टि जीवों को जिनवर जाने,...** ऐसा लेना। आहाहा! सम्यक् सत्यदृष्टि, वह जीवों को जिनवर जाने।

और जिनेश्वर को जीव जाने,... सम्यग्दृष्टि वहाँ लेना। पाठ में है न यह? **'जीव जिणवर जो मुणइ जिणवर जीव मुणेइ। सो समभावि परिट्ठयउ लहु णिव्वाणु लहेइ॥'** टीका है। आहाहा! जो विद्यमान चीज़ है, उसे अनादि से अविद्यमान किया है। और जो यह पुण्य-पाप, शरीर और राग और अल्पज्ञपना, वह कहीं त्रिकाल नहीं, विद्यमान त्रिकाल नहीं, उस अविद्यमान को विद्यमान माना है। आहाहा! और विद्यमान चीज़ को इसने अविद्यमान माना है। विद्यमान अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप विद्यमान चीज़ है, महासत्ता स्वरूप है, महा अस्तिरूप है, अनन्त चतुष्टयरूप, स्वभावरूप-शक्तिरूप त्रिकाल है। आहाहा! मुख्य चतुष्टय, हों! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य। इस अनन्त चतुष्टयरूप तो त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

सम्यग्दृष्टि... ऐसा लेना। यह गाथा... इन्होंने भी कहीं से आधार दिया है। टीका में भी कहीं से आधार दिया है। 'उक्तं' है, ऐसा कहकर। तुमने मँगाया था न? सेठी ने मँगाया था। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि जीवों को जिनवर जाने,...** सब जीवों को जिनवर जाने। आहाहा! **और जिनवर को जीव जाने,...** आहाहा! जिनवर को जीव जाने। **जो जीवों की जाति है, वही जिनवर की जाति है,...** आहाहा! कितनी विशाल दृष्टि है! जिसे यह बात बैठे, उसे तो पर्यायबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! समझ में आया? अभी बातें करनेवाले तो बहुत निकले हैं। यहाँ की बातें निकलीं, शास्त्र लिखे, पढ़-पढ़कर बहुत (निकले हैं) परन्तु अन्दर में उसे बैठना (चाहिए)। आहाहा!

कल डाह्याभाई की शिकायत आयी है। रामजीभाई के ऊपर कि वाँचनेवाले पैसा लेते हैं, वे लोग वाँचने के योग्य नहीं। यह तो बहुत समय से मैंने भी एक बार कहा था। यह तो कमाने की एक पद्धति कही। वह कहीं धर्म की व्याख्या नहीं। पैसा लेते हैं न, वाँचने के पैसा लेते हैं। आहाहा! उन लोगों को वाँचने का बन्द कर देना चाहिए। जो

लोग पैसा लेते हैं, वे लोग वाँचने के योग्य नहीं। उन्हें सर्वत्र वाँचना बन्द कर देना चाहिए। मुमुक्षु मण्डल में वे वाँच नहीं सकेंगे। डाह्याभाई का कल बहुत आया है। डाह्याभाई वकील। वे तो निस्पृही व्यक्ति है न!

मुमुक्षु : जज।

पूज्य गुरुदेवश्री : जज... जज। रामजीभाई के ऊपर (पत्र) आया है। फिर भाई ने मुझे पढ़ाया। चन्दुभाई ने। अपने को तो कुछ खबर नहीं कि पैसे लेते हैं। परन्तु गुप्तरूप से पैसे लेते हैं। और वापस कहे इस प्रकार से कि फलाने गया था, वहाँ मुझे ऐसा दिया था और देते हैं। ऐसा करके माँगे। वह तो बड़ा याचक है। फलाने गया तो मुझे ऐसा दिया था, फलाने गया तो मुझे ऐसा दिया था। अर्थात् क्या कि तुम भी दो। बड़ी शिकायत आयी है। शिकायत कल। ऐसे जीव व्याख्यान वाँचने के योग्य नहीं। स्वयं धर्म समझने के योग्य नहीं, तथा वाँचने के योग्य नहीं। इतना समझना।

मुमुक्षु : बहुत समझने का आप कहो तो हमारे कितना समझना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ जहाँ ऐसी बात चले। आहाहा! यह फिर कमाने की पद्धति कर डाली। महीने-दो महीने वाँच, पन्द्रह दिन कहीं वाँचे और पैसा ले। ऐसे पैसा भले माँगे नहीं, परन्तु यह माँगने की रीति ही यह है। हमको फलाने ने दिये थे, दूसरी जगह ऐसे दिये थे। वह तो याचक है, भिखारी है। वह धर्म के योग्य नहीं, वह वाँचने के योग्य नहीं। अभी से मण्डल में प्रसिद्ध होता है, ऐसे जीवों को व्याख्यान बन्द करना, कहीं जाकर वाँचना नहीं। यहाँ के रामजीभाई के उसके बिना। रामजीभाई को पूछकर यहाँ से जो दसलक्षणी पर्व में जाते हैं, वे यहाँ पूछकर जाते हैं। लिखे उसे। इसके सिवाय अन्य दिनों में जहाँ-तहाँ वाँचना और पैसा लेना, उसकी बाहर बहुत निन्दा हुई है। बाहर कल बहुत निन्दा आयी है। समाज में, मण्डल में... बहुत हुई है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सुने तो धर्म का लाभ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह जो पैसा लेते हैं, उसमें लाभ कहाँ से? उसे दिया, उसके पास लाभ ही नहीं होता।

मुमुक्षु : दूसरे सुननेवाले को लाभ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे क्या लाभ होगा? कहनेवाला ही खोटा है वहाँ। पैसे के लोभ से तो वाँचता है। ऐई! कान्तिभाई! ऐसा यहाँ चले, ऐसा नहीं तुम्हारा व्यापारीपना। अन्दर ऐसा नहीं चलता और जो पैसे लेते हैं, वे तो जरा भी योग्य नहीं। उसके लिये हो कि मैं यहाँ कुछ धर्म करूँ और बताऊँ।

मुमुक्षु : मण्डलवाले भेंट दें, वह रखना या नहीं रखना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस भेंट में लोभ होता है। उस भेंट में ऐसा होता है कि इसने दिया और फिर दूसरे को ऐसा कहे कि मुझे उन्होंने दिया था। ऐसा कहकर पैसा माँगे। और वास्तव में हजारों रुपये लेते हैं, ऐसा कहा था। तुम्हारे ऊपर यह सब आया है। कल निन्दा का बहुत आया है। नाम-ठाम नहीं देते। बाकी खबर है सबकी। वाँचकर दो-दो हजार रुपये लेते हैं। यह क्या? यह वह कहीं योग्यता लौकिक सज्जनता की नहीं। समझ में आया? कल मुझे भाई ने पढ़ाया। चन्दुभाई ने पत्र (पढ़ाया)। अभी दूसरा उसे बहुत कहना है अन्दर। तुम्हारे मैनेजमेन्ट के लिये भी कुछ कहना है। मैनेजमेन्ट क्या कहलाता है भाई वह?

मुमुक्षु : प्रबन्धन। मैनेजमेन्ट अंग्रेजी शब्द है, वहीवट गुजराती।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहीवह (प्रबन्धन) होगा भाई! ऐसी भाषा हम बहुत जानते नहीं। उसमें लिखा है जरा। मुझे जो कहना है मैं रू-ब-रू में कहूँगा। यह तो खास लिखता हूँ रामजीभाई को। क्योंकि वे स्वयं वाँचने जाते हैं न! वे तो निःस्पृही व्यक्ति हैं। उन्हें कुछ लेने की बात नहीं। और दूसरों ने तो यह एक कमाने का धन्धा लगाया। दूसरी नौकरी-धन्धा करने की अपेक्षा यह एक कमाने का धन्धा लगाया। पैसा लेना और वाँचना। आहाहा! वे व्यक्ति तो वास्तव में उसके पास सुनने के भी योग्य नहीं। उसके पास सुनना नहीं चाहिए। मण्डल को ऐसा निर्णय कर लेना चाहिए। कल बहुत आयी थी बात जरा। बाबूभाई जैसे वाँचे। वे व्यक्ति... एक ओर लालचन्दभाई, प्रवीणभाई एक है यहाँ अपने। राजकोट। कैसे होशियार! कितना मस्तिष्क। ठण्डे व्यक्ति। एक चन्दुभाई डॉक्टर।

मुमुक्षु : शशीभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे शशीभाई। सच्ची बात है।

मुमुक्षु : खीमचन्दभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे तो बहुत हैं।

पैसा लेने का नहीं होता कदाचित् तो भी मान के लिये करे तो भी वह योग्य नहीं। लेने का प्रश्न बाद में है। उसे मान सुहाता है। हमने तो बहुतों को बहुत देखा है न! कहीं नाम फाड़कर नहीं कहा जाता, बापू! परन्तु यह तो कल आया है, इसलिए अब जरा, उसे वाँचकर स्वयं को मान सुहाता है। वह प्रसन्न होता है कि यह... वह भी योग्य नहीं। मान किसका? बापू! आहाहा! जहाँ पूरा वीतरागमार्ग, विकल्प को मार डालना है जहाँ। आहाहा! बापू! अनन्त सागर जिनराजस्वरूप प्रभु अन्दर (विराजता है)। आहाहा!

अमृत का सागर जहाँ उछलता है, उसके पास जाना है, बापू! उसमें बहुत पात्रता चाहिए, भाई! यह बातों से वडा नहीं होते। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! कल आया इसलिए विचार बहुत आये कल। अपने को तो कुछ खबर नहीं ऐसे विषय की। हम पढ़ते भी नहीं परन्तु भाई का आया कि यह सब मुम्बई में वाँचते हैं, वे पैसे लेते हैं, यह सब निन्दा होती है, समाज में अवहेलना होती है। ऐसे वाँचनकार स्वयं वाँचने के योग्य नहीं, वे वाँचकर जगत से पैसा लेते हैं। आहाहा! क्या कान्तिभाई! ऐसा है। वहाँ धन्धा करना और वहाँ सुनना। दो काम करना न उसके साथ। और यहाँ तो धन्धा छोड़कर आना पड़े। शान्तिभाई! वहाँ तो धन्धा भी चले और घण्टे भर सुनने का भी मिले। दोनों काम होते हैं। आहाहा!

एक व्यक्ति तो कहता था कि अब तो तालाब में पानी पीने आना हो वे आयेंगे। जिन्हें गरज होगी वे आयेंगे। ऐसा एक व्यक्ति कहता था। बहुत कहते हैं। रामजीभाई तो बहुत समय से कहते हैं। बाहर निकलना नहीं। आना होगा वे आयेंगे, जिन्हें गरज होगी वे। भाई! यह कहाँ, बापू! यह वस्तु तो... शरीर की स्थिति... आहाहा! यह तो भाई जज का पत्र बहुत वह आया है। क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : वाँचनकार को कमाना नहीं चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाँचनकार को मान नहीं चाहिए, पैसा नहीं चाहिए। मात्र नि:स्पृहरूप से... उसमें आया है। यह नहीं वह स्तुति? वह स्तुति बनारसीदास की। बनारसीदास की स्तुति है न? उसमें यह आया है। 'जिनवाणी जिनवाणी सुनही जो जीव, जे आगम रुचि धरे जे प्रतीति मन में आणी, अवधारे जो पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहि, जो हित हेतु बनारसी देई धर्म उपदेश।' हित के हेतु। कोई दूसरा काम नहीं होता। यह बनारसीदास (कहते हैं)। 'जो हित हेतु बनारसी देई धर्म उपदेश, ते सब पावही परम सुख... संसार क्लेश।' आहाहा!

यहाँ तो दो वर्ष की दीक्षा से लोग चिल्लाहट मचाते थे। दो वर्ष की दीक्षा से। (संवत्) १९७० में दीक्षा में। १९७२ से शोर मचाते। कानजीस्वामी वाँचे... कानजीस्वामी वाँचे... कानजीमुनि वाँचे। एक बार गुरु ने कहा। गुरु बहुत शान्त थे। सम्प्रदाय की दृष्टि में उनके जैसा (कोई नहीं दिखता था) लौकिक सज्जन बहुत। धर्म दृष्टि तो थी ही नहीं, वह तो खोटा। ऐसे व्यक्ति बहुत सज्जन। एक बार कहा। लोग बहुत कहते हैं कानजीमुनि वाँचे... कानजीमुनि वाँचे... महाराज ने कहा, भाई! यह लोग शोर मचाते हैं कि वाँचे। यह तुम वाँचते नहीं। तुम्हें वाँचने से ऐसा होगा कि अकेले बैठकर वाँचने से मुझे लाभ होगा। परन्तु (सभा में) वाँचने से तुम्हें तर्क उठेंगे। भाई! ऐसा उन्होंने कहा। तुझे तर्क उठेंगे और अधिक होगा। (मैंने कहा), महाराज! मैं वाँचने नहीं निकला। मैं तो मेरा (हित) करने निकला हूँ, महाराज! मुझे वाँचने का कहना नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वाँचने का आ पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर वह सहज आ पड़ा। हीराजी महाराज—गुरु गुजर गये और लोग इकट्ठे होकर कहे, अब कानजीमुनि से इनकार नहीं किया जायेगा, उन्हें ही वाँचना पड़ेगा। उनके शरीर को ठीक न हो और कोई वाँचे परन्तु अभी तो यह हक आजीवन उन्हें देते हैं, ऐसा संघ ने इकट्ठा होकर कहा। आहाहा! यह सिर पर आ पड़ा।

कल बहुत शिकायत आयी है। भाई ने क्या नाम कहा? डाह्याभाई। बहुत शिकायत आयी है। लोग पैसा लेते हैं, मुम्बई में वाँचकर लेते हैं। ऐसों को वाँचने के

योग्य नहीं। जहाँ-तहाँ तुम वाँचने के लिये भेजते हैं और वे भी वाँचते हैं और उन्हें मान का रस पड़ता है और पैसे लेने का। कल बहुत शिकायत आयी है। इस पर बहुत सुधार करना ही पड़ेगा। आहाहा! और साधारण व्यक्ति हो, कमा न सकता हो, धन्धा बन्द किया हो, इसलिए फिर कुछ ऐसे धन्धे में चढ़कर पैसे इकट्ठे हों। गरीब मनुष्य हूँ, ब्रह्मचारी हूँ। ऐसा सोचकर लोग दे और सुख से ले। अरे! यह वह कहीं वस्तु है? अरे! ऐसा मार्ग प्रभु का। यह वह बात यह याचक-भिखारी जैसी बात। भिखारी है, वह तो याचक है। धर्म को सुनने के योग्य नहीं। उसमें नहीं कहा? जो व्यवहार के पक्ष में है, मान्यता। वह बाहर का व्यवहार कितना माना। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में नहीं? छठवीं गाथा। व्यवहार... वह देशना के योग्य नहीं।

मुमुक्षु : 'अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्...'

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू! मार्ग अलग, नाथ! क्या हो? आहाहा!

उसके बदले वयवहार को जाने माने दया, दान, व्रत, वह धर्म। वह भी सुनने के योग्य नहीं। यह तो पैसे लेकर धर्म की बातें करे और मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में तो... भाई ने कहा है कि शास्त्र के बहाने करे तो क्या दिक्कत? यह चलाया है उसने। कहते हैं, नहीं, नहीं। यह है न उसमें कथन? इस प्रकार से ले तो कया दिक्कत? कहे, नहीं... नहीं। यह धर्म के नाम से ले और उसके लाभ से ले कि इससे मिलेगा तो वह व्यक्ति योग्य ही नहीं। सज्जन नहीं। लौकिक लाईन नहीं। नैतिक में वह जीव योग्य नहीं। एक ही बात है। आहाहा! दुनिया में चलो, न चलो। वह कहे बहुत मारग चलेगा और बहुत प्रवचन चलेंगे। यह कान्तिभाई जैसे ऐसा कहे। बाहर में हमारे वाँचने का मिले। कान्तिभाई! ऐ... हिम्मतभाई! आहाहा!

यह देखो न बात... आहाहा! जीव, वह जिनवर और जिनवर, वह जीव। प्रभु! यहाँ तक जाना है जिसे। आहाहा! बापू! उसकी योग्यता कितनी चाहिए, भाई! वे डाह्याभाई तो उसमें भी विरुद्ध है, भाई! यह क्या कहलाता है पैसे का? कर सम्बन्धी। इनकम टैक्स। इनकम टैक्स में चोरी करे, ऐसे पैसे क्या कहलाते हैं बगडा? दो नम्बर के। कौन जाने तुम्हारी बातें नयी है। हमारे समय में कुछ था नहीं। सीधा धन्धा और

सीधा व्यापार। कुछ उल्टी-सीधी बात नहीं थी। यह सब पचास वर्ष में कौन जाने क्या हो गया है। पूरा फेरफार हो गया है। आहाहा! यह पैसे दो नम्बर के हों और तुमको दान में दे और उसका नाम बाहर प्रसिद्ध हो और प्रसिद्धि हो... यह वह कहीं धर्म के लिये योग्य है? ऐसा लेख है। ऐई! उसे कर और दूसरा क्या कहलाता है? दानचोरी करे। ऐसी अपने यहाँ बातें हमारे तो कहने की होती नहीं। क्योंकि वह तो साधारण ऐसी योग्यता तो होती ही है। आहाहा!

श्रीमद् में नहीं कहा? 'दया, शान्ति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग वैराग्य; होय मुमुक्षु घट विशे।' यह तो मुमुक्षु साधारण की योग्यता में होता है। हिम्मतभाई! है इसमें? 'दया, शान्ति, क्षमा, समता...' उसे आत्मा का काम हो। मुझे दूसरा काम क्या है? दुनिया माने, न माने। दुनिया प्रसिद्धि करे, न करे। उसके साथ क्या काम है? आहा! वह कहीं मान... आहाहा! गिरवी रखने जाये ऐसा है? कि मेरा बहुत मान था, इसलिए हमारी गति सुधरे। आहाहा! यह तो लेख ऐसा आया। देखो तो सही। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीवों को जिनवर जाने,... आहाहा! श्रीमद् में भी आता है न? 'सर्व जीव है सिद्ध सम।' सिद्धस्वरूपी। आहाहा! ऐसी स्वीकृति उसे कितने गढ़ उल्लंघकर जाना हो, वह जा सकता है। रोकनेवाले गढ़ का पार नहीं होता। आहाहा! उसे यहाँ तक जाना। आहाहा! बातें करना तो आता है। यह तो वह नहीं बोलता? क्या कहलाता है वह? रिकॉर्डिंग बोले वैसे वह बोले। दूसरा उसमें कुछ नहीं होता। अन्दर में पात्रता नहीं होती और यह बाहर में भाषा बड़ी-बड़ी होती है। आहाहा! यहाँ व्यवहार का तो ऐसा उपदेश दिया नहीं जाता, इसलिए मानो कुछ दिक्कत नहीं हो, ऐसा होगा?

यहाँ तो इतनी योग्यता तो उसमें होती ही है वह, ऐसा जानकर यहाँ उपदेश कहा जाता है, बापू! ऐसे गड़बड़ हो, उसकी तो अपने को खबर भी नहीं। उसका ध्यान रखने कौन जाता है। यह तो उसका पत्र आया कल रामजीभाई के प्रति। दूसरा भी हमारे कहना है परन्तु वहाँ आकर कहूँगा, ऐसा कहा। मैनेजमेन्ट-प्रबन्धन का। उन्हें कुछ कमी दिखाई दी होगी। अरेरे! आहाहा!

जहाँ मैं जिनवर जैसा हूँ—ऐसे विकल्प को भी जहाँ अवकाश नहीं। आहाहा!

जहाँ मैं परमात्मस्वरूप शुद्ध हूँ... यह अपने वहाँ आ गया है, भाई! राजकोट। १४४ गाथा में। मैं निश्चय से शुद्ध हूँ, परमात्मा हूँ, अभेद हूँ, अनन्त आनन्द का सागर हूँ, ऐसा भी एक विकल्प उठता है, उससे क्या? ऐसा कहा है। वहाँ १४२ की शुरुआत करते हुए। उससे क्या? यहाँ तक आया उससे क्या? बापू! कहीं तेरे आत्मा को लाभ नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? उसमें थोड़ा-बहुत जहाँ आ जाये, तो मानो आकाश को लात। ओहो! मानो बहुत सीखे। बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, यह वर्तमान पर्याय में अल्पता और विकारता होने पर भी उसे अविद्यमान करके, विद्यमान चीज़ जो है, यह अविद्यमान है, उसे विद्यमान करना, बापू! उसमें पुरुषार्थ कितना (चाहिए)। आहाहा! समझ में आया? यह श्लोक दिया है भाई ने। यह अभी मैंने देखा, हों! उसमें है न! लिखा था तब। देखा उसमें तो उसने 'उक्तं' किया है। अर्थात् उसका नहीं, कहीं का है। टीकाकार।

सम्यग्दृष्टि जीव... वहाँ ऐसा लेना। **जीवों को जिनवर जाने,...** आहाहा! जीवों को जिनवर जाने। आहाहा! स्त्री का रूपवान देह जवान हृष्ट-पुष्ट (हो), उसे न देख, कहते हैं। आहाहा! उसका अन्दर में राग हो, उसे तू न देख। आहाहा! वह तो जिनवर है। आहाहा! पूंजाभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! शरीर सुन्दर और रूपवान और भाषा मीठी, यह सब न देख, प्रभु! वह कहीं आत्मा नहीं, वे आत्मा के नहीं, भाई! आहाहा! यह वाणी-वाणी सब जड़ की जड़ के काल में निकलती है। भाई! तेरे कारण से नहीं, बापू! तू वह नहीं। अन्दर में विकल्प उठे, वह तू नहीं। आहाहा!

जिन, वह जिनवर और जिनवर, वह जिन। आहाहा! श्रीमद् ने भी कहा न? 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो ही है कर्म।' वहाँ दूसरा पद है बाद का। परन्तु यहाँ तो उसका जोड़ दिया। 'यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' बारह अंग का सार, दिव्यध्वनि का सार दृष्टि में जिनवर जैसा आत्मा है, उसे लेना और इस प्रकार सब भगवान जिनवर जैसे हैं। आहाहा! ऐसी समता धारण हो। है न? यह समभावी लिखा है न? देखो न! सो समभावी। संस्कृत में समभावी है, उसका फिर यहाँ अर्थ में सम्यग्दृष्टि किया है।

सम्यग्दृष्टि जीवों को जिनवर जाने, और जिनेश्वर को जीव जाने, जो जीवों की जाति है, वही जिनवर की जाति है,... आहाहा! पहाड़े तो बोले थे। ग्यारह (अंग) तक पढ़ा। ग्यारह अंग में सब बहुत (आया था)। ऐसा तो अभी है कहाँ? समझ में आया? नौ पूर्व की लब्धि प्रगट हुई थी, वहाँ ऐसे शब्द नहीं सुने थे? कण्ठस्थ किये थे। आहाहा! और ऐसे व्याख्यान दे तो धारावाही दे। लोगों को तो ऐसा हो जाये कि, आहाहा! उससे क्या? १४२ गाथा में कहा कि यहाँ तक आया। व्यवहार का तो हम निषेध करते आये हैं, परन्तु व्यवहार से बन्ध है और व्यवहार से अनेक है, उसका भी निषेध करते आये हैं। परन्तु निश्चय से अबद्ध है और एकरूप है और शुद्ध है, अभेद है, उसके विकल्प में आया, आहाहा! उससे क्या? उससे तुझे क्या लाभ हुआ? आहाहा! है न? १४२ में है। उससे क्या? निश्चय में अभेद हूँ, एक हूँ, शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ। है ऐसा, परन्तु विकल्प में आया है कि ऐसा हूँ और ऐसा हूँ। आहाहा! उससे चैतन्य को लाभ क्या है? आहाहा! वह तो विकल्प को उल्लंघकर जिनवरस्वरूप भगवान है, उसका उसे अनुभव होता है, आहाहा! और उस अनुभव की मोहरछाप—ट्रेडमार्क अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! यह वस्तु है। बाकी सब बातें हैं। यह बातें तो अनन्त बार बहुत की है। आहाहा!

वही जिनवर की जाति है, और जो जिनवर की जाति है,... आहाहा! अरे! काई में अनन्त जीव हैं। लहसुन और प्याज के एक टुकड़े में, राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर, उसमें एक (शरीर में) अनन्त जीव, अरेरे! ऐसी सब अस्तित्वता की मान्यता हो, तथापि मैं एक पूर्णानन्द अखण्ड जिनवर समान हूँ, ऐसी स्व में दृष्टि न आवे, तब तक आत्मा को क्या? ऐसा कहते हैं। उसने माना छह जीव को। आया नहीं? छह जीवनिकाय चारित्र का निमित्त है। लो! माना तब दया का भाव आया है न? आहाहा! परन्तु उस छह जीवनिकाय में वह कहीं जीव नहीं। पंचास्तिकाय में आता है न यह? आहाहा! छह जीवनिकाय, वह जीव नहीं। उसमें ज्ञानस्वरूपी भगवान प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान त्रिकाल अकेला ज्ञानरसकन्द, वह जीव है। वह जीव जिनवर जैसा है। आहाहा! समझ में आया?

और जो जिनवर की जाति है, वही जीवों की जाति है,... आहाहा! परमात्मप्रकाश

है न? अब अन्तिम गाथायें हैं। अब परमात्मा का ही वर्णन करेंगे। आहाहा! **ऐसे महामुनि द्रव्यार्थिकनयकर जीव और जिनवर में जातिभेद नहीं मानते,...** आहाहा! महामुनि अथवा सम्यग्दृष्टि जीव... महामुनि अर्थात् उत्कृष्ट बात है न? **ऐसे महामुनि द्रव्यार्थिकनय...** द्रव्य अर्थात् वस्तु, शक्ति, सत्त्व त्रिकाली। जिस ज्ञान का प्रयोजन द्रव्य है—अर्थी है—वस्तु का अर्थी-प्रयोजन यह है। जो नय ज्ञान का नय अर्थात् भाग। व्यवहारनय भी एक नय का अंश है परन्तु वह तो वर्तमान को जाननेवाला है और यह एक नय द्रव्यार्थिक द्रव्य जिसका प्रयोजन, ऐसा जो ज्ञान, उससे जीव जो है, आहाहा! **जीव और जिनवर में जातिभेद नहीं मानते,...** आहाहा! और वह एक ही जीव है, ऐसा कहते हैं। सर्वव्यापक। यहाँ कहते हैं कि अनन्त अनन्त जीव सब भगवानस्वरूप है, प्रभु! आहाहा! ऐसी दृष्टि होने पर तुझे भगवानपना प्रगट भासित होगा। आहाहा! अर्थात्? कि वस्तु में जो परमात्मपना, अनन्त चतुष्टयपना है, वह जिनवर है, परमात्मा है, ऐसी दृष्टि होने पर तुझे उसकी श्रद्धा होगी और तब ही तुझे वह दिखायी देगा कि यह आत्मा है। (समयसार गाथा) १४४ में यह कहा है न? १४४ गाथा। तब तुझे दिखायी देगा, श्रद्धा में आयेगा। आहाहा! यह आत्मा परमात्मास्वरूप ही पूर्ण शक्ति, पूर्ण स्वभाव के सामर्थ्यवाला परमात्मा ही है। यह शब्द वहाँ १४४ में लिये हैं। परमात्मा कहो, आत्मा कहो। प्रत्यग आत्मा कहो, ज्ञान आत्मा कहो। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है! एक-एक गाथा के भाव देखो तो, आहाहा! ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है।

महामुनि द्रव्य... अर्थात् वस्तु, ऐसा जिसे प्रयोजन है। वस्तु की दृष्टि करना, वह उसका प्रयोजन है। वस्तु को जानना, उसका जिसे प्रयोजन है, वह जीव जिनवर में और जीव में जातिभेद नहीं मानते। **वे मोक्ष पाते हैं।** लो! वे मोक्ष जायेंगे। आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में अरहन्तदेव के कथन की मुख्यता से तीन दोहों में दूसरा अन्तरस्थल कहा। 'आगे परमात्मप्रकाश....'** अब यह नाम परमात्म है न इसका?

गाथा - १९८

तथथा–

३२१) सयलहँ कम्महँ दोसहँ वि जो जिणु देउ विभिण्णु।
सो परमप्प–पयासु तुहुँ जोइय णियमें मण्णु।।१९८।।

सकलेभ्यः कर्मभ्यः दोषेभ्यः अपि यो जिनः देवः विभिन्नः।
तं परमात्मप्रकाशं त्वं योगिन् नियमेन मन्यस्व।।१९८।।

सो तं परमप्प–पयासु परमात्मप्रकाशसंज्ञं तुहुँ त्वं कर्ता मण्णु मन्यस्व जानीहि जोइय हे योगिन् णियमें निश्चयेन। स कः। जो जिणु देउ यो जिनदेवः। किंविशिष्टः। विभिण्णु विशेषेण भिन्नः। केभ्यः। सयलहं कम्महं रागादिरहितचिदानन्दैकस्वभावपरमात्मनो यानि भिन्नानि सर्वकर्माणि तेभ्यः। न केवलं कर्मभ्यो भिन्नः। दोसहं वि टङ्कोत्कीर्ण– ज्ञायकैकस्वभावस्य परमात्मनो येऽनन्तज्ञानसुखादिगुणास्तत्प्रच्छादका ये दोषास्तेभ्योऽपि भिन्न इत्यभिप्रायः।।१९८।।

आगे परमात्मप्रकाश शब्द के अर्थ के कथन की मुख्यता से तीन दोहा कहते हैं–

जो समस्त कर्मों से एवं दोषों से परिमुक्त हुए।
हे योगी! वे ही परमात्म प्रकाश यही निश्चय जानो।।१९८/३२१।।

अन्वयार्थः– [सकलेभ्यः कर्मभ्यः] ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों से [दोषेभ्यः अपि] और सब क्षुधादि अठारह दोषों से [विभिन्नः] रहित [यः जिनदेवः] जो जिनेश्वरदेव हैं, [तं] उसको [योगिन् त्वं] हे योगी, तू [परमात्मप्रकाशं] परमात्मप्रकाश [नियमेन] निश्चय से [मन्यस्व] मान। अर्थात् जो निर्दोष जिनेन्द्रदेव हैं, वही परमात्मप्रकाश हैं।

भावार्थः– रागादि रहित चिदानंदस्वभाव परमात्मा से भिन्न जो सब कर्म वे ही संसार के मूल हैं। जगत के जीव तो कर्मोंकर सहित हैं, और भगवान् जिनराज इनसे मुक्त्त हैं, और सब दोषों से रहित हैं। वे दोष सब संसारी–जीवों के लग रहे हैं, ज्ञायकस्वभाव आत्मा के अनंत ज्ञान सुखादि गुणों के आच्छादक हैं। उन दोषों से रहित जो सर्वज्ञ वही परमात्मप्रकाश हैं, योगीश्वरों के मन में ऐसा ही निश्चय है। श्रीगुरु शिष्य से कहते हैं कि हे योगिन्, तू निश्चय से ऐसा ही मान वही सत्पुरुषों का अभिप्राय है।।१९८।।

गाथा-१९८ पर प्रवचन

शब्द के अर्थ के कथन की मुख्यता से तीन दोहा करते हैं। तीन दोहा (कहते हैं)।

३२१) सयलहँ कम्महँ दोसहँ वि जो जिणु देउ विभिण्णु।
सो परमप्प-पयासु तुहुँ जोइय णियमें मण्णु।।१९८।।

ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों से और सब क्षुधादि अठारह दोषों से... भावदोष और कर्म निमित्त है जड़। उससे **रहित...** आहाहा! परमेश्वर को क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द है। रोग नहीं। जन्मना नहीं, मरना नहीं। मरण तो उसे कहते हैं कि फिर से अवतार लेना पड़े। आहाहा! ऐसे जिनवर परमेश्वर सर्व दोषों से रहित है। आहाहा! उन्हें भूख लगती है और तृषा लगती है और पीने पीते हैं तथा आहार करते हैं, यह नहीं।

मुमुक्षु : दवा ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा-बवा कौन दे और कौन ले? आहाहा! रोग आवे और दवा ले, बापू! क्या हो? काल ऐसा आया। वस्तु का फेरफार (हो गया)। सत्य वस्तु आवे तब (ऐसा कहे), ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, एकान्त है, एकान्त है। ठीक, प्रभु! बापू! तू भी भगवान है, भाई! एक समय की भूल और पूरा भगवान। एक समय की भूल और बाकी पूरा भगवान। आहाहा!

जो जिनेश्वरदेव हैं,... आहाहा! **उसको हे योगी,...** अपने शिष्य को कहते हैं। प्रभाकरभट्ट शिष्य को। **तू परमात्मप्रकाश निश्चय से मान।** आहाहा! उसे तू परमात्मप्रकाश मान। कोई जगत का कर्ता ईश्वर है और ईश्वर ने यह बनाया है और हजार हाथवाला है। भगवान हजार हाथवाला है। अनन्त गुणवाला है, यह बराबर है। हाथ-बाथ तो नहीं। आहाहा! उसे **हे योगी! तू परमात्मप्रकाश निश्चय से मान। अर्थात् जो निर्दोष जिनेन्द्रदेव हैं,...** निर्दोष जिनेन्द्रदेव है। आहाहा! ऐसे तो बहुत कहलाये ऐसा कि हम जिन हैं, ऐसा कहे, परन्तु निर्दोष जिनेन्द्रदेव जो है, **वही परमात्मप्रकाश हैं।** वह परमात्मप्रकाश है। आहाहा!

भावार्थः—रागादि रहित चिदानन्दस्वभाव परमात्मा से भिन्न... यह टीकाकार का इस प्रकार से शब्द है। पहले से ऐसा लेते हैं। **रागादि रहित चिदानन्दस्वभाव...** ऐसा जो परमात्मा, उससे भिन्न। ये ऐसी शैली लेते हैं। राग-द्वेषादिरहित पुण्य-पाप के विकल्पों से रहित, चिदानन्दस्वभाव परमात्मा। कैसा है परमात्मा? कि चिदानन्दस्वभाव। चिद्-ज्ञानानन्दस्वभाव परमात्मा। आहाहा! ज्ञानानन्दस्वभाव परमात्मा। वह दोष से रहित चिदानन्दस्वभाव परमात्मा। अब कहते हैं, उससे भिन्न। **जो सब कर्म वे ही संसार के मूल हैं।** भगवान तो मोक्ष का मूल है और साथ में कर्म है, वह संसार का मूल है। आहाहा!

जगत के जीव को कर्मोकर सहित हैं,... वह पर्याय से कर्म से सहित, ऐसा लेना। वस्तुरूप से जिनवर है। आहाहा! परन्तु पर्यायनय से, व्यवहारनय से **कर्मोकर सहित हैं,...** जगत के जीव। **और भगवान जिनराज इनसे मुक्त है,...** जिनेश्वरदेव अरिहन्त परमात्मा। वैसे तो सब ऐसा कहे, णमो अरिहंताणं। परन्तु इसका भाव अन्दर समझे बिना अकेला रटन है। आहाहा! **भगवान जिनराज इनसे मुक्त है, और सब दोषों से रहित हैं।** सब दोष से रहित परमात्मा, उसे परमात्मा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कोई ईश्वर कर्ता है, ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश है, यह है और वह है। आहाहा! ब्रह्मा ने उत्पन्न किया, विष्णु रक्षा करे और शंकर संहार करे। उत्पाद-व्यय और ध्रुव लगा दिया वहाँ। वस्तु के स्वरूप में उत्पाद-व्यय-ध्रुव है। नयी अवस्था से उपजे, पुरानी से व्यय हो और ध्रुव रहे। तब उन्होंने ऐसा ठहराया कि ब्रह्मा से यह सब जगत उत्पन्न हुआ, विष्णु इसका रक्षक है। उत्पाद। वह शंकर इसका नाशक है। व्यय। यह घटित किया है बनारसीदास ने। बनारसी विलास में। लोग ऐसा मानते हैं परन्तु ऐसा है नहीं, ऐसा है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव में लगा दिया। बनारसी विलास है न, उसमें डाला है।

वे दोष सब संसारी-जीवों के लग रहे हैं,... भगवान के पास एक भी दोष नहीं। वस्तु से तो जिनवर है वे सब। परन्तु पर्याय में संसारी जीवों को सब दोष लग रहे हैं। आहाहा! जिनवर को एक भी दोष नहीं, तब इसे सब दोष लगते हैं। **ज्ञायकस्वभाव आत्मा के अनन्त ज्ञान सुखादि गुणों के आच्छादक हैं।** लो! ज्ञायकस्वभाव जो भगवान

आत्मा, अकेला चैतन्यनेत्र जिसका, अकेला ज्ञायक, जानन स्वभाव, ऐसे आत्मा को **अनन्त ज्ञान सुखादि गुणों के आच्छादक हैं।** दोष उसे ढँकनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं।

उन दोषों से रहित जो सर्वज्ञ, वही परमात्मप्रकाश है,... उन दोष से रहित **सर्वज्ञ, वही परमात्मप्रकाश है,...** आहाहा! **योगीश्वरों के मन में ऐसा ही निश्चय है।** ...आहाहा! उसे तू परमात्मा जान। कोई दूसरा परमात्मा नहीं। जगत का कर्ता है और वह जन्म देता है, इसे जिला दे, इसे मार दे। ईश्वर की कृपा हो तो यह सब बने। यह सब अज्ञानियों की मान्यताओं का जाल है। **हे योगिन! तू निश्चय से ऐसा ही मान, वही सत्पुरुषों का अभिप्राय है।** आहाहा! ज्ञानीपुरुषों का यह अभिप्राय है। अर्थात्? सर्व पर्याय के दोषों से रहित। वस्तु तो जिनवर है प्रत्येक जीव। परन्तु यह जिनवर जो सच्चे परमात्मा, उनकी पर्याय में सर्व दोष से रहित है। पूर्ण आनन्द और पूर्ण गुण की दशा की प्राप्ति (हुई है), ऐसा योगियों का ज्ञान में निश्चय है। उसे परमात्मा कहते हैं। बाकी कोई परमात्मा (है नहीं)। रखे वैसे रहना, ऐसा कहते हैं न लोग? भगवान रखे वैसे रहना, बापू! ईश्वर की मर्जी। ईश्वर को अभी मर्जी (इच्छा)! ईश्वर की इच्छा हो वैसे होता है। बापू! यह सभी कल्पनायें हैं, बापू! यह यहाँ कहते हैं। सन्तों के हृदय में, सन्तों के ज्ञान में तो ऐसा निश्चय है। ऐसे निर्दोष परमात्मा, दोषरहित, वे परमात्मा हैं। इसके अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं हो सकता। आहाहा! यह सत्पुरुषों को अभिप्राय है।

गाथा - १९९

अथ–

३२२) केवल–दंसणु णाणु सुहु वीरिउ जो जि अणंतु।
सो जिण–देउ वि परम–मुणि परम–पयासु मुणंतु।।१९९।।

केवलदर्शनं ज्ञानं सुखं वीर्यं य एव अनन्तम्।
स जिनदेवोडपि परममुनिः परमप्रकाशं मन्यमानः।।१९९।।

सो जिण–देउ वि स जिनदेवोडपि एवं भवति। न केवलं जिनदेवो भवति। परम–मुणि परम उत्कृष्टो मुनिः प्रत्यक्षज्ञानी। किं कुर्वन् सन्। मुणंतु मन्यमानो जानन् सन्। कम् परम–पयासु परममुत्कृष्टं लोकालोकप्रकाशकं केवलज्ञानं यस्य स भवति परमप्रकाशस्तं परमप्रकाशम्। स कः। केवल–दंसणु णाणु सुहु वीरिउ जो जि केवलज्ञानदर्शनसुववीर्यस्वरुपं य एव। कथंभूतं तत् केवलज्ञानादिचतुष्टयम्। अणंतु युगपदनन्तद्रव्यक्षेत्रकालभाव परिच्छेदकत्वादविनश्वरत्वा–च्चानन्तमिति भावार्थः।।१९९।।

फिर भी इसी कथन को दृढ़ करते हैं–

केवलज्ञान अनन्त और दर्शन सुख वीर्य अनन्त हुए।
सभी जानते, परम प्रकाशमयी जिनदेव परम मुनि हैं।।१९९।।

अन्वयार्थः– [केवलदर्शनं ज्ञानं सुखं वीर्यं] केवलदर्शन, केवलज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य [यदेव अनंतम्] ये अनंत चतुष्टय जिसके हों [स जिनदेवः] वही जिनदेव है, [परममुनिः] वही परममुनि अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानी है। क्या करता संता। [परमप्रकाशं जानन्] उत्कृष्ट लोकालोक का प्रकाशक जो केवलज्ञान वही जिसके परमप्रकाश है, उससे सकल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव को जाना हुआ परमप्रकाशक है। ये केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय एक ही समय में अनंत द्रव्य, अनंत क्षेत्र, अनंत काल और अनंत भावों को जानते हैं, इसलिये अनंत हैं, अविनश्वर हैं, इनका अंत नहीं है, ऐसा जानना।।१९९।।

गाथा-१९९ पर प्रवचन

फिर भी इसी कथन को दृढ़ करते हैं—

३२२) केवल-दंसणु णाणु सुहु वीरिउ जो जि अणंतु।
सो जिण-देउ वि परम-मुणि परम-पयासु मुणंतु।।१९९।।

आहाहा! **केवलदर्शन...** जिसे शक्ति में से प्रगट दशा हुई है। शक्ति में तो केवलज्ञान है, अनन्त चतुष्टय से भरपूर तत्त्व प्रत्येक भगवान है, परन्तु जिसे प्रगट केवलज्ञान हुआ है, केवलदर्शन हुआ है, अनन्त आनन्द हुआ है। आहाहा! आनन्द अर्थात् अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द। जिसे इन्द्रियाँ और परपदार्थ की कोई अपेक्षा नहीं। जिसके जानने में परपदार्थ है, इसलिए जानता है, इतनी भी अपेक्षा नहीं, तो फिर उसके सुख के लिये पर की अपेक्षा कहाँ से होगी? आहाहा! ऐसा जिसे अनन्त सुख है। अनन्त वीर्य है—अनन्त बल है। आहाहा! अनन्त गुण की पूर्ण पर्याय को रचे, ऐसा अनन्त वीर्य जिन्हें प्रगट हुआ है। आत्मबल। आहाहा! उसे यहाँ... कहा?

अनन्त चतुष्टय जिसके हों, वही जिनदेव है,... उसे परमेश्वर कहते हैं। आहाहा! **वही परम मुनि अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानी है।** वही मुनि है। मुनि अर्थात् ज्ञानी। उसे प्रत्यक्ष ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! **क्या करता संता।** आहाहा! **'परमप्रकाशं जानन।' उत्कृष्ट लोकालोक का प्रकाशक जो केवलज्ञान, वही जिसके परमप्रकाश है, उससे सकल द्रव्य,...** तीन काल के जितने द्रव्य हैं उतने। **क्षेत्र...** तीन काल, अनन्त **भव...** अनन्त **भावों को जानता हुआ...** आहाहा! भगवान तो भव, भाव सब जानते हैं। आहाहा! **परमप्रकाशक है।** लो! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, वैशाख कृष्ण १२, शनिवार
दिनांक- १४-०५-१९७७, गाथा - १९९ से २०१, प्रवचन-२३८

परमात्मप्रकाश, १९९। अन्तिम दो लाईनें हैं। परमात्मप्रकाश। परमात्मप्रकाश अर्थात् कि आत्मा। प्रगट हुआ या शक्तिरूप। प्रगट हुआ आत्मा कैसा है, उसकी बात है। **केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय एक ही समय में...** आहाहा! **अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल और अनन्त भावों को जानते हैं,...** एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिसकी (एक) समय की पर्याय, जिसके द्रव्य की अनन्तता, क्षेत्र की अनन्तता, काल की अनन्तता, भाव की अनन्तता, इन सबको एक समय में जान ले। उसका कितना माहात्म्य! एक गुण की एक पर्याय। ऐसे तो अनन्त गुण।

जिस गुण की—ज्ञान की एक समय की पर्याय अपने को जाने, अपनी अनन्त पर्याय को जाने, अनन्त गुण को जाने, द्रव्य को जाने, तीन काल के लोक के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जाने। ऐसी एक समय की सामर्थ्य। सुना बहुत बार हो परन्तु उसे यह बात अन्तर में बैठना, ऐसी कठिन बात है, बापू! आहाहा! यह कहीं बात नहीं। यह धारी हुई बात, इसलिए आ गया, ऐसा नहीं। एक समय में एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग हो, उसमें अनन्त द्रव्य, उसके अनन्त भाव, गुण, उसकी अनन्त काल की पर्यायें और अनन्त क्षेत्र। आहाहा! एक समय में जाने, **इसलिए अनन्त हैं,...** आहाहा! इसलिए एक समय की पर्याय अनन्त है। इस प्रकार से। अनन्त को जानने की सामर्थ्य, अनन्त चीज़ है, उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी एक गुण की एक पर्याय अनन्त है। अविनश्वर है।

मुमुक्षु : पर्याय तो विनश्वर।

पूज्य गुरुदेवश्री : अविनश्वर हैं पर्यायें। किस अपेक्षा से? वह पर्याय ऐसी की ऐसी रहनेवाली है, इस अपेक्षा से। वैसे तो बदलती है। इसीलिए तो पंचास्तिकाय में उसे कूटस्थ कहा है। केवलज्ञान कूटस्थ है। कूटस्थ अर्थात्? भले पलटती (दशा) है, परन्तु सरीखी रहनेवाली है। केवलज्ञान, केवलदर्शन। पंचास्तिकाय में आता है न भाई! कूटस्थ, लो! है तो परिणति। आहाहा! गुण तो त्रिकाली अविनाशी है और पर्याय सादि-अनन्त

अविनाशी है। आहाहा! द्रव्य अनादि-अनन्त है। उसके गुण और यह ज्ञानगुण, वह अनादि-अनन्त है परन्तु उसकी एक समय की पर्याय सादि-अनन्त है, इसलिए उसे अविनश्वर कहा है। आहाहा! उसका विश्वास आना, वह अन्तर के स्वभाव की शक्ति का अनन्त सामर्थ्य है, ऐसी अन्तर में प्रतीति आवे, तब उसकी प्रतीति व्यवहार से आवे, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त गुण... वह पर्याय है, ऐसी तो अनन्त पर्याय का एक गुण, ऐसे तो अनन्त गुण। क्योंकि श्रद्धा में भी ऐसी अनन्त पर्यायें हैं, ऐसा श्रद्धा में भी आता है। श्रद्धा में भी अनन्त श्रद्धा हो गयी। स्थिरता में भी अनन्त स्थिरता हो गयी। क्यों? कि अनन्त-अनन्त पर्याय को जाननेवाला और देखनेवाला, श्रद्धा करनेवाला, उसमें स्थिर होनेवाला। आहाहा! वह भी अनन्त स्थिरता हो गयी। उसका मूलस्वरूप है, वह तो त्रिकाली स्थिर—ध्रुव ही है। उसके ध्यान से, उसके ध्येय से। आहाहा! सब भूलकर त्रिकाली के ध्येय-ध्यान में धगश लगाते हुए जो दशा प्रगट होती है, वह अनन्त केवलज्ञान कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान की पर्याय शुद्ध और शुद्ध ही हुआ करती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : केवलज्ञान की पर्याय तो शुद्ध और शुद्ध ही हुआ करती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, यह क्या कहा? अविनश्वर ऐसी की ऐसी रहती है। ऐसी की ऐसी रहती है; इसलिए अविनश्वर कहा। ऐसी की ऐसी अर्थात् अनन्त शुद्ध है, ऐसी की ऐसी रहती है, इसलिए अविनश्वर है। वरना तो पलटती चीज़ नाशवान है। ३८ गाथा में केवलज्ञान को नाशवान कहा है। नियमसार की ३८ गाथा में संवर, निर्जरा और मोक्ष को नाशवान कहा। क्योंकि एक समय की पर्याय है, बदलती है इस अपेक्षा से। यहाँ ऐसी की ऐसी सदृश रहती है, इसलिए अविनश्वर कहा। अपेक्षा से बात है न! आहाहा! एक, एक भी भाव जितना जैसा है, जैसे भाव के भरोसे आना, वह बड़ी बातें हैं, बापू! आहाहा! वैसे तो ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ गया। उसमें यह बात नहीं आयी थी? नौ पूर्व पढ़ा।

मुमुक्षु : आत्मा को पढ़ा नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पढ़ा नहीं अन्दर में। मेरी पर्याय परिपूर्ण जो होती है, वह अविनश्वर रहती है, उसको व्यवहार कारणरूप से कहो तो द्रव्य अर्थात् गुण है। निश्चय से तो वह पर्याय, पर्याय का ही कारण है। आहाहा! जिसे उसके द्रव्य और गुण की भी अपेक्षा नहीं, ऐसी केवलज्ञान की पर्याय, अपने से पर की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से अनन्त पर्यायें प्रगटी हैं, कहते हैं। आहाहा! उसे अविनश्वर कहते हैं।

इनका अन्त नहीं है,... केवल (ज्ञान) हुआ, अब उसका अन्त नहीं। बस यह केवल पर्याय ऐसी सादि-अनन्त। आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' श्रीमद् में आता है न यह? 'अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो।' जिसकी सिद्धपर्याय सादि अर्थात् शुरुआत हुई। परन्तु अब अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... कहीं जैसे काल का अन्त और छोर नहीं, वैसे उसकी पर्याय का अन्त और छोर नहीं। आहाहा! ऐसा भाव जिसे बैठे, उसकी तृष्णा कितनी टूट जाये? आहाहा! अनन्तानुबन्धी का, अस्थिरता का नाश हो जाये।

गाथा - २००

अथ–

३२३) जो परमप्पउ परम–पउ हरि हरु बंभु वि बुद्धु।
परम पयासु भणंति मुणि सो जिण–देउ विसुद्धु।।२००।।

यः परमात्मा परमपदः हरिः हरः ब्रह्मापि बुद्ध।
परमप्रकाशः भणन्ति मुनयः स जिनदेवो विशुद्धः।।२००।।

भणंति कथयन्ति। के ते मुणि मुनयः प्रत्यक्षज्ञानिनः। कथंभूतं भणन्ति परमपयासु परमप्रकाशः। यः कथंभूतः। जो परमप्पउ यः परमात्मा। पुनरपि कथंभूतः। परम–पउ परमानन्तज्ञानादिगुणाधारत्वेन परमपदस्वभावः। किंविशिष्टः। हरि हरिसंज्ञः हरु महेश्वराभिधानः बंभु वि परमब्रह्माभिधानोऽपि बुद्धः सुगतसंज्ञ सो जिण–देउ स एव पूर्वोक्तः परमात्मा जिनदेवः। किंविशिष्टः। विसुद्धु समस्तरागादिदोषपरिहारेण शुद्ध इति। अत्र य एव परमात्मसंज्ञो निर्दोषिपरमात्मा व्याख्यातः स एव परमात्मा, स एव परमपदः, स एव विष्णुसंज्ञः, स एवेश्वराभिधानः, स एव ब्रह्मशब्दवाच्यः, स एव सुगतशब्दाभिधेयः, स एव जिनेश्वरः, स एव विशुद्ध इत्याघष्टाधिकसहस्त्रनामाभिधेयो भवति। नानारुचीनां जनानां तु कस्यापि केनापि विविक्षितेन नाम्नाराध्यः स्यादिति भावार्थः। तथा चोक्तम्–''नामाष्टकसहस्त्रेण युक्तं मोक्षपुरेश्वरम्'' इत्यादि।।२००।। एवं चतुर्विंशतिसूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये परमात्माप्रकाशशब्दार्थकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयेण तृतीयमन्तरस्थलं गतम्।

आगे जिनदेव के ही अनेक नाम हैं, ऐसा निश्चय करते हैं–

जो परमात्मा हरि हर ब्रह्मा बुद्ध परमपद कहें उसे।
परम प्रकाश स्वरूप मुनीश्वर हैं सुविशुद्ध जिनेश्वर वे।।२००।।

अन्वयार्थः– [यः] जिस [परमात्मा] परमात्मा को [मुनयः] मुनि [परमपदः] परमपद [हरिः हरः ब्रह्मा अपि] हरि महादेव ब्रह्मा [बुद्धः परमप्रकाशः भणंति] बुद्ध और परमप्रकाश नाम से कहते हैं, [सः] वह [विशुद्धः जिनदेवः] रागादि रहित शुद्ध जिनदेव ही हैं, उसी के ये सब नाम हैं।।

भावार्थः– प्रत्यक्षज्ञानी उसे परमानंद ज्ञानादि गुणों का आधार होने से परमपद

कहते हैं। वही विष्णु है, वही महादेव है, उसी का नाम परब्रह्म है, सबका ज्ञायक होने से बुद्ध है, सबमें व्यापक ऐसा जिनदेव देवाधिदेव परमात्मा अनेक नामों से गाया जाता है। समस्त रागादिक दोष के न होने से निर्मल है, ऐसा जो अरहंतदेव वही परमात्म परमपद, वही विष्णु, वही ईश्वर, वही ब्रह्म, वही शिव, वही सुगत, वही जिनेश्वर, और वही विशुद्ध-इत्यादि एक हजार आठ नामों से गाया जाता है। नाना रुचि के धारक ये संसारी जीव वे नाना प्रकार के नामों से जिनराज को आराधते हैं। ये नाम जिनराज के सिवाय दूसरे के नहीं हैं। ऐसा ही दूसरे ग्रंथों में भी कहा है-एक हजार आठ नामों सहित वह मोक्षपुर का स्वामी उसकी आराधना सब करते हैं। उसके अनंत नाम और अनंतरुप हैं। वास्तव में नाम से रहित रुप से रहित ऐसे भगवान् देव को हे प्राणियो, तुम आराधो।।२००।।

इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में परमात्मप्रकाश शब्द के अर्थ की मुख्यता से तीन दोहों में तीसरा अन्तरस्थल कहा।

गाथा-२०० पर प्रवचन

---

२०० गाथा अब। **आगे जिनदेव के ही अनेक नाम हैं, ऐसा निश्चय करते हैं:—** २००।

३२३) जो परमप्पउ परम-पउ हरि हरु बंभु वि बुद्धु।
परम पयासु भणंति मुणि सो जिण-देउ विसुद्धु।।२००।।

ओहोहो! जिनेश्वरदेव कैसे? वैसे तो सम्प्रदाय में रहकर अनन्त बार इसने नवकार भी गिने, भगवान की पूजायें कीं। आहाहा! परन्तु यह भाव जो है, उसे भावभासन नहीं किया। भाव का भासन अर्थात् उसका ज्ञान नहीं किया। आहाहा! यह त्रिकाली भगवान आत्मा, उसका एक गुण और उसकी एक समय की एक पर्याय इतनी। आहाहा! तो उसके एक गुण का माहात्म्य क्या? और ऐसे अनन्तगुणा का एकरूप, उसका माहात्म्य कितना? आहाहा! उसकी दृष्टि होने पर इसकी पर्याय में आनन्द और स्थिरता का अंश जगे। अनन्तानुबन्धी का अभाव है न, उतनी शान्ति जगे। आहाहा! और उस शान्ति में

आनन्द के सुख का वेदन साथ में हो, तब यह बात उसे बैठी, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

२००। **अन्वयार्थः—जिस परमात्मा को मुनि परमपद...** उसे मुनि भी कहा जाता है। आहाहा! केवलज्ञान है, उसे मुनि जानते हैं, इसलिए मुनि भी कहा जाता है। जानना, मुनना, मुनना। एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने, इसलिए उस ज्ञान की पर्याय को मुनि भी मुनते हैं; इसलिए मुनि कहते हैं। आहाहा! उसे परमपद कहते हैं। वह परमपद ईश्वर है। कोई दूसरा ईश्वर इस जगत में हजार हाथवाला और यह कर्ता, उसके बिना पत्ता हिले नहीं, (ऐसा नहीं है)।

एक बार गढडा में (संवत्) १९६९ का वर्ष है। गये थे अन्दर देखने स्वामी नारायण का। वहाँ बाबा वस्त्र धोते थे। मैं और नरसिंहभाई। नरसिंह गोवळिया। दो व्यक्ति थे। इसलिए वे सब हमको देखकर यह खबर और यह। तब तो छोटा शरीर, रूपवान शरीर, उसे ख्याल बाहर आ गया था न कि यह दीक्षा लेनेवाले हैं। इसलिए वह एक बाबा धोते-धोते बोला, वैसे होशियार था। ईश्वर के बिना एक पत्ता हिलता नहीं, कहे। गढडा के स्वामी नारायण मन्दिर में ऐसा कहता है। वह क्या बेचारा, कहा। ईश्वर पत्ता हिलाता होगा जड़ का? ईश्वर यह सब कसाईखाना करता होगा? हजारों गायों को काटे। आहाहा! यह ईश्वर कर्ता होगा?

मुमुक्षु : ईश्वर करे पर का?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कुछ खबर नहीं होती, क्या करे बेचारा? सम्प्रदाय में बँध गये। यह तो एक समय की पर्याय जिसे मुनि कहते हैं, परमपद कहते हैं। वह परमपद है। आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! इसका नाम परमात्मप्रकाश है न। आहाहा! इस पर्याय का परमात्मप्रकाश जिसे मुनि कहते हैं, उसे परम पद कहते हैं। आहाहा! उसे हरि कहते हैं। हरते इति हरि। जिसने राग और द्वेष को हर डाला है और जिसने वीतरागता पूर्ण, भाई! यह वीतराग शब्द सरल लगे। और वीतरागता अर्थात् क्या भाई! आहाहा! जिसमें राग का कण नहीं, वीतरागता की अपूर्णता नहीं। ऐसी वीतरागदशा। आहाहा! उसे अरिहन्तपद और जिनपद उसे कहा जाता है। है? उसे हरि कहते हैं।

पंचाध्यायी में लिया है। हरि नाम लिया है। पंचाध्यायी पाठ / गाथा। हरति इति हरि। जो तीन लोक का नाथ भगवान स्वयं। आहाहा! जिसके पूर्ण स्वभाव के विश्वास और आश्रय से अज्ञान और राग-द्वेष घात डाले हैं, उसे हरि कहते हैं। आहाहा! इस जिनपद को हरि कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे महादेव कहते हैं। वह महादेव, बड़ा देव, वह देव। यह शंकर और बंकर और सब महादेव कहलाये, यह वस्तु नहीं। जिसे अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति अर्थात् चारित्र, अनन्त स्वच्छता की एक समय की पर्याय की अमापता, अपरिमितता बेहद जिसका स्वभाव पर्याय में प्रगट हुआ है। ऐसे भगवान को महा दिव्यशक्तिवान देव कहा जाता है। वे महादेव हैं।

उसे ब्रह्मा कहते हैं। लो, है ? **हरि हर (महादेव) ब्रह्मा...** हर अर्थात् महादेव। हरिहर ब्रह्मा तीन आते हैं न ? हरिहर ब्रह्मा। हरि हर अर्थात् महादेव। हरि विष्णु, ब्रह्मा। आहाहा! यह जिनपद वीतराग, आहाहा! जिसे अनन्त वीतरागता उत्पन्न हुई है, वह ब्रह्मा। वह ब्रह्मा जगत को उत्पन्न करता है, वह ब्रह्मा नहीं। महादेव संहार करता है, यह नहीं। वह तो महाप्रभु। सर्वज्ञ की शक्ति से प्रगटता। दिव्यता जिसे प्रगट हुई है। वह महादेव, वह हरि, वह ब्रह्मा। आहाहा!

वह **बुद्ध...** वे बुद्ध कहते हैं न, बुद्ध भगवान। यह तो बुद्धते बोधः अपने केवलज्ञान से तीन काल—तीन लोक अर्थात् पर्याय को पूर्ण जाने। तीन काल—तीन लोक तो व्यवहार से कथन है। पूर्ण पर्याय को जाने, वह बुद्ध। यह उसे बुद्ध कहते हैं। उसे परमप्रकाश कहते हैं। आहाहा! जलहल ज्योति चैतन्य प्रकाश का पुंज प्रभु, उसकी पर्याय में जलहल ज्योति चैतन्य प्रकाश। प्रकाश प्रगट हुआ पूरा ऐसा। आहाहा! जिसमें अन्धकार का, अज्ञान का अंश नहीं, पूर्ण प्रकाश प्रगट हुआ। आहाहा! उसे परमप्रकाश कहते हैं। आहाहा! ऐसे **नाम से कहते हैं,...** लो! ऐसे नाम से परमात्मा को कहा जाता है। अरिहन्त परमेश्वर जिनेश्वरदेव जिसे केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट हुआ है, ऐसे परमात्मा अरिहन्तदेव। आहाहा! उसे हरि कहते हैं। उसे ब्रह्मा कहते हैं, उसे विष्णु कहते हैं, उसे बुद्ध कहते हैं, उसे महादेव कहते हैं। जगत के हरि, ब्रह्म और महादेव कल्पना के किये, वे नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

जिसे भगवान परमेश्वरपद अरिहन्तपद। अर्थात् क्या, बापू! यह कहीं साधारण बात नहीं है। भाषा भले रट जाये साधारण। जिसने अज्ञान और राग-द्वेष को पूर्णतः हरि अर्थात् हर डाला, नाश किया है। आहाहा! और जिसके स्थान में जिसने सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिनेश्वरदेव ने अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति—ऐसी दशा जिसकी प्रगट हुई है, उसे यहाँ हरि कहा जाता है। आहाहा! उसे महादेव कहा जाता है। वे महादेव यह शंकर नहीं। आहाहा! उसे बुद्ध कहा जाता है। आहाहा! उसे परमप्रकाश कहा जाता है। आहाहा! चैतन्य के नूर का पूर जो अन्दर भरा है, आत्मा में तो चैतन्य के नूर के तेज का पूर भरा है, भाई! उसे खबर नहीं। प्रभु आत्मा चैतन्य के प्रकाश का नूर है। उसमें से जिसने प्रकाश प्रगट किया है अरिहन्त ने। आहाहा! अन्तर के ध्यान में से जिसने परमप्रकाश जो शक्ति और स्वभावरूप से था, उसे प्रगट किया है। उस भगवान को परमप्रकाश कहते हैं। दूसरी सब बातें करनेवाले ऐसा हुआ, फिर ध्यान करे वहाँ प्रकाश दिखता है उसे। वह तो सब जड़ है। समझ में आया? कि आँख मींचे तो ऐसा होता है, सफेद प्रकाश दिखता है। वह तो सब जड़ है। आहाहा! ऐसा परमप्रकाश तो भगवान चैतन्य के प्रकाश का पूर भरा है। एक-एक आत्मा चैतन्य के प्रकाश से पूर्ण भरा है। आहाहा! उसमें उसका विश्वास, अनुभव करके उसका सम्यग्दर्शन जैसा जितना है, उतनी उसकी सत्य प्रतीति—दर्शन करके, उसमें स्थिरता करके जिसने प्रकाश प्रगट किया, ऐसे अरिहन्त जिनेश्वर को परमप्रकाश कहते हैं। दूसरे को किसी को परमप्रकाश है नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। ऐसे नाम से कहते हैं। **वह...** कैसे हैं भगवान! परमेश्वर अरिहन्त जिनेश्वरदेव। **रागादि रहित शुद्ध जिनदेव ही हैं,...** वे इन सब रागादिरहित शुद्ध जिनदेव ही हैं। दूसरे कोई ब्रह्मा और हरि और शंकर है, ऐसा नहीं। आहाहा! **उसी के ये सब नाम है।** आहाहा!

भावार्थः—प्रत्यक्षज्ञानी उसे परमानन्द ज्ञानादि गुणों का आधार होने से परमपद कहते हैं। प्रत्यक्षज्ञानी उसे परमानन्द ज्ञानादि गुणों का आधार होने से... आहाहा! परम अतीन्द्रिय आनन्द, परमेश्वर अरिहन्त को परम अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ है। सम्यग्दृष्टि है, धर्म की पहली शुरुआतवाला, उसे भी अतीन्द्रिय आनन्द का अंश प्रगट हुआ होता है। आहाहा! तब तो उसे सत्यदर्शन हुआ, सम्यग्दर्शन कहो या सत्यदर्शन कहो। आहाहा!

यह तो परमेश्वर तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञानी। आहाहा! लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। शरीरसहित जीवनमुक्त। सिद्ध भगवान तो शरीररहित णमो सिद्धाणं। यह णमो अरिहंताणं। लाखों केवली, बीस तीर्थंकर महाविदेह में मौजूद हैं, मौजूद हैं। अस्ति अभी है। उन सबको यह परमपद कहा जाता है, ऐसा कहते हैं।

प्रत्यक्षज्ञानी उसे परमानन्द ज्ञानादि गुणों का आधार... कौन? यह आत्मा। आहाहा! उसकी पर्याय प्रगट हुई परम आनन्द और ज्ञानगुण का आधार है। उसे परमपद कहते हैं। आहाहा! अब ऐसे भगवान को छोड़कर देव-देवला को, उन शासनदेव को पूजो, क्षेत्रपाल को पूजो, भूतड़ा-भवनपति आदि को, पूर्णभद्र और फलाना भद्र... अरे! तीन लोक के नाथ के समक्ष कोई देव पूजनेयोग्य है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मनुष्य से देव तो हल्के हो गये। मनुष्य तो केवलज्ञान पा सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य, परन्तु वह देव कहाँ है वह? भूतड़ा है। देव तो यह परमेश्वर सर्वज्ञदेव। आहाहा! देवाधिदेव जिनकी दिव्य शक्तियाँ जो आत्मा की है, उन शक्तियों की व्यक्तता जिसे प्रगट हो गयी है। शक्ति की व्यक्तता हुई है। उसे परमेश्वर कहते हैं, उसे जिनदेव कहते हैं। आहाहा!

शंकर का देवल है न तुम्हारे, नहीं? दामनगर। तालाब के किनारे। वह कौने में तालाब। वहाँ गये थे। मैं जाता न पहले। समयसार लेकर वहाँ वह शंकर का देवालय है और नीचे खड्डा है। लाखों मण धूल निकाला हुआ। शंकर का देवालय ऐसे है और उस ओर खड्डा है। वहाँ मैं जाता था न तब अन्दर। चार-चार, पाँच-पाँच, छह घण्टे वहाँ रहता। व्याख्यान देकर चला जाता, वह शाम को आवे। अपवास हो न तब। वह शंकर का देवालय है और तालाब है और ऐसे नीचे बड़ा खड्डा है। लाखों मण धूल निकाला हुआ। वह नीचे। आहाहा! यह समयसार वहाँ वाँचा हुआ है। ७८ में। (संवत्) १९७८ के वर्ष की बात है। ५५ वर्ष हुए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि केवलज्ञानी परमात्मा **प्रत्यक्षज्ञानी उसे परमानन्द ज्ञानादि गुणों का आधार होने से परमपद कहते हैं।** केवलज्ञानी, उसे परमपद कहते हैं, ऐसा कहते हैं। प्रत्यक्षज्ञानी जो सर्वज्ञ भगवान, वे ऐसे परम-आनन्द और ज्ञानादि गुणों का आधार

होने से उन्हें परमपद उन्हें परमात्मा परमपद कहते हैं। बाकी सब परमपद नहीं कि बड़े देव हो और देवला हो। वैमानिक देव हो। वे नहीं। आहाहा! उसे विष्णु कहते हैं। ऐसी दशावन्त जिसे परमात्म सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग जिनेश्वरदेव दशा में जिन्हें पूर्ण वीतरागता और पूर्ण ज्ञान-आनन्द का आधार दशा जिन्हें प्रगट हुई, उसे यहाँ विष्णु कहते हैं, उसे महादेव कहते हैं। **उसी का नाम परमब्रह्म है...** आहाहा! वह परमब्रह्म है। दूसरा कोई परमब्रह्म जगत का कर्ता है और उसके आधीन ईश्वर ने सृष्टि बनायी है, वह सब गप्प है। आहाहा! परमब्रह्म वह भगवान परमात्मा स्वयं परमब्रह्म है। सर्वज्ञ केवलज्ञानी परमात्मा। है?

सबका ज्ञायक होने से बुद्ध है। तीन काल—तीन लोक को एक समय में अपनी पर्याय की अवस्था के सामर्थ्य को जाने, इसलिए उसे बुद्ध कहा जाता है। आहाहा! **सबमें व्यापक ऐसा जिनदेव देवाधिदेव परमात्मा...** व्यापक का अर्थ जाननेवाला। किसी को कुछ व्यापक घुस नहीं जाता। भगवान पर को जानते हुए। सर्वत्र लोकालोक में व्यापक अर्थात् लोकालोक को जाने। जानने की अपेक्षा से उसे व्यापक कहने में आया है। लोकालोक को **सबमें व्यापक ऐसा जिनदेव देवाधिदेव परमात्मा अनेक नामों से गाया जाता है।** आहाहा!

समस्त रागादिक दोष के न होने से... परमेश्वर को तो राग का अंश भी नहीं। तो वीतराग मूर्ति परमात्मस्वरूप, उसके कारण वह निर्मल है। परमात्मा निर्मल है। राग और पुण्य का विकल्प, दया, दान का विकल्प भी मैल है, वह भी उसे नहीं। आहाहा! वह तो निर्मलानन्द भगवान परमात्मा है। **ऐसा जो अरहन्तदेव, वही परमात्म परमपद, वही विष्णु, वही ईश्वर,...** लो यह ईश्वर। **सृष्टिवादी कहे...** ईश्वर सृष्टि का कर्ता कोई है। कर्ता बिना कुछ बने ऐसा? कर्ता ऐसा बनावे कसाईखाना? बकरों को काटे और गायों को काटे, ऐसा बनावे कर्ता? कोई कर्ता-फर्ता है नहीं। यह ही ईश्वर। जिनदेव, वे ईश्वर हैं कि जो तीन काल—तीन लोक को जानते हैं और वीतरागता में परिपूर्ण परम आनन्द का आधार। आहाहा!

वही ब्रह्म, वही शिव, वही सुगत,... सुगत अर्थात् बुद्ध। **वही जिनेश्वर, और**

वही विशुद्ध इत्यादि एक हजार आठ नामों से गाया जाता है। समवसरण में भगवान को जब केवलज्ञान होता है, इन्द्र आकर एक हजार नाम से भगवान के गीत गाते हैं। एक हजार (आठ)। आहाहा! प्रभु तो वीतराग हैं। उन्हें कुछ सुनना नहीं, वे तो तीन काल—तीन लोक को जानते हैं, परन्तु इन्द्र आकर स्तुति करता है। एक हजार (आठ) नाम से स्तुति करता है। आहाहा! **एक हजार आठ नामों से गाया जाता है।** गाया अर्थात् कहा जाता है।

नाना रुचि के धारक ये संसारी जीव... अनेक रुचि के धारक संसारी **वे नाना प्रकार के नामों से जिनराज को आराधते हैं।** चाहे जिस नाम से आराधो—सेवन करो। आहाहा! परन्तु वस्तु यह चाहिए। **ये नाम जिनराज के सिवाय दूसरे के नहीं हैं।** जिनराज वीतराग परमेश्वर केवलज्ञानी के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं नहीं होती। आहाहा! **ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में भी कहा है—एक हजार आठ नामों सहित वह मोक्षपुर का स्वामी...** पद चाहिए। मोक्षपद का। मोक्षपुर। पुर है। लाईन की है। **मोक्षपुर का स्वामी...** भगवान अरिहन्तदेव, सर्वज्ञदेव एक हजार (आठ) नाम से बोले जाते हैं, कहते हैं। और मोक्षपुर के स्वामी **उसकी आराधना सब करते हैं।** यह देव की आराधना देवाधिदेव की करते हैं। बाकी सब देव सब फोकट है। आहाहा! कौन-सा देव है तुम्हारे दामनगर में? तीन कोस दूर। दामनगर के पास एकलिया। एकलिया नहीं।

मुमुक्षु : भूरखिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे से तीन कोस दूर।

मुमुक्षु : भूरखिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूरखिया... भूरखिया। भूरखियो। भूरखियो। भूरखियो। खबर है न। लाठी के बीच में आता है। भूरखियो, भूरखियो सब मानते भूरखिया को वे। दामनगरवाले बहुत। भान बिना के भूरखिया को माने। अक्ल के बारदान, नाम कहलाये जैन और माने भूरखिया को।

मुमुक्षु : जैन ही सब हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न, सब खबर है। दामोदर सेठ को वायु बहुत हुआ

था तब भूरखिया को माना था उनकी माँ ने। खबर है सब। यह तो बहुत वर्ष हुए। बहुत वर्ष हुए थे न बहुत। चीख दुःख बहुत था। आहाहा! भूरखिया और ऐसे और ऐसे भूरखिया हनुमान। दुनिया की भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा। आहाहा!

यहाँ तो जिनराजदेव मोक्षपुर के स्वामी **उसके अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं।** आहाहा! वे सर्वज्ञ परमेश्वर णमो अरिहंताणं जिनेश्वरदेव, उनके अनन्त नाम और अनन्त रूप, उसे सब प्रकार से पहिचानने में आता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी पद्धति है नहीं। आहाहा! तुम्हारे यहाँ बहुत होता है, वहाँ महाजन का नहीं वह एक बैल है। जीवराजजी को खबर नहीं। बैल नहीं कोई? बैल, बैल का है उस ओर। चेला के पास है एक। उसे वे मानने जाये।

मुमुक्षु : पडाणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पडाणा के पास। जैन के वाडा में कुछ भान नहीं होता। आहाहा!

वास्तव में नाम से रहित रूप से रहित ऐसे भगवान देव को हे प्राणियो! तुम आराधो। आहाहा! जिसे आत्मदशा पूर्ण प्रगट हुई है। जाति से तो जिनवर और जीव जाति दोनों एक ही है। जैसे जिनवर हैं, वैसे सब जीव हैं। उसका शक्ति और स्वभाव तो जिनवर की जाति का है वह, परन्तु वह शक्तिरूप से दूसरा। भगवान को व्यक्तिरूप से प्रगट हो गयी है। बाकी कल आया था अपने, नहीं? जिनवर और जीव की जाति एक है। आहाहा!

गेहूँ के दाने लाख हों, करोड़ हों, सब एक जाति के हैं। किसी का आटा हुआ हो और किसी का पूरा दाना हो। और शक्ति से तो सब समान हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा सब शक्ति से परमात्मा ही है। परमेश्वर को तो उस शक्ति में से व्यक्तता (पूरी) प्रगट हो गयी, पूर्णानन्ददशा हो गयी है। इतना दोनों में अन्तर है। आहाहा! २०० गाथा हुई।

इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में परमात्मप्रकाश शब्द के अर्थ की मुख्यता से तीन दोहों में तीसरा अन्तरस्थल कहा।

गाथा - २०१

तदनन्तरं सिद्धस्वरुपकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयपर्यन्तं व्याख्यानं करोति तथथा–

३२४) झाणें कम्मक्खउ करिवि मुक्कउ होइ अणंतु।
जिणवरदेवइँ सो जि जिय पभणिउ सिद्ध महंतु।।२०१।।

ध्यानेन कर्मक्षयं कृत्वा मुक्तो भवति अनन्तः।
जिनवरदेवेन स एव जीव प्रभणितः सिद्धो महान्।।२०१।।

पभणिउ प्रभणितः कथितः। केन कर्तृभूतेन। जिणवरदेवइं जिनवरदेवेन। कोडसौ भणितः। सिद्ध सिद्धः। कथंभूतः। महंतु महापुरुषाराधितत्वात् केवलज्ञानादिमहागुणा– धारत्वाच्च महान्। क एव। सो जि स एव। स कः योडसौ मुक्कउ होइ ज्ञानावरणादिभिः कर्मभिमुक्तो रहितः सम्यक्त्वघष्टगुणसहितश्च जिय हे जीव। कथंभूतः। अणंतु न विघतेडन्तो विनाशो यस्य स भवत्यनन्तः। किं कृत्वा पूर्वं मुक्तो भवति। कम्मक्खउ करिवि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभा–वादात्मद्रव्याद्विलक्षणं यदार्तरौद्रध्यानद्वयं तेनोपार्जितं यत्कर्म तस्य क्षयः कर्मक्षयस्तं कृत्वा। केन झाणें रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानलक्षणेन ध्याननेनेति तात्पर्यम्।।२०१।।

आगे सिद्धस्वरुपके कथनकी मुख्यतासे तीन दोहोंमें व्याख्यान करते हैं–

शुक्लध्यान से कर्म क्षपण कर जो अविलासी मुक्त हुए।
वे ही सिद्ध महान जीव हैं ऐसा सब जिनवर कहते।।२०१/३२४।।

अन्वयार्थः– [ध्यानेन] शुक्लध्यान से [कर्मक्षयं] कर्मों का क्षय [कृत्वा] करके [मुक्तः भवति] जो मुक्त होता है, [अनंतः] और अविनाशी है, [जीव] हे जीव, [स एव] उसे ही [जिनवरदेवेन] जिनवरदेव ने [महान् सिद्धः प्रभणितः] सबसे महान् सिद्ध भगवान् कहा है।

भावार्थः– अरहंतपरमेष्ठी सकल सिद्धान्तों के प्रकाशक हैं, वे सिद्ध परमात्मा को सिद्धपरमेष्ठी कहते हैं, जिसे सब संत पुरुष आराधते हैं। केवलज्ञानादि महान् अनंतगुणों के धारण करने से वह महान् अर्थात् सबमें बड़े हैं। जो सिद्धभगवान् ज्ञानावरणादि आठों ही कर्मों से रहित हैं, और सम्यक्त्वादि आठ गुण सहित हैं। ज्ञायकसम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत वीर्य, सूक्ष्म, अवगाहन, अगुरुलघु, अव्याबाध–इन आठ गुणों से

मंडित हैं, और जिसका अन्त नहीं ऐसा निरंजनदेव विशुद्धज्ञान दर्शन स्वभाव जो आत्मद्रव्य उससे विपरीत जो आर्त रौद्र खोटे ध्यान उनसे उत्पन्न हुए जो शुभ-अशुभ कर्म उनका स्वसंवेदनज्ञानरुप शुक्लध्यान से क्षय करके अक्षय पद पा लिया है। कैसा है शुक्लध्यान? रागादि समस्त विकल्पों से रहित परम निराकुलतारुप है। यही ध्यान मोक्ष का मूल है, इसी से अनन्त सिद्ध हुए और होंगे।।२०१।।

गाथा-२०१ पर प्रवचन

आगे सिद्धस्वरूप के कथन की मुख्यता से तीन दोहों में व्याख्यान करते हैं— यह अरिहन्त की मुख्यता से व्याख्या की। अब सिद्ध भगवान। णमो सिद्धाणं। यह पहले अभी तक णमो अरिहंताणं का कहा। उसके अनन्त नाम, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय से उन्हें कहा जाता है। केवलज्ञानी परमात्मा जिनेश्वर को।

अब **सिद्धस्वरूप के कथन की मुख्यता से तीन दोहों में व्याख्यान करते हैं—**

३२४) झाणें कम्मक्खउ करिवि मुक्कउ होइ अणंतु।
जिणवरदेवइँ सो जि जिय पभणिउ सिद्ध महंतु।।२०१।।

अन्वयार्थः—शुक्लध्यान से कर्मों का क्षय करके... अरिहन्त भगवान को अभी चार कर्म बाकी होते हैं। चार कर्म नाश हुए होते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय चार का नाश। परन्तु यह चार बाकी होते हैं—वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र; इसलिए अरिहन्तपद में विराजमान हैं। और सिद्ध भगवान को आठों कर्मों का नाश हुआ, इसलिए वे अशरीरी सिद्ध भगवान ऊपर विराजते हैं। आहाहा! **कर्मों का क्षय करके जो मुक्त होता है,...** समुच्चय बात लेनी है न! ऐसे तो सिद्ध हैं, वे अनादि काल से हैं। परन्तु एक-एक जीव लो तो कर्म थे, उनका नाश करके सिद्ध हुए हैं।

और अविनाशी हैं,... सिद्धपद प्रगट हुआ, वह प्रगट हुआ; अब फिर से उन्हें अवतार नहीं होता। फिर मोक्ष में से अब यहाँ भक्तों के कष्ट मिटाने के लिये अवतार धारण करते हैं, ऐसा नहीं होता। आहाहा! **कर्मों का क्षय करके जो मुक्त होता है, और**

अविनाशी हुआ,... आहाहा! **हे जीव! उसे ही जिनवरदेव ने सबसे महान सिद्ध भगवान कहा है।** सबसे महान सिद्ध भगवान कहे हैं। अरिहन्त से भी वे परमसिद्ध तो पूर्णपवित्र हैं। अरिहन्त में जो चार कर्म बाकी है, उतनी अपूर्णता है। सिद्ध को तो आठों कर्मरहित हैं। लोक के अग्र में मुक्तिशिला पर अनन्त सिद्ध विराजते हैं। उन्हें भगवान ने सर्वोत्कृष्ट **महान सिद्ध भगवान कहा है।** आहाहा!

भावार्थः—अरहन्त परमेष्ठी सकल सिद्धान्तों के प्रकाशक हैं,... क्योंकि उन्हें अभी वाणी होती है। परमेश्वर को, अरिहन्त हैं, उन्हें वाणी होती है। ॐ ध्वनि खिरती है। 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' उन भगवान को ऐसी वाणी नहीं होती। वीतराग हैं और सर्वज्ञ हैं। उन्हें होंठ बन्द होते हैं, कण्ठ हिलता नहीं। पूरे शरीर में से ॐध्वनि खिरती है। भाषा ऐसी कहलाती है 'मुख ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' पंचास्तिकाय में आता है न! 'मुख वयणं' भाषा से व्यवहार बात, बाकी उन्हें मुख से भाषा नहीं होती। उन्हें पूरे शरीर में से इच्छा बिना, परमात्मा तो वीतराग हैं, केवली हैं। इच्छा बिना ॐ ऐसी ध्वनि खिरती है। पंच परमेष्ठी का स्वरूप। उसमें से सब बाहर सन्त, गणधर, मुनि बारह अंग की रचना करते हैं। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा! भव्य जीव संशय निवारण करे उस आगम को सुनकर। आहाहा! ऐसे **अरहन्त परमेष्ठी सकल सिद्धान्तों के प्रकाशक हैं,...** देखा! वाणी की बात है न इसलिए।

वे सिद्ध परमात्मा को सिद्धपरमेष्ठी कहते हैं,... उन अरिहन्त, सिद्ध को परमेष्ठी परमात्मा ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सकल सिद्धान्तों के प्रकाशक हैं, वे सिद्ध परमात्मा को सिद्धपरमेष्ठी कहते हैं, जिसे सब सन्तपुरुष आराधते हैं।** सन्त पुरुष धर्मात्मा समकिती ज्ञानी ऐसे सिद्ध भगवान को आराधते हैं। **केवलज्ञानादि महान अनन्त गुणों के धारण करने से वह महान अर्थात् सबमें बड़े हैं।** क्यों सिद्ध बड़े हैं, कहते हैं? केवलज्ञानादि अनन्त गुण धारण किये हुए हैं, इसलिए उन्हें सबसे महान बड़े कहा जाता है। देव की पदवी मिले और बड़े करोड़ों-अरबोंपति हो, बड़े कहलाये, वे बड़े नहीं, वे तो सब भिखारी। खोटे हैं सब रंक हैं। यह महान लक्ष्मीवाले हैं। आहाहा!

जिन्हें अनन्त आनन्द प्रगट हुआ है, पूर्णानन्द स्वभाव, वे सिद्ध भगवान ही बड़े में बड़े महान बड़े कहलाते हैं। **सबमें बड़े हैं।** यहाँ तो कुछ पाँच-पच्चीस लाख धूल हो, किसी की कुछ बड़ी इज्जत हो, लाख-दो लाख की वर्ष में नौकरी मिलती हो, बड़ा कहलाये। वे सब संसार में भटकनेवाले बड़े। आहाहा! यह तो मोटे-बड़े महान गुण में बड़े प्रभु। आहाहा! उसमें जिसकी दशा प्रगट हुई है, ऐसी दशा किसी प्राणी को होती नहीं। ऐसे वे सिद्ध भगवान महान प्रभु हैं। आहाहा!

जो सिद्धभगवान ज्ञानावरणादि आठों ही कर्मों से रहित हैं,... आठों ही कर्मों से रहित भगवान सिद्ध हैं। **और सम्यक्त्व आदि आठ गुण सहित हैं।** व्यवहार से। निश्चय से तो सब अनन्त गुण है, परन्तु यह आठ प्रगट है। आहाहा! क्षायिक समकित। सिद्ध भगवान को क्षायिक समकित होता है। जो आत्मा का (स्वरूप) सम्यक् सत्य पूर्ण अनुभव में आया था, प्रतीति में, वह प्रतीति क्षायिक है, वह प्रतीति सिद्ध में रहती है। आहाहा! जैसे श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती थे। नरक का आयुष्य बँध गया था। अभी नरक में गये हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति है, परन्तु क्षायिक समकिती हैं। वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति। ढाई हजार गये। साढ़े इक्यासी (हजार वर्ष) अभी रहेंगे। आहाहा! क्षायिक समकिती। और वहाँ भी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। परन्तु नरक का आयुष्य बँध गया था। अभी नरक में हैं। क्षायिक समकिती (हैं), बाहर निकलेंगे लेकर तो क्षायिक समकित लेकर यहाँ आयेंगे। केवलज्ञान प्राप्त करेंगे तो वह क्षायिक समकित साथ में, सिद्ध में भी वह समकित साथ में है। तब मोक्ष पधारेंगे। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर श्रेणिक राजा। आहाहा!

क्षायिकसम्यक्त्व, केवलज्ञान,... सिद्ध भगवान को केवलज्ञान होता है। आठ गुण गिनना है न? **केवलदर्शन...** पूर्ण दर्शन, पूर्ण ज्ञान। पर्याय में, हों! शक्तिदेव में अलग, यह तो अवस्था पर्याय इतनी हुई है। आहाहा!

अनन्तवीर्य... भगवान को अनन्त बल प्रगट हुआ है। किसका? अनन्त गुण की पर्याय की निर्मलता रचने का। आहाहा! ऐसा अनन्त वीर्य प्रगट होता है।

एक व्यक्ति पूछता था कि वहाँ सिद्ध भगवान को इतनी शक्ति प्रगट हुई, वे क्या करते हैं ? मैंने कहा, किसी का कुछ नहीं करते। कौन था नहीं ? तेजी शाह, लो! तुम्हारे बढ़वाणवाला। तेजी शाह था और गुजर गया। तेजी शाह था बढ़वाणवाला। कोई पुत्र नहीं। एक पुत्री थी उसने क्रिश्चियन से विवाह किया है। वहाँ महान है, वहाँ मुम्बई में। एक लाख रुपये का कुछ।

मुमुक्षु : क्रिश्चियन के ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिश्चियन के साथ विवाह किया है। लड़की थी, उसने क्रिश्चियन के साथ विवाह किया है। उसकी मौजूदगी में। कुछ ठिकाना नहीं था। यहाँ आता था। उसने प्रश्न किया था हीराभाई के मकान में। कि सिद्ध भगवान क्या करते हैं ? मैंने कहा—सिद्ध भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान को अनुभव करते हैं। दूसरे का कुछ नहीं करते ? हम करते हैं ऐसे साधारण लोग। अरे! क्या धूल करते हो तुम ? क्या करे किसी का ? राग और द्वेष करते हो। यह ९२-९३ की बात है। हीराभाई के मकान की बात है। वे सब बनिया जैन में जन्मे, उन्हें भी कुछ भान नहीं होता। सिद्ध भगवान मानो कुछ करे। बहुत शक्ति प्रगट हुई न उनकी। अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है तो किसी का अच्छा कर दे। दु:खी को सुखी कर दे। धूल भी करते नहीं, कहा। यह करे किसका ? वे तो अपनी आनन्द की दशा पूर्ण, वीतरागदशा प्रगट हुई, उसे अनुभव करते हैं, बस। आहाहा! ऐसे-ऐसे तेजी शाह। बढ़वाणवाले हों तो पहिचाने तेजी शाह को, नहीं ? तुम्हारे तेजी शाह जानते हो या नहीं ?

किसी का करे, उसे सिद्ध ? कहा, नहीं। कुछ का नहीं करे। कोई प्राणी दु:खी मर जाता हो तो वे सिद्ध भगवान कुछ नहीं करते। बस! हम इतना कुछ कर देते हैं पाँच-पच्चीस लोगों का अच्छा और वे कुछ नहीं करे ? धूल भी करते नहीं, अभिमान है तुम्हारा। परद्रव्य का कौन करे ? स्वतन्त्र जगत की चीज़ है, वह उसकी अवस्था उससे होती है। उसमें तू उसका क्या कर दे ? सुखी कर दे, अमुक कर दे, ऐसा कर दे। मिथ्यात्व का अभिमान है कहा, भाई! उसे जँचता नहीं। यह सब सुधरे हुए पंक्तिवाले। नाम धरावे जैन स्थानकवासी। राणपर के थे। राणपर के थे न ? बढ़वाण के ? तेजी शाह।

मुमुक्षु : बढ़वाण।

पूज्य गुरुदेवश्री : बढवाण के नहीं?

भगवान को तो अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है, परन्तु वह अपने अनन्त गुण के सामर्थ्य का वीर्य, बाकी कुछ पर का हराम कुछ करे तो। यों ही यह आत्मा भी दूसरे का क्या कर सकता है? कुछ कर सकता है? शरीर, वाणी, मन, वह तो जड़ है। आहाहा! जड़ का क्या कर सकता है? दूसरे आत्मा का भला कर सके, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ। सूक्ष्म है। प्रभु को सूक्ष्मता प्रगट हुई है। सूक्ष्म है न?

अवगाहन... है। अपने में अवगाहन—रहे हुए हैं। **अगुरुलघु...** हैं। छोटा-बड़ा कुछ रहा नहीं। पूर्ण हो गया है। **अव्याबाध...** वेदनीय टल गया है।

इन आठ गुणों से मण्डित हैं, और जिसका अन्त नहीं ऐसा निरंजनदेव विशुद्धज्ञान दर्शन स्वभाव जो आत्मद्रव्य... आहाहा! परमात्मप्रकाश की अन्तिम गाथायें हैं न। **उससे विपरीत जो आर्त-रौद्र खोटे ध्यान...** क्या कहा? **आठ गुणों से मण्डित (सहित) हैं, और जिसका अन्त नहीं ऐसा निरंजनदेव विशुद्धज्ञान-दर्शन स्वभाव जो आत्मद्रव्य...** भगवान आत्मा तो विशुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वभाव से भरपूर। **उससे विपरीत जो आर्त-रौद्र खोटे ध्यान...** आहाहा! **उससे उत्पन्न हुए जो शुभ-अशुभकर्म...** आर्त और रौद्रध्यान से तो आर्त शुभ और अशुभकर्म होते हैं। आहाहा!

उनका स्वसंवेदनज्ञानरूप शुक्लध्यान से क्षय करके... लो! यह आर्तध्यान और रौद्रध्यान का स्वसंवेदन ज्ञानरूप। आहाहा! अपने आत्मा का ज्ञान स्व, अपना सं— प्रत्यक्ष वेदन। आनन्द और ज्ञान का वेदन करके जिन्होंने कर्म का क्षय किया है। कोई यह क्रियाकाण्ड करके, व्रत और नियम और अपवास करके कर्म क्षय हुए हैं, ऐसा नहीं है। यह तो सब पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! **स्वसंवेदनज्ञानरूप शुक्लध्यान...** शुक्लध्यान की व्याख्या की। स्वसंवेदनज्ञान। यह ज्ञानस्वरूप भगवान, उस ज्ञान का अन्तर वेदन, रागरहित ज्ञानस्वभाव का वेदन, प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन, ऐसे वेदन द्वारा उन्होंने कर्मों का नाश किया है। वह शुक्लध्यान द्वारा नाश किया है।

अक्षयपद पा लिया है। आहाहा! **कैसा है शुक्लध्यान? रागादि समस्त विकल्पों**

से रहित... राग, पुण्य, दया, दान के विकल्प भी जिसमें नहीं। ऐसा शुक्ल अर्थात् श्वेत अर्थात् उज्ज्वल, श्वेत रंग नहीं। उज्ज्वल अन्दर चैतन्य के प्रकाश के पूर की एकाग्रता। ऐसे उज्ज्वल ध्यान से। आहाहा! **अक्षयपद पा लिया है।** आहाहा! **परम निराकुलतारूप है।** आनन्दस्वरूप है वह शुक्लध्यान। **यही ध्यान मोक्ष का मूल है,...** लो! यह मोक्ष का कारण तो यह शुक्लध्यान है। **इसी से अनन्त सिद्ध हुए और होंगे।** इसी से अनन्त सिद्ध हुए और होंगे। कोई व्यवहार की क्रिया कर-करके हुआ है, मुक्त हुए हैं, ऐसा नहीं है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २०२

अथ–

३२५) अण्णु वि बंधु वि तिहुयणहँ सासय–सुक्ख–सहाउ।
तित्थु जि सयलु वि कालु जिय णिवसइ लद्ध–सहाउ।।२०२।।

अन्यदपि बन्धुरपि त्रिभुवनस्य शाश्वतसौख्यस्वभावः।
तत्रैव सकलमपि कालं जीव निवसति लब्धस्वभावः।।२०२।।

अण्णु वि इत्यादि। अण्णु वि अन्यदपि पुनरपि स पूर्वोक्तः सिद्धः। कथंभूतः। बंधु वि बन्धुरेव। कस्य। तिहुयणहं त्रिभुवनस्थभव्यजनस्य। पुनरपि किं विशिष्टः। सासय–सुक्ख–सहाउ रागादिरहितव्याबाधशाश्वतसुखस्वभावः। एवंगुणविशिष्टः सन्। किं करोति स भगवान्। तित्थु जि तत्रैव मोक्षपदे णिवसइ निवसति। कथंभूतः सन्। लद्ध–सहाउ लब्धशुद्धात्मस्वभावः कियत्कालं निवसति। सयलु वि कालु समस्तमप्यनन्तानन्तकालपर्यन्तं जिय हे जीव इति। अत्रानेन समस्तकालग्रहणेन विमुक्तं भवति। ये केचन वदन्ति मुक्तानां पुनरपि संसारे पतनं भवति तन्मतं निरस्तमिति भावार्थः।।२०२।।

आगे फिर भी सिद्धों की महिमा कहते हैं–

अहो सिद्ध भगवान बन्धु हैं त्रिभुवन के जानो हे जीव!
काल अनन्त वहीं रहते वे शाश्वत लब्ध स्वभावमयी।।२०२।।

अन्वयार्थः– [अन्यदपि] फिर वे सिद्धभगवान् [त्रिभुवनस्य] तीन लोक के प्राणियों का [बंधुरपि] हित करनेवाले हैं, [शाश्वतसुखस्वभावः] और जिनका स्वभाव अविनाशी सुख है, और [तत्रैव] उसी शुद्ध क्षेत्र में [लब्धस्वभावः] निजस्वभाव को पाकर [जीव] हे जीव, [सकलमपि कालं] सदा काल [निवसति] निवास करते हैं, फिर चतुर्गति में नहीं आवेंगे।

भावार्थः– सिद्धपरमेष्ठी तीन लोक के नाथ हैं, और जिनका भव्यजीव ध्यान करके भवसागर से पार होते हैं, इसलिये भव्यों के बंधु हैं, हितकारी हैं। जिनका रागादि रहित अव्याबाध अविनाशी सुख स्वभाव है। ऐसे अनन्त गुणरुप वे भगवान् उस मोक्ष पद में सदा काल विराजते हैं। जिन्होंने शुद्ध आत्मस्वभाव पा लिया है। अनन्त काल

बीत गये, और अनन्त काल आवेंगे, परंतु वे प्रभु सदाकाल सिद्धक्षेत्र में बस रहे हैं। समस्त काल रहते हैं, इसके कहने का प्रयोजन यह है, कि जो कोई ऐसा कहते हैं, कि मुक्त-जीवों का भी संसार में पतन होता है, सो उनका कहना खंडित किया गया।।२०२।।

वीर संवत् २५०२, वैशाख कृष्ण १३, रविवार
दिनांक- १५-०५-१९७७, गाथा - २०२-२०३, प्रवचन-२३९

परमात्मप्रकाश, २०२ गाथा। २०१ हो गयी। **आगे फिर भी सिद्धों की महिमा करते हैं।**

३२५) अण्णु वि बंधु वि तिहुयणहँ सासय-सुक्ख-सहाउ।
तित्थु जि सयलु वि कालु जिय णिवसइ लद्ध-सहाउ।।२०२।।

सिद्ध भगवान। सिद्ध जैसा आत्मा का स्वभाव है। शक्तिरूप से। सिद्ध को प्रगट है। इसलिए सिद्ध का ध्यान करके। आता है न पहली गाथा में? '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' समयसार की पहली गाथा में। सिद्ध हैं, वे प्रतिघात के स्थान में, हे प्रभु! तुम सिद्ध हो तो सामने से आवाज कि हे प्रभु! तुम सिद्ध हो। अन्दर उसका स्वभाव ही सिद्ध चैतन्य आनन्द, अतीन्द्रिय अपरिमित अनेक गुण की सम्पदा की लक्ष्मी से भरपूर पदार्थ तत्त्व है। जैसे सिद्ध को अनन्त लक्ष्मी सम्पदा पर्याय में प्रगट हुई है, ऐसा ही यह भगवान आत्मा अनन्त अपरिमित शक्तियों की लक्ष्मी का भण्डार है। यहाँ सिद्ध के गुण गाते हुए तू ऐसा है, ऐसा ध्यान कर, यह कहते हैं। आहाहा!

कैसे हैं? **फिर भी...** ऐसा कहते हैं न! पहले एक गाथा में आ गये हैं गुण। इसलिए **फिर भी वे सिद्धभगवान तीन लोक के प्राणियों का...** आहाहा! बन्धु हैं। तीन लोक के जीवों के बन्धु। पाठ में बन्धु शब्द है न! '**बंधुरपि**' ऐसा क्यों है? '**बंधुरपि**' अर्थात् बन्धु भी। यहाँ तो **हित करनेवाले हैं,...** '**बंधुरपि**' तीन लोक के प्राणी को भाई बन्धु जैसे हैं। '**रपि**' शब्द से बन्धु जैसे। भाई जैसे हैं। आहाहा! जो कोई सिद्ध भगवान को पहिचानकर अन्तर में अपने आत्मा को सिद्ध समान जो ध्याता है, उसे वे सिद्ध भगवान बन्धु समान हैं। आहाहा! भाई! जैसे काम में सहायता करे, सहायता; उसी

प्रकार भगवान तो उनका ध्यान करे, वे यह सहायता करते हैं। अपना स्वभाव आनन्द अपूर्ण नहीं, विकार भी नहीं। उसे कहाँ अपूर्णता है सिद्ध में? विकार भी कहाँ है? तो ऐसा जो स्वरूप था, वैसा उन्हें प्रगट हुआ। ऐसा जो भगवान आत्मा सिद्ध को बन्धु कहा। आहाहा! एक माता के उदर से जन्मे, उसे भाई कहते हैं। यह एक शक्ति से जन्मे हुए वे स्वयं हैं, ऐसी यह एक शक्ति अपनी, उससे उत्पन्न होने के योग्य आत्मा है। आहाहा! ऐसा भगवान है। आहाहा!

तीन लोक के प्राणियों का... इसका अर्थ यह है। वैसे तो एकेन्द्रिय को तो खबर भी नहीं। यहाँ तो जो प्राणी तीन लोक में वास्तविक सिद्धस्वरूप को जाननेवाले हैं, उन्हें वे बन्धु समान हैं। दूसरे सबको बन्धु समान, उसे खबर नहीं, इसलिए क्या करना? यहाँ तो तीन लोक के प्राणी सबको बन्धु समान कहा। निगोद के जीव को बन्धु समान कहा। उसे खबर नहीं तो क्या? यहाँ तो जिसे सिद्ध भगवान जिनकी पर्याय में एक समय की दशा में ज्ञान की एक समय की दशा में अनन्त गुण तो भिन्न रहे, अनन्त पर्याय भिन्न रही, एक समय की पर्याय में अपना द्रव्य, गुण और अनन्त पर्यायें और लोकालोक। एक समय की अवस्था में जाने, उसकी सामर्थ्य कितनी? उस एक समय की अवस्था का मूल कितना? आहाहा! जिसकी कीमत नहीं की जा सकती, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा!

एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में। यह कहते हैं, लो! सुख लेंगे। तीन लोक के प्राणी को वे तो बन्धु हैं। हितकर हैं। जो उसे हितकर होता है, उसे हितकर हैं। उन्हें पहिचानकर ऐसा ही मैं हूँ, वर्तमान में ऐसा कहा है न संसारी को सिद्ध समान कहा है न नियमसार में। सब संसारी सिद्ध समान हैं। कहीं पर्याय है सिद्ध को, वैसी इसे कहीं नहीं, परन्तु सिद्ध की शक्ति समान सब शक्ति समान है। इसलिए वस्तुरूप से सब सिद्ध समान है। सिद्ध को जैसे आठ गुण प्रगट हुए हैं, वैसा इसे प्रगट नहीं, परन्तु इसकी शक्ति में प्रगट होने की योग्यता है, ऐसा ही यह भगवान आत्मा है। आहाहा! उसकी क्या बात, भाई! अपनी अपने को कीमत नहीं। मैं कितना और कैसा हूँ? मेरी एक ज्ञान की दशा में भले श्रुतज्ञान की दशा हो, छह द्रव्य, उनके गुण, उनकी पर्यायें त्रिकाली अन्तरहित

और यह स्वयं भी अन्तरहित पर्यायवाला है। एक को—पूर्ण को न जाने तो तीन काल को तो कहाँ से जानेगा? क्योंकि एक स्वयं त्रिकाली है। ४८ (गाथा) में आता है न, प्रवचनसार। एक स्वयं ही अनादि-अनन्त, उसकी पर्यायें और गुण भी अनादि-अनन्त। पर्यायें प्रगटरूप से एक के बाद एक अनादि-अनन्त। गुण अनादि-अनन्त शक्तिरूप से, द्रव्य अनादि-अनन्त वस्तुरूप से। आहाहा! ऐसा जिसे भान होता है तो ऐसा कहते हैं कि मैं सिद्ध समान ही हूँ। पर्याय में भले न हो, परन्तु वस्तुरूप से हूँ तो पर्याय में प्रगट होगा ही। आहाहा!

मैं अल्पकाल में सिद्ध की नात का, जाति का, यह तो आ गया है अपने। जीव की जाति और जिनराज की जाति सब एक है। जाति में कुछ अन्तर नहीं। परन्तु उसका विश्वास आना भारी कठिन काम। आहाहा! जगत की सब चीज़ें ज्ञेय, उनकी विशेषतायें न भासित हो, जो ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य चीज़ें, उनकी विशेषता, आश्रयता, अधिकता न भासित हो, तब उसे आत्मा आनन्द से अधिक है, ऐसा भासित होता है। समझ में आया? आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड के द्रव्य, गुण और पर्यायें। विकृत या अविकृत, रूपवान या बिगड़े। सब चीजों की जिसे कुछ विशेषता ही नहीं लगती अथवा मेरी शक्ति से कोई अधिकवाली चीज़ है दुनिया में, कोई है ही नहीं। आहाहा! ऐसा मैं सिद्ध हूँ, ऐसा जिसे भान होता है, उसे सिद्ध भगवान बन्धु है। समझ में आया? आहाहा! और शाश्वत सुखस्वभाव है, लो। सुख प्रगट हुआ है सिद्ध भगवान को, वह आनन्द अतीन्द्रिय प्रगट हुआ है, वह शाश्वत् है भाव-पर्याय। यहाँ आनन्द है, वह गुणरूप से शाश्वत् है। आत्मा में। और सिद्ध को पर्याय प्रगट हुई है, वह प्रगटरूप से सादि-अनन्त शाश्वत् है। आहाहा! एक बात।

और जिनका स्वभाव अविनाशी सुख है, और... 'तत्रैव' अब क्षेत्र कहते हैं, क्षेत्र। वह भाव लिया। **'तत्रैव' 'तित्थु'** है न? **'तित्थु'** पाठ में **'तित्थु'** शब्द है। **'तित्थु'** अर्थात् **'तत्रैव'**। **'तत्रैव'** अर्थात् जिस क्षेत्र में है, वह क्षेत्र। आहाहा! **उसी शुद्ध क्षेत्र में...** सिद्ध भगवान शुद्ध क्षेत्र में रहते हैं। स्वयं अपना शुद्ध क्षेत्र हुआ है न, उसमें रहते हैं। जहाँ सिद्ध है, वहाँ तो निगोद भी है। सिद्ध भगवान जहाँ रहते हैं, वहाँ निगोद भी है। है

न? अनन्त निगोद है वहाँ। निगोद अपने दुःख को अनुभव करता है। सिद्ध अपने आनन्द को अनुभव करते हैं। क्षेत्र एक है। आहाहा! दोनों के भाव भिन्न हैं। एक क्षेत्र में निगोद के जीव अनन्त पड़े हैं वहाँ। आहाहा! सिद्ध की संख्या से अनन्तगुणे जीव उनके-सिद्ध के क्षेत्र में रहे हैं। उससे क्या? आहाहा!

यह तो कहते हैं कि **उसी शुद्ध क्षेत्र में...** उनके असंख्य प्रदेश जो शुद्ध निर्मल हुए हैं, उस क्षेत्र में वे हैं। उन्हें वह सिद्धक्षेत्र तब कहलाता है। समझ में आया? आहाहा! जिसका भाव शाश्वत् सुख और जिसका क्षेत्र शुद्ध। असंख्य प्रदेश क्षेत्र है, वह पवित्र पूर्ण प्रगट हो गये हैं पर्याय में। ऐसे उस शुद्ध क्षेत्र में भगवान विराजते हैं। ऐसा यह भगवान आत्मा भी असंख्य प्रदेशी शुद्ध है, वहाँ उसका निवास है। रागादि में वह कहीं आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सोनगढ़ में रहता है, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ में कहाँ रहता है? शरीर में भी कहाँ रहता है? कर्म में भी कहाँ रहता है? राग में भी कहाँ रहता है? असंख्य शुद्ध क्षेत्र प्रदेश है अपने। ऐसा कहा न वहाँ शुद्धक्षेत्र। शुद्धक्षेत्र वह सिद्ध है स्वयं। वहाँ तो निगोद के जीव भी हैं। तथापि सिद्धक्षेत्र को शुद्ध कहना, वह उनकी अपने असंख्य प्रदेश की निर्मलता के क्षेत्र में रहा, इस अपेक्षा से कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा भले यहाँ मनुष्यगति में दिखाई दे, शरीर में, ऐसे संयोग से वह तो है। गति तो अभी उसकी पर्याय में है। शरीर तो संयोग में है। विकारी भाव भी वहाँ संयोग में है। स्वभाव में नहीं। परन्तु उसका स्वभाव असंख्य प्रदेशी शुद्ध है। उस क्षेत्र में आत्मा रहा हुआ है। भगवान उस शुद्ध क्षेत्र में रहे हैं, यह भी शुद्ध क्षेत्र में रहा है। आहाहा! यह क्षेत्र कहा। '**तत्रैव**' है न '**तित्थु**' '**तित्थु**' अर्थात् '**तत्रैव**' वहाँ। वहाँ।

अब '**लब्धस्वभावः**' जितनी शक्तियाँ हैं, वे सब लब्ध—प्राप्त हो गयी है। लब्ध स्वभाव। शक्ति जो थी अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि पूर्ण, वे सभी शक्तियाँ लब्ध, प्राप्त हो गयी हैं। सब लब्धि हो गयी है सब। लब्ध की लब्धि हो गयी है। थी, उसकी प्राप्ति हो गयी है पूरी परमात्मा को। आहाहा! **निज स्वभाव को पाकर हे जीव...** जीव

शब्द पड़ा है न? अब कहते हैं कि वह सदाकाल रहता है वापस, ऐसा। भाव लिया, क्षेत्र लिया और अब काल। आहाहा! सिद्ध भगवान, उनका भाव सदा सुखरूप है। उनका क्षेत्र असंख्य प्रदेशी शुद्ध क्षेत्र में वे रहते हैं। और काल—सदाकाल वहाँ है। वे दूसरे कितने ही कहे, अमुक भक्तों को कष्ट, इसलिए मोक्ष में से भी वापस अवतार धारण करते हैं। ऐसा नहीं है। वह सदाकाल। आहाहा! जब से दशा प्रगट हुई, वह सदाकाल। यह आत्मा प्रगट हुआ तब प्रगटेगा तब होगा। परन्तु वस्तुरूप से त्रिकाल सदाकाल स्वभाव में भरपूर है। आहाहा!

काल के भी दो भेद किये हैं न! भगवान आत्मा, वह त्रिकाल जो शुद्ध क्षेत्र है, त्रिकाल शुद्धकाल है, वह स्वकाल है और उसकी निर्मल पर्याय का वर्तमान काल है, वह परकाल है। क्योंकि एक समय की स्थिति है। आहाहा! उसका जो क्षेत्र स्वयं है, शुद्ध और उसका जो काल है, वह त्रिकाल है। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव। उसमें स्वकाल उसे लिया जाता है कि त्रिकाली वस्तु जो है, वह स्वकाल है। आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द, ज्ञान, शान्ति, अनन्त ईश्वरता की शक्तियों का पिण्ड प्रभु, वह उसका त्रिकाल है, वह उसका स्वकाल है। और एक समय की उसकी निर्मलपर्याय है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से उसे परकाल कहते हैं। सिद्ध भगवान सदा स्वकाल में रहते हैं, ऐसा कहते हैं। वह तो भले एक समय की पर्याय, परन्तु वह त्रिकाल स्वकाल में ही है वह तो। जैसा त्रिकाल में है, वैसी पर्याय प्रगट हो गयी है। आहाहा!

यह तो सिद्ध को इस प्रकार पहिचानना पड़ेगा। णमो अरिहंताणं और णमो सिद्धाणं रट जाता है ऐसा का ऐसा। आहाहा! सिद्ध अर्थात् क्या? परमात्मशक्ति से जितनी शक्तियाँ थी, वे सब जिन्हें व्यक्त हो गयी हैं। यह आता है न रहस्यपूर्ण चिट्ठी में। चौथे गुणस्थान में एकदेश ज्ञानादि प्रगट हुए हैं। क्या कहा? सम्यग्दर्शन में पूर्ण वस्तु है, उसकी प्रतीति अनुभव होने पर जितनी शक्तियाँ हैं, उसकी एकदेश व्यक्त-प्रगट हुई है और सिद्धों को सर्वदेश प्रगट हो गया है। पूर्ण प्रत्येक पर्याय प्रत्येक पूर्ण हो गयी है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ सम्यग्दर्शन में सर्वगुणांश वह समकित। यह श्रीमद् का वाक्य है। यह

रहस्यपूर्ण चिट्ठी का यह वाक्य है। टोडरमलजी। मोक्षमार्गप्रकाशक में अपने प्रकाशित हो गया है। वह जितना शक्ति का संग्रह है आत्मा में, उन सब शक्तियों को जहाँ द्रव्यरूप से प्रतीति की, वह वस्तु यह है, ऐसी है, यह है। ऐसी जहाँ प्रतीति ज्ञान की पर्याय में उस वस्तु को ज्ञेय बनाकर, जानकर प्रतीति की। जाने बिना किसकी प्रतीति? समझ में आया? आहाहा! ऐसी प्रतीति हुई कि जिसमें अनन्तगुणों की जितनी संख्या है, उन सब गुणों का एक अंश व्यक्त प्रगट हो गया। आहाहा! वीर्य प्रगट हुआ स्वरूप का ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि शक्तियाँ थीं, वे उसकी सब पर्याय एक अंश आ गयी। आहाहा!

सिद्ध भगवान को, उसमें है रहस्यपूर्ण चिट्ठी में। केवलज्ञानी को सभी पर्यायें पूर्ण प्रगट हो गयी। यह एकदेश प्रगट हुआ है। वह साधक है। परन्तु वह साधक भी अपने स्वभाव को सिद्ध समान जानता है। समझ में आया? यह दूसरा प्रकार है, पूंजाभाई! तुम्हारे नैरोबी की जाति नहीं। वहाँ तो पैसा मिले कमावे और... आहाहा! भगवान आत्मा जैसे क्षेत्र में (खेत में) जब एकदम हरे वृक्ष होते हैं न, पाक-पाक होता है तब। कपास पके या इत्यादि, तिल, बाजरा एकदम हरा ऐसा। २५-२५ कितने क्षेत्र होते हैं। सेठ! है न अपने एक कृषिकार, कृषिपण्डित। कौन सा गाँव? खुरई, खुरई। खुरई में कृषिपण्डित। कृषिपण्डित क्या कहा? करोड़ोंपति सेठिया है। बहुत करोड़ोंपति। घर में बड़े बँगले और बड़े। वहाँ उतरे थे न, गये थे तो। नरम व्यक्ति है। उनकी बहू तो यहाँ आती है, बेचारी बहू। १५-१५ दिन, महीना रहे, परन्तु कुछ खबर नहीं पड़ती कि है या नहीं। बहुत सादा। बहुत करोड़ोंपति है। कितनी जमीन है, इतनी जमीन है, राज इतनी जमीन। पुत्र नहीं है। पति-पत्नी दो हैं। इतनी जमीन कहे, दस-दस लाख रुपये का तो कपास पकता है, इतने गेहूँ पकते हैं, इतना बाजरा पकता है, इतने... आहाहा! उसके खेत जब हो, वह दो-पाँच बीघा न हो, पचास, सौ बीघा, बड़े दो सौ बीघा, पाँच सौ बीघा, हजार बीघा। एकदम हरा हो गया हो ऐसे। परन्तु यह भगवान असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण जहाँ प्रगटे, वहाँ हरा-भरा हो जाता है। रायचन्दभाई! यह तुम्हारे किसान का दृष्टान्त दिया। हरा-भरा अंकुर फूटे न अन्दर से? आहाहा! पहली बरसात में अंकुर फूटे, फिर पूरा हो। पहले सम्यग्दर्शन होने पर अंकुर फूटे। आहाहा! सिद्ध भगवान के

साथ मिलाते हैं न अन्दर ? तब अंकुर फूटे। अनन्त जितने गुण हैं, उनके अंश प्रगटे और जब पूरा क्षेत्र पक जाये, जब बाजरे के डुंडा बड़े इतने-इतने होते हैं।

वह खेत नहीं, कैसा ? अलियाबाणा। अलियाबाणा न ? अलियाबाणा। वहाँ ऐसी जमीन है और ऐसे डुंडे पकते हैं बाजरा के। इतने-इतने डुंडे और उसका क्या कहलाता है वह ? सब लकड़ी है न लकड़ी उसकी हो न अन्दर की डण्ठल। डण्ठल बहुत छोटा। इतना ही डण्ठल हो सामने खाली। खुल्ली-खुल्ला इतना। और इतना अकेला बाजरा से भरा हुआ। अलियाबारा में है। बहुत पाक, बहुत पाक है वहाँ। वहाँ एक बार गये थे न जामनगर से आये तब स्पेशल (गये थे)। इतना बाजरा ऐसा पके। ओहोहो! डण्ठल छोटा और बाजरा बड़ा। बाजरा का ढ़ेर ऐसा अन्दर। उसी प्रकार यह क्षेत्र छोटा और गुण बड़े। क्षेत्र इतना है। अरे! उसका कहाँ ? एक निगोद का, लो न! आहाहा! उन सबका विश्वास, अस्ति विश्वास आना चाहिए, भाई! यह अद्धर से बात होती है, ऐसा नहीं। उसका विश्वास। आहाहा! वह निगोद के जीव भी असंख्य शरीर में एक-एक में अनन्त आत्मायें। वह पूरी शक्ति का भण्डार भगवान है। जिनराज की जाति है वह स्वयं। आहाहा! उसका भान होने पर उसे अंकुर फूटे पहला। पहली बरसात में अंकुर फूटे। तुरन्त पहली बरसात में सीधे वृक्ष नहीं होते। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुण की राशि-राशि अनन्त गुण का भर, अनन्त गुण का भरोटुं, ऐसा जहाँ अन्तर्मुख सिद्ध जैसा हूँ, ऐसा भान होने पर, पर्याय में अनन्त गुण के अंकुर फूटते हैं। आहाहा! और आगे बढ़कर तो फिर पूर्ण हो जाये। दूज उगे तो पूर्णिमा हुए बिना रहती ही नहीं। आहाहा!

जिसने ऐसे सिद्ध भगवान... तीन बोल आये। एक तो उनके गुण की भाव की दशा, और त्रिभुवन प्राणी को बन्धुरूप से और वे अपने शुद्ध क्षेत्र में रहे हैं और तीसरा, तीनों काल त्रिकाल उसमें निवास करते हैं। वे तीनों काल भगवान अपनी पर्याय में निवास है, अपने को जो दशा प्रगट हुई है सिद्ध भगवान। णमो सिद्धाणं। ऐसे तो सौ बोल से जाये, परन्तु किसे खबर नहीं कुछ। क्या शक्ति और क्या गुण और क्या व्यक्तता ? निवृत्ति नहीं मिलती इस दुनिया के धर्म / पाप के कारण। बराबर है ? आहाहा!

अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु सिद्ध समान वस्तु है यह। उसे जहाँ प्राप्त करने जाता

है, वहाँ एकाग्र हो जाता है, ऐसा कहते हैं। और एकाग्र होने पर उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। उसमें अंकुर फूटता है, आनन्द का अंकुर फूटता है। आहाहा! तब तो उसे धर्म की शुरुआत कहने में आती है। फिर जहाँ पूरा-पूरा पक जाये... आहाहा! क्षेत्र। हजार, हजार, दो-दो हजार बीघा जमीन होती है न जमींदारों को।

उसे बहुत जमीन, बड़ी जमीन, बड़ा राजा है। खुरई। खुरई। यहाँ आये हैं, नहीं? आये थे या नहीं? यहाँ आ गये हैं। बड़े राजा जैसा। इतनी जमीन और इतना पाक। घर के बड़े-बड़े तो पाँच-पाँच, दस लाख के तो मन्दिर, बड़े रहने के मकान, परन्तु इस वस्तु में कुछ खबर नहीं होती। ऐसे प्रेम बताता है प्रेम। यह वस्तु क्या है, बापू! इसके बिना सब थोथा। यह अरबोंपति हो या बड़े राजा हो, वे मरकर पशु में जानेवाले साधारण मनुष्य है न! माँस और मदिरा खाते (पीते) न हों, बनिया को यह न हो। तब धर्म का भान नहीं होता धर्म क्या कहना उसे? आहाहा! और ऐसी बातें सुनने का समय नहीं मिले। ऐसा दो-चार घण्टे सुने तो उसे पुण्य तो हो। आहाहा!

धर्म तो दूसरी चीज़ है, प्रभु! धर्म तो कोई अलौकिक वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव (द्वारा कथित) वह चीज़ धर्म तो अलौकिक है। धर्म प्रगटे उसे तो आनन्द का अंकुर प्रगट हुआ, और उसे अब थोड़े काल में पूर्ण पाक हो जायेगा। सिद्ध के साथ जिसे मिलान किया भगवान आत्मा को। आहाहा! उनकी जाति का मैं हूँ। सिद्ध की जाति का मैं भी हूँ। आहाहा! कैसे जँचे? आहाहा! दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब भाई को तुरन्त काम हो। मस्तिष्क में तुरन्त हो। डेढ़ पाव सेर पानी का प्याला—चाय पीकर आवे तो दिमाग ठिकाने रहे सुनने में। वरना दिमाग काम नहीं करता, ऐसे तो अपलक्षण। अब उसे ऐसी बातें करना, प्रभु! तू आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द है, नाथ! तू कौन है, तुझे खबर नहीं, बापू!

यहाँ सिद्ध के साथ मिलाया है न यह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। आहाहा! समझ में आया? यह तो निवास भगवान सिद्ध परमात्मा अपनी दशा के काल में तीनों काल निवास करते हैं। अपने क्षेत्र में निवास करते हैं, अपने भाव में और अपने काल में। आहाहा! सिद्ध तो स्वयं वस्तु। आहाहा!

फिर चतुर्गति में नहीं आवेंगे। वे भगवान परमात्मा सिद्ध हुए, वह फिर से अवतार उन्हें नहीं होगा। उन्हें जन्म-मरण नहीं होते। कि भाई! बहुत जैनधर्म को नुकसान पहुँचानेवाले जगे हैं या विरोध करनेवाले (जगे हैं) इसलिए लाओ न, अवतार लूँ, ऐसा वहाँ नहीं होता। वह तो पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण आनन्द का अनुभव करे, दुनिया में हलचल चाहे जो होओ, वह तो पहले से जानने में है। आहाहा! वे सिद्ध भगवान **चतुर्गति में नहीं आवेंगे।** फिर से अवतार नहीं धारण करेंगे, उन्हें मनुष्यपना नहीं होगा। आहाहा! अन्यमति कहते हैं न कि बसन्तभाई! 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि भवति भारतः' धर्म में ग्लानि हो, तब अवतार धारण करे। उसका यहाँ निषेध है। आहाहा!

भावार्थः—सिद्ध परमेष्ठी तीन लोक के नाथ हैं,... आहाहा! नाथ का अर्थ? जो उसे पहिचाने, उसकी गुण की पर्याय की तो रक्षा होती है और नहीं पर्याय प्राप्त हुई, उसे प्राप्त करे, वह उसके सिद्ध जैसा ध्यान करे तो। समझ में आया? इस प्रकार तीन लोक के नाथ हैं। **जिनका भव्य जीव ध्यान करके...** देखा! आहाहा! भव्य जीव, परन्तु योग्य जीव। आहाहा! अलायक, अभव्यजीव आदि उनका ध्यान नहीं कर सकते। आहाहा! ऐसी पूर्ण पवित्रता जिसे प्रगट हुई परमात्मा सिद्ध भगवान, और वह पवित्रता सादि-अनन्त काल रहनेवाली है, फिर से अवतार नहीं है। ऐसे सिद्ध भगवान **भव्य जीव ध्यान करके भवसागर से पार होते हैं,...** आहाहा!

वह दृष्टान्त दिया नहीं था कुछ? पानी में पवन भरा हुआ हो वह। आता है। पवन भरा हुआ हो न, क्या कहलाता है तुम्हारे ऊपर का? मशक पानी भरे, वह आता है दृष्टान्त कहीं। पानी के ऊपर तिरे वे। अन्दर डूबे नहीं। दृष्टान्त है। भक्ति में कहीं दृष्टान्त है। है भक्ति में है। हे नाथ! पानी के ऊपर जैसे वह पवन से भरी हुई वह होती है, वह डूबती नहीं। इसी प्रकार हे नाथ! आपका ध्यान करे वह डूबता नहीं, वह चौरासी के अवतार में नहीं जाता। यह आता है उसमें। भक्ति में कहीं आता है। आहाहा! नाम क्या उसका कहा जाता है वह पानी भरा हुआ ऊपर। मचक। मचक न? मशक। हाँ, वह मशक... मशक। पानी भरी हुई मशक, वह डूबती नहीं। आहाहा! वह ऊपर-ऊपर ऐसे तैरती जाती है। इसी प्रकार जिसे वास्तविक सिद्ध भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ जिसके

ज्ञान में आते हैं, वह तैरता जाता है। वह डूबता नहीं, उसे भवभ्रमण होता नहीं। आहाहा! हसमुखभाई! यह ऐसी बातें हैं। सवेरे पूछा था लड़के को कि आप निवृत्त होकर आये? कि हाँ, अभी निवृत्ति ली है मेरे पिता ने। निवृत्ति में यहाँ रह जाते हैं। भाईयों को सौंप दिया है। उसमें तो यह करने का है। अब वह पाप कर-करके तो... आहाहा!

कहते हैं, भव्य जीव, योग्य जीव है वह। आहाहा! उनका ध्यान करके परमात्मा सिद्ध भगवान को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से पहिचानकर और उनके जैसा मैं हूँ, ऐसा अन्तर में ध्यान करे, वह भवसागर से तिर जाता है। यह चौरासी के अवतार। यह मर गया चौरासी के अवतार कर-करके। कीड़ा के, कौवे के, कुत्ते के, मनुष्य का भव तो कभी मिले अनन्त काल में। बाकी तो कीड़ा, कौआ, कुत्ता नरक। आहाहा! यह दुनिया भी वापस कैसे नाम दे? कुत्ता पार उतरे और वह ऐसा कहे। कुत्ता पार उतरे, ठीक! मेरे बड़ा कहा यह गजब। और उस कौवे को कागऋषि कहे। पूरण डाले न पूरण? उसे कागऋषि कहे। पोपट को पोपटराणा कहे, पोपट को राणी कहे। पोपटराणा! यह कहीं पोपटराणा नहीं दूसरा नाम उसका। कैसा नाम है बड़ा। ऐसा नाम दे। पोपट को इस प्रकार से बुलावे। आहाहा! सब भिखारी है, ढोर के अवतार। कुत्ते के और ऐसे अवतार करके, बापू! अनन्त अवतार किये हैं। वह यह यदि आत्मज्ञान नहीं करे और धर्म नहीं करे तो यह वापस वहीं का वहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भवसागर तिर जायेगा। जिसने सिद्ध का ध्यान किया, आहाहा! उसे भवसागर नहीं होता। **इसलिए भव्यों के बन्धु हैं,...** ऐसा। बन्धु कहा न, उसकी व्याख्या की। इस कारण से भव्य के बन्धु कहलाते हैं। उसका ध्यान करके आनन्दस्वरूप पूर्ण हूँ, शान्ति का सागर हूँ, दुःख के अभावस्वभावरूप हूँ, सुख के पूर से भरपूर महा समुद्र हूँ। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का सागर हूँ। ऐसा जिसने आत्मा को ध्यान में लिया। आहाहा! उसे यह भगवान बन्धु कहलाते हैं सिद्ध भगवान। लो, ठीक! यह हितकारी है। आहाहा!

जिनका रागादि रहित अव्याबाध अविनाशी सुख स्वभाव है। सिद्ध भगवान का तो राग, पुण्य, विकल्प, आहाहा! दया, दान, व्रत, तप और भक्ति, वह तो शुभराग है।

उस रागरहित परमात्मा है। सिद्ध को राग नहीं। उसी प्रकार यहाँ भी आत्मा का स्वभाव राग नहीं। वह राग आवे, वह तो बन्ध का कारण है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण भाव, वह सब राग है—विकल्प है, तो यहाँ कहते हैं कि रागादि रहित भगवान—सिद्ध है। यह गुण हो, तब तो साथ में रहना चाहिए। ये (रागादि) तो दोष है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का वह तो विकल्प है, राग है। रागादि से तो भगवान रहित हो गये हैं। गुण हो, तब तो साथ में रहना चाहिए। वह तो दोष था, छूट गया। आहाहा! ऐसा पहले इसे श्रद्धा में निर्णय करना पड़ेगा। जितना दया, दान, व्रत, परिणाम, काम, क्रोध के परिणाम तो पाप ही है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी पुण्य और दोष है। आहाहा! इसलिए रागादिरहित स्थित हो गये हैं।

अव्याबाध अविनाशी सुखस्वभाव। आहाहा! जिसका अव्याबाध, जिसे कोई विघ्न नहीं अब। प्रभु को इतना सुख प्रगट हुआ। अविनाशी—नाश न हो, ऐसा सुख स्वभाव जिन्हें है। आहाहा! ऐसा ही मेरा नाथ आत्मा है। ऐसा जिसने आत्मा में अन्दर में ध्यान करे, उसे मुक्ति हुए बिना नहीं रहती, धर्म हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! ऐसा है। यह लोग शोर मचाये न! यह यहाँ उत्थापित हो जाता है, यह सब व्यवहार (उड़ जाता है), परन्तु बापू! व्यवहार यदि हो आत्मा का तो सिद्ध में रहना चाहिए। दया, दान, भक्ति, पूजा, पाप से बचने के लिये आवे सही। ज्ञानी को भी आता है, परन्तु वह कहीं धर्म नहीं। वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं। आत्मा का स्वभाव हो तो सिद्ध में रहना चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था? आये बिना रहेगा नहीं। जिस काल में वह भाव आवे, वह आये बिना रहता नहीं। परन्तु है बन्ध का कारण, ऐसा इसे जानना चाहिए। आहाहा! बहुत अन्तर, मार्ग का बहुत अन्तर।

यहाँ तो कहते हैं, **रागादि रहित अव्याबाध अविनाशी सुख स्वभाव है। ऐसे अनन्त गुणरूप भगवान,...** ऐसे अनन्त गुण। गुण अर्थात् पर्याय मूल तो। **उस मोक्षपद में सदा काल विराजते हैं।** आहाहा! सिद्ध भगवान तो जहाँ से सिद्ध हुए, वहाँ से तो

अनन्त काल.... अनन्त काल.... अनन्त काल.... अनन्त काल.... अपनी दशा आनन्द में रहती है वहाँ। आहाहा! आत्मभान से तो संसार का अन्त हुआ, परन्तु मोक्ष की सादि हुई, परन्तु अन्त नहीं अब। ऐसी आनन्ददशा जिसे प्रगट होती है। अनन्त काल, अनन्त काल। काल का कहीं छोर है कि अब भविष्यकाल नहीं रहे? इतना भविष्यकाल में भगवान सिद्ध परमात्मा आनन्द में सुख में रहेंगे। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह कहते हैं। **विराजते हैं।**

जिन्होंने शुद्ध आत्मस्वभाव पा लिया है। जिसने भगवान आत्मा का स्वभाव पवित्र आनन्द शुद्ध है, वह प्रगट किया। **पा लिया है।** अर्थात् पाया। **अनन्त काल बीत गये,...** अनन्त काल गया, तथापि सिद्ध भगवान तो अपने आनन्द में ही है। **अनन्त काल आवेंगे,...** आहाहा! **परन्तु वे प्रभु सदाकाल सिद्धक्षेत्र में बस रहे हैं। 'तित्थु'** कहा था न? **'तित्थु'** अर्थात् **'तत्रैव'** वहाँ। **सदाकाल सिद्धक्षेत्र में बस रहे हैं।** आहाहा! समस्त काल रहते हैं। परमात्मा आत्मा का ध्यान करके ध्यान से मोक्षपद जो प्राप्त हुआ, वह सिद्धपना तो सदाकाल वहाँ रहता है।

इसके कहने का प्रयोजन यह है कि कोई ऐसा कहते हैं कि मुक्त-जीवों का भी संसार में पतन होता है,... मोक्ष होने के बाद भी कोई प्राणी अवतार धारण करे, ऐसा कहते हैं, वह खोटी बात है। चना सिक जाने के बाद वह चना उगता नहीं। कच्चा चना उगता है। पक्का चना मिठास दे, तुराश जाये, बोने से उगे नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप का भान करे और अज्ञान को टाले और पूर्ण सुख की प्राप्ति करे, उसे आनन्द की मिठास आवे, कचास का अज्ञान टले, अवतार धारण करे नहीं। आहाहा! कच्चा चना, चना नहीं चना? तुराश दे, मिठास है अन्दर। चने में मिठास है। सेंकने से मिठास कहाँ से आती है? अग्नि से आती है? लकड़ी को सेके, कोयला को सेके न आवे? तो वह चने में मिठास है। वह मिठास बाहर आती है, भूँगड़ा भूँगड़ा होता है न मीठा। कचास टले, मिठास आवे, बोने से उगे नहीं। कच्चा चना मिठास दे नहीं, तुराश दे, बोने से उगे। इसी प्रकार जिसे स्वरूप का भान नहीं, ऐसे अज्ञानी आनन्द की मिठास नहीं, दुःख में पड़े हैं और चार गति में उगते हैं अर्थात् अवतार धारण करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुक्त-जीवों का भी संसार में पतन होता है,... फिर से और अवतार धारण करते हैं। यहाँ सब जीव समाप्त हो जायें, फिर करना क्या? परन्तु जीव इतने हैं कि कम नहीं होते। भूतकाल के समय से जीव की संख्या अनन्तगुणी है। भूतकाल है न भूतकाल? उसके समय लें 'क' में असंख्य समय। उसके जो समय हैं भूतकाल के, उससे अनन्तगुणे जीव हैं। तो भूतकाल कभी भविष्य हो जायेगा? भूतकाल... भूतकाल... भूतकाल... भूतकाल... रहेगा और अनन्तगुणा अनन्तगुणा जीव रहेंगे। चाहे जितने मोक्ष जायें तो अनन्तगुणे जीव संसार में भटकते रहेंगे। आहाहा!

सो उनका कहना खण्डित किया गया। लो!

गाथा - २०३

अथ-

३२६) जम्मण-मरण-विवज्जियउ चउ-गइ-दुक्ख विमुक्कु।
केवल-दंसण-णाणमउ णंदइ तित्थु जि मुक्कु।।२०३।।

जन्ममरणविवर्जितः चतुर्गतिदुःखविमुक्तः।
केवलदर्शनज्ञानमयः नन्दति तत्रैव मुक्तः।।२०३।।

पुनरपि कथंभूतः स भगवान्। जम्मण-मरण-विवज्जियउ जन्ममरणविवर्जितः। पुनरपि किंविशिष्टः। चउ-गइ-दुक्ख विमुक्कु सहजशुद्धपरमानन्दैकस्वभावं यदात्मसुखं तस्माद्विपरीतं यच्चतुर्गतिदुःखंतेनविमुक्तोरहितः। पुनरपि किंस्वरुपः। केवल-दंसण-णाणमउ क्रमकरण-व्यवधानरहितत्वेन जगत्रयकालत्रयवर्तिपदार्थानां प्रकाशकेवलदर्शनज्ञानाभ्यां निर्वृतः केवल-दर्शनज्ञानमयः। एवंगुणविशिष्टः सन् किं करोति। णंदइ स्वकीयस्वाभाविकानन्तज्ञानादिगुणैः सह नन्दति वृद्धिं गच्छति। क्व। तित्थु जि तत्रैव मोक्षपदे। पुनरपि किंविशिष्टः सन्। मुक्कु ज्ञानावरणाघष्टकर्मनिर्मुक्तो रहितः अव्याबाधा- घनन्तगुणैः सहितश्चेति भावार्थः।।२०३।। एवं चतुर्विंशतिसूत्र प्रमितमहास्थलमध्ये सिद्धपरमेष्ठिव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रत्रयेण चतुर्थमन्तर-स्थलं गतम्।

आगे फिर भी सिद्धों का ही वर्णन करते हैं-

जन्म मरण से रहित चतुर्गति दुख से वे परिमुक्त हुए।
केवलज्ञान और दर्शनमय मुक्तजीव सुखमय रहते।।२०३।।

अन्वयार्थः- [जन्ममरणविवर्जितः] वे भगवान् सिद्धपरमेष्ठी जन्म और मरणकर रहित हैं, [चतुर्गतिदुःखविमुक्तः] चारों गतियों के दुःखों से रहित हैं, [केवलदर्शनज्ञानमयः] और केवलदर्शन केवलज्ञानमयी हैं, ऐसे [मुक्तः] कर्म रहित हुए [तत्रैव] अनंतकाल तक उसी सिद्धक्षेत्र में [नंदति] अपने स्वभाव में आनंदरुप विराजते हैं।

भावार्थः- सहज शुद्ध परमानंद एक अखंड स्वभावरुप जो आत्मसुख उससे विपरीत जो चतुर्गति के दुःख उनसे रहित हैं, जन्म-मरणरुपरोगों से रहित हैं, अविनश्वरपुर में सदा काल रहते हैं। जिनका ज्ञान संसारी जीवों की तरह विचाररुप नहीं है, कि किसी

को पहले जानें, किसी को पीछे जानें, उनका केवलज्ञान और केवलदर्शन एक ही समय में सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल, और सब भावों को जानता है। लोकालोक प्रकाशी आत्मा निज भाव अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्यमयी है। ऐसे अनेक गुणों के सागर भगवान् सिद्धपरमेष्ठी स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावरुप चतुष्टय में निवास करते हुए सदा आनंदरुप लोक के शिखर पर विराज रहे हैं, जिसका कभी अंत नहीं, उसी सिद्धपद में सदा काल विराजते हैं, केवलज्ञान दर्शन कर घट-घट में व्यापक हैं। सकल कर्मोपाधि रहित महा निरुपाधि निराबाधपना आदि अनंतगुणों सहित मोक्ष में आनंद विलास करते हैं।।२०३।।

इस तरह चौबीस दोहोंवाले महास्थल में सिद्धपरमेष्ठी के व्याख्यान की मुख्यताकर तीन दोहों में चौथा अंतरस्थल कहा।

गाथा-२०३ पर प्रवचन

आगे फिर भी सिद्धों का ही वर्णन करते हैं— अन्तिम गाथायें हैं न! परमात्मप्रकाश का वर्णन है।

३२६) जम्मण-मरण-विवज्जियउ चउ-गइ-दुक्ख विमुक्कु।
केवल-दंसण-णाणमउ णंदइ तित्थु जि मुक्कु।।२०३।।

'**जन्ममरणविवर्जितः**' सिद्ध भगवान **सिद्ध परमेष्ठी जन्म और मरणकर रहित हैं,...** इसी प्रकार इस भगवान आत्मा का स्वभाव भी जन्म-मरणरहित है। उसका स्वभाव ऐसा है। भगवान को प्रगट हुआ है, इसे ऐसा स्वभाव है। आहाहा! '**चतुर्गतिदुःखविमुक्तः**' **चारों गतियों के दुःखों से रहित हैं,...** यहाँ तो देवगति को दुःख में डाला है। चार गतियाँ कही न? मनुष्य को दुःख में बड़े अरबोंपति, करोड़ोंपति हों, वे सब दुःखी है, चतुर्गति डाली है न? कहीं ढोर और नरक दो दुःखी है और मनुष्य तथा स्वर्ग सुखी है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब दुःखी ही है, अकेले धूल के। क्या कहा?

'**चतुर्गतिदुःखविमुक्तः**' है। **चारों गतियों के दुःखों से...** सिद्ध भगवान रहित है। इसका अर्थ कि चारों ही गति में दुःख है। भले सर्वार्थसिद्धि का भव हो, परन्तु वहाँ राग है, वह दुःख है। अभी राग है या नहीं? एकावतारी है, क्षायिक समकिती है, परन्तु अभी जितना राग, उतना उसे अभी दुःख है। आहाहा! समकिती, क्षायिक समकिती। आहाहा! तीर्थंकर भगवान लो, यह श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती नरक में हैं। वहाँ से तीर्थंकर होनेवाले हैं। वर्तमान भी वहाँ जितना राग है, वह दुःख है। आहाहा! क्षायिक समकिती है। अभी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है। ढाई हजार वर्ष गये हैं, तथापि अभी राग है, उतना दुःख है। इस गति में दुःख ही है। आहाहा! यह स्वर्ग की बात की और यह नरक की, दोनों में सर्वत्र दुःख है। यह पैसेवाले कहलाते हैं, वे सब दुःखी हैं। पैसा धूल है, वे मेरे, यह ममता बड़ा दुःख है। आहाहा! चारों गति के दुःख से सिद्ध भगवान मुक्त हैं। ऐसा कि स्वर्ग में रहना हो तो बहुत काल वहाँ रहा जाये। कहते हैं, नहीं। वह दुःख है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा भी चारों गति के दुःख से उसका स्वरूप रहित ही है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय जो भगवान आत्मा, उसमें तो चार गति का दुःख भी उसमें नहीं। उसे जन्म-मरण ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। यह तो नास्ति से (बात) की है। है क्या? केवलदर्शन-ज्ञानमयी। **केवलदर्शन केवलज्ञानमयी हैं,...** आहाहा! अकेला देखना और जानना, ऐसी जिसकी शक्ति की व्यक्तता पूर्ण प्रगट हो गयी है। देखना और जानना। देखने में अभेदरूप से कुछ भी भेद किये बिना और ज्ञान में प्रत्येक को भिन्न-भिन्न करके जाने, ऐसा जिसका केवलदर्शन और ज्ञानस्वभाव है सिद्ध भगवान का। यहाँ आत्मा का ऐसा स्वभाव है। अकेला दर्शन और ज्ञान। केवलदर्शन और केवलज्ञान, अकेला दर्शन और अकेला स्वभाव, ज्ञान—ऐसा आत्मा का स्वभाव है।

ऐसे कर्म रहित हुए... मुक्त हो गये भगवान, लो। '**तत्रैव**' '**तित्थु**' है न वहाँ भी? '**तित्थु**' अर्थात् वहाँ। **अनन्त काल तक उसी सिद्धक्षेत्र में...** वे सिद्ध भगवान अनन्त काल तक **उसी क्षेत्र...** अर्थात् अपने क्षेत्र '**नंदति**' **अपने स्वभाव में आनन्दरूप विराजते हैं।** आहाहा! यह सिद्ध भगवान की ऐसी व्याख्या करके यह परमात्मप्रकाश वर्णन करते हैं। तेरा स्वरूप ही ऐसा है अन्दर। उसकी दृष्टि कर। राग, पुण्य, परिणाम और अल्पज्ञ

की दृष्टि छोड़ दे, वस्तु की दृष्टि कर। तो तुझे सम्यक् सत्य होगा और सत्य का स्वीकार होगा। आहाहा! इसलिए यह सिद्ध का वर्णन करते हैं।

भावार्थः—सहज शुद्ध परमानन्द एक अखण्ड स्वभावरूप जो आत्मसुख उससे विपरीत जो चतुर्गति के दुःख उनसे रहित हैं,... आहाहा! स्वाभाविक शुद्ध परम आनन्द आत्मा एकरूप अखण्ड स्वभाव जिसका—ऐसा रूप, ऐसा आत्मसुख **उससे विपरीत...** वह स्वर्ग का दुःख, उससे विपरीत है। आहाहा! अनन्त सहज परमानन्द जो सुख, उससे विपरीत यह अरबोंपति, उससे विपरीत दुःख में पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। स्वर्ग के जीव दुःख में पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं पैसा। मानता है। माने तो हो गया कुछ? सन्निपात है। सन्निपात में दाँत निकालता है (हँसता है), गहल-पागल है। आहाहा!

जन्म-मरणरूप रोगों से रहित हैं,... प्रभु तो जन्म-मरण से रहित है। आहाहा! **अविनश्वरपुर में सदा काल रहते हैं।** ठीक। उसका पुर क्या है? अविनश्वरपुर नगर। अविनश्वरनगर सिद्ध भगवान का। आहाहा! उसमें रहते हैं। ऐसा जीव का स्वभाव है। अविनश्वरनगरपुर ही उसका भरा है। उसकी दृष्टि करना, उस ओर झुकना, यह उसका सार और भावार्थ है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, वैशाख कृष्ण १४, सोमवार
दिनांक- १६-०५-१९७७, गाथा - २०३-२०४, प्रवचन-२४०

परमात्मप्रकाश, २०३ गाथा। फिर से भावार्थ। वहाँ परमात्मा की व्याख्या है। प्रगट परमात्मा सिद्ध स्वभाव में विराजते हैं, इसका स्वरूप जैसा उनका स्वरूप है। वर्तमान में सिद्ध भगवान लोक के अग्र में विराजमान हैं। उनका जैसा स्वरूप प्रगट हुआ है, वैसा ही भगवान आत्मा का स्वरूप ही सबका ऐसा है। आहाहा! जिसे धर्म करना है अर्थात् कि हित करना हो, उसे अपना पूर्ण स्वभाव है, वहाँ दृष्टि देनी पड़ेगी। क्योंकि जिसे पूर्ण स्वभाव प्रगट हुआ, उनका ध्यान करे सिद्ध का, तो स्वयं सिद्ध समान है, ऐसा अन्दर भासित हो, वह शुद्धचैतन्यघन आनन्द वह वस्तु ही पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान-दर्शन से भरपूर चीज़ है। उसे वह प्रगट सिद्ध परमात्मा की महिमा करके उसके आत्मा की ओर ले जाना चाहते हैं। भाई! अन्दर तू आत्मा भी ऐसा ही है। सर्वत्र से दृष्टि फिरा दे। आहाहा! जहाँ स्वयं अनन्त ज्ञान, दर्शन स्वाभाविक सुखस्वरूप है, वहाँ दृष्टि दे, उसका आदर कर और संयोग तथा राग-द्वेष का आदर छोड़। यह कहना है। आहाहा!

वर्तमान बात सिद्ध की लेते हैं। कैसे हैं सिद्ध भगवान? **सहज...** भावार्थ। तीसरी गाथा। **शुद्ध परमानन्द...** पवित्र परमानन्द की मूर्ति प्रभु सिद्ध तो हुए हैं। **एक अखण्ड...** एकरूप है जिनकी दशा। जिनकी वर्तमान हालत, जिनकी वर्तमान पर्याय जैन एकरूप, जिसे भेद नहीं। आहाहा! अखण्ड है, खण्ड नहीं। **स्वभावरूप जो आत्मिक सुख...** स्वाभाविक आत्मा का जो आनन्द सुख, **उससे विपरीत...** ऐसे सुख से भरपूर है। परन्तु **उससे विपरीत चतुर्गति के दुःख, उनसे रहित हैं,...** ऐसा सिद्ध करना था। सिद्ध भगवान चार गति के दुःख से रहित है। णमो सिद्धाणं। उसकी व्याख्या है। ऐसे तो बहुत बार बोलते हैं णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं, परन्तु उसका स्वरूप क्या है और वह स्वरूप मेरी जाति का ही है। ऐसी अपनी जाति में उसे मिलाता नहीं, सम्मिलित नहीं करता। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो बहिर्मुख दृष्टि छोड़कर अन्तर्मुख दृष्टि नहीं करता। और करने का तो यह है। आहाहा! **एक अखण्ड...** चतुर्गति के दुःख से रहित है। आहाहा! सिद्ध भगवान। यह आत्मा इस वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है इसका। स्वाभाविक शुद्ध

परमानन्द एक अखण्ड स्वभाव और चार गति के दुःख से पर्याय में दुःख है, उससे वस्तु तो दुःखरहित है। आहाहा! ऐसा वीतराग का धर्म। जिनेश्वर, परमेश्वर, इन्द्रों के बीच ऐसा कहते थे। वह यह बात है। आहा! जो एक भव में मोक्ष जानेवाले इन्द्र कितने ही। आहाहा! उन्हें कहते थे सिद्ध भगवान ऐसे हैं। वे अविनश्वर नगर में बसते हैं। यह तुम्हारा नगर-फगर यह नाशवान नगर है।

अविनश्वरपुर में... है? आहाहा! **जन्म-मरणरूप रोगों से रहित हैं,...** सिद्ध भगवान परमात्मा हैं। **अविनश्वरपुर...** नगर नाशवान न हो, ऐसे नगर में बसते हैं भगवान। अपने असंख्य प्रदेश, वह अपना स्वदेश नगर है। आहाहा! **सदाकाल रहते हैं। जिनका ज्ञान संसारी जीवों की तरह विचाररूप नहीं है,...** क्या कहते हैं? सिद्ध भगवान का ज्ञान संसारी प्राणी क्रमसर विचार करते हैं एक के बाद एक। ऐसा ज्ञान उनको नहीं। उन्हें तो पूर्ण ज्ञान है। विचार का क्रम पड़े और पहले यह जाने, फिर यह जाने, ऐसा सिद्ध में नहीं है। आहाहा! सिद्ध भगवान तो एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक साथ तीन काल—तीन लोक को समय में जानते हैं। उन्हें क्रम नहीं होता।

कि किसी को पहले जानें, किसी को पीछे जानें,... ऐसा सिद्ध भगवान को नहीं है। आहाहा! **उनका केवलज्ञान और केवलदर्शन...** भगवान सिद्ध परमात्मा को, वे हुए कहाँ से, ऐसा कहना है। ऐसा उसका—आत्मा का स्वभाव है, उसमें से हुए हैं। कहीं बाहर से आये नहीं। सिद्धपद कहीं बाहर से नहीं आता। आहाहा! जितने गुण सिद्ध भगवान को पर्याय में प्रगट हुए, और जितने कहलाते हैं, उन सब शक्तियों की व्यक्ति उन्हें आयी कहाँ से? उसमें शक्ति है, प्रभु! वैसे इस आत्मा में वे शक्तियाँ पड़ी हैं। आहाहा! परन्तु उसे अनादि से बहिर्मुख, अपने तत्त्व के अतिरिक्त बहिर्तत्त्व की ही जिसे अनादि से महिमा है। अन्तर्तत्त्व की इसे महिमा नहीं आती। बाहर की महिमा। कुछ पाँच-पच्चीस लाख धूल मिली हो या शरीर और कीर्ति कुछ ठीक हो, स्त्री मिली हो, पुत्र (मिले हों), अरे! त्यागी हो, राग-संसार का बाहर स्त्री-पुत्र का। त्यागी हो तो मानो अपने हो गये त्यागी। वह भी मिथ्यात्व अभिमान है। आहाहा!

उसे बाहर की महिमा है। अन्तर भगवान विराजता है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है न छहढाला में। आता है। 'चेतनरूप अनूप अमूरत...' समयसार नाटक

में आता है। 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' सदा पद मेरो। सिद्ध जैसा ही सदा मेरा स्वरूप है। आहाहा! 'मोह महातम आतम अंग...' परन्तु अपने स्वभाव का माहात्म्य छोड़कर यह शुभ-अशुभराग और उसके फल के माहात्म्य में, मोहमाहात्म्य, मोह का माहात्म्य आया। आहाहा! 'मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो।' अज्ञान में घिर गया है। आहाहा! भगवान अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, उसे भूलकर अज्ञान में घिर गया है। यह स्त्री मेरी, पुत्र मेरे, धन्धा मेरा, शरीर मेरा। अरे! अन्दर दया, दान के परिणाम होते हैं, वे मेरे। यह सब भ्रमणा अज्ञान है। आहाहा! कठिन बात है, बापू!

वीतरागमार्ग जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिसने तीन काल—तीन लोक देखे-जाने, वे सिद्ध हुए और ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब सिद्ध को तो वाणी नहीं, परन्तु जब अरिहन्त थे और तीन काल का ज्ञान था, तब वाणी थी। तब वाणी में उपदेश आया। सिद्ध को कहीं वाणी नहीं, वे तो अशरीरी हैं। अरिहन्त को तो अभी शरीर है। चार कर्म बाकी हों, चार कर्म टले होते हैं। परमात्मा विराजते है महाविदेहक्षेत्र में। सीमन्धर भगवान। चार कर्म बाकी है, इसलिए वाणी है। चार (घाति) कर्मों का नाश हुआ है, इसलिए केवलज्ञान है। आहाहा! उनकी वाणी में यह आया, यह कहते हैं।

सिद्ध भगवान **केवलज्ञान और केवलदर्शन एक ही समय में...** आहाहा! क्या बात है? क बोले इसमें असंख्य समय जाते हैं। उसका एक समय, काल का छोटा माप, उसके फिर दो भाग नहीं। ऐसा एक समय जिसमें क बोलने में असंख्य समय जाये। उसका एक समय। उस एक समय में **सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल और सब भावों को जानता है।** आहाहा! सब तीन काल के द्रव्य अर्थात् पदार्थ, उनका क्षेत्र तीन काल—तीन लोक क्षेत्र पूरा। आकाश, जिसका (क्षेत्र) अनन्त है अनन्त। उसे भी सिद्ध भगवान तो जानते हैं। उसका—जीव का स्वभाव जानने का है। जीव का स्वभाव कोई पुण्य-पाप को करना और उसके फल को भोगना, वह उसका स्वभाव नहीं। आहाहा! यदि वह स्वभाव हो तो सिद्ध में रहना चाहिए। सिद्ध में है नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति नहीं। वह तो विकल्प-राग था। आहाहा! यह तो तीन काल—तीन लोक को **सब द्रव्य,...** कोई द्रव्य बाकी रहा? एक समय में सब तत्त्वों को पूर्ण। अनन्त आत्मायें, अनन्त

रजकण। ओहोहो! अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश। उससे अनन्तगुणे एक जीव के गुण। आहाहा! वे **सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल...** तीन काल, किसे कहना तीन काल? भाषा भले आवे सर्वकाल। जिसका—काल का अन्त नहीं, जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त नहीं। भविष्य पूर्ण कब होगा। आहाहा! वह सब काल को भी सिद्ध भगवान एक समय में जानते हैं। ऐसा ही तेरा स्वरूप है, ऐसा बतलाना है। आहाहा!

रंक होकर बैठा, भिखारी होकर। पैसा हो तो ठीक पड़े, स्त्री हो तो ठीक पड़े, कुछ इज्जत, कीर्ति जगत में बढ़े तो ठीक पड़े। भिखारी है, भिखारी। अपनी अनन्त लक्ष्मी की उसे खबर नहीं। आहाहा! बाहर से माँगता है कि यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... धर्मी जीव को अन्तर में से माँगता है सब। आहाहा! धर्मी को 'ऋद्धि, सिद्धि, वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा।' अज्ञानी को ऋद्धि, सिद्धि, वृद्धि दिसे बाहर में, सब धूल में। रमणीकभाई! हजार, दो हजार का वेतन हो महीने में। बस प्रसन्न हो, मानो ओहोहो! ... जानते हैं। पाँच हजार का, दस हजार का हो जाये। क्या धूल है? आहाहा! वह तो ऋद्धि सब धूल की है।

यहाँ 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे...' आहाहा! चैतन्यस्वभावी भगवान जिसका भान होने से, जिसकी ऋद्धि अन्तर में भासित हो, ऋद्धि सिद्धि वृद्धि और शुद्ध की वृद्धि अन्तर में हो। बाहर में सब स्त्री, पुत्र बढ़े, धूल बढ़ी। धूल अर्थात् यह पैसा। धूल है न, यह मिट्टी है। कंकड़ है। आहाहा! बराबर होगा, मनसुख? पहिचानते हो या नहीं? यहाँ नहीं थे अपने क्या नाम तेरे दादा? नाम भूल गये।

मुमुक्षु : त्रिभुवन वस्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिभुवन वस्ता के पुत्र का पुत्र है। उनके पुत्र का पुत्र है न! अपने पहले था न उसमें। मुम्बई दुकान है। दुकान में आये थे, नहीं? यहाँ पहले पाठशाला खोली, उसमें तू था न पहला, नहीं? पाठशाला। तीन... तीन।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहता हूँ। त्रिभुवन वस्ता पहले वृद्ध बहुत आते थे यहाँ व्याख्यान में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं सर्वकाल। आहाहा! शब्द तो सर्वकाल बहुत चार अक्षर है परन्तु सिद्ध भगवान का ज्ञान तीन काल—तीन लोक को जाने। आहाहा! और प्रभु! तेरा स्वभाव ही तीन काल—तीन लोक को जानने का है। तीन काल—तीन लोक की किसी चीज़ को मानने का तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ के अतिरिक्त राग से लेकर दूसरी चीज़ें पूरा लोकालोक, कि काल, यह दिवस और रात्रि और वर्ष और छह महीने। ऐसी किसी चीज़ को अपनी है, यह मानने का उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! यह आता है समयसार नाटक में। यह मेरा दिन है, यह मेरी रात्रि है और यह मेरा पहोर है, ऐसा आता है। धूल में भी नहीं। आहाहा! रायचन्दभाई! आहाहा! पैसा कुछ हो वहाँ २०, २५ लाख, ५० लाख हो वहाँ। आहाहा! मानो फटे। आकाश को लात मारे (फूला न समावे)।

मुमुक्षु : आकाश को लात मारे वह तो स्वयं को मारता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ आकाश में छुए ऐसा है। आहाहा! प्रभु! तू भूल गया है। भगवान परमात्मा जिनेश्वरदेव तेरी चीज़ सिद्ध समान कहते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं। अनादि से खबर रहित बेखबर चार गति में भटक रहा है। आहाहा! उसे आत्मा क्या वस्तु है अन्दर? नजर से विधान देखा नहीं, निधान में नजर की नहीं और जो चीज़ उसकी और उसमें नहीं, वहाँ नजर डालकर रुक गया है। आहाहा! ऐसा उपदेश है यहाँ तो, बापू! आहाहा! बाहर की यह तो कहे भक्ति करो, पूजा करो, दया करो, व्रत पालो, यात्रा करो, यह सब क्रियायें तो राग की हैं, भाई! तुझे खबर नहीं। वह कहीं धर्म नहीं। वह तो पाप से बचने के लिये एक पुण्य है। पुण्य है, वह वापस संयोग। स्वभाव को तो पुण्य विघ्न करनेवाला है। आहाहा!

तीन काल **सब भावों को जानता हैं,...** सिद्ध भगवान तो सर्वभाव। शुभ-अशुभ और शुद्ध। एक दूसरे जड़ के भाव। छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। भगवान ने केवली परमात्मा परमेश्वर (ने) छह द्रव्य के जितने भाव हैं शक्तियाँ, उन सबको भगवान जानते हैं। आहाहा! **लोकालोक प्रकाशी आत्मा...** लोक यह चौदह ब्रह्माण्ड और खाली अलोकभाग। उसका तो प्रकाशी है। यह परमात्मप्रकाश है न? परमात्मप्रकाश है इसलिए उसे... आहाहा! अनजानी बातें उसे गम्य न लगे, कभी सुना नहीं, तत्त्व को

सत्य क्या है यह। ऐसे का ऐसा जगत की मजदूरी की, बड़े मजदूर हैं सब। पूरे-पूरे दिन। बराबर होगा? यह दो-पाँच करोड़ रुपये हों, वे बड़े मजदूर हैं, मजदूर हैं। वजुभाई! वे मजदूर तो आठ घण्टे काम करे, खबर है। सवेरे ८ से १२, दोपहर २ से ६। तुम्हारे? सवेरे ६ से रात के १०।

मैं वहाँ कहता था हमारी दुकान में पालेज में। हमारे कुँवरजीभाई वहाँ गाँव में साधु आवे तो सामने न देखे और (रात्रि) ८ बजे निवृत्त हो नामा लिखकर। बड़े मजदूर हो, कहा बड़े (मजदूर)। यह तो (संवत्) १९६५-६६ की बात है। छोटी उम्र में भगत कहलाता था न मैं तो। मेरी रुचि तो पूरी पहले से। दुकान थी, दुकान चलाते। कहा, यह पूरे दिन मजदूरी करते हो, क्या है यह? आहाहा! बीड़ियाँ बाँधकर फिर वह क्या कहलाता है? तम्बाकू का गुड़... तम्बाकू पिण्डा ऐसा नहीं होता?

मुमुक्षु : तम्बाकू-तम्बाकू (गुड़ या खमीर मिलाकर बनाया हुआ तम्बाकू)।

पूज्य गुरुदेवश्री : तम्बाकू। हाँ, तम्बाकू। इसके वे करे। फिर तो पैसे हुए फिर तो छोड़ दिया। पहले शुरुआत में यह सब करते थे। पैसे के लिये। आहाहा! तम्बाकू, तम्बाकू। नाम भी भूल जाते हैं। आहाहा! मजदूरी करते हो कहा, पूरे दिन। यह क्या करते हो तुम? नहीं शास्त्र वाँचना, नहीं सुनना, नहीं समागम करना, यह तो मानो कुछ कीमत ही नहीं और हम बैठे और कमाया मानो। बारह महीने में लाख मिले, दो लाख मिले। आहाहा! जिस वृक्ष में लाख होती है न, वह वृक्ष जल जाता है। लाख, लाख। और जिसे लाख होती है, यह मेरे लाख हैं, वे मर जानेवाले हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे अपने आता है, नहीं? (समयसार) ७४ गाथा। ७४ गाथा में आता है। जिस वृक्ष में लाख होती है, वह वृक्ष जल जाता है। लाख, वह वृक्ष का स्वरूप नहीं। इसी प्रकार भगवान का पुण्य और पाप का यह राग लाख, वह उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! ७४ गाथा, समयसार। सब शास्त्र में दृष्टान्त सब पड़े हैं। लो यह दृष्टान्त। जैसे वृक्ष—पीपल का वृक्ष हो पीपल का। उसे लाख आवे (तो वह वृक्ष) उड़ जाये। सब पीपल सुलग जाये। बहुत बार कहा न भावनगर में। वह गुजर गया। पूरी

लाईन पीपल की थी। यह तो (संवत्) १९६५-६६ की बात है। १९६५-६६। दुकान, देश में से दुकान, दुकान। देश में आये हुए, भावनगर एक वर्ष में गये। ६५-६६ की बात है। दीक्षा तो ७० में हुई न? ६५ वर्ष तो दीक्षा को हुए। उसके पहले ७० वर्ष पहले की बातें हैं। पूरा पीपल का वृक्ष था, पूरी लाईन। यह लाख आयी भावनगर गूजरी का जो तालाब है न वह? उसकी इस ओर पूरी लाईन थी। यह तो ७० वर्ष पहले की बात है। समाप्त हो गये। मैंने किसी को पूछा कि वह थे न? कहे, लाख आयी थी। एक वृक्ष नहीं रहा। इसे लाख आवे तब क्या रहेगा इसे?

मुमुक्षु : फँस जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : फँस जानेवाला है यह। यह लाख और पाँच लाख और दस लाख और करोड़।

मुमुक्षु : तुमने लाख....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाख की कीमत। पहले के एक लाख और अभी के २५ लाख। भाव घटे न? सब भाव बढ़ गये माल के और इसका (रुपये का) भाव घट गया। पहले के २५-३० एक लाख हो पहले के और अभी के ३० लाख, दोनों समान कहलाते हैं। उसमें भी धूल में क्या है? यहाँ तो कहते हैं तुझमें... आहाहा! क्या कहा? इसलोक-परलोक का प्रकाशी है तू तो। आहाहा! किसी चीज़ का मेरा है, ऐसा माननेवाला तू नहीं। तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! तू तो लोक और अलोक का प्रकाशक है। आहाहा! कैसे जँचे? यह मेरी मोह की बड़ी धुनी धखाकर बैठा है न? मोह की धुनी।

यहाँ कहते हैं कि भगवान तो लोकालोक के प्रकाशक हैं। ऐसा **निज भाव, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यमयी है।** सिद्धभगवान तो। आहाहा! इसी प्रकार यह भगवान भी अन्दर अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुखमय ही वस्तु है। उसे दृष्टि में उसकी खबर नहीं। निज पुंज क्या है, निजसम्पदा अन्दर? निजसम्पदा की इसे खबर नहीं। इसे यह पुण्य और पाप और उसके फल आपदा की उसे खबर है। यह सब आपदायें हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह सुख। आहाहा! **ऐसे अनन्त गुणों के सागर...** ऐसे अनन्त

गुण के सागर **भगवान सिद्ध परमेष्ठी...** आहाहा! **स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावरूप चतुष्टय में निवास करते...** सिद्ध भगवान अपने में बसते हैं वहाँ। अनन्त ज्ञान, बेहद आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, वह स्वयं सिद्ध परमात्मा अपने गुण में बसते हैं। कहीं अन्यत्र हैं नहीं। है? **चतुष्टय में निवास करते हुए सदा आनन्दरूप लोक के शिखर पर विराज रहे हैं,...** लोक के शिखर पर णमो सिद्धाणं। मुक्तिशिला के ऊपर सिद्ध (विराजते हैं)। अरिहन्त परमात्मा आदि तो महाविदेह में विराजते हैं। सिद्ध भगवान लोक के अग्र में विराजते हैं। आहाहा! उनका कितना सामर्थ्य है और उस सामर्थ्य के साथ अपने सामर्थ्य का मिलान करना, यह बात है। आहाहा! बाहर की बातें तो सब ठीक, थोथा मरकर चला जायेगा। आहाहा!

४०-४० लाख के बँगले में स्त्री पड़ी थी नहीं वह शान्तिलाल खुशाल गोवावाला। पाणसणावाला अपना दशाश्रीमाली। गोवा, गोवा में। दो अरब चालीस करोड़ रुपये थे। चालीस लाख का तो एक मान था उसका। डेढ़ वर्ष तक असाध्य पड़ी रही। क्या कहलाता है वह? हेमरेज। हेमरेज हुआ हेमरेज। आहाहा! कुछ भान नहीं होता। पैसा देखो तो दो अरब चालीस करोड़। चालीस लाख का बँगला, दो दस-दस लाख के दूसरे। पड़ गयी, वे हड्डियाँ टूटीं। उसे भी खबर नहीं। बेसुध हो गयी न, वह मर गयी, लो, चली गयी। यहाँ ढोर जैसा अवतार, वह मरकर ढोर में जाये बेचारे कहीं। आहाहा! बनिया, इसलिए माँस, मदिरा तो खाय (पीये) नहीं, कहीं अण्डा (तो खाये नहीं)। धर्म तो हो नहीं, पुण्य भी नहीं होता। आहाहा! अरे! यह संसार ऐसा।

कहते हैं कि सिद्ध भगवान तो अनन्त सुख में विराजमान है। ऐसा तेरा स्वरूप है। आहाहा! है? **जिसका कभी अन्त नहीं, उसी सिद्धपद में सदा काल विराजते हैं, केवलज्ञान दर्शन घट-घट में व्यापक हैं।** आहाहा! भगवान का ज्ञान और दर्शन, वह तो प्रत्येक घट अर्थात् प्रत्येक आत्मा को तो वे जानते हैं। दूसरे सबको जानते हैं, इस अपेक्षा से वे व्यापक हैं, ऐसा कहा जाता है। घट-घट में व्यापक। व्यापक और उसका ज्ञान कहीं घट में यहाँ नहीं आ जाता। परन्तु उसके ज्ञान में पूरी दुनिया ज्ञात हो जाती है, इससे भगवान का ज्ञान घट-घट में व्यापक है, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बातें अब। वीतरागमार्ग ऐसा होगा! भाई! हम तो कुछ ऐसा सुनते नहीं थे। दया पालन करना, व्रत

पालना, अपवास करना, यात्रा करना, भक्ति करना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, लो! ऐसा सुनते हैं। बापू! यह सब क्रियायें तो राग की हैं, भाई! तुझे खबर नहीं। शुभराग है यदि हो तो राग शुभ। और यह तो वह क्रिया और अभिमान हो तो पाप हो। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **लोक के शिखर पर...** आहाहा! **केवलज्ञान दर्शन घट-घट में व्यापक हैं।** अर्थात् कि सबको जाने। कोई जाने बिना की बात सिद्ध भगवान के ज्ञान में (नहीं है) सब तीन काल—तीन लोक, उसका वस्तु, उसका क्षेत्र, उसकी दशा और उसका भाव। सब पूर्ण परमात्मा जानते हैं। आहाहा! **सकल कर्मोपाधि रहित सदा निरूपाधि...** उन्हें उपाधि कहाँ है? आहाहा! इसे तो उपाधि का पार नहीं होता। बड़ा पूंछड़ा स्त्री, पुत्र, पैसा, इज्जत, मकान। आहाहा! मरकर वापस अकेला जाना। यह सब छोड़कर ममता साथ में लेकर। तो परमात्मा कहते हैं कि तू सिद्ध समान है न, प्रभु! उसे तू देख न और मान न अन्दर! आहाहा! उस उपाधि से उत्पन्न हुए भाव, वह तू नहीं है। तेरा स्वरूप तो उस उपाधि से रहित है। निरुपाधि आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! सहजानन्दस्वरूप है। सहजानन्द वे स्वामीनारायण नहीं, हों! स्वाभाविक आनन्द का स्वरूप तेरा है, प्रभु! आहाहा! परन्तु कहाँ देखे? आहाहा!

बाहर की चीज़ें अनन्त, वे अनन्त देखने में रुके या यह तो एक को देखने आवे अन्दर? आहाहा! लो! **निराबाधपना...** कोई बाधा ही नहीं सिद्ध भगवान को। **अनन्त गुणों सहित मोक्ष में आनन्द विलास करते हैं।** आहाहा! लो, यह सिद्ध भगवान की व्याख्या की। यह सिद्ध भगवान की व्याख्या करते हुए सिद्ध हुए तो जो उपाधिभाव राग और द्वेष उनका हो तो उससे रहित कैसे हुए? राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव, वह राग है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध, व्यापार, धन्धा, ब्याज उपजाना, यह पापभाव है। दोनों भाव यदि आत्मा की जाति के हों तो सिद्ध में क्यों नहीं जाते साथ में? वे तो सिद्ध में हैं नहीं। इसलिए वर्तमान में भी वह भाव तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! कैसे बैठे? मार डाला बाहर में। बाहर का मोह अर्थात् पर में सावधानी। मोह का अर्थ सावधानी होता है। और अपनी सावधानी भूल गया। मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ? कितना हूँ? आहाहा! यह २०३ गाथा हुई।

गाथा - २०४

अथानन्तरं परमात्मप्रकाशभावनारतपुरुषाणां फलं दर्शयन् सूत्रत्रयपर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तथाहि-

३२७) जे परमप्प-पयासु मुणि भावि भावहिं सत्थु।
मोहु जिणेविणु सयलु जिय ते बुज्झहिं परमत्थु।।२०४।।

ये परमात्मप्रकाशं मुनयः भावेन भावयन्ति शास्त्रम्।
मोहं जित्वा सकलं जीव ते बुध्यन्ति परमार्थम्।।२०४।।

भावाहिं भावयन्ति ध्यायन्ति। के मुणि मुनयः जे ये केचन। किं भावयन्ति। सत्थु शास्त्रम्। परमप्प-पयासु परमात्मस्वभावप्रकाशत्वात्परमात्मप्रकाशसंज्ञम्। केन भावयन्ति। भावि समस्तरागाधपध्यानरहितशुद्धभावेन। किं कृत्वा पूर्वम्। जिणेविणु जित्वा। कम् मोहु निर्मोहपरमात्मतत्त्वाद्विलक्षणं मोहम्। कतिसंख्योपेतम्। सयलु समस्तं निरवशेषं जिय हे जीवेति ते त एवंगुणविशिष्टास्तपोधनाः बुज्झहिं बुध्यन्ति। कम्। परमत्थु परमार्थशब्दवाच्यं चिदानन्दैकस्वभावं परमात्मानमिति भावार्थः।।२०४।।

आगे तीन दोहों में परमात्मप्रकाश की भावना में लीन पुरुषों के फल को दिखाते हुए व्याख्यान करते हैं-

जो परमात्म-प्रकाश ग्रन्थ यह भावपूर्वक भाते हैं।
वे सम्पूर्ण मोह का क्षय करके परमार्थतत्व जानें।।२०४।।

अन्वयार्थः- [ये मुनयः] जो मुनि [भावेन] भावों से [परमात्मप्रकाशं शास्त्रम्] इस परमात्मप्रकाशनामा शास्त्र का [भावयंति] चिंतवन करते हैं, सदैव इसी का अभ्यास करते हैं, [जीव] हे जीव, [ते] वे [सकलं मोहं] समस्त मोह को [जित्वा] जीतकर [परमार्थम् बुध्यंति] परमतत्त्व को जानते हैं।

भावार्थः- जो कोई सब परिग्रह के त्यागी साधु परमात्मस्वभाव के प्रकाशक इस परमात्मप्रकाशकनामा ग्रंथ को समस्त रागादि खोटे ध्यानरहित जो शुद्धभाव उससे निरंतर विचारते हैं, वे निर्मोह परमात्मतत्त्व से विपरीत जो मोहनामा कर्म उसकी समस्त प्रकृतियों को मूल से उखाड़ देते हैं, मिथ्यात्व रागादिकों को जीतकर निर्मोह निराकुल चिदानंद स्वभाव जो परमात्मा उसको अच्छी तरह जानते हैं।।२०४।।

गाथा-२०४ पर प्रवचन

आगे तीन दोहों में परमात्मप्रकाश की भावना में लीन पुरुषों को फल दिखाते हुए व्याख्यान करते हैं— परमात्मप्रकाश की अन्तिम गाथायें हैं न? इस ग्रन्थ का नाम परमात्मप्रकाश है। परमात्मा स्वयं परमस्वरूप भगवान आत्मा, उसका प्रकाश। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि प्रकाश होता है। ऐसा उसका स्वरूप है। वह इस परमात्मप्रकाश में बताया है। आहाहा! २०४।

३२७) जे परमप्प-पयासु मुणि भावि भावहिँ सत्थु।
मोहु जिणेविणु सयलु जिय ते बुज्झहिँ परमत्थु।।२०४।।

देखो, यह प्रकाश लिया, हों! परमात्मप्रकाश शब्द आ गया, देखा न! आहाहा!

जो मुनि... यहाँ तो ऊँची बात लेते हैं न, ऊँची! मुनि उसे कहते हैं कि जिसे सर्व कुटुम्ब-परिवार का त्याग और जिसे वस्त्र का त्याग, उसे पात्र का त्याग, नग्नमुनि दिगम्बर जंगल में बसते हैं, उन्हें द्रव्यमुनि बाह्य से कहते हैं। और अन्दर में जिन्हें वीतरागता प्रगट हुई होती है। समझ में आया? यह यहाँ मुनि को लक्ष्यकर बात है। जैनदर्शन में मुनि को नग्नपना कहा है। वस्त्रवाले को मुनि जैनदर्शन में कहा नहीं। यह जो कहा है, वह जैनदर्शन नहीं। समझ में आया? ऐसी कठिन बातें! मुनि, जिन्हें अन्तर आनन्द का नाथ उछला है अन्दर। आहाहा! प्रचुर स्वसंवेदन। जो यह आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का रस सच्चिदानन्द प्रभु है, सत्चिदानन्द सत् है, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द, ऐसा उसका—भगवान आत्मा का पूर्ण स्वरूप है। प्रत्येक का। ऐसे सच्चिदानन्द प्रभु को जिसने अनुभव किया है और जिसकी दशा में प्रचुर स्वसंवेदन स्व अर्थात् अपना प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन वर्तता है, उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। आहाहा!

वह तो यह कहते हैं, **जो मुनि भावों से इस परमात्मप्रकाशनामा शास्त्र का...** यह परमात्मप्रकाश शास्त्र पूरा होता है। **इस परमात्मप्रकाशनामा शास्त्र का चिन्तवन करते हैं,...** आहाहा! इसमें कहे हुए भावों को अन्तर में विचारते हैं, चिन्तवन करते हैं, अभ्यास करते हैं, स्वसन्मुखता में लीन करते हैं। आहाहा! उसने परमात्मप्रकाश को

जाना, ऐसा कहा जाता है। मात्र पृष्ठ वाँचे और पृष्ठ पढ़ जाये, इसलिए परमात्मप्रकाश होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसने जानकर जो परमात्मप्रकाश का चिन्तवन करते हैं, **सदैव इसी का अभ्यास करते हैं,...** आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु आत्मा, उसका जो ध्यान करे ध्यान। वर्तमान ध्यान की दशा में जिसे ध्येय बनाकर ध्रुव को ध्यान में ध्येय बनाकर ध्रुव का ध्यान करे, उसे वर्तमान में परमात्मप्रकाश प्रगट होता है। आहाहा! ऐसा किस प्रकार का उपदेश ऐसा? बात ही वह तो बात ही भगवान करो, णमो अरिहंताणं करो, लो! पाँच—णमो अरिहंताणं। बापू! मार्ग अलग, भाई! वहाँ आनुपूर्वी गिनना हमेशा, लो सामायिक की। आनुपूर्वी, णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं, णमो आईरियाणं। आड़े होते हैं न अक्षर। हो गयी सामायिक, लो। अरे भगवान! सामायिक कहाँ थी, अभी तुझे धर्म किसे कहना, यह भान कहाँ है? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मप्रकाश शास्त्र पढ़कर परमात्मस्वरूप का प्रकाश प्रगट करे, उसने परमात्मप्रकाश जाना, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? है न? **हे जीव, वे समस्त मोह को जीतकर...** देखो! भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप ही है, उसकी शक्ति का सत्त्व, उसका जो ध्यान करता है, उसकी सन्मुखता का और रागादि दया, दान के परिणाम से भी जो विमुख होता है और स्वभाव की सन्मुखता का ध्यान करता है। आहाहा! वह **समस्त मोह को जीतकर...** उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष नहीं रहते। आहाहा! स्वयं परमात्मस्वरूप है, ऐसी प्रतीति करने से उसे मिथ्यात्व नहीं रहता। और स्वयं परमात्मस्वरूप में स्थिरता करने से उसे राग-द्वेष नहीं रहता। ऐसी बातें हैं। नैरोबी में तो ऐसा कुछ मिले, ऐसा नहीं वहाँ पूँजाभाई! पैसा... पैसा... पैसा... पैसा। ऐसा सुना। एक महाजन के पास पच्चीस करोड़ रुपये हैं कुछ। सुना है। पच्चीस करोड़। कोई महाजन है। दो नाम देता था कोई। बेचरभाई को खबर है या नहीं? कोई श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी है। कोई कहता था। धूल में। आहाहा! उसमें दो-पाँच दस लाख खर्च करे मन्दिर में, जाओ धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! तेरे करोड़ दे दे तो धर्म वहाँ कहाँ पैसे में धर्म था? आहाहा!

भगवान आत्मा तो इन पुण्य-पाप के विकल्प से रहित हैं। उसका ध्यान करने से

मोह का नाश होता है। समझ में आया? **समस्त मोह को जीतकर... 'परमार्थम् बुध्यंति' परमतत्त्व को जानते हैं।** जो कोई परमात्म (प्रकाश) यह शास्त्र है, उसे वाँचे, पढ़े, अभ्यास करे। अभ्यासी को अन्दर परमात्मस्वरूप है उसे जाने और अनुभव करे। उसका मोह नाश हो जाये और परमात्मप्रकाश होता है। परमात्मा स्वयं स्वरूप है, उसका प्रकाश पर्याय में परमात्मा का प्रकाश आता है। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश आया अन्तिम अब। अन्तिम गाथायें हैं न? आहाहा! वे **परमतत्त्व को जानते हैं।** उत्कृष्ट बात ली है न!

देखो! **भावार्थः—जो कोई सब परिग्रह को त्यागी...** है? जैनदर्शन में अनादि सनातन में वस्त्र और पात्र बिना नग्नपना, वह मुनिपना था। अनादि वीतरागी सनातन जैनदर्शन। अनादि का यह मार्ग था। इस मार्ग की यह बात करते हैं। फिर इसमें से यह भाग पड़ गये सब अलग-अलग। **सब परिग्रह को त्यागी...** मुनि जैन वीतरागमार्ग में तो सब परिग्रह का त्याग। जिसे वस्त्र का धागा न हो। पात्र का टुकड़ा पात्री न हो। एक मोरपिच्छी और कमण्डल दो होते हैं। आहाहा! वह अपवादिक (उपकरण)। **सब परिग्रह को त्यागी...** जिसे विकल्प उठता है पंच महाव्रत का, उसका भी जो त्यागी होकर अन्दर में ध्यान में जाता है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें।

परमात्मभाव के प्रकाशक... है, लो! **सब परिग्रह के त्यागी...** साधु **परमात्मभाव के प्रकाशक...** परमात्मस्वभाव को प्रकाश करनेवाला यह शास्त्र। **इस परमात्मप्रकाशनामा ग्रन्थ को समस्त रागादि खोटे ध्यानरहित...** आहाहा! पर की दया का भाव करना, वह भी एक राग है। वह भी एक हिंसा है, वह रागादि रहित कहा जाता है यहाँ। समझ में आया? वीतरागमार्ग में मुनि उसे कहा जाता है, कि जिसे वस्त्र का धागा न हो। नग्नदशा जैसा माँ से जन्मा, वैसा हो। आहाहा! और जिसकी दशा में अन्दर परम अतीन्द्रिय आनन्द उछलता होता है, जैसे समुद्र में पानी का ज्वार आवे, वैसे मुनि को दशा में आनन्द का ज्वार आता है। सूक्ष्म बातें हैं, बापू! वीतरागमार्ग बहुत अलग प्रकार का है, भाई! आहाहा!

ऐसे मुनि जो परमात्मा स्वयं, उसका ध्यान करे, स्वयं परमात्मस्वरूप ही अन्दर

है। शक्ति से आत्मा परमात्मा ही है। शक्ति से परमात्मा न हो तो व्यक्ति से प्रगटता आयेगी कहाँ से? कहीं बाहर से आवे ऐसी है? कुँए में हो, वह हौज में आयेगा। इसी प्रकार प्राप्त की प्राप्ति है। आत्मा का स्वभाव ही अन्दर शुद्ध परमात्मा ही है। आहाहा! कैसे बैठे? पर्याय की अवस्था में रांकाई और पामरता और मिथ्याभ्रम भले हो, परन्तु उसका—वस्तु का स्वरूप है, वह तो परमात्मस्वरूप ही त्रिकाल है। शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, सामर्थ्यरूप से, तत्त्वरूप से, भावरूप से। आहाहा! ऐसे परमात्मप्रकाश नामक ग्रन्थ को। जो परमात्मप्रकाश प्रकाशक है, ऐसा कहते हैं। ग्रन्थ कैसा है यह? कि परमात्म-प्रकाश करे, ऐसा यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है। आहाहा!

शुद्धभाव उससे निरन्तर विचारते हैं,... शुद्ध भगवान पुण्य और पाप के भाव जो राग है, वह आर्तध्यान है। आहाहा! उससे रहित आत्मा प्रभु, शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द परमेश्वर जिनेश्वर ने देखा, ऐसा आत्मा अन्तर में है, उसका जो ध्यान करता है, वह शुद्धभाव से निरन्तर विचार। देखा! शुद्धभाव से विचारता है, शुभ से नहीं। आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, यह सब शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। शुद्धभाव, वह धर्म है। शुभ और अशुभ दोनों भाव अशुद्ध है। उनसे रहित आत्मा शुद्धचैतन्य प्रभु है, उसे शुद्धभाव से निरन्तर विचारता है। आहाहा! एक-एक बोल कठिन लगे ऐसा है। वीतरागमार्ग परमेश्वर का, भाई! जिसने एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे, ऐसे वीतराग परमेश्वर, जिनेश्वर विराजते हैं, महाविदेह में प्रभु—सीमन्धर भगवान विराजते हैं। गणधर हैं, सन्त हैं, लाखों केवली हैं। महाविदेहक्षेत्र है, महाविदेहक्षेत्र। जमीन पर, हों! मोक्ष में नहीं। महाविदेहक्षेत्र है। वहाँ उनके सब विमान-बिमान वहाँ नहीं जा सकते। कहते हैं न यह तुम्हारे क्या चन्द्र तक गया। रॉकेट। वहाँ नहीं जा सकता रॉकेट-फॉकेट। महाविदेहक्षेत्र है। सीमन्धर भगवान विराजते है। ये सामायिक के समय आज्ञा नहीं लेते प्रभु की ऐसे? भगवान विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़पूर्व का आयुष्य है, ऐसे बीस तीर्थंकर विराजते हैं। वहाँ भी देखने की फुरसत कहाँ है? यह भगवान ऐसा कहते हैं कि... आहाहा! तू परमात्मप्रकाश ऐसा आत्मा, उसका शुद्धभाव से विचार कर। आहाहा! कठिन काम। एक तो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता, सात-आठ घण्टे धन्धे में जाये, छह-सात घण्टे नींद में जाये, थोड़े से खाने में जाये, थोड़े से

भोग में जाये, थोड़े से पुत्र और स्त्री को प्रसन्न करने में जाये। उसमें समय कहाँ मिले बेचारे को। आहाहा! समय कहाँ मिले उसमें? आहाहा! और समय मिले तो दो घण्टे सुनने जाये तो यह बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मनवाकर जिन्दगी निकाल देता है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा परमेश्वर जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं कि यह परमात्मप्रकाश वाँचकर तू परमात्म तेरा स्वभाव है, उसका अन्दर अनुभव कर। आहाहा! पृष्ठ में कहीं भगवान नहीं है। यह तो पृष्ठ है। शक्कर शब्द में कहीं शक्कर नहीं। शक्कर तो अलग है, शक्कर शब्द अलग है। इसी प्रकार यह पृष्ठ में कहीं भगवान नहीं है। यह भगवान तो यहाँ अन्दर चैतन्यस्वरूप विराजता है। वहाँ शब्द नहीं और शब्दों में वह आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्यप्रकाश का नूर का पूर प्रभु है। आहाहा! उसे शुद्धभाव से विचार। शुभ-अशुभ नहीं। आहाहा! शुद्ध। जिसमें राग का विकल्प नहीं। ऐसी निर्विकल्प दृष्टि से विचारणा से अन्दर का विचार भगवान परमात्मशक्ति से विराजमान वस्तु है, जिनराज और जीव की जाति एक है। एक ही जाति के जीव हैं वे। आहाहा! जिनराज को दशा में वीतरागता प्रगट हुई है, तेरे स्वभाव में—शक्ति में वीतरागता भरी है, इतना अन्तर है। ऐसी कठिन बातें, भाई! आहाहा! बापू! मनुष्यपना पाकर, देखो! यह वीतराग कहते हैं, उस आत्मतत्त्व को नहीं जाना, आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं किया। आहाहा! वे सब बिना एक के शून्य योगफल आयेगा। आहाहा! यह देह छोड़कर चला जायेगा कहीं भटकने चौरासी के अवतार में।

भाई! तुझे मनुष्यपना मिला, जिनवाणी सुनने को मिली, इतने तक आया और अब यह जाना कहाँ है? अन्तर वस्तु चिदानन्दस्वरूप है प्रभु। आनन्दकन्द है, ज्ञानानन्दस्वरूप है। परमात्मा अरिहन्त को अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्रगट हुए, वे कहाँ से प्रगट हुए? कहीं बाहर से आते हैं? आहाहा! वह अन्दर में शक्ति है, उसमें से आये हैं। वह शक्ति तुझमें भी पड़ी है, प्रभु! आहाहा! पूर्ण शक्ति। पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीतरागता, पूर्ण अनाकुल सुख और पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान। उससे प्रभु! तू भरपूर भगवान है, तेरी दशा में भूल है, वस्तु तो भगवान है। आहाहा! यदि वस्तु भगवान न हो तो भगवान दशा में आयेगा कहाँ से? बाहर से भगवान आयेगा कहीं से? आहाहा! रमणीकभाई! ऐसा मार्ग

है, बापू! किसी को तो मुश्किल से बेचारे को जिन्दगी में सुनने को भी न मिला हो। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। देखो! **शुद्धभाव उससे निरन्तर विचारते हैं,...** शुद्ध... शुद्ध। पाप के भाव, वे अशुद्ध पाप हैं, पुण्य के भाव वे अशुद्ध पुण्य हैं, दोनों अशुद्ध हैं। दोनों के भावरहित भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप है, सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, हों! दूसरों ने देखा नहीं। परमेश्वर ने—केवली ने आत्मा देखा है। तीन काल—तीन लोक ऐसा जो आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, उसे जो विचारता है। आहाहा!

वे निर्मोह परमात्मतत्त्व... वह परमात्मतत्त्व निर्मोह है। उससे **विपरीत जो मोहनामा कर्म उसकी समस्त प्रकृतियों को मूल से उखाड़ देते हैं,...** आहाहा! यह गधा होता है न, वह घास खाये, उसे मूल में से उखाड़ता है। गाय घास खावे, वह ऊपर से चरे, गो-चर कहलाता है वह। ऊपर से खाये। उसका मूल (जड़) रखे और गधा खाता है वह (मूल से खाता है)। इसी प्रकार यहाँ ज्ञानी है, वह मूल में से मोह को नाश करता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का ध्यान करके मूल में से नाश करता है। अज्ञानी राग की मन्दता करके ऊपर से राग रखे, अन्दर में राग का मूल रखे। समझ में आया? वे **मूल से उखाड़ देते हैं, मिथ्यात्व रागादिकों को जीतकर...** भ्रमणा, पुण्य में धर्म है और पाप में मजा है, यह विषय में सुख है, यह सब अज्ञानियों की भ्रमणा। मिथ्यात्वभाव बड़ी भ्रमणा है, पाप का पाप है। आहाहा! उसे तोड़कर आत्मा के आनन्द के स्वाद में रहता हुआ **मिथ्यात्व रागादिकों को जीतकर निर्मोह निराकुल चिदानन्द स्वभाव...** ज्ञानानन्दस्वभाव **जो परमात्मा उसको अच्छी तरह जानते हैं।** लो! यह फिर बराबर जानते हैं। यह आत्मा परमात्मा है। उसमें जानकर फिर स्थिर होते हैं, तब वह परमात्मा प्रगट होकर अरिहन्त होते हैं और चार कर्म बाकी हों, वे टलते हैं, फिर सिद्ध होते हैं। अरिहन्त को चार कर्म बाकी होते हैं और चार कर्म नाश हुए होते हैं। सिद्ध को आठों कर्मों का अभाव होता है। वे सिद्ध होते हैं, ऐसा कहेंगे बाद में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २०५

अथ–

३२८) अण्णु वि भत्तिए जे मुणहिँ इहु परमप्प–पयासु।
लोयालोय–पयासयरु पावहिँ ते वि पयासु।।२०५।।

अन्यदपि भक्त्या ये मन्यन्ते इमं परमात्मप्रकाशम्।
लोकालोकप्रकाशकरं प्राप्नुवन्ति तेडपि प्रकाशम्।।२०५।।

अण्णु वि इत्यादि। अण्णु वि अन्यदपि विशेषफलं कथ्यते। भत्तिए जे मुणहिं भक्त्या ये मन्यन्ते जानन्ति। कम्। इहु परमप्पपयासु इमं प्रत्यक्षीभूतं परमात्मप्रकाश– ग्रन्थमर्थतस्तु परमात्मप्रकाशशब्दवाच्यं परमात्मतत्त्वं पावहिं प्राप्नुवन्ति ते वि तेडपि। कम्। पयासु प्रकाशशब्दवाच्यं केवलज्ञानं तदाधारपरमात्मानं वा। कथंभूतं परमात्मप्रकाशम्। लोयालोय–पयासयरु अनन्तगुणपर्यायसहितत्रिकालविषयलोकालोक–प्रकाशकमिति तात्पर्यम्।।२०५।।

आगे फिर भी परमात्मप्रकाश के अभ्यास का फल कहते हैं–

भक्ति पूर्वक जो जानें यह परमात्म–प्रकाश महान।
लोकालोक प्रकाशक ऐसा प्राप्त करें वे केवल ज्ञान।।२०५।।

अन्वयार्थः– [अन्यदपि] और भी कहते हैं, [ये] जो कोई भव्यजीव [भक्त्या] भक्ति से [इमं परमात्मप्रकाशम्] इस परमात्मप्रकाश शास्त्र को [जानन्ति] पढ़ें, सुनें, इसका अर्थ जानें, [तेडपि] वे भी [लोकालोकप्रकाशकरं] लोकालोक को प्रकाशनेवाले [प्रकाशम्] केवलज्ञान तथा उसके आधारभूत परमात्मतत्त्व को शीघ्र ही पा सकेंगे। अर्थात् परमात्मप्रकाश नाम परमात्मतत्त्व का भी है, और इस ग्रंथ का भी है, सो परमात्मप्रकाश ग्रंथ के पढ़नेवाले दोनों ही को पावेंगे। प्रकाश ऐसा केवलज्ञान का नाम है, उसका आधार जो शुद्ध परमात्मा अनंत गुण पर्याय सहित तीन काल का जाननेवाला लोकालोक का प्रकाशक ऐसा आत्मद्रव्य उसे तुरंत ही पावेंगे।।२०५।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १, बुधवार
दिनांक- १८-०५-१९७७, गाथा - २०५-२०६, प्रवचन-२४१

२०४ हुई। **आगे फिर भी परमात्मप्रकाश के अभ्यास का फल कहते हैं—** अन्तिम गाथायें हैं न? यह परमात्मप्रकाश तो शास्त्र है। इसका अभ्यास करके और परमात्म अपना स्वरूप है। पुण्य-पाप के विकल्परहित, परिपूर्णपना, उसे जाने, वह इस परमात्मप्रकाश को सुनने का और जानने का यह फल है। यह कहते हैं। २०५वीं (गाथा)।

३२८) अण्णु वि भत्तिए जे मुणहिँ इहु परमप्प-पयासु।
लोयालोय-पयासयरु पावहिँ ते वि पयासु।।२०५।।

अन्वयार्थः—और भी कहते हैं, जो कोई भव्यजीव... यहाँ तो लायक जीव, भव्यजीव लिया है। जिसे मोक्ष होने के योग्य है। वह जीव लिया है। **जो कोई भव्यजीव भक्ति से...** ऐसे तो परमात्मप्रकाश सुनना चाहिए, ऐसा करके सुने, गाँव में हो वहाँ आना चाहिए। इस प्रकार सुने, ऐसा नहीं। भक्ति से सुने, ऐसा कहते हैं। बहुमान करके कि, ओहो! मेरी चीज़ का प्रकाशक यह शास्त्र है। यह वस्तु जो है, उसे प्रकाशित करनेवाला वाचक यह शब्द उसके हैं। और वह मेरा स्वरूप जो है, उसे बताता है। ऐसा जिसे भक्ति से भाव हो, उसकी बात है। ऐसे गाँव में हो तो सुनना चाहिए, समय हो तो वहाँ जाना चाहिए। यह कहीं भक्ति से नहीं है। यह तो एक बेगाररूप से करता है।

यहाँ यह शब्द प्रयोग किया है, भक्ति से, विनय से परमात्मप्रकाश को बहुमान से। क्या कहना चाहते हैं? उसका फल क्या है? यह कौन सी चीज़ कहाँ है, ऐसी जिसकी दृष्टि होती है, ऐसे भक्ति से **इस परमात्मप्रकाश शास्त्र को...** पाठ में यह है। '**जानन्ति**' '**मुणहिं**' पाठ। इसका अर्थ किया है कि जो कोई पढ़े। इस शास्त्र को कोई पढ़े। पाठ '**मुणहिं**' है। '**जानन्ति**'। आहाहा! परन्तु इस शास्त्र को जो कोई पढ़े, सुने और **इसका अर्थ जाने,...** यह अन्तिम अर्थ यह है। इसका प्रयोजन क्या? अर्थ क्या है यह जाने।

'**तेऽपि**' '**लोकालोकप्रकाशकरं**' **लोकालोक को प्रकाशनेवाले...** ऐसा प्रकाश

केवलज्ञान... केवलज्ञान को प्राप्त करे। क्योंकि उसमें बताया है परमात्मप्रकाश। वह केवलज्ञान का पिण्ड प्रभु, परमात्मस्वरूप ही है शक्ति से। उसका स्वभाव ही परमात्मस्वरूप ही है, परमात्मप्रकाश ही है। पर्याय में हीनता और विपरीतता, वह तो वर्तमानदशा में, वस्तु में कहीं हीनता और विपरीतता नहीं है। पूर्णता और अविकारता, ऐसा आत्मा का स्वभाव, उसे यहाँ परमात्मप्रकाश कहते हैं। आहाहा! इसे इतनी दया पालना और इतने व्रत करना, ऐसा यहाँ नहीं कहा। यह तो इसे जाने और सुने और समझे। है न?

यह **लोकालोक को प्रकाशनेवाले केवलज्ञान तथा उसके आधारभूत परमात्मतत्त्व को...** दोनों कहा। एक तो प्रकाश केवलज्ञान और उसका आधार तो आत्म-परमात्मतत्त्व द्रव्य है। दोनों को वह पावे। आहाहा! यहाँ तो उसे भक्ति से जाने तो ऐसा पावे, ऐसा कहा है। कुछ करने से पावे कि यह व्रत करने से, तप करने से, (ऐसा नहीं है)। भगवान आनन्दस्वरूप अन्दर चैतन्यघन केवलज्ञान प्रकाश का पिण्ड प्रभु, उसे जो अन्दर भक्ति से, प्रेम से, विनय से, उसके अतिरिक्त की दूसरी चीज़ों से हीनता देखकर अधिक इसे देखे, ऐसा जो जाने अधिक अपनी चीज़ को। आहाहा! वह केवलज्ञान प्राप्त करे और केवलज्ञान का आधार ऐसा तत्त्व-द्रव्य, उसे प्राप्त करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

परमात्मप्रकाश शब्द है न, इसलिए प्रकाश का अर्थ किया। मोक्ष प्राप्त करता है, ऐसा न लेकर प्रकाश को प्राप्त करता है। केवलज्ञान को प्राप्त करता है। और परमात्म, वह तो द्रव्य। परमात्मप्रकाश। प्रकाश, वह केवलज्ञान। और परमात्मा, उसका आधार तत्त्व-द्रव्य। आहाहा! थोड़े शब्दों में बहुत (भर दिया है)। परमात्मप्रकाश है, इसका नाम। और उसमें परमात्मप्रकाश की जो शैली और प्ररूपणा है, उसका ही कथन है। वाचक उसके ही शब्द हैं। वह जो बराबर अन्तर सुने भक्ति से, प्रेम से, विनय से विचार करे और अन्तर में बराबर वह चीज़ है, ऐसी जानने में उसे ले तो उसे परमात्मप्रकाश प्रगट होता है। अर्थात् केवलज्ञान और आत्मद्रव्य दो प्रगट होते हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश शब्द है न? यह उसके दो अर्थ किये। उस प्रकाश को प्राप्त करे और उसका आधार आत्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व को प्राप्त करे। आहाहा! अर्थात् मोक्ष को करे, ऐसा न लेकर परमात्मप्रकाश शब्द है न? उसका शब्दार्थ किया।

ऐसा करे वह स्वर्ग में जाये और वह भगवान के पास जाये, ऐसा कुछ नहीं लिया इसमें। कि ऐसा करे, फिर भगवान के पास जाये, फिर भगवान के पास जाये, जाने। ऐसा कितने ही कहते हैं न भाई! अभी ऐसा करो, फिर स्वर्ग में जाओ, वहाँ से भगवान के पास जाओ, वहाँ फिर समकित प्राप्त करोगे। वह वहाँ जाकर भी इस परमात्मप्रकाश को समझे तो वह पाता है, बाकी बात कुछ है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों इकट्ठे। यह तो उसका अर्थ किया। द्रव्य और द्रव्य का प्रकाश दोनों को प्राप्त करे, ऐसा कहते हैं। वस्तु जो है अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य और प्रकाश, वह केवलज्ञान एक लिया। प्रकाश में केवलज्ञान लिया। द्रव्य में पूरा तत्त्व अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य लिया। आहाहा! लो, इस परमात्मप्रकाश को सुने तो यह पावे, ऐसा कहते हैं। प्रेम से भी उसकी... आहाहा! उसे पुण्य बँधे और उसमें से स्वर्ग में जाये, वहाँ से फिर आगे जाकर पावे, यह बात यहाँ ली नहीं। आहाहा!

उसके आधारभूत परमात्मतत्त्व को शीघ्र ही पा सकेंगे। इतना शब्द है। लो! अधिक स्वयं ने डाला है। ऐसा परमात्मतत्त्व। सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञान का प्रकाश और पूर्ण शक्तियों का भण्डार तत्त्व, तब उस प्रकाश में तो एक ज्ञानगुण की पर्याय आयी। प्रकाश नाम से है न? यहाँ तत्त्व में तो अनन्त शक्ति आयी। तत्त्व पूरा द्रव्य आया। आहाहा! **अर्थात् परमात्मप्रकाश नाम परमात्मतत्त्व का भी है,...** परमात्मप्रकाश नाम परमात्मतत्त्व का भी है और इस ग्रन्थ का भी नाम है, दोनों। परमात्मप्रकाश आत्मा भगवान पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, ऐसा परमात्मस्वरूप उसे भी परमात्मप्रकाश कहते हैं और इन वचनों को भी परमात्मप्रकाश ग्रन्थ को भी कहा जाता है। नाम है न?

सो परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के पढ़नेवाले दोनों ही को पावेंगे। परमात्मप्रकाश शब्दों को भी पावे और उसके भाव को भी (पायेंगे), ऐसा कहते हैं। ग्रन्थ को भी जाने और ग्रन्थ में कहा हुआ आत्मा, उसे भी जाने। आहाहा! **दोनों ही को पावेंगे। प्रकाश ऐसा केवलज्ञान का नाम है,...** है न? **उसका आधार जो शुद्ध परमात्मा...** देखा, अब स्पष्टीकरण करते हैं। कि भाई! यह भाई प्रकाश और यह तत्त्व में क्या अन्तर है?

केवलज्ञान का प्रकाश और परमात्मतत्त्व। दोनों में अन्तर क्या? **प्रकाश ऐसा केवलज्ञान का नाम है, उसका आधार जो शुद्ध परमात्मा अनन्त गुण-पर्यायसहित...** देखा! तत्त्व लिया पूरा। परमात्मतत्त्व, वह अनन्त गुणसहित तत्त्व आत्मा, उसे यहाँ परमात्मा कहते हैं। अनन्त गुणस्वरूप भगवान आत्मा।

अनन्त गुण-पर्यायसहित... वापस उसमें तो केवलज्ञान की पर्याय अकेली ली थी, एक गुण की एक ही पर्याय आयी थी। **शुद्ध परमात्मा अनन्त गुण-पर्यायसहित...** आहाहा! उसके सामने देखने से वह क्या चीज़ है, उसका ज्ञान हो केवलज्ञान और वह तत्त्व ज्ञात हो जाये, वह पूरा परमात्मतत्त्व। अनन्त गुण और अनन्त गुण की पर्याय। **सहित तीन काल का जाननेवाला,...** आहाहा! **लोकालोक का प्रकाशक ऐसा आत्मद्रव्य...** लो! **उसे तुरन्त ही पावेंगे।** प्रकाश और द्रव्य की व्याख्या दोनों की अलग की। परमात्म-प्रकाश। प्रकाश में तो अकेले केवलज्ञान की पर्याय ली। और परमात्मतत्त्व में अनन्त गुण और अनन्त पर्यायवाला तत्त्व लिया। आहाहा! यहाँ तो जानना... जानना... जानने की बात है। जानना, यह करना है। दूसरा कुछ करना नहीं उसमें। राग करना या यह करना, वह कहीं वस्तु के स्वरूप में नहीं है।

ऐसा आत्मद्रव्य उसे तुरन्त ही पावेंगे। लो! अर्थ में आया था न शीघ्र? इसका अर्थ हुआ। २०५ (गाथा) हुई।

गाथा - २०६

अथ-

३२९) जे परमप्प-पयासयहं अणुदिणु णाउ लयंति।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तहँ तिहुयण-णाह हवंति।।२०६।।

ये परमात्मप्रकाशस्य अनुदिनं नामं गृह्णन्ति।
त्रुट्यति मोहः झटिति तेषां त्रिभुवननाथा भवन्ति।।२०६।।

लयंति गृह्णन्ति जे ये विवेकिनः णाउ नाम। कस्य। परमप्प-पयासयहं व्यवहारेण परमात्मप्रकाशाभिधानग्रन्थस्य निश्चयेन तु परमात्मप्रकाशशब्दवाच्यस्य केवलज्ञानाघनन्त-गुणस्वरुपस्य परमात्मपदार्थस्य। कथम्। अणुदिणु अनवरतम्। तेषां कि फलं भवति। तुट्टइ नश्यति। कोडसौ। मोहु निर्मोहात्मद्रव्याद्विलक्षणो मोहः तडत्ति झटिति तहं तेषाम्। न केवलं मोहो नश्यति तिहुयण-णाह हवंति तेन पूर्वोक्तेन निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वभावनाफलेन पूर्वं देवेन्द्र-चक्रवर्त्यादिविभूतिविशेषं लब्धवा पश्चाज्जिनदीक्षां गृहीत्वा च केवलज्ञानमुत्पाघ त्रिभुवननाथा भवन्तीति भावार्थः।।२०६।। एवं चतुर्विंशतिसूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये परमात्मप्रकाशभावनाफल-कथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयेम पञ्चमं स्थलं गतम्।

आगे फिर भी परमात्मप्रकाश के पढ़ने का फल कहते हैं-

जो परमात्म-प्रकाश तत्त्व का नाम सदा ही जपते हैं।
उनका मोह शीघ्र क्षय होता वे त्रिभुवनपति होते हैं।।२०६।।

अन्वयार्थः- [ये] जो कोई भव्यजीव [परमात्मप्रकाशकस्य] व्यवहारनय से परमात्मा के प्रकाश करनेवाले इस ग्रंथ का तथा निश्चयनय से केवलज्ञानादि अनंत गुण सहित परमात्मपदार्थ का [अनुदिनं] सदैव [नामं गृह्णन्ति] नाम लेते हैं, सदा उसी का स्मरण करते हैं, [तेषां] उनका [मोहः] निर्मोह आत्मद्रव्य से विलक्षण जो मोहनामा कर्म [झटिति त्रुट्यति] शीघ्र ही टूट जाता है, और वे [त्रिभुवननाथा भवंति] शुद्धात्मतत्त्व की भावना के फल से पूर्व देवेंद्र चक्रवर्त्यादि की महान् विभूति पाकर चक्रवर्तीपद को छोड़कर जिनदीक्षा ग्रहण करके केवलज्ञान को उत्पन्न कराके तीन भुवन के नाथ होते हैं, यह सारांश हैं।।२०६।।

इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में परमात्मप्रकाश की भावना के फल के कथन की मुख्यता से तीन दोहों में पाँचवाँ अंतरस्थल कहा।

गाथा-२०६ पर प्रवचन

आगे फिर भी परमात्मप्रकाश के पढ़ने का फल कहते हैं—२०६।

३२९) जे परमप्प-पयासयहं अणुदिणु णाउ लयंति।
तुट्टइ मोहु तडत्ति तहँ तिहुयण-णाह हवंति।।२०६।।

आहाहा! **अन्वयार्थः—जो कोई भव्य जीव व्यवहारनय से परमात्म प्रकाश करनेवाले इस ग्रन्थ...** यह व्यवहारनय है। शास्त्र है, वह तो व्यवहारनय से सुनने का है। आहाहा! **व्यवहारनय से परमात्म के प्रकाश करनेवाले इस ग्रन्थ का तथा निश्चयनय से केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित परमात्मपदार्थ...** यह आत्मा ही अनन्त गुणसहित परमात्मपदार्थ वस्तु है। द्रव्यदृष्टि से, वस्तुदृष्टि से, तत्त्वदृष्टि से उससे त्रिकाली स्वभावदृष्टि से तो वह परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! इतनी बड़ी चीज़ को बड़ी प्रतीति के विश्वास में अन्तर में लेना कि जो अनन्त-अनन्त गुण और पर्याय का पिण्ड है, उसे प्रतीति में लेना, अर्थात् उस प्रतीति में इतनी चीज़ आवे नहीं। वह चीज़ प्रतीति में नहीं आती, परन्तु उस चीज़ का जितना सामर्थ्य है, जितनी शक्तियों का वह सत्त्व है, उस श्रद्धा में उसका ज्ञान आता है और उसकी प्रतीति आती है। ज्ञान में ज्ञान आवे और श्रद्धा में प्रतीति आवे, श्रद्धा और ज्ञान में वह वस्तु नहीं आती। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं।

इसे भरोसे में भगवान आवे, परन्तु भगवान भरोसे में नहीं आता। क्या कहा यह? सम्यग्दर्शनरूपी भरोसा—प्रतीति में त्रिकाली भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी प्रतीति में आवे, इतनी चीज़ है, ऐसी प्रतीति आवे, परन्तु वह वस्तु उसमें नहीं आती। वस्तु उसमें आ जाये तो पर्याय और द्रव्य दोनों एक हो जाये। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सवेरे बहुत देरी से आते हैं चिमनभाई। दोपहर में जल्दी आते हैं। समझ में आया? आहाहा!

निश्चयनय से केवलज्ञानादि अनन्त गुणसहित परमात्मपदार्थ... आहाहा! अब यह कहते हैं। '**अनुदिनं**' निरन्तर। '**अनुदिनं**' निरन्तर **सदैव...** आहाहा! ऐसा जो भगवान परमात्मस्वरूप उसे निरन्तर '**अनुदिनं**' समय के विरह बिना निरन्तर **सदैव... 'नामं गृह्णन्ति'** उसका नाम ले अर्थात् कि उसका स्मरण करे। स्मरण कब करे? यह वस्तु उसके ज्ञान में आयी हो तो स्मरण करे। जो चीज़ ज्ञान में आयी नहीं, उसकी धारणा में आयी नहीं, उसका स्मरण क्या करे? यह क्या कहा? **सदा उसी का स्मरण करते हैं,...** उसकी वर्तमान पर्याय में निरन्तर वह वस्तु पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा है, उसकी पर्याय में बारम्बार याद आवे, बारम्बार स्मरण आवे, जो वस्तु को अवग्रह, ईहा, अवाय करके धारणा में जो ली थी।

क्या कहा यह? यह वस्तु है भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दकन्द अनन्त गुण का पिण्ड, उसे जो पर्याय में अवग्रह—विचारणा, अवाय—निर्णय और धारणा। अनुभव करके धारणा में यह वस्तु ऐसी है। समझ में आया? जो भगवान आत्मा... यह सब दूसरे प्रकार की बातें हैं। साधारण वाड़ावालों को मानो इसमें क्या कहते हैं, ऐसा लगे। यह मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! उस वस्तु को जिसने अवग्रह करके ज्ञान में पकड़ लिया, उसका विचार किया था, उसका निर्णय किया था और निर्णय करके धारणा हुई थी कि वस्तु ऐसी अखण्ड पूर्ण है। समझ में आया? उसे धारणा में से बारम्बार याद करे, स्मरण करे। जातिस्मरण होता है न? वह इस जाति का स्मरण। उस जाति-भव का स्मरण आवे। भव... भव। भव किये, उनका स्मरण आवे। यह जाति है, वह जानी है, उसका स्मरण आवे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह चैतन्य की जो जाति है अनन्त गुण का पिण्ड चिद्घन, स्कन्ध ऐसी जो चीज़ है, उसे इसने मतिज्ञान में... धारणा अनुभव करके, जानकर धारणा की थी कि यह वस्तु ऐसी है। उसे बारम्बार स्मरण में ले। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं यह तो सब प्रकार की। वह **सदा उसी का स्मरण करते हैं,...** आहाहा! जिसके ज्ञान में और श्रद्धा में परमात्मस्वरूप तत्त्व जो जानने में आया है और मानने में (आया है), उसमें जानने में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारण हो गयी है कि यह वस्तु ऐसी है। पूर्ण आनन्दस्वरूप, पूर्णज्ञानस्वरूप अतीन्द्रिय अनन्त शक्तियों का भण्डार सागर ऐसा आत्मा जो प्रतीति में

और ज्ञान में आया है, उसे बारम्बार स्मरण में लेता है। आहाहा! समझ में आया? यह सब पुरानी बातें करने से सब नयी ऐसी लगे कि यह किस प्रकार की है यह? कहाँ की बात होगी यह? यह परमात्मप्रकाश की बात है। आहाहा! अभी साधक लेना है न, स्मरण करते हैं इसलिए।

अकेला ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त शक्तियों का पिण्ड प्रभु परमात्मतत्त्व। उसकी जिसे श्रद्धा और ज्ञान स्वसन्मुख होकर हुए हैं। पर का विमुखपना जिसमें होकर और जो उसे ज्ञान और श्रद्धा में वह चीज़ जो आत्मा है, वह ख्याल में, श्रद्धा में आया है। ख्याल में श्रद्धा में आया है, वस्तु आयी नहीं। उसे बारम्बार स्मरण करना। '**अनुदिनं**' शब्द है न? '**अनुदिनं**' '**अनुदिनं**' अर्थात् दिन-प्रतिदिन, प्रतिदिन-हरसमय। आहाहा! **सदैव...** आहाहा! कोई गाली दी हो और फिर स्मरण करता है या नहीं, याद करता है फलानी गाली दी सही समय पर। इसी प्रकार यह गुण का धारक भगवान, आहाहा! उसे बारम्बार अन्दर याद करे, स्मरण करे। लो, यह जातिस्मरण। आत्मा की जाति है, उसका स्मरण। और यह दूसरा जो जातिस्मरण है, वह भव की जाति का स्मरण। भव... भव... भव हुआ हो, उसका स्मरण। यह भी धारणा में तो आया हो न पहला? धारणा में से स्मरण।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा पहले इसे धारणा में आ गया है। समझ में आया? पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वरूपी परमात्मतत्त्व। उसका जितना, जैसा सामर्थ्य और जितने क्षेत्र में जैसा भाव से भरपूर है, वैसा उसे प्रतीति और ज्ञान की धारणा में आ गया है। आहाहा! उसे बारम्बार स्मरण करे।

मुमुक्षु : धारण का विषय आत्मा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धारणा का विषय आत्मा है मतिज्ञान में। धारणा अर्थात् यह धारणा बाहर की। बाहर की धारण का विषय नहीं, मतिज्ञान का धारणा का विषय आत्मा है।

मुमुक्षु : अनुभव करने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव करने के लिये यह धारणा है न अन्दर? मतिज्ञानपूर्वक

श्रुत है न? मतिज्ञानपूर्वक श्रुत है न? मतिज्ञान की धारणा में है, उसके पूर्वक श्रुत की-समाधि आती है। धारणा अर्थात् यह धारणा बाहर की अकेली धारणा, वह कहाँ धारणा है? यह तो वस्तु की धारणा कही।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो धारणा के अर्थ में वह चीज़ है, ऐसा ज्ञान अन्दर हुआ है। ऐसे बाहर का ज्ञान बाहर से हुआ शास्त्र से और... ऐसा नहीं। वह ज्ञान कहाँ है? अकेला शास्त्र सुनने से हो, वह बात यहाँ है ही नहीं। आहाहा! ऐसे धार रखे कि आत्मा ऐसा है, वह नहीं। यह जाने बिना धारा है। यह तो जानकर धारण किया है। आहाहा! समझ में आया? एक-एक शब्द में बड़ा अन्तर है। मतिज्ञान, वह बोल है न? मतिज्ञान में तो यहाँ तक लिया है आचार्य ने तो कि यह भव्य है, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वहाँ तक पकड़ा मतिज्ञान से, ऐसी सामर्थ्य है। पर की, हों! अपनी तो है। आहाहा! मतिज्ञान में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ली है। वह पर की अपेक्षा से ली है, वह वहाँ। आहाहा! यह पर का निर्णय कर ले कि यह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है, इसलिए भव्य है। इतना तो मतिज्ञान का परसन्मुख के लक्ष्यवाला निर्णय है। आहाहा! यह तो भगवान अपने को धारता है यहाँ। मतिज्ञान में आयी है या नहीं वस्तु?

इसलिए कहा नहीं भाई! १४४वीं (गाथा, समयसार) में नहीं कहा? मतिज्ञान की बुद्धि को आत्मा में झुकाकर। आहाहा! आया था न भाई? यहाँ नहीं थे। वहाँ राजकोट आया था। पहले यह लिया, फिर श्रुत में लिया है। क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। श्रुतज्ञान मतिज्ञान की उत्तरतर्कणा है। उत्तरतर्कणा अर्थात् बाद के तर्क हैं ये। परन्तु मतिज्ञान पहला है। थोड़ी सूक्ष्म बात आ गयी है, भाई! आहाहा! यह तो वह स्मरण है न वह शब्द, इसलिए यह आ गया है। आहाहा! भगवान! तेरा स्वरूप जो है, भगवान का अर्थ एक जगह तो ज्ञान ही किया है। भगवान अर्थात् ज्ञान। परन्तु यहाँ तो भगवान अर्थात् अनन्त गुणस्वरूप। मात्र यहाँ परमात्मप्रकाश है न, प्रकाश में अकेला ज्ञान का प्रकाश लेना है। तत्त्व में पूरा लेना है। दोनों का ज्ञान होता है। आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, प्रभु! आहाहा! अनन्त काल, अनन्त-अनन्त काल परिभ्रमण कर-करके दुःखी हो

गया है, दुःखी है। आहाहा! दो-पाँच-दस वर्ष जहाँ एक रोग चले, वहाँ ऐसा कायर हो जाये। हाय... हाय... मिटता नहीं। एक रोग मिटे वहाँ दूसरा, दूसरा मिटे वहाँ तीसरा, तीसरा मिटे, वहाँ चौथा। अब यह तो अभी तो कितने रोग। एक अँगुल में ९६ रोग। एक अँगुल में ९६ रोग, ऐसे पूरे शरीर में कितने होंगे? ऐसा शब्द किया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने। कितने होंगे? ऐसा पूछा। ऐसा शब्द है। आहाहा! वेदना की मूर्ति है, यह तो दुःख की दुःख। रोग की मूर्ति। प्रभु आत्मा तो आनन्द की मूर्ति है। दो आमने-सामने। आहाहा!

आचार्य को ऐसा कहना है, बारम्बार स्मरण करे अर्थात् इसका अर्थ कि उसने तो धारण किया है, जाना तो है। वह जाना हुआ बारम्बार याद किया करता है, स्मरण करता है। आहाहा! दूसरे सबका स्मरण छोड़कर उसका स्मरण करता है। भगवान का स्मरण, ऐसी भी बात नहीं ली यहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : स्मरण हो, वही निर्विकल्पता।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा?

मुमुक्षु : स्मरण हो तो निर्विकल्प दशा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्मरण यादगिरि वही निर्विकल्प है। उसका स्मरण अर्थात् ज्ञान होना, ऐसा कहना है। राग होना, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो यह स्मरण निर्विकल्प।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

उनका मोह टूट जाता है। भाषा देखो न! विकल्पवाला हो तो मोह टूटे? है न उसमें? एक तो आचार्यों के शब्द हैं और यह दिगम्बर सन्त केवलज्ञान के पाट पर बैठे हुए हैं ये तो। आहाहा! केवलज्ञान का उत्तराधिकार प्राप्त किया है। एक-एक शब्द और एक-एक भाव। आहाहा! अलौकिक बातें हैं। आठ-आठ वर्ष के लड़के और चक्रवर्ती चल निकलते होंगे, वह क्या? आहाहा! जिनके घर में छियानवें करोड़ तो सैनिक।

मुमुक्षु : .... गरीब को....

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब को क्या, परन्तु ऐसा कि ऐसे हों आठ वर्ष के लड़के,

वे यह सुने न जहाँ... आहाहा! हम हमारे आत्मा के शोधक में जायेंगे अब। हमको यहाँ कहीं रुचि नहीं जमती। हमको कहीं ठीक नहीं लगता। जहाँ हमको ठीक लगे, वहाँ हम जाना चाहते हैं। आहाहा! गरीब हो तो क्या? गरीब की तो बात ही क्या करना? परन्तु यह तो चक्रवर्ती के आते हैं नहीं वे? क्या नाम नहीं?

मुमुक्षु : जयकुमार।

पूज्य गुरुदेवश्री : जयकुमार तो उसका सेनापति। वे १०८ लड़के नहीं खेलते थे? खेलते थे और भगवान के पास चले गये। १०८। नाम भूल गये। भरतेशवैभव में आता है।

मुमुक्षु : रविकीर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : रविकीर्ति। रविकीर्ति आदि हैं। १०० राजकुमार गिल्ली-डण्डा खेलते थे। सोने की गिल्ली, साथ में एक व्यक्ति को भेजा उनकी माँ ने। लड़के खेलते हैं। उसमें से सेनापति जय, कैसा? जयकुमार। उन्होंने सुना कि जयकुमार ने दीक्षा ली है। वे लड़के खेलते थे १५-१५ वर्ष के, १६-१६ वर्ष के, २०-२० वर्ष के जवान। आहाहा! ऐसे सोने की गिल्ली से खेलते थे। वहाँ व्यक्ति निकला कि क्या है? कि अपना सेनापति छियानवें करोड़ सैनिकों का स्वामी जयकुमार ने भगवान के निकट दीक्षा ली है। ओहोहो! धन्य-धन्य अवतार! धन्य काल... धन्य। पुलिस को कहे, साथ में मनुष्य को-मनुष्य को। चलो अपने ऐसे जाते हैं, भगवान के पास जायेंगे। ऐसा करते... करते... करते... उसको खबर नहीं कि क्या होगा यह? दीक्षा ली है। आहाहा! जाते-जाते भगवान के पास गये। प्रभु! दीक्षा दो। आहाहा! वे सौ जनें (राजकुमार) दीक्षित हो गये और उनका जो व्यक्ति था वह तो रोवे... रोवे... रोवे... अरेरे! इनकी माँ ने मुझे सम्हालने के लिये भेजा था। ये दीक्षित हुए, मैं क्या जवाब दूँगा? कहो। वह भी... है न एक? आहाहा! जिसने आत्मा सुना कि आत्मा ने दीक्षा ली उसने। हमारा बड़ा सेनापति। उसकी स्त्री क्या कहा सुलोच? सुलोचना। आहाहा! वे अपने अतीन्द्रिय आनन्द में रमने के लिये दीक्षित हुए। आहाहा! यह खेल क्या लगाया है तूने यह? ऐसा हो गया। गिल्ली-डण्डा खेलते थे न? आहाहा!

अन्तर का भगवान जहाँ जानने में तो आया था, कहते हैं। यह बात जहाँ सुनी, वहाँ एकदम प्रफुल्लित असंख्य प्रदेश में रोम-रोम अन्दर उल्लसित हो गया। ओहोहो! आनन्द को साधने के लिये मुनि हुए। इस खेल में पाप और यह क्या? उन्होंने वह वास्तविक रमणता मांडी। भगवान के पास दीक्षित हो गये, लो। आहाहा!

यहाँ क्या कहना है कि जिस चीज़ को जिसने जाना है, श्रद्धा की है, अनुभव किया है, उसे स्मरण में आने पर पूर्ण होने में अब उसे देरी नहीं है। समझ में आया? उसका फल बताते हैं न यहाँ? आहाहा! उसका बारम्बार स्मरण। आहाहा! आज्ञा की बात आवे तब नहीं आता? प्रवचनसार। माँगे तब, हे स्त्री! बड़ा राजकुमार हो, अरबों के मकानों में, अरबों रुपये के गहने शरीर के ऊपर, जहाँ अन्दर में वैराग्य आता है तो कहता है, हे स्त्री! तू इस शरीर को रमानेवाली है, मुझे नहीं। मेरा नाथ तेरे साथ नहीं रमता। आहाहा! मैं तो मेरी अनादि की अनुभूतिरूपी स्त्री के पास जाना चाहता हूँ। त्रिकाली, हों! मेरा नाथ अनुभूति आनन्द का अनुभव करनेवाला त्रिकाल है। उसके पास उस अनुभूति के पास जाना चाहता हूँ। आहाहा! माता! आज्ञा दे। आहाहा! वह प्रसंग कैसा होगा! आहाहा!

वह दृष्टान्त नहीं दिया था? भर्तृहरि का दृष्टान्त नहीं दिया था? नाटक देखा था, हों! मैंने सब भर्तृहरि के और (दूसरे भी नाटक देखे थे)। घर की दुकान स्वतन्त्र, इसलिए पिताजी शाम को कहे गाँव में आया हो नाटक। जाओ। पैसा ले जाओ, जाओ नाटक देखने शाम को। परन्तु यह तो ६०, ६१, ६२, ६३ की बात है, हों! उसमें वह आता है न, क्या कहा? भर्तृहरि, भर्तृहरि। आहाहा! रानी को देता है फल, आया है न ऊँचा। बड़ा फल आया है, वह दरबार को दिया। उस दरबार ने दिया पिंगला को। अपनी रानी को। पिंगला ने दिया उसका रखा हुआ था अश्वपाल—घोड़े का रक्षक। आहाहा! उसने दिया वैश्या को, उसने लाकर वापस दिया दरबार को। अरे! यह क्या? यह फल यहाँ कहाँ से? वैश्या को कहे, तेरे पास कहाँ से? यह अमृतफल मैंने दिया था। अन्नदाता! मुझे तो अश्वपाल ने दिया है। अश्वपाल को बुलाया—भाई! तुझे कहाँ से? मुझे पिंगला ने दिया है। आहाहा! दृष्टि की तो खबर नहीं परन्तु वैराग्य में एकदम, 'देखा नहीं कुछ सार जगत में देखा नहीं कुछ सार। प्यारी नारी पिंगला रानी वह

अश्वपाल को यार', उसे मैं एक बड़ा मालवा का अधिपति, बानवें लाख मालवा का मैं अधिपति, उसकी रानी ने अश्वपाल... आहाहा! दीक्षित होता है। आहाहा!

गुरु कहते हैं कि वहाँ भोजन लेने जा। अरे! स्वामी! ऐसे पिंगला के पास जा। पिंगला के पास जाता है। माता! आहाहा! गायन है, सब सुना हुआ सब। मुझे माता न कहो राजा! मुझे माँ न कहो। अरे! माता! झट भिक्षा दे, वरना मेरी क्या कहलाती है? जमात... जमात। जमात चली जाती है। गुरु ने मुझे आज्ञा दी है। प्रभु! आज मेरे पास कुछ नहीं है, मैं तो शोक में हूँ, कुछ पकाया नहीं। क्षणभर खड़े रहो तो खीर बना दूँ। यह गायन आता है सब, हों! तब तो सब किया न? एक क्षण में खड़े रहो तो दूध है दूध, खीर बना दूँ। खड़े रहने का अवकाश नहीं। माता! तैयार हो, वह दे, वरना मैं चला जाता हूँ। आहाहा! यह तो दृष्टि बिना का वैराग्य है और जिसने आत्मा देखा है, आहाहा! उसका स्मरण करने के लिये जब वह जोग छोड़ता है। आहाहा! पूरी दुनिया तुच्छ। भगवान एक परम रत्न दिखता है उसे। आहाहा! नाटक में सब ऐसा बहुत आवे। तब वह पुस्तक लेते थे। वाँचते। सब मुखाग्र हो गया था। बहुत वर्ष की बातें। पिचहत्तर वर्ष पहले की बातें सब।

'खीर रे बनाऊँ क्षण एक में। जीमते जाओ योगी राज।' ऐसा गायन आता है। स्त्री पिंगला कहती है। खीर बनाऊँ एक क्षण में। माता! एक क्षण भी खड़ा नहीं रह सकता। तेरे पास जो कुछ हो, वह दे। प्रभु! आज मेरे पास कुछ नहीं। मैंने कुछ पकाया नहीं। आपके दीक्षित होने का यह सुनकर मैं तो शोक में हूँ। चले गये। आहाहा! तब जहाँ आत्मज्ञान हुआ, भान हुआ, उसे जब वैराग्य हो, उसकी वस्तु यह तो। आहाहा! यह तो उसे बारम्बार प्रभु! प्रभु! याद आता है। आनन्द का सागर मेरा, मुझे और उसे विरह पड़ा अनादि का। आहाहा! अब वह विरह टूटा, अब बारम्बार उसका स्मरण करते हुए। यह '**अनुदिनं**' का अर्थ चलता है यह। समझ में आया? आहाहा!

स्मरण करते हैं, उनका निर्मोह आत्मद्रव्य से विलक्षण जो मोहनामा कर्म शीघ्र ही टूट जाता है,... नवलचन्दभाई! विकल्पवाला स्मरण हो तो वह बात नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द की माला वहाँ फिरे। विकल्प बिना की, हों! आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! वीतरागमार्ग। श्रद्धा में सच्चा लेना, वह महामुश्किल

है। उसकी रमणता की बातें तो क्या करना? अरे! प्रभु! मुश्किल से बाहर आया है अब यह, हों! और लोग विरोध करते हैं। प्रभु! क्या करता है, भाई!

उनका निर्मोह आत्मद्रव्य... मोह टूटेगा... मोह टूटेगा। परन्तु अब मोह की व्याख्या करते हैं कि मोह कौन है? कि निर्मोह ऐसा जो आत्मद्रव्य। ऐसे अभी मोह की व्याख्या करते हैं। निर्मोह ऐसा जो आत्मद्रव्य, उससे विलक्षण-उससे विपरीत। आहाहा! **जो मोहनामा कर्म... 'अनुदिनं नामं गृह्णन्ति'** यह नाम में से निकाला है यह। उसमें नहीं आता भाई नाम, क्या कहलाता है? भाई! प्रवचनसार। नाम परन्तु उस नाम का अर्थ यह नाम है उसका, इसलिए अन्दर साथ वस्तु उत्पन्न हो जाती है। आहाहा! जिसका नाम भी अर्थ है, ऐसा कुछ पाठ है।

मुमुक्षु : नाम ग्रहण भी अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नाम ग्रहण भी अच्छा है, पाँच गाथायें हैं। प्रवचनसार की पहली (शुरुआत की)। आहाहा! वह यह नाम लेना। ...याद आता है। भाषा भाषा में रह जाती है। समझ में आया? जैसे शक्कर शब्द है, उसमें कहीं शक्कर नहीं। परन्तु शक्कर शब्द से शक्कर याद आ जाती है। आहाहा! इसी प्रकार नामस्मरण में से याद आ जाते हैं यह भगवान। आहाहा!

'अनुदिनं नामं गृह्णन्ति' इसका अर्थ कोई करे कि इसमें तो नाम ग्रहण मोह टूटे, ऐसा कहा है। पाठ ऐसा है न! परन्तु उसका अर्थ यह। इसीलिए स्पष्टीकरण करना पड़ा न? **स्मरण करते हैं,... उसी का स्मरण करते हैं,...** उसका नाम याद करते हैं, उसका अर्थ स्मरण करते हैं, स्मरण करते हैं, उसका अर्थ कि वस्तु उसके ज्ञान में आयी है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **उनका निर्मोह आत्मद्रव्य से विलक्षणों जो मोहनामा कर्म... 'झटिति त्रुट्यति'** आहाहा! लो! वह टूट जाता है। **शीघ्र ही टूट जाता है,...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ को स्मरण करते हुए दूसरा सब विस्मरण हो जाता है। तब जो मोह, निर्मोह ऐसा जो भगवान आत्मा, उससे विलक्षण—विपरीत लक्षणवाला मोह, वह टूट जाता है। आहाहा! मध्यस्थ से सुने न कोई दो, चार दिन, आठ दिन तो उसे खबर पड़े कि यह क्या कहते हैं! बापू! यह घर की बात नहीं, बापू! यह वस्तु का

स्वरूप है यह तो। यह सोनगढ़ कल्पना से करता है और उसका... अरे! प्रभु! क्या करता है? बापू! अभी कोई पूछनेवाला नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका आत्मा पूछनेवाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका आत्मा उसे बेचारे को खबर नहीं, क्या करे? उसकी खबर नहीं। क्या करता हूँ?

उस बाई का नहीं आता। कोई बड़ी बाई थी। उसका देश। उसका ससुराल था, उसका दूसरा उसमें। बड़ी गृहस्थ बड़ी राजा की रानी थी। फिर उन्हें—लोगों को ऐसा लगा कि यह देश की विरोधी है। क्योंकि इसका पीहर अन्यत्र अर्थात् विरोधी नहीं। फिर लोहे के टुकड़े इकट्ठे करके पाँच सौ-हजार मण ऊपर बैठाया। सुलगाया। बहुत नाम आता है। इतिहास में बड़ी रानी—बड़ी बाई थी। वह अन्त में ऐसा बोले। प्रभु! यह क्या करते हैं? किसे करते हैं? प्रभु! इन्हें माफ करना। उसे खबर नहीं। मैं तो इस देश की हूँ, तथापि इस देश की विरोधी हूँ, ऐसा कहकर ये लोहे के वे सुलगाते हैं, बाई मर जाती है। आहाहा! प्रभु! यह किसे करते हैं? क्या करते हैं, इसकी इन्हें खबर नहीं। प्रभु! इन्हें क्षमा देना। आहाहा!

यहाँ वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं, वह बात है। उसकी खबर नहीं। अकेले व्यवहार से होता है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार का लोप करते हैं। उघाड़े चौके बात करते हैं। यहाँ उघाड़े चौके बात करते हैं। व्यवहार से निश्चय बिल्कुल तीन काल—तीन लोक में नहीं होता। आहाहा! यहाँ क्या कहते हैं? वस्तु का स्मरण निर्विकल्प वस्तु है, उसके स्मरण से मोह टूटता है। या व्यवहार से टूटता है?

मुमुक्षु : वह तो राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत है। आहाहा! यह तो कहा नहीं? मोह है, वह निर्मोह आत्मद्रव्य से विपरीत है। आहाहा! यह विकल्प जो है व्यवहार का, प्रभु! वह तो राग है और परसन्मुख की दशा है, उससे स्वसन्मुख की दशा हो, (-ऐसा नहीं है)। भाई! यह तो दो और दो = चार जैसी सीधी बात है। परन्तु थी नहीं न ऐसी, इसलिए लोगों को यह सोनगढ़ की (बात) है। ऐसा (लोग) कहते हैं, लो!

मुमुक्षु : एकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त है। कल बहुत आया था। बहुत आया था।

मुमुक्षु : मक्खनलालजी का।

पूज्य गुरुदेवश्री : मक्खनलालजी का। ऐसा कि मैंने बहुत वाँचा नहीं उनका। उस करुणादीप में थोड़ा मक्खनलालजी का आया है। है, उसे बैठा, वह करे बेचारा, क्या करे भाई!

यहाँ तो व्यवहार जो है, वह राग है। और वह राग आत्मद्रव्य से भिन्न है। यहाँ ऐसा कहा न? कि मोह है, वह निर्मोह ऐसा जो आत्मद्रव्य, उससे भिन्न है। उस मोह को तोड़ता है। इसका अर्थ यह कि व्यवहार है, वह आत्मद्रव्य से भिन्न है। और भिन्न है, उससे व्यवहार टूटता है। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं परन्तु उससे व्यवहार टूटता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'**त्रिभुवननाथा भवंति**' आहाहा! **शुद्धात्मतत्त्व की भावना के फल से...** भाषा देखो! ऐसा कहा है। कोई व्यवहार से करने से ऐसा होता है उसे। **शुद्धात्मतत्त्व की भावना के फल से पूर्वे देवेंद्र चक्रवर्त्यादि की महान विभूति पाकर...** पहली मिले। आहाहा! ऐसा कि यह पंचम काल है न, इस अपेक्षा से बताते हैं। इस भव में अभी मोक्ष नहीं, इसलिए इस शैली से यहाँ वर्तमान में बात करते हैं। समझ में आया? मानो अभी केवल(ज्ञान) नहीं, ऐसा। उस **शुद्धात्मतत्त्व की भावना के फल से...** पहले देवेन्द्र होता है, चक्रवर्ती होता है, तीर्थंकरादि होता है। **महान विभूति पाकर चक्रवर्ती पद को छोड़कर...** आहाहा! छियानवें हजार पद्मनी जैसी स्त्रियाँ, उन्हें कफ छोड़े, वैसे छोड़ देता है। मेरी वस्तु नहीं, मैं उसमें नहीं। जहाँ मैं हूँ, वहाँ वह आनन्द है, वह जहाँ है वहाँ लक्ष्य करना, वह दुःख है। आहाहा! उसे छोड़ देता है।

जिनदीक्षा ग्रहण करके केवलज्ञान को उत्पन्न कराके तीन भुवन के नाथ होते हैं,... लो! तीन लोक का नाथ सिद्ध भगवान वह होता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २०७

अथ परमात्मप्रकाशशब्दवाच्यो योऽसौ परमात्मा तदाराधकपुरुषलक्षणज्ञापनार्थं सूत्रत्रयेण व्याख्यानं करोति। तथथा–

३३०) जे भव–दुक्खहँ बीहिया पउ इच्छहिं णिव्वाणु।
इह परमप्प–पयासयहँ ते पर जोग्ग वियाणु।।२०७।।

ये भवदुःखेभ्यः भीताः पदं इच्छन्ति निर्वाणम्।
इह परमात्मप्रकाशकस्य ते परं योग्या विजानीहि।।२०७।।

ते पर त एव जोग्ग वियाणु योग्या भवन्तीति विजानीहि। कस्य। इह परमप्प–पयासयहं व्यवहारेणास्य परमात्मप्रकाशाभिधानग्रन्थस्य, परमार्थेन तु परमात्मप्रकाशशब्द–वाच्यस्य निर्दोषिपरमात्मनः। ते के। जे बीहिया ये भीताः। केषाम्। भव–दुक्खहं रागादिविकल्प–रहितपरमाह्लादरुपशुद्धात्मभावनोत्थपारमार्थिकसुखविलक्षणानां नारकादिभवदुःखानाम्। पुनरपि किं कुर्वन्ति। जे इच्छहिं ये इच्छन्ति। किम्। पउ पदं स्थानम्। णिव्वाणु निर्वृतिगतपरमात्माधारभूतं निर्वाणशब्दवाच्यं मुक्तिस्थानमित्यभिप्रायः।।२०७।।

आगे परमात्मप्रकाश शब्द से कहा गया जो प्रकाशरुप शुद्ध परमात्मा उसकी आराधना के करनेवाले महापुरुषों के लक्षण जानने के लिये तीन दोहों में व्याख्यान करते हैं–

जो संसार दुखों से हो भयभीत मोक्षपद को चाहें।
उनको ही परमात्म–प्रकाश ग्रन्थ पढ़ने के योग्य कहें।।२०७।।

अन्वयार्थः– [ते परं] वे ही महापुरुष [अस्य परमात्मप्रकाशकस्य] इस परमात्मप्रकाश ग्रंथ के अभ्यास करने के [योग्याः विजानीहि] योग्य जानो, [ये] जो [भवदुःखेभ्यः] चतुर्गतिरुप संसार के दुःखों से [भीताः] डर गये हैं, और [निर्वाणम् पदं] मोक्षपद को [इच्छंति] चाहते हैं।

भावार्थः– व्यवहारनयकर परमात्मप्रकाशनामा ग्रंथ की और निश्चयनयकर निर्दोष परमात्मतत्त्व की भावना के योग्य वे ही हैं, जो रागादि विकल्प रहित परम आनंदरुप शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न हुए अतीन्द्रिय अविनश्वर सुख से विपरीत जो

नरकादि संसार के दुःख उनसे डर गये हैं, जिनको चतुर्गति के भ्रमण का डर है, और जो सिद्धपरमेष्ठी के निवास मोक्षपद को चाहते हैं।।२०७।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल २, गुरुवार
दिनांक- १९-०५-१९७७, गाथा - २०७-२०८, प्रवचन-२४२

परमात्मप्रकाश, २०७ गाथा। २०६ गाथा हो गयी। **आगे परमात्मप्रकाश शब्द से कहा गया जो प्रकाशरूप...** परमात्मप्रकाश का अर्थ किया। परमात्मप्रकाश शब्द से **कहा गया जो प्रकाशरूप शुद्ध परमात्मा...** प्रकाश परमात्मा, परमात्मप्रकाश, ऐसा। **प्रकाशरूप शुद्ध परमात्मा उसकी आराधना के करनेवाले...** ऐसा जो प्रकाशरूप परमात्मतत्त्व आत्मा, उसकी आराधना, सेवा करनेवाला **महापुरुषों के लक्षण जानने के लिये...** जानने के लिये **तीन दोहों में व्याख्यान करते हैं—**परमात्मप्रकाश समझने के योग्य कौन है? उसकी कितनी योग्यता हो, वह यहाँ बतायी है। २०७

३३०) जे भव-दुक्खहँ बीहिया पउ इच्छहिं णिव्वाणु।
इह परमप्प-पयासयहँ ते पर जोग्ग वियाणु।।२०७।।

वे ही महापुरुष... 'अस्य परमात्मप्रकाशस्य' इस परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के अभ्यास करने के योग्य जानो,... आहाहा! कौन? **'भवदुःखेभ्यः भीताः' चतुर्गतिरूप संसार के दुःखों से डर गये हैं,...** यह इसकी पहली शर्त है। चार गति में भटकने मनुष्यपना हो या नरक हो या पशु हो या देव हो। वे चारों गतियाँ दुःख हैं दुःख। उस दुःख से जिसे भय लगा है। चार गति के दुःख से जिसे डर लगा है। आहाहा! यह उसकी पहली शर्त। चौरासी लाख भव में भ्रमण करना, वह महादुःख है। उसका जिसे डर लगा है। आहाहा! उसकी चतुर्गतिरूप संसार के दुःख। यहाँ तो चारों गति को दुःख कहा। देव में सुख है, मनुष्यपने में सेठाई में सुख है, राजापने में सुख है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। आहाहा! चारों गति दुःख के भाव से भरपूर है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा ही आनन्द से भरपूर है।

यह आत्मा है, वह अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। उससे विरुद्ध चार गति दुःख

से भरपूर है। आहाहा! कुछ भव करे और जगत का उद्धार हो न, भव करें और कुछ जगत को सुख के साधन दें, सुविधा दें, भले भव करना पड़े। ऐसा जिसका भाव है, वह तो मिथ्यादृष्टि भव से डरा नहीं। आहाहा! ऐसा चलता है न? कि भले एकाध भव करना पड़े परन्तु भव करके मनुष्यों को सुविधा-सुख के साधन देकर सुखी करेंगे। वह भव से डरा नहीं है। जो भव करने से दुःख होता है, उसके बदले भव करने से सुख के साधन दूसरों को दूँ, यह दृष्टि ही विपरीत है, मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसा कि दुनिया की अनुकूलता के लिये भले एकाध भव हमारे करना पड़े, कोई दिक्कत नहीं। ऐसी जिसे भव के भय का डर नहीं। उसे भव करने में उत्साह है। आहाहा!

'**भवदुःखेभ्यः भीताः**' आहाहा! अब यहाँ से डरे, अब किस पद की भावना? '**निर्वाणम् पदं इच्छंति**' मात्र जिसे मोक्ष की इच्छा है। चार गति के भय से डरकर परमपद ऐसा जो मोक्षपद, परमपद ही वह है। पाठ यह है न? '**निर्वाणम् पदं**' पाठ में यह है '**पउ इच्छहिँ णिव्वाणु**' निर्वाणपद, वही उत्कृष्ट पद है। आत्मा को संसार के भावों का दब जाना, शान्त हो जाना और वीतराग परमानन्द का प्रगट होना, वही परमपद है। आहाहा! यहाँ तो सर्वार्थसिद्धि के भव को परमपद नहीं कहा। दुःख कहा दुःख। कषाय है न वहाँ वह? भले एकावतारी है। परन्तु वहाँ वह कषाय है। तीन कषाय का दुःख है और मनुष्यरूप से अवतरित होगा, वहाँ भी कषाय है, उसे दुःख है। आहाहा!

इसलिए जिसे भवभ्रमण से जिसको त्रास है। आहाहा! यह तो दुनिया के सुख का उत्साह और ऐसे घनघनाहट हो गया है जिसे। संसार के सुख के लिये, शरीर के, स्त्री के, पैसे के, इज्जत के, भोग के, खाने-पीने के, हरने-फिरने के लिये, बाग-बगीचा के। आहाहा! जिसे यह हर्ष और उत्साह है, वह भव से नहीं डरा। वह भव से-भ्रमण से नहीं डरा। आहाहा! उसे चार गति में अनुकूलता हो या प्रतिकूलता हो, सब कषाय के भाव दुःख हैं। उनसे डर पाकर निर्वाण के पद को चाहता है, अत्यन्त शान्त... शान्त... शान्त... वीतरागी शान्ति, वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा जो निर्वाणपद को चाहता है, वह मोक्षशास्त्र के परमात्मप्रकाश के योग्य है। आहाहा! है न? **मोक्षपद को चाहते हैं।**

भावार्थः—व्यवहारनयकर परमात्मप्रकाशनामा ग्रन्थ... इसका अभ्यास व्यवहार

से। यह विकल्प है। सार, परमात्मप्रकाश का अभ्यास सुनना, वाँचना, उसका विचारना, वह सब विकल्प है। व्यवहारनय से भी। आहाहा! **परमात्मप्रकाशनामा ग्रन्थ को और निश्चयनयकर निर्दोष परमात्मतत्त्व की भावना के योग्य...** निश्चय से परमात्मतत्त्व निर्दोष परमात्मतत्त्व। चार गति सदोष है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा भी कहा कहा कि तीर्थंकर प्रकृति बाँधकर तीर्थंकर होना, ...

मुमुक्षु : वह अपराध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसा कि तीर्थंकर होगा तो मोक्ष होगा न। परन्तु तीर्थंकर भव है, वह रागवाला, कषायवाला, दुःखवाला है। आहाहा! जिसे चार गति के भव से डर लगा है।

२०७ गाथा है। उसका भावार्थ चलता है। २०७ गाथा का भावार्थ। इस पुस्तक का नाम परमात्मप्रकाश है। भावार्थ-भावार्थ नीचे। **व्यवहारनयकर परमात्मप्रकाशनामा ग्रन्थ को...** योग्यतावाला कौन है? उसे सुनने की योग्यतावाला। आहाहा! **और निश्चयनयकर निर्दोष परमात्मतत्त्व की भावना...** यह आत्मा वस्तु है अन्दर, वह निर्दोष आनन्दकन्द है। २०७ का भावार्थ। है या नहीं बलुभाई? यह है न। भावना परमात्मतत्त्व ऐसा जो यह भगवान आत्मा। आहाहा! जिसमें पुण्य और पाप के विकल्प जो है, वह विकार और दोष है। शुभ और अशुभभाव, यह कमाने का, भोग का, विषय का, धन्धे का, नौकरी का, वह भाव अत्यन्त पाप है। और दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का भाव, वह पुण्य है। दोनों दोषरूप है। आहाहा! दोनों दुःखरूप हैं।

मुमुक्षु : दुःखरूप है पुण्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष कहो या दुःख कहो, सब एक ही है। यह अरबोंपति और करोड़ोंपति बेचारे भिखारी दुःखी हैं। क्योंकि उनकी तृष्णा, पर के ऊपर जाती है। यह लाओ, यह लाओ, जो वह उसमें नहीं, उस चीज़ को लाओ... लाओ में तृष्णा है, वह तृष्णा महादुःख है। आहाहा! महापाप है, महा दुःख है और महा परिभ्रमण का कारण है। चौरासी के अवतार में अवतरित होना कौआ, कुत्ते में, उसके यह सब भाव हैं। बलुभाई! यह सब पैसेवाले को सुखी कहते हैं, ये पागल लोग। गांडा समझे न, यह सब

पागल हैं। पागल सब हो न। दो-पाँच करोड़ रुपये हों और दस करोड़ हों तो सुखी है, सुखी है। धूल में भी नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : दो-पाँच लाख तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दो-पाँच करोड़ कहे। यह अभी करोड़पति बहुत हैं न। पाँच, दस करोड़ ऐसे रुपये तो बहुतों के पास हैं अभी। २५-२५ करोड़ रुपयेवाले हैं। अपने बनिया में हैं।

मुमुक्षु : सबको सुख मिले या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है, कहा न बड़ा पापी है? आहाहा! जिसे आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है अन्दर, सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वरदेव अतीन्द्रिय आनन्द की खान तो यह आत्मा है। उसकी सन्मुखता और उसकी जिसे रुचि नहीं, उसे परसन्मुखता और पर की रुचि सब प्राणी दुःखी है। आहाहा! समझ में आया? बात ऐसी है। दुनिया से अलग प्रकार है। भाई! दुनिया तो यह पागल सब इकट्ठे हुए हों तो पागल की महिमा करे। दो-पाँच, दस करोड़ इकट्ठे हुए हों और वापस खर्चता हो दो-पाँच लाख, दस लाख, बीस लाख, करोड़ दे देवे तो भी धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, इस ग्रन्थ को और इस शास्त्र के भाव के योग्य कौन? कि एक तो निर्दोष परमात्मा स्वयं स्वरूप है जिसका अन्दर। आहाहा! यह आत्मा निर्दोष परमात्मस्वरूप ही उसका है। यदि उसका स्वरूप निर्दोष परमात्मा न हो तो मोक्ष होने से जो परमात्म निर्दोष दशा होती है, वह कहाँ से आयेगी? कहीं बाहर से आनेवाली है? अन्दर में आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु है। सत् चिदानन्द, सत् है, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् अतीन्द्रिय सुख, उसका वह सागर प्रभु है। कहाँ भान है यहाँ बाहर से व्यर्थ प्रयास करे। मूर्ख होकर। यहाँ सुख है, यहाँ सुख है, यहाँ सुख है। स्त्री में सुख है, पैसे में सुख है, मकान बड़ा, दो-पाँच, पचास लाख का मकान हो हजीरा। हजीरा समझ में आता है? वे वोहरा मरते हैं, उन्हें हजीरा में दफनाते हैं। वे मुल्ला... मुल्ला नहीं? जामनगर में बहुत है हजीरा बाहर नदी के किनारे।

मुमुक्षु : जामनगर में हजीरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हजीरा है बड़ा बाहर। नदी के किनारे। हम गये थे। हम तो दिशा को जाते हैं न तो। हजीरा वहाँ, ऐसे दफनाये। इसी प्रकार इस हजीरा में दब गया पड़ा है बड़ा। पैसा, इज्जत, कीर्ति और धूल की। आनन्द के नाथ को अन्दर क्या है, उसके सामने देखता नहीं। सच्चिदानन्द प्रभु भगवान आत्मा है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार, अतीन्द्रिय आनन्द जो परमात्म मोक्ष में होता है, वह कहाँ से आता है? वह अन्दर में है। बापू! उसे खबर नहीं। धर्म के बहाने भी यह दया, दान, व्रत, तप और भक्ति करे मानो कि धर्म है। वह धर्म नहीं। वह राग है, पुण्य है, विकार है, दुःख है। आहाहा! उससे रहित भगवान आत्मा अन्दर सदोषता के भाव से रहित है। वह सदोष भाव है पुण्य और पाप दोनों। आहाहा!

निर्दोष परमात्मतत्त्व की भावना... है? क्या कहते हैं इसमें? यह तो संक्षिप्त शब्दों में बहुत गम्भीरता भरी है। है? **निश्चयनयकर...** अर्थात् सच्ची दृष्टि से देखें तो, निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि से देखें तो। **निर्दोष परमात्मतत्त्व...** जो यह निर्दोष परमात्मस्वरूप अन्दर है वह। उसकी **भावना के योग्य वे ही हैं,...** उसकी भावना अर्थात्? वह चैतन्य भगवान के सन्मुख होकर रागादि बाह्य के क्रियाकाण्ड के विकार से विमुख होकर स्वभाव का सागर भगवान है, उसके सन्मुख होना, वह उसकी भावना कही जाती है। आहाहा! यह परमात्मतत्त्व है, वह भाव है, वस्तु। वह संक्षिप्त शब्दों में कथा नहीं, यह कथा नहीं, यह तो अध्यात्म है। परमात्मा की बात है यह तो। निर्दोष परमात्मतत्त्व, वह वस्तु आत्मा त्रिकाली। उसकी भावना। उसकी एकाग्रता, उसके सन्मुख की लीनता **योग्य वे ही हैं,...** उसके योग्य वह जीव है कि **जो रागादि विकल्प रहित परम आनन्दरूप शुद्धात्मतत्त्व...** देखो! कैसा है भगवान आत्मा अन्दर? राग अर्थात् पुण्य और पाप के विकल्प से रहित। आहाहा! शुभ-अशुभभाव के विकल्प अर्थात् राग से रहित परम आनन्दरूप है। कौन? यह प्रभु आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभु आत्मा या भगवान आत्मा?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आत्मा तो हो गये। वे णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं में गये। यह तो णमो अरिहंताणं यह होने के योग्य यह आत्मा कैसा है, उसकी बात

चलती है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, यह रागादि विकल्परहित प्रभु अन्दर है। यह तो यदि उसमें रागसहित हो तो राग टलकर कभी परमात्मदशा-मोक्ष होगा नहीं। आहाहा! तो जितने भाव दया, दान, व्रत, तप के हैं, वह सब राग है। उसे दुनिया अभी धर्म मानती है। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ रागादि, वह पाप है। और दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, शास्त्र श्रवण, शास्त्र कथन करना इत्यादि भाव पुण्य है, वह भी बन्धन है। आहाहा! वह सदोषदशा है। उस सदोषदशारहित अन्दर परमात्मा स्वयं आत्मा वह निर्दोष परमात्मतत्त्व है। आहाहा!

वह **परम आनन्दरूप...** वह परम अतीन्द्रिय आनन्दरूप है। कैसे बैठे? आहाहा! यहाँ जरा पाँच हजार पैदा हों जहाँ दिन के। करो आज लापसी पाँच हजार पैदा हुए हैं। बलुभाई! क्या है? पाँच हजार पैदा हुए आधे घण्टे के। धूल में क्या हुआ परन्तु तुझे? हुआ क्या यह? कहते हैं, परम आनन्दरूप तो यहाँ यह है। आहाहा! दिखता नहीं, वह दिखता है। 'दिखता नहीं'—ऐसा कौन जानता है? लॉजिक से न्याय समझना पड़ेगा न! 'दिखता नहीं', वही 'दिखता नहीं', ऐसा जानता है। दिखता नहीं, यह जानता है कि दिखता हूँ। आहाहा! कभी भी कहीं निवृत्ति नहीं होती न इस पाप के कारण दुनिया की। आहाहा! अब और निवृत्त हुए, नहीं तो बड़ी विपरीतता में घुस नहीं गये थे? दवा का बड़ा सत्तर लाख का दवाखाना। सत्तर लाख उसमें। पैसे दूसरे किसी के पास होंगे और अपने थोड़े होंगे। फँस गये थे उसमें। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तीन लोक का नाथ यह अन्दर विराजता है, प्रभु तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह निर्दोष परमात्मतत्त्व, उस तत्त्व की अन्दर में तो पुण्य और पाप के विकल्प भी जिसमें नहीं। क्योंकि यह पुण्य और पाप, यह नौ तत्त्व में पुण्य और पाप का तत्त्व भिन्न है और भगवान आत्मा तो उससे रहित ज्ञायकतत्त्व, परमात्मतत्त्व भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा निर्दोष परमात्मतत्त्व, वह परम आनन्दरूप शुद्धात्मतत्त्व। आहाहा! यह तो परम आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द। यह धूल का आनन्द जो माना है, वह तो दुःख है और मूढ़ होकर मेरा माना है। समझ में आया? सन्निपातिया दाँत निकालता है (हँसता है), वह दुःख की दशा बढ़ गयी है, इसलिए दाँत निकालता है। सन्निपातिया

नहीं होता था वह ? वात, पित्त और कफ वक्र हो जाना। वात, पित्त और कफ का तीन का वक्र हो जाना, बढ़ जाना, इसका नाम सन्निपात। तीनों का मिलाप हो जाना। उसमें पागल हो जाता है, फिर दाँत निकालता है। सुखी है ? दुःखी है। इसी प्रकार यह स्त्री, पुत्र और पैसा सब मिले, वहाँ हम सुखी हैं। सन्निपातिया के दाँत (निकाले) जैसा है। पागल हो गया है पागल। आहाहा! बसन्तभाई! ऐसी तो बात ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो बात ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अर्थात् कि दुनिया की बात में अभी तो फेरफार बहुत हो गया है। धर्म के नाम से भी भगवान की भक्ति और दया, दान, नामस्मरण, स्मरण करना, वह सब धर्म मनाते हैं। वह धर्म नहीं। वह विकल्प की वृत्ति का उत्थान है। राग उठता है वह। आहाहा! समझ में आया ? पाप से बचने के लिये ऐसा भाव हो, परन्तु वह धर्म नहीं। आहाहा! धर्म तो यह निर्दोष परमानन्दरूप शुद्धात्मतत्त्व, उसकी भावना। आहाहा! देह, हड्डियाँ, चमड़ी है, वे भिन्न। अन्दर कर्म है परमाणु मिट्टी, पुण्य और पाप के रजकण कि जो पुण्य का फल आने पर धूल दिखती है, पैसा दिखता है धूल अर्थात् (पैसा) और पाप का फल आने पर निर्धनता दिखती है, वह सब पुण्य-पाप के रजकण पूर्व में किये हुए, बाँधे हुए पड़े हैं। वे सब जड़ हैं। यह शरीर जड़, मिट्टी, धूल है यह। इसी प्रकार यह कर्म मिट्टी सूक्ष्म जड़ है। और अन्दर पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे अरूपी जड़ हैं। वे अचेतन हैं। उनसे भिन्न भगवान शुद्धात्म चैतन्यस्वरूप, चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर ऐसा जो भगवान परमात्मतत्त्व, वह परम आनन्दरूप है। आहाहा! कहीं से सुने नहीं, उसे बेचारे को बैठे कब ? और भटकता रहे कब ? यह भटकता राम। चार गति में कीड़ा और कौआ और कुत्ता और मर-मरकर अवतार। आहाहा! बहुत मध्यम बात के जीव माँस और मदिरा तो खाते (पीते) न हों बेचारे, तथा धर्म हो नहीं, तथा पुण्य भी हो नहीं, दो-चार घण्टे सुनना प्रतिदिन और यह विचारना, वह पुण्य है। वह हो नहीं। वह मरकर ढोर की गति है एक, उन लोगों की। आहाहा!

यह परमानन्द तत्त्व भगवान आत्मा अन्दर है, उसकी भावना। है ? उसकी भावना अर्थात् अन्दर की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ। अतीन्द्रिय अविनश्वर सुख। आहाहा!

अतीन्द्रिय अविनश्वर सुख, आहाहा! यहाँ तो अभी विपरीत लेंगे वापस। आहाहा! भगवान अन्दर परमानन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय परमात्मतत्त्व की भावना से अर्थात् एकाग्रता से उत्पन्न हुआ। है? अतीन्द्रिय अविनश्वर, अतीन्द्रिय आनन्द जिसे उत्पन्न हो, उसे अविनश्वर, वह आनन्द नाश न हो। वह सुख जो आत्मा का, उससे विपरीत नरक, मनुष्य की गति, चार गति। नरक आदि है न? यह नरक गति है नीचे। बड़े माँस, मदिरा खाते (पीते) हैं, मछलियाँ खाते हैं, यह बड़े मिल के मालिक अरबोंपति यह बड़े धन्धे, वह सब पार्लियामेन्ट वहाँ नरक में भरती है। वे सब नरक में नीचे जानेवाले हैं, पापी। आहाहा! माँख खाये, मछलियाँ खाये। बड़ा धन्धा हो, ऐसी सब पानी की हौज सब भरी हो गर्म, बड़े मिल में बिल्लियाँ पड़े, कौवा पड़े, मरे। आहाहा! ऐसे पापी मारकर नरक में जाते हैं। आहाहा!

दूसरा नरक आदि है न? फिर पशु। आदि में पशु लेना। गाय, भैंस, नेवला, बड़ा चूहा। उसने क्या किया हुआ हो? पशु हो वह? वक्रता बहुत की हो। यह माँस, मदिरा आदि खाये (पीये) वह मरकर नरक में जाये और यह पशु-ढोर कौन होता है? छिपकली, गाय, भैंस ऐसे आड़े हैं न? यह मनुष्य ऐसे हैं और गाय, भैंस, घोड़ा, छिपकली, नेवला, बड़ा चूहा ऐसे आड़े हैं। पूर्व में वक्रता बहुत की है तिर्यंच में जाने की। माया, कपट, कपील, दम्भ, जिसका कलेजा हाथ न आवे, ऐसी गहरी माया करनेवाले, कपट करनेवाले, वे सब मरकर ढोर होनेवाले हैं। वक्रता की, इसलिए जिसका शरीर भी आड़ा हो गया है ऐसा। समझ में आया? यह दूसरी गति कही। नरक आदि है न! नरक, पश्चात् तिर्यंच यह दो। पश्चात् मनुष्य। यह मनुष्य होता है। यह कहीं राग की मन्दता की होती है तो मनुष्य होता है। परन्तु है सब दुःख। और आदि में एक देव लेना वापस चौथा। चार गतियाँ हैं। नरक की, पशु की, मनुष्य की और देव की। कोई पुण्यादि किये हों तो स्वर्ग में जाये, परन्तु वे सब बेचारे वहाँ दुःखी हैं। देव के भव में भी राग के लोभिया वे दुःखी हैं। आहाहा! दुनिया से दूसरी चीज़ है। आहाहा!

नरकादि संसार के दुःख... है? यह चारों गतियाँ दुःखरूप हैं। सेठिया जो कहलाते हैं करोड़ोंपति, अरबोंपति, वे बेचारे दुःखी हैं, विकार में दुःखी हैं। कषाय से जले-सुलगे हैं। भान नहीं होता उन्हें। आहाहा! और चूडा में वह हलवाई गांठिया

बनाता होगा। कुँवरजीभाई ने कहा। हमारे यहाँ आते थे अपने। आते थे यहाँ। प्रेमी थे। गुजर गये। तेल की कड़ाई, गांठिया या कुछ भुजिया बनाते होंगे। उसका धुँआ इतना अधिक लगा। ऊपर एक सर्प जा रहा था। वह सर्प पड़ा उसमें आधा, आधा पड़ा उसमें, आधा रह गया बाहर। यह तो बनिया बेचारा। जैन रूप से। मूल तो श्वेताम्बर है। यहाँ आते थे। उसे वह चिमटा होता है न, चिमटा? उसने वह आधा पड़ा यह, आधा बाहर निकाला ऐसे बाहर। बाहर निकाला ऐसा चूल्हे में गिर गया। वह मानों कि यहाँ जलन बहुत है न, इसलिए जलन से छूटने का रास्ता कौन सा, यह कुछ खबर नहीं होती, इसलिए बहुत जला तो वह जैसा बाहर निकाला, वैसा चूल्हे में गिर गया। जलकर राख।

इसी प्रकार यह अज्ञानी सुख को चाहते हैं, परन्तु दुःखरूपी अग्नि में अन्दर सिंक जाते हैं। आहाहा! इन्हें भान नहीं। आधा जला, आधा जला सुखी करने वह जो है वहाँ जाता है अग्नि में प्रवेश कर। आहाहा! गहरा-गहरा जाता है दुःख में, अरेरे! आहाहा! यह क्रोध, मान, माया, लोभ। क्रोध और मान को द्वेष कहते हैं और कपट और लोभ को राग कहते हैं, राग और द्वेष के ये चार भाग हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ। इन चार में जले-सुलगे हैं जगत के जीव। आहाहा!

यह **संसार के दुःख, उनसे डर गये हैं,...** आहाहा! जिसे यह चार गति के दुःख का डर लगा है, वह इस धर्म को सुनने के योग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसे संसार के दुःख का डर लगा है। आहाहा! परन्तु दुःख भासे तब न? वहाँ मजा दिखता है। आहाहा! मैसूर (पाक) उड़ता हो, अरबी के पत्ते के पतरवेलिया घी में तले हुए उड़े (खाये), उसमें रसगुल्ला हो, आहाहा! मानो हम मजा करते हैं। कषाय की अग्नि में; जैसे वह सर्प गिर गया था; उसी प्रकार कषाय की अग्नि में गहरा गिर जाता है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा हुकम करते हैं। जगत के प्राणी चार गति में दुःख में गहरे उतर गये हैं। वह यह परमात्मप्रकाश... आहाहा!

जिसे भव करने का भाव है, आहाहा! अर्थात् कि जिसे भव का डर ही नहीं कि अरे! मैं कहाँ जाऊँगा? मैं तो अनादि-अनन्त आत्मा हूँ। देह तो छूटकर राख होगी।

कहीं मैं नाश होता नहीं होवे साथ में। तो मेरा रहना कहाँ होगा? आहाहा! इस प्रकार जिसे चार गति के परिभ्रमण का डर लगा है। आहाहा! यह सेठ का और राजा का देव का भव करना, उसका भी डर लगा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिनको चतुर्गति के भ्रमण का डर है,... यह चार गति में भटकने का डर है, अरे! मैं कहाँ जाऊँगा? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। देह की स्थिति पूरी होगी, वहाँ आत्मा की स्थिति पूरी होगी? इसकी ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० इसकी—देह की स्थिति है यह तो। वह पूरी हो तो वह आत्मा कहीं उसके साथ इकट्ठा पूरा हो, ऐसा है? वह तो अनादि-अनन्त नित्य है। आहाहा! समझ में आया? उसमें जवान शरीर हो, २५, ३०, ४० वर्ष का। उसमें पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़ रुपये हों, स्त्री अच्छी हो, पुत्र आठ-दस हों और एक-एक पुत्र होशियार दो-दो लाख की मासिक आमदनीवाला हुआ हो। देखो! मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाये। अपने मानो बढ़ गये सबसे। किसमें? भटकने में। आहाहा!

अभी तो कुछ नहीं लगता बहुत। अपने करोड़पति तो बहुत बैठे ही होते हैं। अभी नहीं कोई। आहाहा! ऐसा जिसे डर है, वह **और जो सिद्धपरमेष्ठी के निवास मोक्षपद को चाहते हैं।** आहाहा! एक ही बात मेरी दशा परमानन्दरूपी मोक्षदशा, वह मुझे चाहिए है और संसार के चार भव का, चार गति का डर है, वह यह परमात्मप्रकाश सुनने को और अन्तर में उतरने को वह योग्य है। समझ में आया? यह २०७ हुई।

गाथा - २०८

अथ–

३३१) जे परमप्पहँ भत्तियर विसय ण जे वि रमंति।
ते परमप्प–पयासयहँ मुणिवर जोग्ग हवंति।।२०८।।

ये परमात्मनो भक्तिपराः विषयान् न येऽपि रमन्ते।
ते परमात्मप्रकाशकस्य मुनिवरा योग्या भवन्ति।।२०८।।

हवंति भवन्ति जोग्ग योग्याः। के ते मुणिवर मुनिप्रधानाः। के। ते ते पूर्वोक्ताः। कस्य योग्या भवन्ति। परमप्प–पयासयहं व्यवहारेण परमात्मप्रकाशसंज्ञग्रन्थस्य परमार्थेन तु परमात्मप्रकाशशब्दवाच्यस्य शुद्धात्मस्वभावस्य। कथंभूतो ये। जे परमप्पहं भत्तियर ये परमात्मनो भक्तिपराः। पुनरपि किं कुर्वन्ति ये। विसय ण जे वि रमंति निर्विषयपरमात्म–तत्त्वानुभूति–समुत्पन्नातीन्द्रियपरमानन्दसुखरसास्वादतृप्ताः सन्तः सुलभान्मनोहरानपि विषयान्न रमन्त इत्यभिप्रायः।।२०८।।

आगे फिर भी उन्हीं पुरुषों की महिमा कहते हैं–

लीन रहें परमात्म–भक्ति में विषयों में नहिं रमण करें।
वे मुनिवर परमात्म–प्रकाश के योग्य सदा हैं यह जानो।।२०८।।

अन्वयार्थः– [ये] जो [परमात्मनः भक्तिपराः] परमात्मा की भक्ति करनेवाले [ये] जो मुनि [विषयान् न अपि रमंते] विषयकषायों में नहीं रमते हैं, [ते मुनिवराः] वे ही मुनिश्वर [परमात्मप्रकाशस्य योग्याः] परमात्मप्रकाश के अभ्यास के योग्य [भवंति] हैं।

भावार्थः– व्यवहारनयकर परमात्मप्रकाश नाम का ग्रंथ जो निश्चयनयकर निजशुद्धात्मस्वरुप परमात्मा उसकी भक्ति में जो तत्पर हैं, वे विषय रहित जो परमात्मतत्त्व की अनुभूति उससे उपार्जन किया जो अतीन्द्रिय परमानंदसुख उसके रस के आस्वाद से तृप्त हुए विषयों में नहीं रमते हैं। जिनको मनोहर विषय आकर प्राप्त हुए हैं, तो भी वे उनमें नहीं रमते।।२०८।।

गाथा-२०८ पर प्रवचन

२०८, **आगे फिर भी उन्हीं पुरुषों की महिमा करते हैं—**२०८।

३३१) जे परमप्पहँ भत्तियर विसय ण जे वि रमंति।
ते परमप्प-पयासयहँ मुणिवर जोग्ग हवंति।।२०८।।

आहाहा! **जो परमात्मा की भक्ति करनेवाले मुनि...** मुख्यपना मुनि का लिया है न विशेष तो? परमात्मा की भक्ति अर्थात्? यह परमात्मा स्वयं ही है, उसमें लीन होना, वह भक्ति है। बाहर में भगवान की मूर्ति और भगवान की भक्ति, वह शुभभाव पुण्य है। आहाहा! होता है, पाप से बचने के लिये। छब्बीस लाख का तो यह मकान (परमागममन्दिर) है संगमरमर का। छब्बीस लाख। यह सब भक्ति का भाव होता है, शुभ पुण्य है। उससे धर्म हो और जन्म-मरण मिटे, वह चीज़ नहीं।

मुमुक्षु : आप तो ऐसा कहते हो कि वह बेकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बेकार अर्थात् अशुभ से बचने में निमित्त है। निमित्त, यह शुभभाव करे तो। उससे शुभभाव हो, वह नहीं। सिद्धान्त बहुत कठोर है, बापू! क्योंकि उसके ऊपर तो चिड़िया-चिड़ा भी बैठते हैं। यदि उससे भाव अच्छे होते हों वहाँ तो चिड़ा-चिड़ी कीड़े खाकर बैठते हैं भगवान के ऊपर तो। जो कोई शुभभाव-पुण्य करे, उसे यहाँ निमित्त कहा जाता है। पाप से बचना हो परन्तु वह धर्म है या जन्म-मरण मिटायेगा, वह भव घटायेगा, इस बात में कुछ दम नहीं है। आहाहा! कहो, माणेकलालजी! ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

जो (कोई) परमात्मा की भक्ति करनेवाले मुनि... भक्ति का अर्थ यह, हों! परमेश्वर वीतराग की भक्ति है, वह तो शुभभाव है। आहाहा! उसकी भक्ति अन्दर में परमात्मस्वरूप की। नियमसार में आता है न। श्रावक और मुनि दोनों आत्मा की भक्ति करते हैं। नियमसार में आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा की यही भक्ति। पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा, उसे पूर्ण स्वरूप से जैसा है, वैसा उसे स्वीकार करके उसका ज्ञान करके, उसमें प्रतीति करना और उसमें रमणता करना, वह आत्मा

की भक्ति कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा कहो या परमात्मा कहो। आहाहा!

जो परमात्मा की भक्ति करनेवाले मुनि... 'विषयान् न अपि रमंते' विषय-कषायों में नहीं रमते हैं,... आहाहा! एक तो धर्म पाते हुए सम्यग्दृष्टि जीव हो शुरुआत का, वह भी पाँच इन्द्रिय के विषय में उसकी सुखबुद्धि उड़ जाती है, परन्तु उसे अस्थिरता की बुद्धि आसक्ति की होती है। क्या कहा? कि यह आत्मा शुद्धचैतन्यघन आनन्दकन्द है। सर्वज्ञ जिनेश्वर, परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, दूसरों ने आत्मा जाना नहीं और कहा है, वह सब खोटा। परमेश्वर केवलज्ञानी जिनेश्वरदेव ने जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक देखे, उन्होंने जो आत्मा अन्दर देखा, पवित्र आनन्दकन्द है। आहाहा! ऐसे आत्मा की अन्दर जो भक्ति करता है। आहाहा! उसे पाँच इन्द्रिय के विषय... समकितरूपी भक्ति करे, तो उसे पाँच इन्द्रिय के विषय में इन्द्र के भोग हो तो भी उसे सड़े हुए कुत्ते जैसे लगें। धर्मी जीव की शुरुआतवाला, जिसे अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि हुई है, उसे पाँच इन्द्रिय के विषय जैसा तो सुविधा का पार नहीं होता। आहाहा! तो भी उसमें विषय की सुखबुद्धि समकिती को उड़ जाती है। आसक्ति रहती है। आसक्ति रहती है, परन्तु उसमें से सुख है, यह बुद्धि उड़ जाती है और यहाँ तो मुनि की व्याख्या चलती है।

सुखबुद्धि तो उड़ी है, परन्तु आसक्ति भी टल गयी है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं। सब भाषा अनजानी जाने। ग्रीक लेटिन (अटपटा) जैसा लगे, क्या करे परन्तु प्रभु! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! अभी मार्ग बहुत बिखर गया है। आहाहा! कहते हैं, विषयों में जिसकी लीनता उड़ गयी है। **'न रमंते'** आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव की शुरुआतवाले को भी, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का रस आया है, इससे पाँच इन्द्रिय के विषय अरबोंपति हो और इन्द्राणी के सुख जिसे—इन्द्र को हो। वह इन्द्र है, वह अभी समकिती है। उसकी स्त्री भी समकिती है मुख्य (शचि) है वह। दूसरी स्त्रियाँ (इन्द्राणियाँ) बहुत हैं हजारों। परन्तु उन्हें इन्द्रिय के सुख में सुख है, वह बुद्धि उड़ गयी है। मात्र आसक्ति का भाव-राग है। मुनि है, उन्हें तो आसक्ति बुद्धि उड़ जाती है। उन्हें यहाँ लिया है। समझ में आया?

विषय में सुख है, यह मान्यता मिथ्याभ्रम है। सुख तो भगवान आत्मा में है। सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं है। आहाहा! उसके बदले पाँच इन्द्रिय के विषयों के भोग में मिठास लगे, मजा लगे, ठीक लगे, वह जहर को ठीक लगे, ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। उसे धर्म की शुरुआत की भी खबर नहीं। आहाहा! यहाँ तो विशेष बात ली है। अन्तिम गाथायें हैं न, कि जिसे '**विषयान् न अपि रमंते**' विषयों में—कषायों में, विषय और कषाय—क्रोध, मान, माया में **नहीं रमते हैं, वे ही मुनिश्वर...** आहाहा! मुनि तो अलौकिक दशा कहलाती है, बापू! वस्त्र बदले, सब काम, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, स्त्री छोड़ी इसलिए मुनि हुआ, लो। वह तो ऐसे वेश अनन्त बार लिये हैं। आहाहा! अन्दर में आनन्द के नाथ को सम्हाल कर जिसने पुण्य और पाप में से जिसका प्रेम-रुचि हट गयी है और आगे जाने पर उसकी आसक्ति टलकर वस्तु में रमणता बढ़ गयी है। आनन्दस्वरूप भगवान में रमते-रमते राम, रमणता बढ़ गयी है। उसे मुनि कहा जाता है। अरेरे! मुनि की व्याख्या अलग।

मुमुक्षु : मुनि की व्याख्या अलग होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो व्याख्या ऐसी है। बापू! पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़कर बैठे, इसलिए त्यागी-मुनि हो गया। धूल में भी नहीं। ऐसे वेश तो अनन्त बार भान बिना के वेश अनन्त बार लिये। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उन इन्द्रियों के विषयों में सुखबुद्धि तो उड़ गयी है, परन्तु पाँच इन्द्रिय में जिसकी इज्जत सुनने पर भी जिसे प्रेम नहीं आता, पाँचों इन्द्रिय के विषयों की आसक्ति उड़ गयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया?—यह विश्राम का वाक्य है। समझ में आया? ऐसा। समझ जाये तब तो कल्याण हो जाये परन्तु किस पद्धति से कहा जाता है, उसकी गन्ध आती है? उसका नाम समझ में आया? समझ में आया? आहाहा! अरेरे! सत्य बात सुनने को मिले नहीं, उसका अन्त कब आवे? आहाहा! और सुनकर भी जहाँ अन्तर रुचि न करे, उसका (परिभ्रमण का) अन्त कब आवे? भाई! आहाहा!

यहाँ तो रुचि छोड़कर भी फिर आसक्ति छोड़ता है। आहाहा! परमानन्दरूपी

भगवान आत्मा की भक्तिसहित में लीन होने से जिसे विषय की रमणता अन्तर से छूट गयी है। आहाहा! वह इस परमात्मप्रकाश शास्त्र को सुनने और समझने के योग्य है। सुनने में यहाँ तो समकिती होता है, परन्तु यह तो अत्यन्त ऊँची दशा लेनी है न एकदम? अन्तिम गाथायें हैं न! आहाहा! मोक्ष—निर्वाणदशा। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु।' आता है न लोगस्स में। कण्ठस्थ किया हो इसे आता है। सिद्धा—हे भगवान! सिद्ध परमात्मा शरीररहित, वह मुझे चाहिए है। वह दिखाओ। दिखाओ अर्थात् मैं होऊँ तो दिखाई दे ऐसा। आहाहा!

वे ही मुनिश्वर परमात्मप्रकाश के अभ्यास के योग्य है। लो! ठीक। आहाहा! जिसे आत्मा के प्रेम के अतिरिक्त पर में प्रेम की रुचि पड़ी है, जिसे परवस्तु का पोषाण है, उसे स्ववस्तु का पोषाण नहीं समझ सकता। उसे पोषाण नहीं बैठता। पोषायेगा नहीं भगवान अन्दर। पर का पोषाण पड़ा है। आहाहा! यह बनिया भी पोषाण का माल ले या नहीं। पोसाता हो, वह माल ले या नहीं? साढ़े चार रुपये में वहाँ से ले और यहाँ साढ़े पाँच उपजते हों तो माल ले, परन्तु वहाँ साढ़े चार बैठे और यहाँ साढ़े तीन उपजते हों, तो वह माल ले? बसन्तभाई! भले चार आना मिलते हों, तो भी वहाँ साढ़े चार में लेकर यहाँ पौने पाँच मिलते हों, तब तो माल ले। पोसाता हो तो ले। उसमें पोसाता हो आत्मा तो उस परवस्तु के भाव का उसका प्रेम पोषाये नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें हैं। भगवान! तेरी जाति बहुत अलग है, प्रभु! आहाहा! प्रभु तो तुझे भगवानरूप से बुलाते हैं। भगवान परमात्मा तो भगवानरूप से बुलाते हैं। आहाहा! क्योंकि तू भगवान होने के अन्तर योग्य है। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे जीव परमात्मप्रकाश के अभ्यास के योग्य है। देखा! आहाहा! उसे यह बात बैठेगी। दूसरे को नहीं बैठेगी। क्या कहते हैं यह? बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, ऐसा कहकर निकाल डालेगा। यह तो एल.एल.बी, जैसी बातें हैं परन्तु उसमें पहला एकड़ा क्या? परन्तु यह एल.एल.बी. नहीं। यह एकड़ा की पहली बात है, सुन न! आहाहा! समझ में आया?

भावार्थः—व्यवहारनयकर परमात्मप्रकाश नाम का ग्रन्थ जो निश्चयनयकर...

निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि से देखे तो **निजशुद्धात्मस्वरूप परमात्मा उसकी भक्ति में जो तत्पर हैं,...** आहाहा! निश्चय सत्य ज्ञान की दृष्टि से। नय अर्थात् ज्ञान, निश्चय अर्थात् सत्य। सत्य ज्ञान की दृष्टि से देखें तो निजशुद्धात्मस्वरूप जो भगवान आत्मा **उसकी भक्ति में जो तत्पर हैं,...** आहाहा! परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द का गंज प्रभु है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द का भर है। यह भर नहीं भराता? गाड़ा में भर (भूसा) भरते हैं न यह किसान? २५-२५ मण, ३०-३० मण। वह भर अलग और यह भर अलग। यह अतीन्द्रिय आनन्द का भर भगवान है। देखो!

यह **निश्चयनयकर निजशुद्धात्मस्वरूप परमात्मा...** आहाहा! **उसकी भक्ति...** इस निजशुद्धात्म स्वरूप परमात्मा निजशुद्धात्मा से यह भरपूर है। आहाहा! **उसकी भक्ति में जो तत्पर हैं, वे विषय रहित जो परमात्मतत्त्व की अनुभूति उससे उपार्जन किया...** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयरहित परमात्मतत्त्व का—आत्मा का अनुभव। **उससे उपार्जन किया जो अतीन्द्रिय परमानन्दसुख...** आहाहा! **उसके रस के आस्वाद से तृप्त हुए...** भगवान अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप के आनन्द के रस में तत्पर हुआ। आहाहा! आत्मा के रस के **आस्वाद से तृप्त हुए विषयों में नहीं रमते हैं।** आहाहा! **जिनको मनोहर विषय आकर प्राप्त हुए हैं,...** आहाहा! जिसे अनुकूलता की सामग्री के ढ़ेर आये हों, कहते हैं। तथापि धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का रस है, उसे उस अनुकूलता की सामग्री में जिसे रस नहीं आता। आहाहा!

जिनको मनोहर विषय आकर प्राप्त हुए हैं,... आहाहा! गत वर्ष उतरे थे न मुम्बई में? नहीं वह मकान सत्तर लाख का मकान था। एक मकान सत्तर लाख का। आमोदवाले रमणीकभाई हैं न। पालेज के पास आमोद है न! पालेज हम नहीं रहते वहाँ। पालेज में दुकान है। आमोद। हमारी दुकान पालेज में है न, मैं वहाँ नौ वर्ष रहा था। पालेज में दुकान है न? अभी दुकान चलती है। वहाँ आमोद साथ में है। उसके बनिया हैं रमणीकभाई। पाँच करोड़ रुपये, छह करोड़ रुपये। उसने बहुत आग्रह किया था न ८७ वर्ष लगा न गत वर्ष शरीर को? तो वहाँ उसके घर में महोत्सव रखा था। यह सत्तर लाख का तो एक मकान है। अब वह ऐसा लगे मकान हा..हो... हा...हो... अब धूल भी नहीं इसमें कुछ, कहा। और उसके पास सामग्री तो थोड़ी थी। उसरूप से गये नहीं थे?

मणिभाई के घर में आहार करने गये थे मुम्बई। मणिभाई नहीं? इन रमणीकभाई के बहनोई।

मुमुक्षु : वहाँ मखमल बिछाया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। वहाँ पाँच लाख की तो सामग्री घर में थी। मखमल और मखमल तथा पाँच लाख का फर्नीचर। ओहोहो! पाँच करोड़ रुपये। कहा, इसे वहाँ से निकलना मुश्किल पड़ेगा, कहा।

मुमुक्षु : सजावट बहुत की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चरण कराये थे न सर्वत्र। थे तुम? फिर उस विजय के लिये गये थे। एक लड़का नहीं था, उसे व्याधि हुई। किडनी। क्या कहलाता है वह? किडनी। वहाँ गये नहीं हम। मर गया बेचारा। बहुत होशियार लड़का। छोटी उम्र। गुजर गया। ...वर्ष की उम्र। आहाहा!

जिनको मनोहर विषय आकर प्राप्त हुए हैं, तो भी वे उनमें नहीं रमते। आहाहा! वह आत्मा की रमणता करने के लिये योग्य है। वह आत्मा को समझने के लिये और प्राप्त करने के लिये योग्य है, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २०९

अथ-

३३२) णाण-वियक्खणु सुद्ध-मणु जो जणु एहउ कोइ।
सो परमप्प-पयासयहँ जोग्गु भणंति जि जोइ।।२०९।।

ज्ञानविचक्षणः शुद्धमना यो जन ईदृशः कश्चिदपि।
तं परमात्मप्रकाशकस्य योग्यं भणन्ति ये योगिनः।।२०९।।

भणंति कथयन्ति जि जोइ ये परमयोगिनः। कं भणन्ति। जोग्गु योग्यम्। कस्य। परमप्प-पयासयहं व्यवहारनयेन परमात्मप्रकाशाभिधानशास्त्रस्य निश्चयेन तु परमात्मप्रकाश-शब्दवाच्यस्य शुद्धात्मस्वरुपस्य। कं पुरुषं योग्यं भणन्ति। सो तम्। तं कम्। जो जणु एहउ कोइ यो जनः इत्थंभूतः कश्चित्। कथंभूतः। णाण-वियक्खणु स्वसंवेदनज्ञानविचक्षणः। पुनरपि कथंभूतः। सुद्धमणुपरमात्मानुभूतिविलक्षणरागद्वेषमोहस्वरुपसमस्तविकल्प-जालपरिहारेण शुद्धात्मा इत्यभिप्रायः।।२०९।। एवं चतुर्विंशतिसूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये परमाराधकपुरुषलक्षण-कथनरुपेण सूत्रत्रयेण षष्ठमन्तरस्थलं गतम्।

आगे फिर भी यही कथन करते हैं-

जिनका मन है शुद्ध सदा जो ज्ञान-विचक्षणरूप हुए।
वे योगीगण हैं परमात्म-प्रकाशक योग्य यही जानो।।२०९।।

अन्वयार्थः- [यः जनः] जो प्राणी [ज्ञानविचक्षणः] स्वसंवेदनज्ञानकर विचक्षण (बुद्धिमान) हैं, और [शुद्धमनाः] जिसका मन परमात्मा की अनुभूति से विपरीत जो राग द्वेष मोहरुप समस्त विकल्प-जाल उनके त्याग से शुद्ध है, [कश्चिदपि ईदृशः] ऐसा कोई भी सत्पुरुष हो, [तं] उसे [ये योगिनः] योगीश्वर हैं, वे [परमात्मप्रकाशकस्य योग्यं] परमात्मप्रकाश के आराधक योग्य [भणंते] कहते हैं।

भावार्थः- व्यवहारनयकर यह परमात्मप्रकाशनामा द्रव्यसूत्र और निश्चयनयकर शुद्धात्मस्वभावसूत्र के आराधने को वे ही पुरुष योग्य हैं, जो कि आत्मज्ञान के प्रभाव से महा प्रवीण हैं, और जिनके मिथ्यात्व राग द्वेषादि मलकर रहित शुद्ध भाव हैं, ऐसे पुरुषों के सिवाय दूसरा कोई भी परमात्मप्रकाश के आराधने योग्य नहीं है।।२०९।।

इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में आराधक पुरुष के लक्षण तीन दोहों में कहके छट्ठा अंतरस्थल समाप्त हुआ।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल ३, शुक्रवार
दिनांक- २०-०५-१९७७, गाथा - २०९-२१०, प्रवचन-२४३

परमात्मप्रकाश, २०९ गाथा। २०८ तक चली है। **आगे फिर भी यही कथन करते हैं—**२०९।

३३२) णाण-वियक्खणु सुद्ध-मणु जो जणु एहउ कोइ।
सो परमप्प-पयासयहँ जोग्गु भणंति जि जोइ।।२०९।।

जो प्राणी... अर्थात् आत्मा '**ज्ञानविचक्षणः**' आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप है। उसमें ज्ञान में स्वसंवेदन से ज्ञान में विचिक्षण हुआ है। वह उसका उपाय है। आहाहा! जो कोई जीव '**ज्ञानविचक्षणः**' स्वसंवेदन। आत्मा आनन्दस्वरूप, उसका स्वरूप ही ज्ञान और आनन्द है। उसका स्व ज्ञान का, सं—प्रत्यक्ष, मन और राग की अपेक्षा बिना अपने आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन ऐसा जो बुद्धिमान जीव। उसे यहाँ विचिक्षण और बुद्धिमान कहते हैं। दुनिया की चतुराई चाहे जितनी आती हो, वह तो आत्मा को नुकसान करनेवाली है।

जो कोई ज्ञानविचिक्षण, ऐसा कहा है। दूसरी बाहर जगत के पदार्थ पदार्थ में रहे। परमात्मा है पूर्ण शुद्ध निर्मल है, यह वे उनकी दशा में रहे। वे कुछ यहाँ देते नहीं और यहाँ कुछ आते नहीं। यहाँ जो रहा हुआ तत्त्व आत्मा, वह ज्ञान, जानन स्वभाव से भरपूर और अतीन्द्रिय आनन्द जिसका स्वरूप, ऐसे आत्मा के ज्ञान का विचिक्षण जो है। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा जो स्वरूप आत्मा का, जो त्रिकाली अविनाशी, उसके स्वरूप में, ज्ञान में विचिक्षण। उसका जो ज्ञान है, उसका स्वसंवेदन होकर स्वसन्मुख होकर, स्वसंवेदन होकर जो विचिक्षण हुआ। लो! वजुभाई! यह सब तुम्हारी चतुराई-बतुराई संसार की, सब भटकनेवाले हैं। आहाहा! शास्त्रज्ञान भी यहाँ तो काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं।

आत्मा अन्दर वस्तु—पदार्थ है या नहीं? तो उस स्ववस्तु का स्वरूप ज्ञान और आनन्द, ऐसे स्वरूप का जो स्वसंवेदनरूपी ज्ञान, स्वयं अपने को जानकर, वेदकर प्रगट करे, उसे विचिक्षण और उसे बुद्धिमान कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बाकी रहे वे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाकी रहे वे सब पागल। यह सब दस-दस हजार का वेतन और करोड़ों रुपये, दस-दस लाख की महीने-महीने में आमदनी, वे सब पागल हैं। मूर्ख हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी मूर्ख थे, आत्मा का ज्ञान नहीं था वहाँ। आहाहा! निजसत्ता से अस्तित्वपने आत्मा है न! निजसत्ता जो ज्ञान और आनन्द उसकी सत्ता है, आत्मा का अस्तित्व निज का जानना, जानना अर्थात् यह शास्त्र, वह नहीं, जानना उसका स्वभाव है। ज्ञान उसका स्वभाव और अतीन्द्रिय आनन्द उसका स्वरूप और स्वभाव। आहाहा! उसे जिसने स्वसंवेदन होकर अपने ज्ञान का वेदन करके ज्ञान की विचिक्षणता स्वसंवेदन प्रगट किया है। उसे यहाँ धर्मी कहते हैं, उसे यहाँ बुद्धिवन्त कहते हैं। उसे यहाँ विचिक्षण कहते हैं। दुनिया के चतुर और संसार के समझदार, वे सब चार गति में भटकनेवाले हैं।

जो बुद्धि चार गति में भटकावे, वह बुद्धि उसका शस्त्र किस काम का? हाथ में शस्त्र हो और सिर काटे, वह शस्त्र किस काम का? इसी प्रकार जगत की चतुराई, वह सब चार गति में भटकने का रास्ता है। वह बुद्धि किस काम की? आहाहा! बुद्धिवन्त तो यहाँ उसे कहते हैं कि जो स्वसंवेदन करके विचिक्षण हुआ। आहाहा! आत्मा वस्तु है न, जगत से निराली है और अपने से पूरा जगत निराला-अलग चीज़ है। ऐसा जिसने स्व अर्थात् अपने आत्मा का सं-प्रत्यक्ष वेदन करके। आहाहा! और विचिक्षण हुआ। है न? **स्वसंवेदनज्ञानकर विचिक्षण...** ऐसा है। इतने शब्द में ऐसा भरा है अन्दर। आहाहा! बड़ा एल.एल.बी. का पूंछड़ा (डिग्री) लगावे यह वकील, डॉक्टर एम.ए. ... क्या कहलाता है वह? (एम.बी.बी.एस.) वे सब चार गति में भटकनेवाले हैं। अपनी जाति

की जिसने कीमत नहीं की, अपनी जाति कितनी कैसी है ? उतनी उसकी महिमा जिसे दृष्टि में नहीं आयी। वह पर की महिमा से हटता नहीं। आहाहा! अथवा बाह्य की सामग्रियाँ और या अन्दर के जानपने का परपदार्थ के जानपने का भाव, उसकी उसे महिमा में भगवान की महिमा अन्दर उसे आती नहीं। आहाहा!

स्वयं कौन है अन्दर क्या है ? आहाहा! इसने अन्तर में देखने का—अपने को देखने का—जानने का प्रयत्न नहीं किया। ऐसे दुनिया की परख सब बहुत की। 'परखे माणेक मोतिया, परखे हेम कपूर अरु एक न परखा आत्मा।' कौन है परन्तु वह क्या चीज़ है ? वस्तु है, अनादि-अनन्त है। सत् है। देह से जाननेवाला तत्त्व अत्यन्त भिन्न है। ऐसे भिन्न तत्त्व का जिसने स्वसंवेदन किया अर्थात् कि जिसने जाना और वेदन किया कि यह आत्मा तो आनन्द है। यह आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप है। उस आत्मा में जो स्वसंवेदन ज्ञान होता है, उसके द्वारा आत्मा पूर्ण ज्ञानमय है, ऐसा जो ज्ञान होता है, उसे यहाँ स्वसंवेदन विचिक्षणता कही जाती है। वह विचिक्षण है। दुनिया के चतुर और विचिक्षण, दुनिया पागल करे। आहाहा!

स्वसंवेदनज्ञानकर... भाषा तो यहाँ से उठायी है। **विचिक्षण हैं, और... 'शुद्धमनाः' जिसका मन परमात्मा की अनुभूति से...** परमात्मा स्वयं परम स्वरूप आनन्द है, ऐसा जो परमात्मा उससे विपरीत धर्मात्मा की अनुभूति—अनुभव से **विपरीत जो राग-द्वेष-मोहरूप समस्त विकल्प-जाल उनके त्याग से शुद्ध है,...** आहाहा! तीन बार बात की। एक तो स्वयं शुद्ध है, उससे विपरीत मोह-राग-द्वेष, उनसे रहित आत्मा शुद्ध है। आहाहा! अर्थात् क्या कहा ? यह तो भाई! आत्मज्ञान की अपूर्व विद्या है। विद्या उसे कहते हैं कि जो विद्यमान तत्त्व को समझे, जाने, उसे विद्या कहते हैं। विद्यमान तत्त्व जो त्रिकाली भगवान आत्मा, उसे जाने उसे विद्या (कहते हैं), बाकी सबको अविद्या, कुविद्या कहते हैं। आहाहा! अरे! इसने अपने को जानने की, स्वयं कौन है ? कितना है ? कहाँ है ? (दरकार नहीं की)।

श्रीमद् ने सोलह वर्ष में कहा न ? श्रीमद् राजचन्द्र। बहुत भवों का जातिस्मरण था। फिर सोलह वर्ष में यह कहते हैं। मोक्षमाला बनायी। सोलह वर्ष की उम्र में। अभी

ही देह छूटा (संवत्) १९५७ में। उसमें ऐसा कहते हैं कि 'मैं कौन हूँ आया कहाँ से ?' मैं कौन हूँ ? यह सब है वह है यह ? परन्तु मैं कौन हूँ ? मैं कुछ हूँ या नहीं ? 'मैं कौन हूँ आया कहाँ से ?' हूँ तो, उसकी कब से स्थिति है ? वह तो अनादि की है। है, उसे अनादि होती है, है उसकी आदि नहीं हो सकती। 'मैं कौन हूँ ? आया कहाँ से ? और मेरा रूप क्या ?' हों, ऐसा। वैसे तो पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि परिणाम तो दशा में है, परन्तु वह कहीं उसका मूलस्वरूप नहीं है। 'और मेरा स्वरूप क्या ?' वास्तविक स्वरूप तो यह शुद्धचैतन्य राग, द्वेष, पुण्य, पापरहित।

तीन बार बात की है इसमें। देखो, क्या कहा ? कि **जिसका मन परमात्मा की अनुभूति...** भगवान आत्मा का जो अनुभव, आत्मा को अनुसरकर जो आनन्द और ज्ञान की अनुभूति—अनुभव होता है, उस **अनुभूति से विपरीत राग द्वेष...** पर्याय। पर्याय की बात ली है, देखा! वस्तु से विपरीत नहीं, परन्तु उसकी अनुभूति से विपरीत, ऐसा लिया है। पर्याय की बात कही। क्या कहा यह ? जिसका मन परमात्मा तो त्रिकाली है। उसका—आत्मा का स्वरूप है तो अविनाशी त्रिकाली परमात्मतत्त्व। उसकी अनुभूति वह वर्तमान दशा। आहाहा! त्रिकाली भगवान परमात्मस्वरूप की अनुभूति, उसे अनुसरकर अनुभव होना, उससे विपरीत, उस अनुभूति से विपरीत, आत्मा से विपरीत, ऐसा न लेकर, पर्याय में अनुभूति होनी चाहिए। क्योंकि वह परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। सच्चिदानन्द प्रभु, ऐसे परमात्मतत्त्व की अनुभूति अर्थात् वर्तमान निर्मल, पवित्र, अरागी निर्दोषी दशा, उससे विपरीत। है न ?

राग-द्वेष-मोहरूप समस्त विकल्प-जाल... आहाहा! वह विकल्प की वृत्तियों का जाल सब। ऐसा हूँ, वैसा हूँ, फलाना हूँ, ढींकणा हूँ। इस राग के जाल से रहित **उनके त्याग से शुद्ध है,...** आहाहा! वह परमात्मतत्त्व जो त्रिकाली वस्तु, उसकी वर्तमानदशा तो अनुभूति, आनन्द और ज्ञान चाहिए। उस अनुभूति से विपरीत, मोह-राग और द्वेष, इनसे रहित, उसका नाम मोह और राग-द्वेष के त्याग से हुई शुद्धता। उसका मन शुद्ध है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अत्यन्त अनजाने व्यक्ति को... मूल इस धर्म की बात ही अभी लोप हो गयी है। जहाँ हो वहाँ या तो भक्ति करो, या प्रभु का स्मरण करो, ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर की माला गिनो। सब थोथे-थोथा। विकार राग। जो स्वरूप की

अनुभूति से विपरीत भाव, ऐसा कहा यहाँ। परमात्मस्वरूप, उसकी अनुभवदशा से विपरीत विकार, उसके त्याग से हुआ मन शुद्ध। आहाहा! सब आ गया अन्दर। आहाहा! है या नहीं इसमें?

त्याग से शुद्ध है, ऐसा कोई भी सत्पुरुष हो,... आहाहा! '**कश्चिदपि ईदृशः**' ऐसा। ऐसे कोई सत्पुरुष धर्मात्मा। उसे धर्मात्मा कहते हैं, उसे मुनि कहते हैं, उसे ज्ञानी कहते हैं। जिसे स्वस्वभाव, चैतन्य आनन्द और ज्ञान के स्वभाववन्त की अनुभूति से विपरीत राग, द्वेष, मोह की विकल्पजाल के अभाव से हुआ शुद्धपना, ऐसा जो कोई धर्मात्मा। आहाहा! लोगों को धर्म (के लिये) निवृत्ति नहीं मिलती। २०-२२ घण्टे जाये कमाने, स्त्री-पुत्र में। अब घण्टा भर मिले उसमें से कोई कुछ माला गिने या अन्दर ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... वह तो विकल्प है, राग है। समझ में आया? ॐ तो चैतन्य का मूलस्वरूप है। 'ॐकार विशुद्ध याते उभयरूप एक आत्मिकभाव एक पुद्गल को।' यह ॐ... ॐ... जो शब्द विकल्पजाल उठता है, वह तो पुद्गल है, जड़ है। उससे रहित ॐ स्वरूप ही भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप। उसे यहाँ ॐ स्वरूप कहते हैं। उसकी अनुभूति से विपरीत विकार, उसके त्याग से हुआ जिसका मन शुद्ध, ऐसा कोई सत्पुरुष अर्थात् धर्मात्मा, उसे धर्मात्मा कहते हैं। बाकी बाबा और योगी बहुत घूमते हैं, सब भान बिना के। स्वयं जटायें धरावे और यह और वह। समझ में आया? जैन में भी साधु होकर घूमे नग्न आदि, परन्तु इस वस्तु के भान बिना, वे ज्ञानी नहीं हैं, साधु नहीं हैं। आहाहा!

ऐसा कोई भी सत्पुरुष हो, उसे हे योगीश्वर,... योगीन्द्रदेव सन्तु, मुनि हैं, वीतरागी आनन्द में झूलनेवाले, मात्र विकल्प उठा है, वहाँ शास्त्र रचना हो जाती है, वह अपने शिष्य को सम्बोधन करते हैं, हे योगीश्वर! **वे परमात्मप्रकाश के आराधक योग्य कहते हैं।** आहाहा! इस परमात्मप्रकाश को आराधनेयोग्य तो वह पुरुष है। आहाहा! जिसने भगवन्त आत्मस्वरूप जो परमात्मस्वरूप ही उसका है। उसकी वर्तमान अनुभवदशा होनी चाहिए। उसमें आया है न कर्ताकर्म में (६९-७० गाथा में), नहीं? उदासीन अवस्था का त्याग करके। अवस्था कहाँ थी? वह प्रगट की नहीं, ऐसी इस अनुभूति से विपरीत बतलाते हैं। उसे अनुभूति हुई कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म

का उपदेश लोगों को (कठिन पड़ता है)। सवेरे नहा-धोकर एक घण्टे बैठे माला गिनने, वहाँ हो गया धर्म, जाओ। यह २३ घण्टे पाप। पुण्य में भी नहीं होता। बलुभाई! यह दवा और यह बोतल।

ऐसा जो पुरुष है, वह परमात्मप्रकाश ऐसा जो आत्मा, उसके सेवन को, आराधने को योग्य कहने में आता है। आहाहा! योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। जो अन्तर में पूर्णानन्द के नाथ के सन्मुख हुआ है और विकल्प के जाल से रहित हुआ है। स्वभाव परिपूर्ण आनन्द है, उसमें सन्मुख हुआ है और विकल्पजाल से रहित हुआ है, वह इस परमात्मप्रकाश को आराधने के, सेवन के योग्य है। आहाहा! उसमें कहीं ऐसा नहीं कहा (कि) व्यवहार ऐसा करे, वह योग्य है। आहाहा! अभी देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा करे, नौ तत्त्व को भिन्न-भिन्न रीति से जाने। शास्त्र की मान्यता करे तो वह इस परमात्मप्रकाश के आराधने के योग्य है, ऐसा कहा नहीं। यह बड़ा विवाद अभी पण्डितों के साथ विवाद यह है और पढ़े सब बनारस में। व्यवहार से होता है, यह सब भक्ति-बक्ति करते-करते। जाप, भक्ति करते-करते, दया, दान, व्रत पालते-पालते, अपवास करते-करते आत्मा में जाया जाता है। आत्मा (को) जाने। वह यहाँ इनकार करते हैं। उससे रहित हो तो जाया जाता है। आहाहा! समझ में आया? उसके लिये निवृत्ति नहीं होती। उसमें कुछ पदवी हो दो-पाँच हजार वेतन की। वह पूरे दिन। अभी कुछ नौकरी बदली है, कहते हैं नहीं ...भाई की? कैसी?

मुमुक्षु : दूसरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी, परन्तु पहले उसमें वहीं के वहीं फँसे हैं सवेरे से शाम तक। आहार करने आवे एक आहार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ आता है। १५-१५ दिन। ... एक बार वहाँ-वहाँ। वहाँ तो कहे इसकी नौकरी ऐसी है कि सवेरे से शाम तक वहाँ रहना पड़े। वह मात्र आहार करने आवे, लो! शाम को छूटे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए जाना पड़े।

परमात्मप्रकाश में तो ऐसा कहा कि उस ढ़ोर को, ढ़ोर को जब खूँटे से बाँधते हैं और शाम को छोड़ते हैं जब बाहर पानी पिलाने के लिये, तो प्रसन्न होता है। खूँटे-खूँट से बाँधते है न? पूरे दिन बाँधे और शाम को फिर पानी पिलाने आवे गाँव में तो अब, वहाँ नल हो गये यहाँ शहर में। और गाँव में तो शाम को छोड़े। छोड़कर जहाँ बाहर कुँआ और प्याऊ हो वहाँ पानी पिलाने जाये। छोड़े वहाँ प्रसन्न हो। खुले। आहाहा! बारह घण्टे का खूँटे से बँधा हुआ। यहाँ भगवान कहते हैं कि अरे! अनन्त काल से अज्ञान में बँधा हुआ है, हम तुझे छूटने की बात करते हैं तो प्रसन्न न हो तो तू ढ़ोर से भी गया-बीता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो मनुष्य आर्य मनुष्य नरक में न जाये। आर्य मनुष्य को माँस और मदिरा नहीं होती। ऐसा परमात्मप्रकाश में। यह परमात्मप्रकाश है लो, इसमें कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थः—व्यवहारनयकर यह परमात्मप्रकाशनामा... यह सूत्र शास्त्र यह तो पृष्ठ है। व्यवहार अर्थात् परवस्तु है न यह? इसलिए इसे व्यवहारनय से इसका पठन कहने में आता है। पर को पढ़ना-समझना, वह व्यवहार है। व्यवहार अर्थात् वह पराश्रितभाव हुआ। इसलिए **व्यवहारनयकर यह परमात्मप्रकाशनामा द्रव्यसूत्र और निश्चयनयकर शुद्धात्मस्वभावसूत्र के...** जो सूत्र में कहना चाहते हैं परमात्मतत्त्व, ऐसा कहना वहाँ। शुद्धात्मभाव ऐसा आराधन, ऐसा। वह सूत्र में कहा हुआ यह भाव ऐसा कहते हैं। शब्द में अन्तर है जरा अन्दर। परमात्मप्रकाश शब्द वाचक है, ऐसा है। संस्कृत में यह है अन्दर। तीसरी लाईन में है। परमात्मप्रकाश शब्द वाचक है, उससे—शब्द से कहा हुआ वाच्य शुद्धात्मस्वरूप, ऐसा। संस्कृत में ऐसा है। तीसरी लाईन है।

क्या कहा यह? यह शास्त्र है, वह तो पृष्ठ है। वह तो जड़ है। उसका पठन, उसकी ओर का। वह तो एक शुभविकल्प है। परन्तु उस शास्त्र में कहा हुआ भाव जो यह परमात्मतत्त्व वस्तु, वस्तु वह परमात्मतत्त्व, उसे **आराधने को वे ही पुरुष योग्य हैं,...**

आहाहा! **जो कि आत्मज्ञान के प्रभाव से...** यहाँ तो निज भगवान आत्मज्ञान। हिन्दुस्तान की एक मूल विद्या थी। आत्मज्ञान, वह हिन्दुस्तान की विद्या थी। वह विद्या पूरी चली गयी। और सब बाहर की विद्या यह बड़ी शिक्षा के... आहाहा!

आत्मज्ञान के प्रभाव से... आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु हे, उसका ज्ञान, आत्मज्ञान। शास्त्रज्ञान, वह नहीं; व्यवहार है, उसका भी ज्ञान नहीं। शास्त्र के पठन में आवे देव-गुरु-शास्त्र, उनका भी ज्ञान नहीं। आहाहा! **आत्मज्ञान के प्रभाव से महा प्रवीण...** उसमें विचिक्षण शब्द था न? उसका अर्थ यह किया। विचिक्षण का अर्थ यह किया। **महा प्रवीण हैं,...** आहाहा! **आत्मज्ञान के प्रभाव से महा प्रवीण हैं,...** आत्मतत्त्व जिसमें अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द है, वह सच्चिदानन्द प्रभु है। सत् उसका सत्त्व ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त शक्तियाँ, वह उसका सत्त्व है। ऐसा जो आत्मा, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान। उसकी पर्याय का भी नहीं, व्यवहार का भी नहीं, निमित्त का भी नहीं। आत्मज्ञान। वस्तु जो त्रिकाली है, उसका ज्ञान। आहाहा!

आत्मज्ञान के प्रभाव से महा प्रवीण हैं,... बुद्धिमान है, विचिक्षण है। आहाहा! **और जिनके मिथ्यात्व राग-द्वेषादि मलकर रहित शुद्धभाव हैं,...** जिसे अन्दर भ्रमणा नहीं कि यह मैं दया, दान और व्रत के परिणाम करता हूँ तो उससे मुझे मोक्ष होगा, धर्म होगा। ऐसी भ्रमणा जिसे नहीं। ऐसी भ्रमणा जिसने टाली है। आहाहा! मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता। पुण्य के भाव में धर्म, पाप के भाव में मजा, पुण्य के फल में अनुकूलता में प्रसन्नता—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, सत्य से विपरीतभाव, उसे मिथ्यात्व कहते हैं। और इसके अतिरिक्त **राग-द्वेषादि...** अनुकूलता को मानकर राग हो, प्रतिकूलता मानकर द्वेष अरुचि हो, ऐसे **मिथ्यात्व राग-द्वेषादि मलकर रहित शुद्धभाव हैं,...** आहाहा! इतनी तो बात यहाँ स्पष्ट करते हैं परन्तु सब चिल्लाहट मचाते हैं पण्डित। व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार से निश्चय होता है। अब तो चाहे जहाँ से खोजा है, कुछ करो महाराज करो। उनके बड़े पण्डित भी ऐसा कहते हैं, अब अनेकान्त कहने लगे हैं, ऐसा। ऐसा लिखते हैं।

यह अभी तक अनेकान्त नहीं था, अब अनेकान्त हमारा सत्य है, अनेकान्त अब

समझने लगे। हमारा अनेकान्त अब समझने लगे हैं। यह हुकमचन्दजी ने वह सब वे बातें करे न व्यवहार की डाले न, व्यवहार है। व्यवहार है नहीं, ऐसा किसने कहा? पहले से यह तो चलता है। व्यवहार से अन्दर आत्मा का स्वभाव है, वह पकड़ में नहीं आता। आहाहा! पुण्य है, राग है और राग से भगवान तो परमात्मस्वरूप वीतराग मूर्ति आत्मा है, वह राग द्वारा पकड़ में नहीं आता। राग के अभाव स्वभाव से उसका अनुभव हो सके, ऐसा उसका स्वरूप है। आहाहा! अनन्त काल हुआ, अनन्त काल से यही यह पहला भव, इससे पहला भव, इससे पहला भव, इससे पहला भव ऐसे भव... भव... करते-करते अनन्त भव हुए हैं। अनन्त काल से अनन्त भव हुए हैं। जिसकी आदि नहीं, इतने अनन्त भव हुए कि उसने विचार कब किया है? आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त भव में कभी इसने आत्मज्ञान किया नहीं। यदि आत्मज्ञान किया हो तो भव रहे नहीं। आहाहा! तो वह चीज़ कैसी होगी? आहाहा! अनन्त बार स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा छोड़कर साधु हुआ, तो भी आत्मज्ञान नहीं किया था। यह क्रियाकाण्ड, उसमें मानकर अपने त्यागकर बाबा—साधु हो गये। आहाहा!

यह **आत्मज्ञान के प्रभाव से महा प्रवीण हैं,...** आहाहा! **और जिनके मिथ्यात्व राग-द्वेषादि मलकर रहित शुद्धभाव हैं,...** आहाहा! **ऐसे पुरुषों के सिवाय...** है? **दूसरा कोई भी परमात्मप्रकाश के आराधने योग्य नहीं है।** यह अनेकान्त किया। अन्दर में आत्मा पुण्य और पाप के राग से रहित होकर और शुद्धस्वरूप को आराधे, सेवन करे, उसने आत्मा का आराधन किया कहलाता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष व्यवहार के क्रियाकाण्डवाला, वह इसे-आत्मा को पहुँच सके, यह तीन काल में नहीं है। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... यह तो विकल्प है, राग है। वृत्ति का उत्थान है। उसमें आत्मा कहाँ आया? आहाहा!

ऐसे पुरुषों के सिवाय... है? आहाहा! स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं। **ऐसे पुरुषों के सिवाय दूसरा कोई भी...** चाहे जितनी तपस्यायें करे, अपवास करे, वह सब क्रियायें चाहे जो हों, परन्तु उसके द्वारा आत्मा प्राप्त हो, ऐसा कभी तीन काल में नहीं होता। आहाहा! यह सब कर्मकाण्ड है। यह आत्मा का ज्ञानकाण्ड नहीं। आहाहा! यह तीन

काल में नहीं होता। गरीबी सेवन करते-करते श्रीमन्ताई होगी? या उसे छोड़कर होगी?... व्यवहार से कथन है। आहाहा! **ऐसे पुरुषों के सिवाय दूसरा कोई भी परमात्मप्रकाश के आराधने योग्य नहीं है।** आहाहा!

इस प्रकार चौबीस दोहों के महास्थल में आराधक पुरुष के लक्षण... अर्थात् आत्मा का आराधन अर्थात् सेवन अर्थात् उस सन्मुख की धर्मदशा करनेवाला, उसके लक्षण वर्णन किये। बाकी दूसरा सब... **लक्षण तीन दोहों में कहके छठ्ठा अन्तरस्थल समाप्त हुआ।** उसके भाग किये हैं।

गाथा - २१०

अथ शास्त्रफलकथनमुख्यत्वेन सूत्रमेकं तदनन्तरमौद्धत्यपरिहारेण च सूत्रद्वयपर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तथथा–

३३३) लक्खण–छंद–विवज्जियउ एहु परमप्प–पयासु।
कुणइ सुहावहँ भावियउ चउ–गइ–दुक्ख–विणासु।।२१०।।

लक्षणछन्दोविवर्जितः एष परमात्मप्रकाशः।
करोति सुभावेन भावितः चतुर्गतिदुःखविनाशम्।।२१०।।

लक्खण इत्यादि। लक्खण–छंद–विवज्जियउ लक्षणछन्दोविवर्जितोडयम्। अयं कः एहु परमप्पपयासु एष परमात्मप्रकाशः। एवंगुणविशिष्टोडयं किं करोति। कुणइ करोति। कम्। चउ–गइ–दुक्ख–विणासु चतुर्गतिदुःखविनाशम्। कथंभूतः सन्। भावियउ भावितः। केन। सुहावइं शुद्धभावेनेति। तथाहि। यधप्ययं परमात्मप्रकाश–ग्रन्थः शास्त्रक्रमव्यवहारेण दोहकछन्दसा प्राकृतलक्षणेन च युक्तः, तथापि निश्चयेन परमात्मप्रकाशशब्दवाच्यशुद्धात्म–स्वरुपापेक्षया लक्षणछन्दोविवर्जितः। एवंभूतः सन्नयं किं करोति। शुद्धभावनया भावितः सन् शुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नरागादिविकल्परहित–परमानन्दैकलक्षणसुखविपरीतानां चतुर्गति–दुःखानां विनाशं करोतीति भावार्थः।।२९०।।

आगे शास्त्र के फल के कथन की मुख्यताकर एक दोहा और उद्धतपने के त्याग की मुख्यताकर दो दोहे, इस तरह तीन दोहों में व्याख्यान करते हैं–

यह परमात्म प्रकाश ग्रंथ है लक्षण छन्द विहीन स्वभाव।
यदि स्वभाव से भाया जाये चार गति दुःख का हो नाश।।२१०।।

अन्वयार्थः– [एष परमात्मप्रकाशः] यह परमात्मप्रकाश [सुभावेन भावितः] शुद्ध भावोंकर भाया हुआ [चतुर्गतिदुःखविनाशम्] चारों गति के दुखों का विनाश [करोति] करता है। जो परमात्मप्रकाश [लक्षणछंदोविवर्जितः] यधपि व्यवहारनयकर प्राकृतरुप दोहा छंदोकर सहित है, और अनेक लक्षणोंकर सहित हैं, तो भी निश्चयनयकर परमात्मप्रकाश जो शुद्धात्मस्वरुप वह लक्षण और छंदोकर रहित है।

भावार्थः– शुभ लक्षण और प्रबंध ये दोनों परमात्मा में नहीं हैं। परमात्मा शुभाशुभ लक्षणोंकर रहित है, और जिसके कोई प्रबंध नहीं, अनंतरुप है, उपयोगलक्षणमय परमानंद लक्षणस्वरुप है, सो भावों से उसको आराधो, वही चतुर्गति के दुःखों का नाश करनेवाला है। शुद्ध परमात्मा तो व्यवहार लक्षण और श्रुतरुप छंदो से रहित है, इनसे भिन्न निज लक्षणमयी है, और यह परमात्मप्रकाशनामा अध्यात्म–ग्रंथ यधपि दोहे के छंदरुप है, और प्राकृत लक्षणरुप है, परंतु इसमें स्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता है, छंद अलंकारादि की मुख्यता नहीं है।।२१०।।

गाथा-२१० पर प्रवचन

२१०वीं। **आगे शास्त्र के फल के कथन की मुख्यताकर एक दोहा और उद्धतपने के त्याग की मुख्यताकर दो दोहे, इस तरह तीन दोहों में व्याख्यान करते हैंः—**२१०।

३३३) लक्खण–छंद–विवज्जियउ एहु परमप्प–पयासु।
कुणइ सुहावहँ भावियउ चउ–गइ–दुक्ख–विणासु।।२१०।।

नीचे अर्थ। **'एष परमात्मप्रकाशः' यह परमात्मप्रकाश... 'सुभावेन भावितः' शुद्ध भावोंकर भाया हुआ...** अन्तर की पवित्र भावना से भावना करते हुए आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा! यह कहीं शुभ–अशुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा आदि काम, क्रोध से प्राप्त नहीं होता। लो, यहाँ तो ऐसा कहा। **शुद्ध भावोंकर भाया हुआ...** शुद्ध, हों, शुभ नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह शुभ है, पुण्य है, राग है, विकार है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, वह अशुभ है, पाप है, जहर है, राग है, विकार है। तीव्र अशुभराग है। आहाहा! उससे रहित **शुद्ध भावोंकर भाया हुआ...** पुण्य और पाप के शुभ–अशुभभाव से रहित होकर शुद्धभाव से आत्मा की भावना करने से... आहाहा! **चारों गति के दुःखों का विनाश करता है।** आहाहा! चार गति के भवभ्रमण करे, वह दुःखी है। उसका वह नाश करता है। कहा न यह?

परमात्मप्रकाश शुद्ध भावोंकर भाया हुआ... शुद्ध। यह शुभ–अशुभ विकल्प से रहित, त्रिकाली आनन्दनाथ प्रभु को शुद्धभाव में एकाग्र होकर जो कोई भावना वह

करता है, वह **चारों गति के दुःखों का विनाश करता है।** इन चार गति में जन्मना मनुष्यरूप से, पशुरूप से, नारकीरूप से और देवरूप से। चार गतियाँ हैं। चौरासी लाख योनियाँ हैं। चौरासी लाख भव उत्पन्न होने के स्थान हैं। चौरासी लाख। उसे चौरासी लाख योनि कहते हैं। योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान। ऐसी चौरासी लाख योनि, चार गति, वह इस आत्मा की शुद्धभावना भाने से उन चार गतियों का नाश करता है। आहाहा!

दुःखों का विनाश करता है। जो परमात्मप्रकाश यद्यपि व्यवहारनयकर प्राकृतरूप दोहा छन्दोकर सहित,... यह शास्त्र। यह सूत्र है न, यह पाठ है। संस्कृत है न! वह **व्यवहारनयकर प्राकृतरूप दोहा छन्दोकर सहित है, और अनेक लक्षणोंकर सहित हैं,...** संस्कृत और व्याकरण सब होते हैं न स्कन्ध, उन सब सहित है, यह शब्द। **तो भी निश्चयनयकर परमात्मप्रकाश जो शुद्धात्मस्वरूप वह लक्षण और छन्दोकर रहित है।** परन्तु भगवान जो आत्मा परमात्मस्वरूप, उसमें यह छन्द और लक्षणों से रहित वह तो पुरुष है। समझ में आया?

शुद्धात्मस्वरूप वह लक्षण और छन्दोकर रहित है। आहाहा! यह शास्त्र भाषा में तो व्याकरण हो, विभक्ति, एकवचन, बहुवचन आदि बहुत प्रकार और बहुत लक्षण आदि हों। यह तो पृष्ठ है, यह तो जड़ है, यह कहीं आत्मा नहीं। जैसे मिश्री शब्द में कहीं मिश्री की डली नहीं है। मिश्री डली में कहीं मिश्री शब्द नहीं है; उसी प्रकार इस परमात्मप्रकाश में सब लक्षण और स्कन्ध और वस्तु है, वह कहीं आत्मा में नहीं है। आहाहा! वाणी में सब चाहे जो हो, परन्तु कहीं वाणी आत्मा में नहीं है। आत्मा तो अरूपी ज्ञानघन है, उसमें वाणी कैसी? यह तो शास्त्र के पृष्ठ तो जड़ है। भले परमात्मप्रकाश इसका नाम दिया, परनतु परमात्मप्रकाश यह शब्द है, उसमें स्कन्ध और लक्षणसहित है, परन्तु यह परमात्मा जो अन्दर है, वस्तु है वाच्य, वह वाचक है, वह बताता है वाच्य को। उसमें यह लक्षण और स्कन्ध, यह दोहा, अमुक क्या कहे सब बहुत प्रकार के दोहे। शार्दूल, उपजाति और अमुक ढींकणा। कवि कवि इसमें हो न। यह शार्दूल है और यह उपजाति है और यह अमुक है। ...इन सबसे रहित भगवान तो है। भले शब्दों में सब हो यह। आहाहा!

स्कन्ध और लक्षण सब इसमें भरा है। वस्तु जो यहाँ आत्मा उसे बताते हैं, जो

आत्मा उसमें तो यह स्कन्ध और लक्षण तो कुछ नहीं। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा कहते हैं और उसका—आत्मा का अनुभव, उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! और उसका कोई साधन होगा या नहीं पहला कोई साधन ऐसा? ऐसा लोग कहते हैं। सीधे ही ऐसा है। उसे पर के साधन की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! उसकी खबर नहीं। उसका स्वभाव ही प्रत्यक्ष ज्ञाता स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता उसका स्वरूप ही है। आहाहा! अलिंगग्रहण में छठवाँ बोले। अलिंगग्रहण है न २० बोल। प्रवचनसार १७२ गाथा। अलिंगग्रहण के २० बड़े अर्थ हैं। उसमें छठवाँ बोल यह है। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। उसे कोई बाहर विकल्प और निमित्त को कोई... साधारण हो, मोक्षपाहुड़ में तो प्रणित मौली प्रभावना वह प्राप्त हो आत्मा ऐसा नहीं। भक्तामर गाते हैं न सवेरे? व्यापार ठीक से चले। भक्तामर गाते हैं। बाबूभाई! यह बनिया ऐसा करते हैं फुरसत में। यह गाये। नौकरी ठीक चले, पैसा होगा, स्त्री-पुत्र ठीक रहे। धूल में भी ठीक वह तो रहते रहे हैं। उससे कुछ आत्मा मिले ऐसा नहीं, कहते हैं। ऐसे लाख तेरे भक्तामर गिर तू। गिनाते हैं और गिनते हैं वे।

यह बहुत गये थे वहाँ कालावड, कालावड। वह कालावड नहीं कालावड? कालावड, जामनगर के पास नहीं कालावड।

मुमुक्षु : जामनगर के पास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पास में है वह। एक बार एक महीने और चार दिन रहे थे। कालावड में एक। बहुत... तब दरबार गुजर गये थे। रणजीत सिंह। रणधीर सिंह वे दरबार गुजर गये थे। उनका अभी... वे गुजर गये थे। यह मैं तब था न, दिग्विजय। वे तो गये थे दिग्विजय के पास। वे सब धँस गये धूल में। उसे तो कहा था एक बार दरबार को। उसकी रानी है नहीं वह गुलाबरानी? बहुत करोड़ों रुपये इकट्ठे किये हैं। बड़ा व्यापार करती है।

मुमुक्षु : ऑफिस में बैठती है न....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो। आहाहा! लो ठीक। एक बार हम वहाँ थे न, कहलवाया कि महाराज दर्शन दें। दरबार को आँख में ठीक नहीं है। आँख में कुछ था। इतना बड़ा।

मैं दिशा को जाता था वहाँ उनके बँगले के पास पाँच मिनिट के रास्ते में। उन्हें खबर पड़ी कि महाराज यहाँ जंगल आते हैं। महाराज यहाँ दर्शन देने आओ न! हम गये थे। पन्द्रह मिनिट गये थे। फिर कहा था—यह राज नहीं धूल का, कहा। यह अनन्त गुण का नाथ आत्मा अन्दर है, उसका साम्राज्य, वह राज्य है। यह हमारे कहाँ उससे पैसा-बैसा लेना था। रानी कहे, हाँ, सच्ची बात महाराज। एक हजार रुपये रखे फिर ज्ञान खाते। ज्ञान खाते एक हजार रुपये दिये। पन्द्रह मिनिट बैठे थे। ...मर गया वह तो। आहाहा! बाहर में मानो करोड़ों का तालुका। यह क्या हुआ परनतु उसमें—धूल में। इस आत्मा के ज्ञान बिना सब चार गति में भटकनेवाले हैं। यह ढोर और नरक और कौआ, कुत्ता, कबूतर होनेवाले हैं सब। यहाँ जिसे आत्मज्ञान हुआ। है न? वह **चारों गति के दुःखों का विनाश करता है।** आहाहा! लो!

भावार्थः—शुभ लक्षण और प्रबन्ध ये दोनों परमात्मा में नहीं है। यह छन्द-बन्द देशी और देशी अमुक आता है न, यह मूल श्लोक है न देशी है न, उसे उसके लक्षण, **ये दोनों परमात्मा में नहीं है।** परमात्मा तो अन्दर ज्ञाता-दृष्टा ज्ञान और आनन्दस्वरूप, विकाररहित निर्विकारी चैतन्य का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा में यह परमात्म शब्द में जो लक्षण और छन्द हैं, वे उसमें—आत्मा में नहीं। वह तो सब वाणी जड़ में है। आहाहा! वह तो जड़ के लक्षण हैं। प्रभु आत्मा के लक्षण में वह दोहा और छन्द और लक्षण अन्दर नहीं। आहाहा!

परमात्मा शुभाशुभ लक्षणोंकर रहित है,... लो! शुभ लक्षण और अशुभ लक्षण से भी रहित आत्मा तो है अन्दर। कि भाई! यह शुभ आचरण करते हैं सदाचरण। ईश्वर भक्ति करे, नाम स्मरण करे, माला गिने, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे, नैतिक जीवन व्यतीत करे, वह सब शुभ आचरण है, वह कहीं आत्मा में नहीं। आहाहा! ऐसी बातें! यह शुभ और अशुभ **लक्षणोंकर रहित है, जिसके कोई प्रबन्ध नहीं,...** रचना शब्दों की उसमें कोई है नहीं। **अनन्तरूप है,...** आहाहा! जिसका आनन्द और ज्ञानस्वभाव है, उसे हद क्या? प्रभु आत्मा का स्वभाव तो आनन्द और ज्ञान, उसे हद क्या? उसे मर्यादा क्या? मर्यादा थी, उसका ज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप है। आहाहा! भले प्रकार प्रमाण हो, परन्तु उसका स्वभाव और भाव अनन्त है। शक्ति से अनन्त। अनन्त काल रहे

वह अलग वस्तु है। परन्तु वर्तमान उसका स्वभाव ही अनन्त, अमाप, अपरिमित शक्ति है। आहाहा!

उपयोगलक्षणमय परमानन्द लक्षणस्वरूप है,... लो! वह लक्षण शुभादि नहीं, परन्तु यह लक्षण है। क्या? आहाहा! **उपयोगलक्षणमय...** जानने-देखने के भाव, ऐसा जो उपयोग, जानना-देखना बस, ज्ञाता-दृष्टापने के लक्षणवाला वह तत्त्व है। लक्षणमय। वापस लक्षणवाला, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! **परमानन्द लक्षणस्वरूप है,... उपयोगलक्षणमय परमानन्द लक्षणस्वरूप है,...** आहाहा! अर्थात् मूल दो लक्षण बड़े हैं। ज्ञान और आनन्द। आहाहा! ऐसा आत्मा है, वह सुना नहीं लोगों ने। बाहर की बातों के कारण निवृत्त नहीं होता और उपदेशक भी उसे ऐसे मिले। ऐसे मिल जायेगा, ऐसे मिल जायेगा, ऐसे हो जायेगा, जाओ।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा, जिसके **उपयोगलक्षणमय परमानन्द लक्षणस्वरूप है,... सो भावों से उसको आराधो,...** इस भाव से उसका आराधन करो। ज्ञान और आनन्द के भाव से उसका सेवन करो। राग से और विकल्प से नहीं। आहाहा! अन्तिम गाथायें हैं न? **वही चतुर्गति के दुःखों का नाश करनेवाला है।** जिसका भवभ्रमण नाश हो जाये, ऐसा यह आत्मा का आराधन है। आहाहा! कोई देव और देवला को आराधते हैं न? वह देव और देवला सब भटकनेवाले हैं, तू यह तेरा आत्मा है, उसे आराध न, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चतुर्गति के दुःखों का नाश करनेवाला है। शुद्ध परमात्मा तो व्यवहार लक्षण और श्रुतरूप छन्दों से रहित है,... भगवान आत्मा जो शुद्ध परमात्मा है स्वयं, वह तो व्यवहार लक्षण श्रुतरूप छन्द और श्रुत के छन्द से रहित है। आहाहा! बाहर के किसी लक्षण से ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। शुभभाव से ज्ञाता हो, ऐसा उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! **इनसे भिन्न निज लक्षणमयी है,...** अपना निजलक्षण जो आनन्द और ज्ञान, उससे वह ज्ञात हो, ऐसा है।

और यह परमात्मप्रकाशनामा अध्यात्म-ग्रन्थ यद्यपि दोहे के छन्दरूप है,... दोहा और छन्द से **और प्राकृत लक्षणरूप है, परन्तु इसमें स्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता**

है,... मूल तो अन्दर स्वसंवेदन आत्मा के आनन्द का वेदन करना, उसकी मुख्यता वहाँ तूने की है। इन शब्दों की ओर उसकी कुछ मुख्यता है नहीं। आहाहा! **इसमें...** स्व अर्थात् अपना, सं-प्रत्यक्ष ज्ञान का ज्ञान से वेदन, उसकी मुख्यता है। **छन्द अलंकारादि की मुख्यता नहीं है।** लो! उसमें छन्द ऐसे बोले, देशी आवे, ऐसा बोले कण्ठ मीठा हो। आहाहा!

नहीं था, वहाँ राजकोट में गाती नहीं थी जगजीवन की पुत्री? था न वहाँ निवास। अपने जगजीवन कामदार की पुत्री। ऐसा देशी है, ऐसा कण्ठ है उसका। गढडावाले हरजीवन। वह इस कुण्डला में थी। आवास था उसमें। वह गाती थी प्रतिदिन। कण्ठ वह कण्ठ उसका कोई। परन्तु वह तो कण्ठ जड़ का है, कहते हैं। वह कहीं आत्मा में है नहीं। आत्मा का आराधन तो ज्ञान और आनन्द से होता है, ऐसा है। दूसरे से हो ऐसा नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २११

अथ श्रीयोगन्द्रदेव औद्धत्यं परिहरति-

३३४) इत्थु ण लेवउ पंडियहिँ गुण-दोसु वि पुणरुत्तु।
भट्ट-पभायर-कारणइँ मइँ पुणु पुणु वि पउत्तु।।२११।।

अत्र न ग्राह्यः पण्डितैः गुणो दोषोऽपि पुनरुक्तः।
भट्टप्रभाकरकारणेन मया पुनः पुनरपि प्रोक्तम्।।२११।।

इत्थु इत्यादि। इत्थु अत्र ग्रन्थे ण लेवउ न ग्राह्यः। कैः। पंडियहिँ पण्डितैर्विवेकिभिः। कोडसौ। गुण-दोसु वि गुणो दोषोऽपि। कथंभूतः। पुणरुत्तु पुनरुक्तः। कस्मान्न ग्राह्यः। यतः मइँ पुणु पुणु वि पउत्तु मया पुनः पुनः प्रोक्तम्। किं तत्। वीतरागपरमात्मतत्त्वम्। किमर्थम्। भट्ट-पभायर-कारणाइँ प्रभाकरभट्टनिमित्तेनेति। अत्र भावनाग्रन्थे समाधिशतकादिवत् पुनरुक्तदुषणं नास्ति इति। तदपि कस्मादिति चेत्। अर्थं पुनःपुनश्चिन्तनलक्षणमिति वचनादिति मत्वा प्रभाकरभट्टव्याजेन समस्तजनानां सुखबोधार्थं बहिरन्तःपरमात्मभेदेन तु त्रिविधात्मतत्त्वं बहुधाप्युक्तमिति भावार्थः। ।।२११।।

आगे श्रीयोगींद्रदेव उद्धतपने का त्याग दिखलाते हैं-

मैंने भट्ट प्रभाकर हेतु बारबार यह विषय कहा।
पण्डितगण पुनरुक्ति दोष का ग्रहण कदापि न करें यहाँ।।२११।।

अन्वयार्थः- [यत्र] श्री योगींद्रदेव कहते हैं, अहो भव्यजीवो, इस ग्रंथ में [पुनरुक्तः] पुनरुक्ति का [गुणो दोषोऽपि] दोष भी [पंडितैः] आप पंडितजन [न ग्राह्यः] ग्रहण नहीं करें, और कवि-कला का गुण भी न लें, क्योंकि [मया] मैंने [भट्टप्रभाकरकारणेन] प्रभाकरभट्ट के संबोधन के लिए [पुनः पुनरपि प्रोक्तम्] वीतराग परमानंदरुप परमात्मतत्त्व का कथन बार-बार किया है।

भावार्थः- इस शुद्धात्म-भावना के ग्रंथ में पुनरुक्त का दोष नहीं लगता। समाधितंत्र ग्रंथ की तरह इस ग्रंथ में भी बार बार शुद्ध स्वरुप का ही कथन किया है, बारम्बार उसी अर्थ का चिंतवन है, ऐसा जानकर इसका रहस्य (अभिप्राय) बार बार चिंतवना। प्रभाकरभट्ट की मुख्यताकर समस्त जीवों को सुख से प्रतिबोध होने के लिये

इस ग्रंथ में बार-बार बहिरात्मा अंतरात्मा और परमात्मा का कथन किया है, ऐसा जानना।।२११।।

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल ४, शनिवार
दिनांक- २१-०५-१९७७, गाथा - २११ से २१३, प्रवचन-२४४

परमात्मप्रकाश २११ गाथा। **आगे श्री योगीन्द्रदेव उद्धतपने का त्याग दिखलाते हैं**—२१० हो गयी न कल।

३३४) इत्थु ण लेवउ पंडियहिँ गुण-दोसु वि पुणरुत्तु।
भट्ट-पभायर-कारणइँ मइँ पुणु पुणु वि पउत्तु।।२११।।

श्री योगीन्द्रदेव कहते हैं, अहो भव्यजीवो! इस ग्रन्थ में 'पुनरुक्तः' बारम्बार कहा हो, वह दोष ग्रहण नहीं करना। भावना का ग्रन्थ है। बारम्बार परमात्मप्रकाश की बात की है, बारम्बार तो ऐसा पुनरुक्तपना जो कहा हो, (वह) गुण (है) उसे उसका दोष ग्रहण नहीं करना। **आप पण्डितजन ग्रहण नहीं करें,...** पुनरुक्त के गुण का बारम्बार वर्णन किया, उसका दोष पण्डित ज्ञानीजन ग्रहण नहीं करे। **और कवि-कला का गुण भी न लें,...** कवि-कला का कुछ अन्तर है अन्दर, वह भी बात लक्ष्य में न ले। **मैंने प्रभाकर भट्ट के सम्बोधन के लिये...** यह ग्रन्थ प्रभाकर भट्ट, इनके शिष्य थे, उन्हें समझाने के लिये (बनाया है)। क्या?

वीतराग परमानन्दरूप परमात्मतत्त्व का... यह समझाना है। आहाहा! यह आत्मा वीतराग परमानन्दरूप परमात्मतत्त्व है। उसका स्वभाव ही परमात्मस्वरूप है। कैसा? कि **वीतराग परमानन्दरूप...** रागरहित और परमानन्दसहित ऐसा यह चैतन्य का स्वरूप है। उसे यहाँ परमात्मा कहा गया है। आहाहा! **वीतराग परमानन्दरूप परमात्मतत्त्व का कथन बार-बार किया है।** बहुत बार आया है।

भावार्थः—इस शुद्धात्म-भावना के ग्रन्थ में... यह तो शुद्धात्मा की भावना का ग्रन्थ है। यह कहीं कथा-वार्ता बात नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन है, उसकी बारम्बार भावना करना, ऐसा यह ग्रन्थ है। बारम्बार शुद्ध आत्मा पवित्र भगवानस्वरूप,

पूर्णानन्दस्वरूप, उसे बारम्बार उसकी भावना, उस ओर की सन्मुखता की एकाग्रता का यह ग्रन्थ है। आहाहा! सार में सार यह कहा है। और करनेयोग्य हो तो यह पुनरुक्त दोष से भले हो भाषा पुनरुक्ति, परन्तु वह शुद्धात्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व, उसकी बारम्बार, उसका चिन्तवन हो, उसकी ओर लक्ष्य जाये, उसकी भावना हो, उसका बारम्बार स्मरण हो, इसके लिये परमात्मप्रकाश के वर्णन में बारम्बार यह बात आयी है। आहाहा! यह करनेयोग्य है। बाकी सब बातें लाख, करोड़ चाहे जो हो। 'लाख बात की बात...' आता है न छहढाला में। 'निश्चय उर लाओ। छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम उर ध्याओ।' द्वंद्व अर्थात् द्वैत को भी छोड़कर, संयोगी चीज़ को छोड़कर, संयोगी भाव को भी छोड़कर और गुणगुणी के भेद के भाव को भी छोड़कर। आहाहा!

निजस्वरूप भगवान वीतराग परमानन्द मूर्ति प्रभु है, उसकी बारम्बार भावना के लिये **पुनरुक्त का दोष नहीं लगता।** बारम्बार भावना में उसे पुनरुक्त—बारम्बार कहना, वह दोष नहीं लगता। किसकी भाँति? **समाधितन्त्र ग्रन्थ की तरह...** समाधि है न तन्त्र? समाधिशतक। उसमें यह थोड़े श्लोक, परन्तु बारम्बार आत्मा... आत्मा परमात्मा, उसका ही उसमें वर्णन है। तो उसकी भाँति भावना का यह ग्रन्थ है। **बार-बार शुद्धस्वरूप का ही कथन किया है,...** क्योंकि चाहे जितना सुने, चाहे जितना जाने, परन्तु करने का जो है, वह तो त्रिकाली शुद्ध भगवान—सन्मुख होना है। यह इसका कर्तव्य है। यह कार्य करनेयोग्य है। आहाहा!

शुद्धस्वरूप का कथन किया है, बारम्बार उसी अर्थ का चिन्तवन है,... उस पदार्थ का बारम्बार चिन्तवन, आनन्दकन्द है, ज्ञानकन्द है। सच्चिदानन्दस्वरूप, पूर्ण स्वरूप का बारम्बार चिन्तवन करने के लिये बारम्बार कथन किया गया है। **ऐसा जानकर इसका अभिप्राय रहस्य बार-बार चिन्तवना।** आहाहा! इसका रहस्य बारम्बार यह है। इसका अभिप्राय बारम्बार जो कहा है, उसका अर्थ यह भगवान शुद्धात्म-सन्मुख होना। और उसमें लीन होना, इसके लिये इस अभिप्राय से इस रहस्य के लिये यह बात की है। आहाहा! लोग कहते हैं न कि हमारे पहले क्या करना? कि पहले भी यह और बाद में भी यह। करनेयोग्य यह है। आहाहा! राग और द्वेषादि हो, परन्तु करनेयोग्य तो यह है। उपदेश का भी विकल्प आवे, परन्तु वह कहीं कर्तव्यरूप से यह मुख्य नहीं। वह तो

आवे वह अन्दर से। आहाहा! समझ में आया? उसका कर्तव्य तो शुद्धचैतन्यमूर्ति पूर्णानन्द वह परमात्मस्वरूप ही है। उसकी भावना, उसकी चिन्तवना, उसकी सन्मुखता, वह कर्तव्य है। लो! दुनिया को समझाना आवे, इसलिए सीखना। दुनिया को समझाना आवे, इसलिए कुछ बात धारण करना, शास्त्र को धार रखना, जिससे जगत को कहना आवे। ऐसा कोई रहस्य यहाँ है नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसा अभिप्राय यहाँ नहीं है। आहाहा!

प्रभाकर भट्ट की मुख्यताकर... उनके शिष्य की मुख्यता लेकर **समस्त सुख से प्रतिबोध होने के लिये...** सहजरूप से सरलरूप से जिस प्रकार शीघ्र समझ में आये उस प्रकार से **सुख से प्रतिबोध होने के लिये...** उसे स्वरूप सन्मुख हुआ जाये, ऐसी सीधी बात सरलरूप से बात की है। आहाहा! दुनिया को मानना आवे या न आवे दुनिया को मनाना, उसकी व्याख्या करना आवे या न आवे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

इस ग्रन्थ में बार-बार बहिरात्मा अन्तरात्मा और परमात्मा का कथन किया है,... लो, शुरुआत की थी, वह पूरा किया। बारम्बार बहिरात्मा, अर्थात् कि जो आत्मा के वास्तविक त्रिकाली असली स्वभाव में पुण्य और पाप और उनके फल, वह वस्तु में नहीं। उसे अपना मानना, वह बहिरात्मा है। शुभ और अशुभभाव और उनके फलरूप से प्राप्त अनुकूल-प्रतिकूल सामग्री, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! इससे जो स्वरूप में नहीं, उसे अपना मानना, यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य परिणाम भी स्वरूप में नहीं, उसे अपना मानना, वह बहिरात्मा है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। लो! शास्त्र में कहीं ऐसा आवे व्यवहार साधन है, व्यवहार कारण है। इसलिए वह आवे कहीं कथन भले (आवे)। आहाहा! परन्तु वह राग है, वह मेरी चीज़ है; जिसकी चीज़ में नहीं, वही मेरी चीज़ है, व्यवहार का विकल्प राग वह तो स्वरूप में है नहीं। आहाहा!

जो स्वरूप में नहीं, उसे अपना मानना, उसका नाम बहिरात्मा, बाह्य की चीज़ जो अन्दर में नहीं, उसे अपनी मानना, उसका नाम बहिरात्मा है। आहाहा! उसमें तो व्यवहार को अपना मानना, वह बहिरात्मा, ऐसा लिखते हैं। आहाहा! व्यवहार कौन सा? यह स्त्री, पुत्र और परिवार, इस व्यवहार की बात यहाँ नहीं है। आहाहा! यहाँ तो

अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति और गुण-गुणी भेद का विकल्प उठे, वह व्यवहार स्वरूप में नहीं। स्वरूप तो चिद्घन, ज्ञान रसकन्द, नित्यानन्द, अनादि-अनन्त शाश्वत् वस्तु, उसमें यह चीज़ नहीं, इसे अपनी मानना बहिरात्मा है। जैसी चीज़ है, वैसी मानना, उसका नाम अन्तरात्मा है। आहाहा! और जैसी चीज़ है, वैसी पर्याय में प्रगट होना, वह परमात्मा है। इन तीनों यह व्याख्या। आहाहा! जो भगवान आत्मा के स्वरूप में शुभ-अशुभ विकल्प नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं, परवस्तु, देश नहीं, देव-गुरु-शास्त्र भी नहीं, उसकी चीज़ (आत्मा) में तो। आहाहा! जो नहीं, वह बहिर् है और उस बहिर् चीज़ को अन्तर-आत्मा में मानना, इसका नाम मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। और जो अन्तरात्मा जिसमें चीज़ है ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि वस्तु है। पुण्य-पाप नहीं, इस प्रकार अन्तर में जो चीज़ है, उसे उस प्रकार से स्वीकार करना, अनुमोदन करना, उसका नाम अन्तरात्मा साधक जीव कहा जाता है। बहिरात्मा बाधक जीव, भटकनेवाला कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? और परमात्मा। इसकी शक्ति परमात्मस्वरूप है। उसकी प्रगट दशा परमात्मा को बताने के लिये यह सब बात है। आहाहा! उसका कथन किया। **ऐसा जानना।** वह ऐसा यह जानना तीनों का।

अब इसमें तो व्यवहार है, उसे अपना मानना, वह तो बहिरात्मा है, ऐसा कहा इसमें। चेतनजी! सब व्यवहार से होता है, बड़ी तकरार-विवाद यह है पण्डितों में। सोनगढ़ के सामने। यहाँ तो कहते हैं कि जो चीज़ तुझमें नहीं और जो चीज़ निकल जाती है, वह तुझमें नहीं। निकल जाये उसे अपनी मानना, इसका नाम ही बहिरात्मा और मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! निकल जाती है, उसे अपना नहीं मानना और जो निकल नहीं जाता, ऐसा उसका त्रिकाली स्वरूप है। ऐसा उसे मानना अन्तर में अनुभव करना, इसका नाम अन्तरात्मा है। बात तो सादी भाषा में है। आहाहा! और जैसा उसका अन्तर स्वरूप है विकाररहित और पूर्ण, वैसा उसकी दशा में प्रगट हो जाना, इसका नाम परमात्मा है। प्रवीणभाई! यह तो सीधी बात है। हिम्मतभाई नहीं आये?

मुमुक्षु : प्रान्तिज गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रान्तिज ठीक। प्रान्तिज में सब इकट्ठे गये हैं। ...बहुत गये हैं। रमेशभाई और वे सब गये हैं।

गाथा - २१२

अथ–

३३५) जं मइँ किं पि विजंपियउ जुत्ताजुत्तु वि इत्थु।
तं वर–णाणि खमंतु महु जे बुज्झहिँ परमत्थु।।२१२।।

यन्मया किमपि विजल्पितं युक्तायुक्तमपि अत्र।
तद् वरज्ञानिनः क्षाम्यन्तु मम ये बुध्यन्ते परमार्थम्।।२१२।।

जं इत्यादि। मइं कि पि विजंपियउ यन्मया किमपि जल्पितम्। किं जुत्ताजुत्तु वि शब्दविषये अर्थविषये वा युक्तायुक्तमपि इत्थु अत्र परमात्मप्रकाशभिधानग्रन्थे खमंतु क्षमां कुर्वन्तु। किं तत्। पूर्वोक्तदूषणम्। के। वर–णाणि वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन–ज्ञानयुक्ता विशिष्टज्ञानिनः। कस्य। महु मम योगीन्द्रदेवाभिधानस्य। कथंभूता ये ज्ञानिनः जे बुज्झहिं ये केचन बुध्यन्ते जानन्ति। कम्। परमत्थु रागादिदोषरहितमनन्तज्ञानदर्शन–सुखवीर्यसहितं च परमार्थशब्दवाच्यं शुद्धात्मानमिति भावार्थः।।२१२।। इति सूत्रत्रयेण सप्तममन्तरस्थलं गतम्। एवंसप्तभिरन्तस्थलैश्चतुर्विंशतिसूत्रप्रमितं महास्थलं समाप्तम्।

आगे श्रीयोगीन्द्राचार्य ज्ञानीजनों से प्रार्थना करते हैं, कि मैंने जो किसी जगह छंद अलंकारादि में युक्त–अयुक्त कहा हो, तो उसे पंडितजन परमार्थ के जाननेवाले मुझ पर क्षमा करें–

युक्त अयुक्त कहा हो यदि कुछ भी मैंने निज बुद्धि से।
तो परमार्थ–तत्त्व के ज्ञाता बुधजन मुझको क्षमा करें।।२१२।।

अन्वयार्थः– [अत्र] इस ग्रंथ में [यत्] जो [मया] मैंने [किमपि] कुछ भी [युक्तायुक्तमपि विजल्पितं] युक्त अथवा अयुक्त शब्द कहा होवे, तो [तत्] उसे [ये वरज्ञानिनः] जो महान् ज्ञान के धारक [परमार्थम्] परम अर्थ को [बुध्यंते] जानते हैं, वे पंडितजन [मम क्षाम्यंतु] मेरे ऊपर क्षमा करें।

भावार्थः– मेरी छद्मस्थ की बुद्धि है, जो कदाचित् मैंने शब्द में, अर्थ में, तथा छंद अलंकार में, अयुक्त कहा हो, वह मेरा दोष क्षमा करो, सुधार लो, जो विवेकी परम अर्थ को अच्छी तरह जानते हैं, वे मुझ पर कृपा करो, मेरा दोष न लो। यह प्रार्थना

योगीन्द्राचार्य ने महामुनियों से की। जो महामुनि अपने शुद्ध स्वरुप को अच्छी तरह अपने में जानते हैं। जो निजस्वरुप रागादि देष रहित अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्यकर सहित हैं, ऐसे अपने स्वरुप को अपने में ही देखते हैं, जानते हैं, और अनुभवते हैं, वे ही इस ग्रंथ के सुनने के योग्य हैं, और सुधारने के योग्य हैं।।२१२।।

इस प्रकार तीन दोहों में सातवाँ अंतरस्थल कहा। इस तरह चौबीस दोहों का महास्थल पूर्ण हुआ।

गाथा-२१२ पर प्रवचन

आगे श्री योगीन्द्राचार्य ज्ञानीजनों से प्रार्थना करते हैं,.... २१२।

३३५) जं मइँ किं पि विजंपियउ जुत्ताजुत्तु वि इत्थु।
तं वर-णाणि खमंतु महु जे बुज्झहिँ परमत्थु।।२१२।।

आहाहा! कहते हैं **कि मैंने जो किसी जगह छन्द अलंकारादि में युक्त-अयुक्त कहा हो,...** युक्त और अयुक्त कहा हो। कोई छन्द अलंकारादि का अन्तर पड़ा हो, लो! ऐसा वहाँ कहते हैं न कुन्दकुन्दाचार्य। (समयसार गाथा ५) '**छलं न धेतव्य**' व्याकरण की विधि की पद्धति में कहीं अन्तर तुझे लगता हो, तू जानता हो तो भी उसे ग्रहण नहीं करना। अन्तर स्वरूप क्या है, उसे पचाना, उसे अन्तर ग्रहण करना, यह बात मुख्य है। अलंकार और कवि के उसके बहुत हों, बापू! अब वह कहीं ज्ञान का पार नहीं है।

तो उसे पण्डितजन परमार्थ के जाननेवाले... परन्तु वह, हों! पण्डितजन। परमार्थ के जाननेवाले **मुझ पर क्षमा करे।** आहाहा! इतना कहकर इतना कहे, मुझे क्षमा कर बापू! आहाहा! विकल्प में कोई अलंकार में, विभक्ति आदि में, संस्कृत, व्याकरण में, कवि-कला के शब्दों में उसका फेरफार कोई हो तो पण्डितजनों, ज्ञानीजनों क्षमा करना। मैं छद्मस्थ हूँ, ऐसा कोई कवि आदि या विभक्ति या व्याकरण के नियम में, छद्मस्थ हूँ, (इसलिए) फेरफार आ जाये। आहाहा! मूल तत्त्व में नहीं। ऐसी बात में आवे तो क्षमा करना। छोड़ देना। विशेष तुमको ज्ञान हो, तो ऐसा तुमको लगे कि इस कवित्त में इतने अक्षर चाहिए और इन अक्षरों में कानोमात्रा इतने चाहिए, उसमें कहीं कानोमात्रा बढ़

गयी हो तो माफ करना। पण्डितजनो माफ करना, हों! साधारण अज्ञानी की यहाँ बात नहीं। आहाहा!

अन्वयार्थः—इस ग्रन्थ में जो मैंने कुछ भी युक्त अथवा अयुक्त शब्द कहा होवे,... अब इसमें से भी वापस कोई दोष निकाले। कोई ऐसा कहे कि आत्मा तो कहीं शब्द कर नहीं सकता और यह तो ऐसा कहते हैं कि युक्त-अयुक्त मैंने कहा। देखा, निकालते हैं न वह 'वोच्छामि समयपाहुडं' कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मैं समयप्राभृत कहूँगा। तुम कहते हो कि आत्मा भाषा नहीं कर सकता। भाई! यह तो किस अपेक्षा से कहते हैं? असद्भूतव्यवहारनय से कथन है। असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। ऐसा यह युक्त-अयुक्त मैंने कहा है, वह भी असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। कहा है, इसके ऊपर जोर नहीं, अन्दर में कोई फेरफार कवित्त, कला और अक्षर मात्रा में अन्तर हो तो उसे गौण करना, यह बात है। आहाहा!

युक्त अथवा अयुक्त शब्द कहा होवे,... ऐसा है न? '**युक्तायुक्तमपि विजल्पितं**' ऐसा है। ऐसी भाषा अथवा ऐसा कोई भाव आ गया हो व्याकरण, संस्कृत आदि का, ऐसा। **तो उसे जो महान ज्ञान के धारक... 'वरज्ञानिनः'** साधारण नहीं। महानज्ञान के धारक **परम अर्थ को जानते हैं,...** जो कोई परम पदार्थ भगवान आत्मा को जानते हैं, जानते हैं, उनके लिये। आहाहा! '**परमार्थम्**' **परम अर्थ को जानते हैं, वे पण्डितजन... 'मम क्षाम्यंतु' मेरे ऊपर क्षमा करें।** आहाहा!

मेरी छद्मस्थ की बुद्धि है,... पूरा परमात्मप्रकाश कहकर निर्मानता बतलाते हैं। आहाहा! **मेरी छद्मस्थ की बुद्धि है, जो कदाचित् मैंने शब्द में,...** है? **शब्द में,...** हों! उसके **अर्थ में, छन्द अलंकार में, अयुक्त कहा हो, वह मेरा दोष क्षमा करो, सुधार लो,...** आहाहा! यहाँ तो अनुभव की प्रधानता है, शब्दों की शैली की प्रधानता नहीं। आहाहा! कैसे बहुत ऐसे लड़ाना आया भाषा और शार्दूल और उपजाति और कवित्व और उसकी कोई इसमें मुख्यता नहीं। अन्दर भगवान आत्मा अनजाना अनादि (से) रहा है, उसे जानता करके अनुभव करना। पर के जानेपने में रुककर अपना जानपना किया नहीं। पर जो वस्तु है, वह तुझमें नहीं और तुझे सम्बन्ध भी नहीं, उसके ज्ञान में रुककर

और जो तेरा स्वरूप है, उसका ज्ञान तूने किया नहीं। वह ज्ञान कराने के लिये यह सब बात है। शब्दों के अन्दर में फेरफार हो, उसकी यहाँ मुख्यता नहीं है। आहाहा!

सुधार लो... भूल क्षमा करो और सुधार लो। आहाहा! कोई भाषा में अक्षर। गद्य है और यह पद्य पद्य। गाथाओं के किसी अक्षर में। आहाहा! **जो विवेकी परम अर्थ को अच्छी तरह जानते हैं,...** परन्तु इन दो शब्दों का वजन है। एक तो विवेकी है, राग से भिन्न पड़ा हुआ है और परम अर्थ को जाननेवाला है। आहाहा! ऐसे विवेकी को सुधार लेना, उसके लिये बात की है। अज्ञानी जिन्हें आत्मा की खबर नहीं और फिर व्याकरण आदि के पढ़े हुए, वे दोष निकालें तो उनके लिये हम नहीं कहते। आहाहा!

विवेकी परम अर्थ को अच्छी तरह जानते हैं,... परम पदार्थ प्रभु आत्मा, आनन्द की मूर्ति प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, ऐसा जिसे ज्ञान है, परमार्थ को परमपदार्थ को जानता है। ऐसे ज्ञानी **वे मुझ पर कृपा करो,...** आहाहा! **वे मुझ पर कृपा करो,...** आहाहा! पद्मनन्दि में भी कहा न! ब्रह्मचर्य की व्याख्या बहुत की, पद्मनन्दि आचार्य ने। ब्रह्मा अर्थात् ब्रह्म भगवान आत्मा। ब्रह्मस्वरूप आनन्द में चरना, रमना, वह ब्रह्मचर्य है। यह सब विषय, वासना के विकल्प और जहर जैसे दुःख की खान। आहाहा! उसे छोड़। आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु उसमें चर न, रम न, ऐसी बहुत व्याख्या की है।

फिर अन्त में कहा, हे युवकों! तुम्हारा शरीर युवा हस्ट-पुष्ट दिखाई दे, अलमस्त खावे-पीवे और दिखाई दे। आहाहा! चलते हुए जमीन धूजे धम... धम... धम... धम... युवक हो तो। ऐसे युवकों को यह बात कदाचित् न रुचे तो मैं तो मुनि हूँ, मुझे क्षमा करना। आहाहा! क्योंकि तुम्हारा शरीर युवक हष्ट-पुष्ट हो, सेर-सेर मैसूर खा जाते हों, आहाहा! ओ... ऐसा खा-पीकर उठे मानो कि ओहोहो! सांढ जैसा शरीर युवक २५-३०-३० वर्ष की उम्र और मैं यह ब्रह्मचर्य की बात की। वह ब्रह्मचर्य शरीर से पालना, वह नहीं। ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ भगवान आत्मा ब्रह्मस्वरूप प्रभु आनन्दस्वरूप में चरना, अन्दर रमना। उसे हम ब्रह्मचर्य, धर्मात्मा, आनन्द आत्मा उसे कहते हैं। आहाहा! ऐसी ब्रह्मचर्य की बात हमने अन्दर में स्वरूप में रमने की बात की, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। वह हे जवानो! तुम्हारी जवान अवस्था में हष्ट-पुष्ट शरीर, पाँच, पच्चीस लाख की

पूँजी हो, पिता का इकलौता पुत्र हो और फलाफूला हो और तुमको यह हमारी बात न रुचे, आहाहा! क्षमा करना। आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। भावलिंगी सन्त आनन्द में झूलनेवाले। आहाहा! प्रभु! सत्य तो यह है, यह क्षमा करना अन्दर न रुचे तो। आहाहा! फिर विशेष क्या कहें? आहाहा!

जिसे ऐसे मोक्ष तो ऐसे हथेली में है अल्प काल में। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाले अन्दर में यह कहते हैं कि हमने ब्रह्मचर्य की व्याख्यायें कीं, प्रभु! युवकों को न सुहावे तो हम तो मुनि हैं, क्षमा करना। यह योगीन्द्रदेव कहते हैं कि हमने तो आत्मा के आनन्द की बात की है, बापू! आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें रमना, उसकी (बात की है) परमात्मप्रकाश तो उसका नाम है। आहाहा! यह बात हमने बहुत बार की। यह तुमको बारम्बार बात की, (वह) न सुहाती हो तो पण्डितजन उसे सुधारकर करना। कोई व्याकरण आदि का फेरफार हो तो बदल लेना, मेरे प्रति क्षमा करना। आहाहा! मैं छद्मस्थ हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मेरी छद्मस्थ की बुद्धि है। ऐसा लिखा है न? **मेरी छद्मस्थ की बुद्धि है।** आहाहा! इसलिए **यह प्रार्थना योगीन्द्राचार्य ने महामुनियों से की।** फिर ऐसा कहते हैं, देखो! साधारण अज्ञानी जानता हो तो ऐसा कहा बातें-बातें। उसके लिये बात नहीं है। आहाहा! महामुनियों को। **जो महामुनि अपने शुद्धस्वरूप को अच्छी तरह अपने में जानते हैं।** मुनि तो उसे कहते हैं कि आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान आत्मा अन्दर भरा है यह प्रभु। उसे इन्द्रिय का सुख है, वह तो जहर जैसा है। आहाहा! जैसे कड़वी दवा पीवे, और जैसे मुख ठीक न रहे, ऐसे चढ़ जाये। बहुत कड़वा। बहुत कड़वा। एक दवा ऐसी आती है, यह पीलिया की। पीलिया होता है न पीलिया? उसमें एक देशी दवा ऐसी आती है कि कुत्ते की विष्टा गन्ध मारे, उससे भी (अधिक) गन्ध मारे। ऐसी दवा आती है। देशी दवा, हों! ऐसी गन्ध मारे... ऐसी गन्ध मारे... कुत्ते की विष्टा गन्ध मारे उससे अधिक। ऐसा वह पीलिया हो, उसे तो देनी पड़े। परन्तु वह उसे जहर पीने जैसा लगे। आहाहा! वैद्य बतावे देशी वैद्य। देशी वैद्य बतावे कि वह यह दवा है और वह दवा आवे वहाँ गन्ध मारे। कुत्ते की विष्टा जैसी। प्रेम से

पीता है उसे ? आहाहा ! इसी प्रकार कहते हैं कि जिसे आत्मा के आनन्द का रस आया है, जिसे ब्रह्मरस चढ़ा है, आहाहा ! उसे यह विषय के रस कुत्ते की विष्टा की गन्ध मारे उससे अधिक गन्ध मारे ऐसी चीज़ है। आहाहा !

तो हमारा यहाँ अभिप्राय तो परमानन्द प्रभु आत्मा है, उसमें ले जाने की भावना करने का ग्रन्थ है यह तो। दूसरी आड़ी-टेढ़ी बात कोई अधिक कह गयी हो और जो मूल बात है, वह भी बहुत बार कही गयी हो, तो क्षमा करना। आहाहा ! अन्तिम गाथायें हैं न ? आहाहा ! देखो, यह दिगम्बर सन्त ! आहाहा ! वन के बाघ जैसे पड़े हों अन्दर में, आनन्द की थाप मारकर राग को अन्दर से तोड़ डाले। आहाहा ! छद्मस्थ होने पर भी उस आनन्द के कन्द में प्रभु झूलते हैं। यह उन्हें परमात्मप्रकाश कहा। कितनी गाथायें हुई नहीं ? २१४ तो यह है। और पहली ? पहली कितनी हैं ? पहले अध्याय की। १२३, थोड़ी सी अन्दर डाली हुई है दूसरी (प्रक्षेपक)। १२३ और २१४, कितनी हुई ? ३३७ हुई। आहाहा ! यह इसमें लिखा होगा पीछे। लिखा है देखो। **तीन प्रेक्षक सहित (१२६) दोहा...** तीन प्रेक्षक करके १२६ है। **एक सौ चौदह ११४ तथा ५ प्रेक्षक सहित १११ दोहों में दूसरा महा अधिकार कहा।** ११४ नहीं २१४ चाहिए। और **एक सौ सात १०७ दोहों में तीसरा महा अधिकार कहा। प्रक्षेपक और अन्त के दो छन्द उन सहित तीन सौं पैंतालीस ३४५...** लो ! ३४५ दोहे कहे, परमात्मप्रकाश है न अन्त में ?

महामुनि अपने शुद्धस्वरूप को अच्छी तरह अपने में जानते हैं। यह मुनि। ऐसे मुनि को यहाँ प्रार्थना करते हैं। जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय, उसका जिसे स्वज्ञेय का ज्ञान और स्वज्ञेय के आनन्द का वेदन। आहाहा ! ऐसी जिसकी दशा है, उसे यहाँ मुनि कहते हैं। यहाँ तो बाहर में फेरफार बहुत हो गया। **जो निजस्वरूप रागादि द्वेष रहित...** आहाहा ! **अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यकर सहित हैं,...** ऐसा जो भगवान आत्मा का वास्तविक स्वरूप जैसे वह आत्मा अनादि-अनन्त शाश्वत् है, वैसे उसकी शक्तियाँ स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य शाश्वत् है। ऐसा वह भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा !

ऐसे अपने स्वरूप को अपने में ही देखते हैं,... ऐसा अपना जो स्वरूप है, उसे

अपने में ही देखता है। अपना स्वरूप अपने में देखता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर को जाने देखने छोड़ने की बात पड़ी रही। आहाहा! जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य प्रभु बल, ऐसा जो स्वरूप अपना इस आत्मा का है। जो कोई स्वयं उसे अपने में अपने को देखता और जानता है, अपने को अपने में ऐसे स्वरूप को देखता और जानता है। आहाहा! **अपने में ही देखते हैं, जानते हैं, और अनुभवते हैं,...** तीन ले लिया।

वे ही इस ग्रन्थ के सुनने के योग्य हैं,... आहाहा! मूल तो कहना यह है कि **और सुधारने के योग्य हैं।** इस ग्रन्थ को सुधारने को वे योग्य हैं, ऐसा कहा। सुनने के योग्य तो नहीं कहा जाता। है न अन्दर? इस ग्रन्थ में कोई भूल हो तो ऐसे ज्ञानी **सुधारने के योग्य हैं।** आहाहा! २१२ हुई।

गाथा - २१३

अथैकवृत्तेन प्रोत्साहनार्थं पुनरपि फलं दर्शयति–

३३६) जं तत्तं णाण–रुवं परम–मुणि–गणा णिच्च झायंति चित्ते
जं तत्तं देह–चत्तं णिवसइ भुवणे सव्व–देहीण देहे।
जं तत्तं दिव्व–देहं तिहुविण–गुरुगं सिज्झए संत–जीवे।
जं तत्तं जस्स सुद्धं फुरइ णिय–मणे पावए सो हि सिद्धिं।।२१३।।

यत् तत्त्वं ज्ञानरुपं परममुनिगणा नित्यं ध्यायन्ति चित्ते
यत् तत्त्वं देहत्यक्तं निवसति भुवने सर्वदेहिनां देहे।
यत् तत्त्वं दिव्यदेहं त्रिभुवनगुरुकं सिध्यति शान्तजीवे
तत् तत्त्वं यस्य शुद्धं स्फुरति निजमनसि प्राप्नोति स हि सिद्धिम्।।२१३।।

पावए सो प्राप्नोति स हि स्फुटम्। काम्। सिद्धिं मुक्तिम्। यस्य किम्। जस्स णिय–मणे फुरइ यस्य निजमनसि स्फुरति प्रतिभाति। किं कर्मतापन्नम्। तं तत्तं तत्तत्त्वम्। कथंभूतम्। शुद्धं रागादिरहितम्। पुनरपि कथंभूतं यत्। जं तत्तं णाण–रुवं यदात्मतत्त्वं ज्ञानरुपम्। पुनरपि किंविशिष्टं यत्। णिच्च झायंति नित्यं ध्यायन्ति। क्व चित्त मनसि। के ध्यायन्ति। परम–मुणि–गणा परममुनिसमूहाः। पुनरपि किंविशिष्टं यत्। जं तत्तं देह–चत्तं यत्परमात्मतत्त्वं देहत्यक्तं देहाद्भिन्नम्। पुनरपि कथंभूतं यत्। णिवसइ निवसति। क्व। भुवणे सव्व–देहीण देहे त्रिभुवने सर्वदेहिनां संसारिणां देहे। पुनरपि कीदृशं यत्। जं तत्ते दिव्व–देहं यत् शुद्धात्मतत्त्वं दिव्यदेहं दिव्यं केवलज्ञानादिशरीरम्। शरीरमिति कोडर्थः। स्वरुपम्। पुनश्च कीदृशं यत्। तिहुयण–गुरुगं अव्याबाधानन्तसुखादिगुणेन त्रिभुवनादपि गुरुं पूज्यमिति त्रिभुवनगुरुकम्। पुनरपि किंरुपं यत्। सिज्झए सिद्धयति निष्पत्तिं याति। क्व। संत–जीवे ख्यातिपूजालाभादिसमस्तमनोरथविकल्प–जालरहितत्वेन परमोपशान्त जीवस्वरुपे इत्यभिप्रायः।।२१३।।

आगे एक स्त्रग्धरा नाम के छंद में फिर भी इस ग्रंथ के पढ़ने का फल कहते हैं–

परम मुनीश्वर ज्ञान स्वरूपी जिस आत्मा का ध्यान करें।
जो अशरीरी किन्तु प्राणियों के शरीर में वास करे।।

विषय सुखों में लीन जीव को दुर्लभ शाश्वत सौख्य स्वरूप।
सदा रहो जयवन्त दिव्य वह केवलज्ञान मोक्ष सुखरूप।।२१३।।

अन्वयार्थः- [तत्] वह [तत्त्वं] निज आत्म-तत्त्व [यस्य निजमनसि] जिसके मन में [स्फुरति] प्रकाशमान हो जाता है, [स हि] वह ही साधु [सिद्धिम् प्राप्नोति] सिद्धि को पाता है। कैसा है, वह तत्त्व? जो कि [शुद्धं] रागादि मल रहित है, [ज्ञानरुपं] और ज्ञानरुप है, जिसको [परममुनिगणाः] परममुनिश्वर [नित्यं] सदा [चित्ते ध्यायंति] अपने चित्त में ध्याते हैं, [यत् तत्त्वं] जो तत्त्व [भुवने] इस लोक में [सर्वदेहिनां देहे] सब प्राणियों के शरीर में [निवसति] मौजूद है, [देहत्यक्तं] और आप देह से रहित है, [यत् तत्त्वं] जो तत्त्व [दिव्यदेहं] केवलज्ञान और आनंदरुप अनुपम देह को धारण करता है, [त्रिभुवनगुरुकं] तीन भुवन में श्रेष्ठ है, [शांतजीवे सिध्यति] जिसको आराधकर शांतपरिणामी संतपुरुष सिद्धपद पाते हैं।

भावार्थः- ऐसा वह चैतन्यतत्त्व जिसके चित्त में प्रगट हुआ है, वही साधु सिद्धि को पाता है। अव्याबाध अनंत सुख आदि गुणोंकर वह तत्त्व तीन लोक का गुरु है, संतपुरुषों के ही हृदय में वह तत्त्व सिद्ध होता है। कैसे हैं संत? जो अपनी बड़ाई, अपनी प्रतिष्ठा और लाभादि समस्त मनोरथों और विकल्पजालों से रहित हैं, जिन्होंने अपना स्वरुप परमशांतभावरुप पा लिया है।।२१३।।

गाथा-२१३ पर प्रवचन

इस प्रकार तीन दोहों में सातवाँ अन्तरस्थल कहा, इस तरह चौबीस दोहों का महाफल कहा। आगे एक स्त्रग्धरा नाम के छन्द में फिर भी इस ग्रन्थ के पढ़ने का फल कहते हैं—२१३

३३६) जं तत्तं णाण-रुवं परम-मुणि-गणा णिच्च झायंति चित्ते
जं तत्तं देह-चत्तं णिवसइ भुवणे सव्व-देहीण देहे।
जं तत्तं दिव्व-देहं तिहुविण-गुरुगं सिज्झए संत-जीवे।
जं तत्तं जस्स सुद्धं फुरइ णिय-मणे पावए सो हि सिद्धिं।।२१३।।

चार है। चार पद की एक गाथा है। **वह निज आत्म-तत्त्व...** आहाहा! वह भगवान आत्मा इस शरीर, वाणी, मन से भिन्न और पुण्य-पाप के विकल्प की लगनी से, वृत्ति से वह भिन्न तत्त्व अन्दर है। जो एक समय की पर्याय में भी पूरा तत्त्व कभी नहीं आता, ऐसा जो परमतत्त्व आत्मा अन्दर। आहाहा! क्या होगा यह? आत्मा की बातें छोड़कर दूसरी सब बातें। दया पालो, व्रत करो, अपवास करो। बिना वर की बारात। वह उसे बारात नहीं कहा जाता। मनुष्यों का झुण्ड कहलाता है। वर हो तो बारात कहलाती है। उसी प्रकार आत्मा का भान निश्चय का हो तो फिर विकल्प आदि हो, वह व्यवहार कहलाये। व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार, निश्चय का कारण है—ऐसा नहीं, तथा व्यवहार वीतराग होने से पहले आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं '**पढ़ने का फल कहते हैं।' निज आत्म-तत्त्व...** ऐसा। निज आत्मतत्त्व। ऐसा क्यों कहा? परमात्मा वीतराग सर्वज्ञदेव हैं, वे भी तत्त्व तो है परमात्मा। परन्तु वह तो परतत्त्व है। यह तो निजतत्त्व भगवान अन्दर चैतन्य चमत्कार प्रभु पड़ा है। आहाहा! चैतन्य के चमत्कार के स्वभाव से भरपूर भगवान चमत्कृति चीज़ है यह। आहाहा! बाहर के चमत्कार जगत देखने जाता है, परन्तु अन्दर के चैतन्य के चमत्कार की उसे खबर नहीं। आहाहा! जिसे यहाँ ज्ञान में तीन काल—तीन लोक की अस्ति है, इसलिए वह जानता है, ऐसा नहीं। ऐसी उसकी शक्ति है। आहाहा! ऐसा जो परमतत्त्व आत्मा '**यस्य निजमनसि' जिनके मन में प्रकाशमान हो जाता है,...** आहाहा!

मन शब्द से जिसकी ज्ञान की पर्याय में निजतत्त्व आनन्दकन्द प्रभु, जिसकी वर्तमान ज्ञान की दशा में **प्रकाशमान हो जाता है,...** आहाहा! उस निज पर्याय में अनादि से पर का प्रकाश और पर का जानना अकेला। वह अकेला एकान्त मिथ्यात्व है। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय में, अवस्था में निज प्रकाश आत्मा का आता है। आहाहा! ऐसा उपदेश, इसलिए लोगों को... वाडा में सुना तो हो नहीं यह एक भी शब्द। अब यह किस प्रकार का धर्म होगा यह? जैनधर्म ऐसा होगा? नया। कितने ही ऐसा कहे कि नया निकाला है। बापू! तूने सुना नहीं, इसलिए तुझे नया लगता है। वीतराग परमेश्वर जिनेश्वर का तत्त्व ही ऐसा है। जो तत्त्व यह स्वयं जिनस्वरूपी ही आत्मा तत्त्व है।

वह जिसकी ज्ञानपर्याय में **प्रकाशमान हो जाता है,...** आहाहा! **वही साधु सिद्धि को पाता है।** देखो, ऐसा आया। ...होवे तो ... प्राप्त हो, ऐसा इसमें नहीं आया। आहाहा! यह तो कहे वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, बस यह साधन है और इससे साध्य आत्मा प्रगट होगा। ऐसा कहता है। ऐसे कथन भी हैं शास्त्र में। भिन्न साध्यसाधन के कथन हैं न? वह तो ज्ञान कराने को। निमित्त से उस साधकपने में परमतत्त्व को जाना है, ऐसी दशा में पूर्ण दशा नहीं, इससे राग का कितने प्रमाण में राग होता है, उसका वह ज्ञान कराने के लिये यह बात की है। आहाहा! अब इतना सब फेरफार। भिन्न साध्यसाधन शास्त्र पाठ, लो।

मुमुक्षु : निमित्त सिद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। निमित्त का ज्ञान कराते हैं। निमित्त कुछ करता नहीं। आहाहा! विवाद यह है न अभी। कल आया है न अखबार (पत्रिका) में। सोनगढ़वाले उपादान को ही मानते हैं और कार्य उपादान और निमित्त दो होकर मिश्र कार्य होता है। अरे! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! जो चीज़ है आत्मा या जड़, जिस क्षण में उसकी जो दशा होनेवाली है, उसका वह समय है। वह अपना कार्य है, निमित्त का नहीं। निमित्त से नहीं। निमित्त हो, जानने के लिये दूसरी चीज़ है, परन्तु दूसरी चीज़ से यहाँ उसमें कार्य होता है, यह बड़े पण्डितों के साथ दिक्कत है।

शास्त्र परिषद और वह विद्वत् परिषद में तो कितने ही कुछ कैलाशचन्द, जगनमोहनलालजी, ऐसा जरा फेरफार है। वे लोग कहे कि करो अपने चर्चा, बात अपनी सच्ची, ऐसा कहते हैं। बाबूभाई का लेख। परन्तु यह चर्चा करने से पार नहीं आता। शास्त्र में व्यवहार के कथन इतने अधिक हैं। आया नहीं ११वीं गाथा में? व्यवहार के इतने अधिक कथन कि अधिक कथन व्यवहार के, परन्तु उसका भी उसका फल संसार है। अब क्या करना? कथन तो निमित्त के कथन, भेद के कथन, संयोग के कि यह संयोगी (चीज़) कैसी होती है, उसका वर्णन तो आवे, परन्तु उस परलक्ष्यी संयोगी चीज़ में या परलक्ष्यी भाव का फल तो संसार है। भगवान ने कहा हुआ व्यवहार परलक्ष्यी। आहाहा! उसका फल भी संसार है। अब यह बात कैसे बैठे?

जिसकी ज्ञान की पर्याय में **निज आत्मतत्त्व जिसके मन में प्रकाशमान हो जाता है,...** यह ऐसी बात है। परमेश्वर प्रकाशमान होता है और अरिहन्त, यह बात नहीं ली। जिसके निजतत्त्व भगवान जो ज्ञानस्वरूप प्रभु, उसकी वर्तमान पर्याय में निजतत्त्व प्रकाशमान आता है, वह सिद्धि को प्राप्त होता है, वह मुक्ति को प्राप्त होता है। उसकी पर्याय में भगवान आवे या देव-गुरु-शास्त्र आवे तो वह राग है, वह कहीं उनसे सिद्धि और प्राप्ति है नहीं। आहाहा! है या नहीं उसमें अन्दर? ऐई! माँगीलालजी! वहाँ तो ऐसा कहा। इस ज्ञान की पर्याय में अपना आत्मा प्रकाशित हुआ, वह सिद्धि को प्राप्त होता है, ऐसा कहा। आहाहा!

कितने अर्थ को बदलोगे? और वे ऐसा कहते हैं। परन्तु तुम कितने अर्थ को बदलोगे? ऐसा कहे न। वह भी आत्मा है न, भाई! उसे—आत्मा को स्वयं को ठीक हो, ऐसा तो करना है, परन्तु ठीक कैसे हो, उसकी खबर नहीं होती। दुःखी कोई दुःखी दुःख के पंथ में जाना चाहता है कोई? परन्तु खबर नहीं होती कि यह दुःख का पंथ है या सुख का पंथ। आहाहा! विपरीत मान्यता से अपना सत्य है, ऐसा माने, परन्तु बापू! उसका फल प्रतिकूल दुःख होगा, भाई! आहाहा! जिसे निगोद में अनन्त दुःख। आहाहा!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं, वस्त्र का एक धागा रखकर हम मुनि हैं, ऐसा मनावे, माने निगोद जायेगा। अरर्र! तो जिसे बहुत तत्त्वों की विपरीतता जिसको है। आहाहा! निजतत्त्व जैसा है, वैसा ज्ञान में आया नहीं और निज और पर की विपरीतता के भाव जिसके ज्ञान में भासित हुए हैं, उसके फलरूप से तो बापू... आहाहा! निगोद है। उस एक शरीर में अनन्त जीव। अरेरे! आहाहा! एक शरीर में अनन्त जीव। शरीर एक और अनन्त जीव।

वह एक पत्र आया है हमारे गुप्त। मुम्बई से ठक्कर का। कोई लुहार होगा। एक रूम है घर का, लोग बढ़ गये हैं, क्या करना? साथ में कोई भी मकान लें तो अभी पगड़ी बहुत देनी पड़ती है, ऐसा तो नहीं उसमें लिखा परन्तु, ऐसा कि अशक्य ही है। जगह मिल सकती ही नहीं। तो आप आशीर्वाद कुछ करो ऐसा। कहो, यह। आहाहा! ऐसे भी पत्र आते हैं। आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहना है कि उसे अभी इतने रूम में इतने लोग सुहाते नहीं। यहाँ तो एक शरीर में अनन्त आत्मा। आहाहा! वहाँ वे कैसे पड़े होंगे? अरेरे! आहाहा! एक शरीर में अनन्त, यह लहसुन की कली, लहसुन की कली, प्याज का एक इतना टुकड़ा हो, तो असंख्य तो शरीर है। यह बड़ा शरीर है, वह उन्हें छोटा। असंख्य शरीर में अनन्त जीव हैं एक-एक में। अरेरे! इसे क्षेत्र बदलना कठिन पड़े। भाव में बदलाव तो कहाँ से हो? आहाहा! अधिक लोग बढ़ गये हैं, रूम एक ही है। क्या करना हमारे इसमें? जगह मिले ऐसी नहीं मुम्बई में। अशक्य ही है। इतने अधिक पैसे कहाँ से लाना, ऐसा। भाई! यहाँ सब नाम बड़ा है न! बड़े करोड़पति यहाँ आवे, उन्हें किसी को सलाह करे कुछ ऐसा। किसकी करे भाई? यहाँ तो मोक्षमार्ग की बात होती है। यहाँ तो पुण्य करने की बात में भी बन्ध का कारण। आहाहा! व्यवहार आवे सही, परन्तु वह बन्ध का कारण है। निजतत्त्व ज्ञान में पूर्ण प्रकाशित हो, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! यह सब पण्डित सामने करे उसमें क्या करते हो तुम? संस्कृत के बड़े पण्डित हैं। आहाहा!

निज आत्मतत्त्व... 'यस्य निजमनसि' आहाहा! **वह ही साधु सिद्धि को पाता है। कैसा है, वह तत्त्व?** कैसा है तत्त्व? कि **रागादि मल रहित है,...** प्रभु अन्दर में तो पुण्य-पाप के विकल्प से तो रहित तत्त्व है। क्योंकि नौ तत्त्व में जीवतत्त्व भिन्न है, पुण्य-पाप तत्त्व भिन्न है। आहाहा! तो अन्दर यह अजीवतत्त्व जो शरीर और कर्म, उनसे तो भगवान आत्मा भिन्न ही है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प राग है, उससे तत्त्व भिन्न है। राग है, वह पुण्यतत्त्व है और आत्मा आत्मतत्त्व है। आहाहा! ऐसे आत्मतत्त्व को जो अन्दर में जाने, वह रागरहित है। आहाहा! है?

रागादि मल रहित है,... यह तो रहित कहा। ऐसे तो शुद्ध है, ऐसा कहा। **और ज्ञानरूप है,...** वह ज्ञानस्वरूप ही भगवान है। अकेला जानन... जानन... जानना... जानना... जानने के स्वभाव से ही भरपूर है। इसके अतिरिक्त कोई करना कुछ राग करना या किसी को देना-लेना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! **और ज्ञानरूप है, जिसको... 'परममुनिगणाः' परममुनिश्वर... 'परममुनिगणाः'** ईश्वर लिया इसमें। **सदा... 'चित्ते ध्यायंति'** ऐसे स्वरूप को जो नित्य ध्याता है। अपने चित्त में उसका

ध्यान। स्वस्वरूप को ध्यान में लेकर ध्याता है। स्वस्वरूप को लक्ष्य में लेकर अनुभव करता है। आहाहा!

जो तत्त्व इस लोक में सब प्राणियों के शरीर में मौजूद है,... आहाहा! सब शरीरों में भगवान आत्मा विराजमान है। इतना आत्मा यहाँ है। एक समय की वर्तमान... वर्तमान पर्याय के पीछे वह भगवान पूरा पड़ा है। सब शरीरों में रहा हुआ है। आहाहा! **मौजूद है, और आप देह से रहित है,...** आहाहा! **जो तत्त्व केवलज्ञान और आनन्दरूप अनुपम... 'दिव्यदेहं'** कैसा है यह तत्त्व?—जिसे दिव्यदेह है। यह देह नहीं, कार्मण नहीं, तैजस नहीं, औदारिक नहीं। दिव्यदेह। **केवलज्ञान और आनन्दरूप अनुपम देह को धारण करता है,...** आहाहा! लो! यह उसकी देह है। यह केवलज्ञान और आनन्द, यह उसकी देह अर्थात् स्वरूप है। आहाहा! यह तो मिट्टी की देह, जड़ की, धूल की। आहाहा! **देह को धारण करता है, तीन भुवन में श्रेष्ठ है,...** आहाहा! तीन लोक में उत्कृष्ट है।

'शांतजीवे सिध्यति' जिसको आराधकर शान्तपरिणामी सन्तपुरुष सिद्धपद पाते हैं। जिसका शान्त परिणामी आराधन करके **सन्तपुरुष सिद्धपद पाते हैं।** लो! यहाँ इसका आराधन करके मुक्ति होती है। व्यवहार करके होता है, ऐसा इसमें कुछ नहीं आता। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल ५, रविवार
दिनांक- २२-०५-१९७७, गाथा - २१३-२१४, प्रवचन-२४५

परमात्मप्रकाश, २१३ गाथा। है न अन्तिम? इसका भावार्थ है। अन्तिम योगफल था। अन्तिम गाथायें हैं न! इस देह में रहा हुआ आत्मतत्त्व कैसा है? २१३ का भावार्थ। जरा अभ्यास नहीं, इसलिए इसे जरा महँगा पड़े। वस्तु ऐसी है सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ने जो यह देखा, वह आत्मा, वह आत्मा अन्दर कैसा है? यह कहते हैं।

भावार्थः—ऐसा वह चैतन्यतत्त्व जिसके चित्त में प्रगट हुआ है,... है मणिभाई? टीका भावार्थ। २१३ का भावार्थ। यह चैतन्य तत्त्व कैसा है, यह अन्तिम योगफल इस गाथा में है। कि **जिसके चित्त में प्रगट हुआ है,...** जिसकी ज्ञान की दशा में वह चित्त-वस्तु है, वह प्रगट हुई, वस्तु तो त्रिकाली नित्यानन्द ध्रुव स्वरूप है। आत्मा नित्य ध्रुव अविनाशी वस्तु, परन्तु जिसकी वर्तमानदशा में प्रगट हुई कि यह चीज़ ऐसी है, उसे खबर पड़ी कि यह चीज़ यह तत्त्व है। सूक्ष्म बात है। **तत्त्व जिसके चित्त में प्रगट हुआ है, वही साधु सिद्धि को पाता है।** जिसकी ज्ञान की वर्तमान पर्याय में पूर्ण वस्तु प्रगट हुई। अर्थात् पूर्ण वस्तु जानने में, अनुभव में आयी। पूर्ण वस्तु है चैतन्य अनादि-अनन्त अविनाशी तत्त्व है न? और अनन्त-अनन्त तो उसमें गुण है। जो अनन्त गुण का शक्तिरूप पिण्ड एक तत्त्व-द्रव्य, वह जिसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय उसके सन्मुख करके जिसने आत्मा प्रगट किया, उसे मुक्ति होती है। आहाहा! है?

वही साधु सिद्धि को पाता है। आहाहा! यह क्रियाकाण्ड करे, पंच महाव्रत, फलाना, समिति और गुप्ति, वे सब विकल्प और राग हैं। उससे कोई मुक्ति नहीं पाते। बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! समझ में आया? **अव्याबाध अनन्त सुख आदि गुणोंकर वह तत्त्व तीन लोक का गुरु है,...** आहाहा! कैसा है यह स्वरूप आत्मा अन्दर? कि अव्याबाध। जिसे कोई विघ्न नहीं, ऐसा अनन्त सुखस्वरूप प्रभु है। आत्मा अनन्त आनन्द और सुखस्वरूप है। जो वस्तु स्वयं अनादि है, अनन्त काल रहती है, तो उसमें अनादि-अनन्त आनन्द भी अनादि-अनन्त है। आहाहा! भगवान ने प्रगट किया, परन्तु वह किया कहाँ से? उसमें अन्दर है अनादि-अनन्त। अनादि-अनन्त आनन्द **अनन्त**

सुख आदि गुणोंकर वह तत्त्व तीन लोक का गुरु है,... आहाहा! तीन लोक में यह गुरु, यह महान पदार्थ ही आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

सन्त पुरुषों के ही हृदय में वह तत्त्व सिद्ध होता है। धर्मात्मा के ज्ञान की दशा में यह वस्तु प्रगट सिद्ध होती है। अज्ञानी को और राग-द्वेष और पुण्य-पाप के करनेवालों को वह वस्तु सिद्धि / प्राप्ति नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात है। **कैसे हैं सन्त ?** कैसे होते हैं मुनि? धर्मात्मा जिसके ज्ञान में आत्मा भासित हुआ और अनुभव किया। **जो अपनी बड़ाई,...** आहाहा! बाहर की बड़ाई छोड़ दी है जिसने कि मैं बड़ा हूँ, आचार्य हूँ, उपाध्याय हूँ। आहाहा! **अपनी बड़ाई, अपनी प्रतिष्ठा...** बड़ी इज्जत हो, बड़ी प्रतिष्ठा हो, बड़ा पद हो **और लाभादि समस्त मनोरथों...** शिष्यों का लाभ, इज्जत का लाभ आदि **समस्त मनोरथों और विकल्पजालों से रहित हैं,...** आहाहा! अन्तर में तो जिसे ऐसे विकल्प की वृत्तियाँ / राग है, उससे जो रहित है, उसे वह आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, सम्यक्चारित्र में वह आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा!

जिन्होंने अपना स्वरूप परमशान्तभावरूप पा लिया है। आहाहा! शुभ और अशुभराग विकल्प है, वह तो कषाय है, अशान्ति है। उस अशानित से रहित चिद्घन आत्मा शान्त उपशमरस का कन्द प्रभु, जिसने ज्ञान की दशा में स्वरूप-सन्मुख होकर वीतरागभाव से शान्तरस शान्त प्राप्त किया। आहाहा! व्यवहार से सब बातें उल्टी हैं। कहो, जयन्तीभाई! यह करना यह सिद्धचक्र, यह पूजा, फलाना, ढींकणा, यह व्रत और तप, वह तो सब विकल्प का जाल है, कहते हैं। आहाहा! उससे रहित **अपना स्वरूप परमशान्तभावरूप...** अन्तर में प्राप्त हुए। आहाहा! आनन्द के भानसहित, आनन्द के वेदनसहित अपना आत्मा ऐसा है, ऐसे शान्तरस को प्राप्त हुए। बहुत संक्षिप्त और बहुत। अन्तिम (गहरा)। अन्तिम (गाथा)।

गाथा - २१४

अथ ग्रन्थस्यावसाने मङ्गलार्थमाशीर्वादरुपेण नमस्कारं करोति–

३३७) परम–पय–गयाणं भासओ दिव्व–काओ
मणसि मुणिवराणं मुक्खदो दिव्व–जोओ।
विसय–सुह–रयाणं दुल्लहो जो हु लोए
जयउ सिव–सरुवो केवलो को वि बोहो।।२१४।।

परमपदगतानां भासको दिव्यकायः
मनसि मुनिवराणां मोक्षदो दिव्ययोगः।
विषयसुखरतानां दुर्लभो यो हि लोके
जयतु शिवस्वरुपः केवलः कोडपि बोधः।।२१४।।

जयउ सर्वोत्कर्षेण वुद्धिं गच्छतु। कोडसौ। दिव्व–काओ परमौदारिकशरीराभिधान–दिव्यकायस्तदाधारो भगवान् कथंभूतः। भासओ दिवाकरसहस्त्रादप्यधिकतेजस्त्वाद्भासकः प्रकाशकः। केषां कायः। परम–पय–गयाणं परमानन्तज्ञानादिगुणास्पदं यदर्हत्पदं तत्रगतानाम्। न केवलं दिव्यकायो जयतु। दिव्व–जोओ द्वितीयशुक्लध्यानाभिधानो वीतरागनिर्विकल्प–समाधिरुपो दिव्ययोगः। कथंभूतः। मोक्खदो मोक्षप्रदायकः। क्व जयतु। मणसि मनसि। केषाम्। मुणिवराणं मुनिपुङ्गवानाम्। न केवलं योगो जयतु। केवलो को वि बोहो केवल–ज्ञानाभिधानः कोडप्यपूर्वो बोधः। कथंभूतः सिव–सरुवो शिवशब्दवाच्यं यदनन्तसुखं तत्स्वरुपः। पुनरपि कथंभूतः दुल्लहो जो हु लोए दुर्लभो दुष्प्राप्यः यः स्फुटम्। क्व। लोके। केषां दुर्लभः। विसय–सुह–रयाणं विषयसुखातीतपरमात्मभावनोत्पन्न–परमानन्दैकरुपसुखास्वादरहितत्वेन पञ्चेन्द्रियविषयासक्तानामिति भावार्थः।।२१४।।

इति 'परु जाणंतु वि परममुणि परसंसग्गु चयंति' इत्याद्येकाशीतिसूत्रपर्यन्तं सामान्यभेदभावना तदनन्तरं 'परमसमाहि' इत्यादि चतुर्विंशतिसूत्रपर्यन्तं महास्थलं, तदनन्तरं वृत्तद्वयं चेति सर्वसमुदायेन सप्ताधिकसूत्रशतेन द्वितीयमहाधिकारे चूलिका गतेति।। एवमत्र परमात्मप्रकाशाभिधानग्रन्थेन प्रथमस्तावत् 'जे जाया झाणग्गियए' इत्यादि त्रयोविंशत्यधिक–सूत्रशतेन प्रक्षेपकत्रयसहितेन प्रथममहाधिकारो गतः। तदनन्तरं चतुर्दशाधिकशतद्वयेन प्रक्षेपक

पञ्चकसहितेन द्वितीयोडपि महाधिकारो गतः। एवं पञ्चाधिकचत्वारिंशत्सहितशतत्रय प्रमितश्रीयोगीन्द्रदेवविरिचितदोहकसूत्राणांविवरणभूता परमात्मप्रकाशवृत्तिः समाप्ता।।

आगे ग्रंथ के अन्तमंगल के लिये आशीर्वादरुप नमस्कार करते हैं–

पाण्डव राम आदि से भक्ति पूर्वक है जिनशासन पूज्य।
जिन–भाषित शासन सब सुखमय वृद्धिंगत हो सुर–नर पूज्य।।२१४।।

अन्वयार्थः– [दिव्यकायः] जिसका ज्ञान आनंदरुप शरीर है, अथवा [परमपदगतानां भासकः] अरहंतपद को प्राप्त हुए जीवों का प्रकाशमान परमौदारिकशरीर है, ऐसा परमात्मतत्त्व [जयतु] सर्वोत्कर्षपने से वृद्धि को प्राप्त होवे। जो परमौदारिकशरीर ऐसा है, कि जिसका तेज हजारों सूर्यों से अधिक है, अर्थात् सकल प्रकाशी है। जो परमपद को प्राप्त हुए केवली हैं, उनको तो साक्षात् दिव्यकाय पुरुषाकार भासता है, [मुनिवराणां] और जो महामुनि हैं, उनके [मनसि] मन में [दिव्ययोगः] द्वितीय शुक्लध्यानरुप वीतराग निर्विकल्पसमाधिरुप भास रहा है, [मोक्षदः] और मोक्षका देनेवाला है। [केवलः कोऽपि बोधः] जिसका केवलज्ञान स्वभाव है, ऐसी अपूर्व ज्ञानज्योति [शिवस्वरूपः] सदा कल्याणरुप है। [लोके] लोक में [विषयसुखरतानां] शिवस्वरुप अनन्त परमात्मा की भावना से उत्पन्न जो परमानन्द अतीन्द्रियसुख उससे विपरीत जो पाँच इन्द्रियों के विषय उनमें जो आसक्त हैं, उनको [यः हि] जो परमात्मतत्त्व [दुर्लभः] महा दुर्लभ है।

भावार्थः– इस लोक में विषयी जीव जिसको नहीं पा सकते, ऐसा वह परमात्मतत्त्व जयवंत होवे।।२१४।।

इस प्रकार परमात्मप्रकाश ग्रंथ में पहले 'जे जाया झाणग्गियए' इत्यादि एक सौ तेबीस दोहे तीन प्रक्षेपकों सहित ऐसे १२६ दोहों में पहला अधिकार समाप्त हुआ। एक सौ चौदह ११४ दोहे तथा ५ प्रक्षेपक सहित ११९ दोहों में दूसरा महाधिकार कहा। और 'परु जाणंतु वि' इत्यादि एक सौ सात १०७ दोहों में तीसरा महाधिकार कहा। प्रक्षेपक और अन्त के दो छन्द उन सहित तीन सौ पैंतालीस ३४५ दोहों में परमात्मप्रकाश का व्याख्यान ब्रह्मदेवकृत टीका सहित समाप्त हुआ।

गाथा-२१४ पर प्रवचन

आगे ग्रन्थ के अन्तमंगल के लिये आशीर्वादरूप नमस्कार करते हैं:—

३३७) परम-पय-गयाणं भासओ दिव्व-काओ
मणसि मुणिवराणं मुक्खदो दिव्व-जोओ।
विसय-सुह-रयाणं दुल्लहो जो हु लोए
जयउ सिव-सरुवो केवलो को वि बोहो।।२१४।।

अन्वयार्थः—जिसका ज्ञान आनन्दरूप शरीर है,... क्या कहते हैं ? यह भगवान आत्मा जो अन्दर है, उसका दिव्य शरीर क्या ? यह तो मिट्टी का शरीर है। आहाहा! उसका शरीर तो ज्ञान और आनन्दरूप है। वजुभाई! यह अन्दर... आहाहा! ज्ञान और आनन्द जिसका शरीर अर्थात् स्वरूप है। पुण्य-पाप के विकल्प जो होते हैं, व्यवहाररत्नत्रय आदि राग, वह भी उसका स्वरूप नहीं। वह विकार है। आहाहा! **अथवा 'परमपदगतानां भासकः'** यहाँ अरिहन्त को लेना है न अब। **अरहन्तपद को प्राप्त हुए जीवों का प्रकाशमान परमौदारिकशरीर है,...** आहाहा! क्या कहते हैं ? जिन्हें अरिहन्त परमेश्वर को यह आत्मा विकल्प के जाल से रहित निर्विकल्प जिसका शरीर, ज्ञान और आनन्द जिसका रूप, उसे प्राप्त परमात्मा और अरिहन्त को हुआ है। उन अरिहन्त का शरीर कैसा होता है, अब ऐसा कहते हैं। उनकी डिब्बी कैसी होती है ? वस्तु तो वस्तु, परन्तु अब केसर डिब्बे में रहे, केसर बोरी में नहीं रहती। समझ में आया ? यह शण की बोरी में केसर रहे ? डिब्बे में या क्या कहलाती है ? बरणी-बरणी, बरणी या डिब्बा। भूल जाते हैं तुम्हारे नाम। वह बोरी में नहीं रहती। जरा सूक्ष्म बात है।

यहाँ कहते हैं कि जिसने अन्तर में आनन्द का नाथ भगवान ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का जिसका त्रिकाली ध्रुवरूप शाश्वत है, वह जिसने वर्तमानदशा में अरिहन्त ने प्राप्त किया। आहाहा! उनका शरीर परम औदारिक होता है। आहाहा! है ? **परमौदारिक शरीर है,...** उन्हें रोग नहीं होता। अरिहन्त के शरीर को रोग नहीं होता। उन्हें व्याधि नहीं होती, उन्हें देवा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तीर्थंकर भगवान जो हैं, वे तो जन्मे तब से उन्हें तो परमौदारिक शरीर होता है, जन्मे तब से उन्हें आहार-पानी होता है,

परन्तु मल और मूत्र नहीं होता। आहाहा! ऐसा तो तीर्थंकर का शरीर जन्म से होता है। यह तो अरिहन्त होने के बाद ऐसा शरीर होता है, ऐसा कहते हैं। जो अरिहन्त होते हैं वह कहीं सब तीर्थंकर नहीं होते। दूसरे भी अरिहन्त होते हैं। अपने आनन्दस्वरूप को अन्तर अनुभव कर दशा में अरिहन्तपद प्राप्त कर बनिया कर सकता है, क्षत्रिय कर सकता है। वैश्य हो न, क्षत्रिय और ब्राह्मण तीन नहीं होते, वे कर सकते हैं अन्दर। परन्तु कहते हैं कि उनका शरीर कैसा होता है, उन्हें ? आहाहा!

जिसे परम आनन्द की दशा अरिहन्तपद की प्राप्त हुई उनका शरीर परमौदारिक -शरीर है। आहाहा! जिनके शरीर में रोग नहीं होता, दवा नहीं होती, उन्हें नहीं होती। सूक्ष्म बात है। महावीर को रोग हुआ था और दवा ली थी, आता है न। खूनी दस्त छह महीने। यह सब वस्तु (बातें) कल्पित है। आहाहा! जिसे अरिहन्त पद प्रगट हुआ, जिसे अनन्त आनन्द का नाथ पूर्ण अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, वीरता, वीर्य उनका शरीर परमौदारिक, जिनके शरीर में रोग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं। आहाहा! जिनके शरीर की छाया (प्रभा) ऐसी लगी। आहाहा! उसमें नजर करने से सात भव दिखे। देखनेवाला हो ऐसा तो उनका शरीर होता है। उनके अन्तर की बात तो क्या करना, कहते हैं ? आहाहा!

परमौदारिकशरीर... 'भासकः' शब्द है न? **'परमपदगतानां भासकः' ऐसा परमात्मतत्त्व सर्वोत्कृष्टपने से वृद्धि को प्राप्त होवे।** इस प्रकार परमात्म पाओ। प्राप्त हैं, वे रहो और नहीं प्राप्त, वे पाओ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जो परमौदारिकशरीर ऐसा है कि उसका तेज हजारों सूर्यों से अधिक है,...** भगवान अरिहन्त का शरीर ऐसा होता है, केवलज्ञान और केवलदर्शन पूर्ण हो तो उसकी तो बात क्या करना ? परन्तु जिनके शरीर में हजारों सूर्य के तेज से भी अधिक तेज होता है। आहाहा! है ? **तेज हजारों सूर्यों से अधिक है, अर्थात् सकल प्रकाशी है।** वह तो शरीर में ही प्रकाश की मूर्ति ऐसी दिखाई देती है। आहाहा! अन्दर तो चैतन्यमूर्ति केवलज्ञान, केवलदर्शन है, परन्तु हजारों शरीर के प्रकाश से भी प्रकाशमान होता है। आहाहा!

जो परमपद को प्राप्त हुए केवली हैं, उनको तो साक्षात् दिव्यकाय पुरुषाकार भासता है,... शरीर आत्मा पूरा। **और जो महामुनि हैं, उनके मन में द्वितीय शुक्लध्यानरूप भास रहा है,...** यह ध्यान निर्विकल्प में यह भासित होता है। केवलज्ञानी को तो पूर्ण

ज्ञान में भासित होता है। मुनिवरों को निर्विकल्प शुक्लध्यान होता है। तो पूरा पद उन्हें भासित होता है। पूरा आत्मा पूर्ण वस्तु उन्हें (भासित होता है)। आहाहा! **और मोक्ष का देनेवाला है।** वह शुक्लध्यान की दशा, मुनियों को अन्तर में, ध्यान में जम जाने पर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान ध्रुव नित्य, उसमें लीन, लीन की जमावट होने पर उसे सिद्धपद हो जाता है। उससे उसे सिद्धपद की प्राप्ति होती है। आहाहा! कोई यह क्रियाकाण्ड से व्रत, नियम और तप से नहीं होती, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : उत्तम संहनन बिना नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी अपेक्षा नहीं। हो भले निमित्त। अपने स्वभाव में से होती है। आहाहा!

जिसका केवलज्ञान स्वभाव है, ऐसी अपूर्व ज्ञानज्योति सदा कल्याणरूप है। आहाहा! सदा कल्याणरूप है। मूर्ति अन्दर नमोत्थुणं में आता है। शिवमयमरु नमोत्थुणं किया है या नहीं? नमोत्थुणं नहीं आता? नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, उसमें आता है अन्त में। शिवमय... नमोत्थुणं में अन्तिम आता है। सामायिक का अन्तिम पाठ होता है न? पहला पाठ णमो अरिहंताणं। दूसरा तिक्खुतो, तीसरा इच्छामि, चौथा लोगस्स तत्सुतरी, पाँचवाँ लोगस्स, छठवाँ करेमिभंते, सातवाँ नमोत्थुणं सामायिक में होता है। यह कहाँ अभी? आहाहा! जयन्तीभाई! आहाहा!

जिसका केवलज्ञान स्वभाव है, ऐसी अपूर्व ज्ञानज्योति सदा कल्याणरूप है। आहाहा! यह तो त्रिकाल कल्याणमूर्ति ही उपद्रवरहित आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी दशा में वर्तमान पर्याय में संसार और विकार है। वस्तुस्वरूप तो सदा कल्याणस्वरूप ही है। आहाहा! यदि कल्याणस्वरूप न हो तो उसकी दशा में कल्याणस्वरूप आयेगा कहाँ से? कहीं बाहर से आवे, ऐसा है? सूक्ष्म बात है, बापू! यह वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म। लोग तो अन्य को जैनधर्म मानकर बैठे हैं। जैनधर्म बहुत सूक्ष्म है। वीतराग, परमेश्वर केवली। आहाहा! कहते हैं... आहाहा! **ऐसी अपूर्व ज्ञानज्योति सदा कल्याणरूप है।**

लोक में शिवस्वरूप अनन्त परमात्मा की भावना से उत्पन्न जो परमानन्द एक

अतीन्द्रियसुख... क्या कहते हैं ? शिवस्वरूप अनन्त। शिव अर्थात् निरुपद्रव। उपद्रवरहित शिव का अर्थ होता है। नमोत्थुणं में यह आता है। शिवम अयम्... नमोत्थुणं तो किया होगा या नहीं लालचन्दभाई ने ? लालजीभाई ! नमोत्थुणं किया था या नहीं ? सामायिक में नहीं किया होगा ? किया होगा सेठिया वहाँ सामने आगे थे। यह अर्थ बर्थ नहीं आवे कुछ। आहाहा ! कहते हैं कि **शिवस्वरूप अनन्त परमात्मा की भावना से उत्पन्न...** यह कैसा शिवपद कैसे प्राप्त हुआ ? कि परमात्मस्वरूप क्या आनन्द है, उसकी भावना, उसकी एकाग्रता से परमात्मपद प्राप्त होता है। आहाहा ! अन्तिम श्लोक है न, इसलिए एकदम सार।

एक **अतीन्द्रिय सुख...** 'एक' शब्द पड़ा रहा है। 'एक' पड़ा ही रहता है सर्वत्र। **शिवस्वरूप अनन्त परमात्मा की भावना से उत्पन्न जो परमानन्द एक अतीन्द्रिय सुख उससे विपरीत जो पाँच इन्द्रियों के विषय...** आहाहा ! परमानन्द प्रभु आत्मा से विपरीत पाँच इन्द्रिय के विषय, शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। यह विपरीत विषय हैं, विकार के कारण हैं। आहाहा ! ऐसे **पाँच इन्द्रियों के विषय उनमें जो आसक्त हैं, उनको जो परमात्मतत्त्व महा दुर्लभ है।** आहाहा ! ऐसा क्या कहना चाहते हैं यह ? कि आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप है तो अतीन्द्रिय दृष्टि से और अतीन्द्रिय ज्ञान से प्राप्त हो सकता है, परन्तु जिसे पाँच इन्द्रिय के विषय का प्रेम है, वह अतीन्द्रिय आत्मा को नहीं प्राप्त कर सकता। आहाहा !

जो पाँचों इन्द्रिय के विषय के लोलुपी-गृद्धि। आहाहा ! जो आनन्दस्वरूप भगवान से उल्टा विषय का सुख, उसमें जिसे मजा और ठीक लगता है, ऐसे विषयों के प्रेमियों को यह वस्तु दुर्लभ है। आहाहा !

मुमुक्षु : .... उसे मिल सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिल सके। मिल सके परन्तु वह विषय छोड़े तब मिले। उस विषय की रुचि और प्रेम छोड़े, तब मिले। आहाहा ! अकेले विषय छोड़े और साधु हो गया, इसलिए कुछ मिले, ऐसा कुछ है नहीं। अन्दर में पर की ओर के झुकाववाले पुण्य-पाप के भाव, उन्हें छोड़े तो इसने विषय छोड़े कहलाये। ऐसे तो स्त्री, पुत्र छोड़कर अनन्त बार साधु हुआ, उसमें क्या भला हुआ ? आहाहा ! अन्तर में पुण्य और पाप की मिठास, विषयसुख का, स्त्री का, इज्जत का, कीर्ति का, खाने-पीने का,

अभिनन्दन का, प्रशंसा का, कोई महिमा करे उसका। उसमें जिसका प्रेम है, ऐसे विषय लोलुपियों को ऐसा आत्मा प्राप्त होना दुर्लभ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ने कहा। आहाहा! ऐसा यह स्वरूप ही अन्दर है। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द दल है। आहाहा!

शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था? शकरकन्द की लाल छाल है, उसे छोड़ दो तो वह पूरा शकरकन्द है। शकरकन्द अर्थात् शक्कर अर्थात् मिश्री की मिठास का पिण्ड है। यह शकरकन्द। आहाहा! अधसेर, पौन सेर, टुकड़ा हो, वह लाल छाल लक्ष्य में से छोड़ दो तो वह अन्दर का अकेला शकरकन्द है। शकरकन्द अर्थात् मिश्री की मिठास का पिण्ड है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प की छाल का लक्ष्य छोड़ दे तो अन्दर में यह अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द पड़ा है। अरेरे! क्या करे? यह चीज़ क्या है, वह सुनने को मिले नहीं। परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव, वे आत्मा को ऐसा कहते हैं।

उसमें नहीं आया था? 'प्रभु तुम जाणग रीति, प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल।' सर्वज्ञ प्रभु को कहते हैं। 'प्रभु तुम जाणग रीति, सर्व जग देखता हो लाल। निजसत्ता से शुद्ध सबको पेखता हो लाल।' हे नाथ! हमारे आत्मा को तो निजसत्ता अपना अस्तित्व आनन्दस्वरूप शुद्ध शुद्ध ऐसे आत्मा को आपने आत्मा देखा। आहाहा! 'निजसत्ता से शुद्ध सबको पेखता।' ऐसी निजसत्ता शुद्ध अन्तर में जो नजर डालकर देखे और उसमें स्थिर हो, उसे पर्याय में अरिहन्त पद प्राप्त होता है। आहाहा! जयन्तीभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

'पाँच इन्द्रियों के विषय उनमें जो आसक्त हैं, उनको जो परमात्मतत्त्व महा दुर्लभ है' 'इस लोक में विषयी जीव जिसको नहीं पा सकते,...' इस जगत में पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाववाले जीव अतीन्द्रिय को प्राप्त नहीं होते। आहाहा! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय है। सूक्ष्म बातें हैं। यह तो सामायिक की और प्रतिक्रमण किये, प्रोषध किये और हो गया। भान नहीं होता कुछ। आहाहा! कहते हैं **विषयी जीव जिसको नहीं पा सकते,...** विषय के लोभी। **ऐसा वह परमात्मतत्त्व जयवन्त होवे।** अन्तिम शब्द है। ऐसा परमात्मतत्त्व इस जगत में जयवन्त हो।

[टीकाकारस्यान्तिमकथनम्]

अत्र ग्रन्थे प्रचुरणे पदानां सन्धिर्न कृतः, वाक्यानि च भिन्नभिन्नानि कृतानि सुखबोधर्थम् किं च परिभाषसूत्रं पदयोः संधिर्विवक्षितो न समासान्तरं तयोः तेन कारणेन लिङ्गवचनक्रिया-कारकसंधिसमासविशेष्यविशेषणवाक.यसमाप्त्यादिकं दूषणमत्र न ग्राह्यं विद्विद्भिरिति।

इदं परमात्मप्रकाशवृत्तेर्व्याख्यानं ज्ञात्वा किं कर्तव्यं भव्यजनैः। सहजशुद्धज्ञानानन्दैक-स्वभावोडहं, निर्विकल्पोडहं, उदासीनोडहं, निजनिरञ्जनशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान ज्ञानानुष्ठानरुप निश्चयरत्नत्रयात्मनिर्विकल्पसमाधि संजातवीतरागसहजानन्दरुपसुखानुभूति-मात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेधो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोडहं, रागद्वेषमोह-क्रोधमानमायालोभ-पंञ्चेन्द्रियविषय व्यापारमनवचनकायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनो-कर्मख्यातिपूजालाभदृष्ट-श्रुतानुभूतभोगाकांक्षारुप निदान्मायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्वविभाव-परिणामरहितशून्योडहं, जगत्त्रये कालत्रयेडपि मनवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्ध-निश्चयनयेन। तथा सर्वेडपि जीवाः, इति निरन्तरं भावना कर्तव्येति।। ग्रन्थसंख्या।।४०००।।

पांडवरामहिं णरवरहिं पुज्जिउ भत्तिभरेण।
सिरिसासणु जिणभासियउ णंदउ सुक्खसएहिं।।१।।
[पाण्डवरामैः नरवरैः पूजितं भक्तिभरेण।
श्रीशासनं जिनभाषितं नन्दतु सुखशतैः।।१।।]

।। इति श्रीब्रह्मदेवविरचिता परमात्मप्रकाशवृत्तिः समाप्ता ।।

[टीकाकारका अंतिम कथन।]

इस ग्रंथ में बहुधा पदों की संधि नहीं की, और वचन भी जुदे-जुदे सुख से समझने के लिये रक्खे गये हैं, समझने के लिये कठिन संस्कृत नहीं रक्खी, इसलिये यहाँ लिंग, वचन, क्रिया, कारक, संधि, समास, विशेष्य, विशेषण के दोष न लेना। जो पंडितजन विशेषज्ञ हैं, वे ऐसा समझें, कि यह ग्रंथ बालबुद्धियों के समझाने के लिये सुगम किया है। इस परमात्मप्रकाश की टीका का व्याख्यान जानकर भव्यजीवों को ऐसा विचार करना चाहिये, कि मैं सहज शुद्ध ज्ञानानंद स्वभाव निर्विकल्प हूँ, उदासीन हूँ, निजानंद निरंजन शुद्धात्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररुप निश्चयरत्नत्रयमयी निर्विकल्पसमाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानंदरुप आनंदानुभूतिमात्र जो स्वसंवेदनज्ञान उससे गम्य हूँ, अन्य उपायों से गम्य नहीं हूँ। निर्विकल्प निजानंद

ज्ञानकर ही मेरी प्राप्ति है, पूर्ण हूँ। राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँचो इन्द्रियों के विषय व्यापार, मन, वचन, काय, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, ख्याति पूजा लाभ, देखे, सुने और अनुभवे भोगों की वाँछारुप निदानबंध, माया मिथ्या ये तीन शल्यें इत्यादि विभाव परिणामों से रहित सब प्रपंचों से रहित मैं हूँ। तीन लोक, तीन काल में, मन वचन कायकर, कृत कारित अनुमोदनाकर, शुद्ध निश्चय से मैं आत्माराम ऐसा हूँ। तथा सभी जीव ऐसे हैं। ऐसी सदैव भावना करनी चाहिये। अब टीकाकार के अंत के श्लोक का अर्थ कहते हैं–युधिष्ठिर राजा को आदि लेकर पाँच भाई पांडव और श्रीरामचंद्र तथा अन्य भी विवेकी राजा हैं, उनसे अत्यन्त भक्तिकर यह जिनशासन पूजनीक है, जिसको सुर नाग भी पूजते हैं, ऐसा श्रीजिनभाषित शासन सैंकड़ों सुखों के वृद्धि को प्राप्त होवे। यह परमात्मप्रकाश ग्रंथ का व्याख्यान प्रभाकरभट्ट के सम्बोधन के लिये श्रीयोगीन्द्रदेव ने किया, उस पर श्रीब्रह्मदेव ने संस्कृत टीका की। श्रीयोगीन्द्रदेव ने प्रभाकरभट्ट को समझाने के लिये तीन सौ पैंतालीस दोहे रचे, उस पर श्रीब्रह्मदेव ने संस्कृत टीका पाँच हजार चार ५००४ प्रमाण की। और उस पर दौलतराम ने भाषावचनिका के श्लोक अड़सठिसौ नब्बै ६८९० संख्याप्रमाण बनाये।

इस प्रकार श्री योगींद्राचार्यविरचित परमात्मप्रकाश की पं० दौलतरामकृत भाषा–टीका समाप्त हुई।

टीकाकार के अन्तिम कथन पर प्रवचन

अब थोड़ा इस ओर का ले लेते हैं। समय है न? इस ओर है न? टीकाकर के अन्तिम वचन। है इस ओर? **इस ग्रन्थों में बहुधा पदों की सन्धि नहीं की, और वचन भी जुदे-जुदे सुख से समझने के लिये रक्खे गये हैं,...** है वहाँ भाई? हाँ यह। **समझने के लिये कठिन संस्कृत नहीं रक्खी, इसलिए यहाँ लिंग, वचन, क्रिया, कारक, सन्धि, समास, विशेष्य, विशेषण के दोष न लेना। जो पण्डितजन विशेषज्ञ हैं, ऐसा समझें कि यह ग्रन्थ बालबुद्धियों के समझाने के लिये सुगम किया है।** साधारण प्राणी को समझाने के लिये सरल सरल किया है।

इस परमात्मप्रकाश की टीका का व्याख्यान जानकर भव्य जीवों को ऐसा

विचार करना चाहिए,... लो, यह बन्ध अधिकार के समयसार में आता है और यहाँ यह आता है। यह शास्त्र सुनकर जीवों को यह करना चाहिए, कहते हैं। क्या? **कि मैं सहज शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभाव निर्विकल्प हूँ,...** आहाहा! स्वाभाविक, मैं स्वाभाविक चीज़ हूँ। किसी ने मुझे बनाया नहीं है, मेरा कोई कर्ता है, ऐसा नहीं है। सहज हूँ। अनादि सत् है। **सहज शुद्ध ज्ञानानन्द...** आहाहा! ऐसा स्वभाव मेरा, वह निर्विकल्प, निर्विकल्प है। जिसमें भेद नहीं, जिसमें राग की वृत्ति का विकल्प नहीं, ऐसा भी मैं हूँ। यह भावना करनेयोग्य है, कहते हैं। आहाहा!

उदासीन हूँ,... आहाहा! कहा था तब एक बार, नहीं वह नाटक का। वडोदरा में एक बार नाटक देखने गये थे। माल लेने जाते न, पालेज से साथ में अठारह कोस-मील है। माल लेने जाते थे, अब छोटी उम्र की बात है। (संवत्) १९६४ के वर्ष, १८ वर्ष की उम्र होगी। अभी ८८ हुए, इसलिए ७० वर्ष पहले की बात है। वह नाटक देखने गये थे, उसमें एक अनुसूईया बाई थी। उस अनुसूईया बाई को पुत्र नहीं था, कुँवारी थी। स्वर्ग में जा रही थी। बड़ा नाटक था। ६४ के वर्ष में। फिर स्वर्ग में से नकार आया कि पुत्र न हो, उसे गति नहीं मिलती। उन लोगों में ऐसा आता है न अन्यमति में। अपुत्रस्य गति नास्ति। पुत्र न हो, उसे गति नहीं मिलती। क्योंकि करना क्या? कि नीचे उतर, उसे वर। तब नीचे अन्ध ब्राह्मण से विवाह किया। बड़ा नाटक था। अनुसूईया का नाटक आता है। एक भरुच के किनारे नर्मदा है न नदी और अनुसूईया, दोनों बहिनें थीं, उनके नाम हैं। वहाँ बहुत इतिहास है। वहाँ पालेज रहते थे न हम तो भरुच के पास।

फिर उसे पुत्र होता है और उस पुत्र को सुलाती थी। तब, नाटक में, हों! यह शब्द थे। मणिभाई! वह बाई ऐसा बोलती थी बेटा! तू निर्विकल्प है, तू उदासीन है, तू शुद्ध है, ऐसा कहती थी। ऐसा तो नाटक में आता था। यहाँ तो तुम्हारे अब बाहर में ठिकाना नहीं होता। नाटक भी ऐसे सब खराब हो गये। आहाहा! फिल्में मारकर सब बिगाड़। उस लड़के की लोरी तो (हमारी) १८ वर्ष की उम्र की बात है। आहाहा! तब... तब। यह निर्विकल्प हूँ। बेटा! तू निर्विकल्प है अर्थात् कि राग बिना की तेरी चीज़ अन्दर है। ऐसा नाटक में अनुसूईया का नाटक आता था। उदसीन है। तू पर से उदास है। पूरी दुनिया से तू अलग चीज़ है। आहाहा! मणिभाई नाटक में ऐसा कहते थे

तब। बहुत वर्ष हो गये। ७० वर्ष पहले की बात है। अभी तो कुछ नाटक में ठिकाना नहीं होता। घर में सम्प्रदाय में पूछे कौन कि तू कौन है ? कि उदासीन हूँ, निर्विकल्प हूँ, यह कहाँ आता है ? आहाहा!

निजानन्द, निरंजन शुद्धात्म सम्यग्दर्शन,... देखा! कैसा हूँ मैं ? निजानन्द। मेरा जो निज आनन्द ऐसा निरंजन, शुद्धात्मतत्त्व, उसका सम्यग्दर्शन। उसकी मान्यता वह सम्यग्दर्शन। है ? **निजानन्द, निरंजन, शुद्धात्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप निश्चयरत्नत्रयमयी निर्विकल्पसमाधि से उत्पन्न...** ऐसा अन्तर में शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान त्रिकाल, उसका दर्शन, ज्ञान और चारित्र निश्चयरत्नत्रय। व्यवहार नहीं। उससे उत्पन्न हुए... आहाहा! है ? **वीतराग सहजानन्दरूप...** रागरहित स्वाभाविक आनन्ददशा प्रगट हुई ऐसा **आनन्दाभूतिमात्र...** आनन्द का अनुभव। यह मात्र शब्द जरा पड़ा रहा, वहाँ लक्षण है ऐसा चाहिए। भाई! वहाँ लक्षण शब्द चाहिए। '**आनन्दानुभूतिमात्र लक्षणेन**' ऐसा चाहिए। लक्षण चाहिए। सूक्ष्म बात है, हों! यह क्या कहते हैं। आनन्द की अनुभूति के लक्षण से आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा है। आहाहा! है ? आनन्द की अनुभूति के लक्षण से भगवान प्राप्त होता है, ऐसा है। यह व्यवहार के विकल्प और दया, दान से प्राप्त हो, ऐसा नहीं, वह तो विकार है। आहाहा! समझ में आया ?

जो स्वसंवेदनज्ञान उससे गम्य हूँ,... कैसा है अन्दर भगवान आत्मा ? स्व अर्थात् अपना प्रत्यक्ष वेदन। प्रत्यक्ष वेदन जिसे मन और राग की अपेक्षा नहीं। ऐसे स्वसंवेदनज्ञानगम्य है। अपने आनन्द के अनुभव के गम्य आत्मा है। आहाहा! यह तो पूरा योगफल लिया है। **अन्य उपायों से गम्य नहीं हूँ।** यह टीका में शब्द नहीं परन्तु सिद्धि की है। दूसरे किसी उपाय द्वारा आत्मा प्राप्त हो, भगवान की भक्ति, व्रत, तप, यात्रा, गिरनार, सम्मेदशिखर और शत्रुंजय, वह सब विकल्प शुभराग है। अशुभ से बचने के लिये शुभराग होता है। आहाहा! परन्तु प्राप्त आत्मा अन्तर के निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानगम्य है। आहाहा!

अन्य उपायों से गम्य नहीं हूँ। यह अर्थकार ने स्पष्टीकरण किया है। दूसरे उपाय से आत्मा प्राप्त हो, यह वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय से भी आत्मा

प्राप्त हो, ऐसा वह आत्मा नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान, वह तो सब विकल्प है, राग है। उससे आत्मा प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। ठीक आ गये हैं, यह सब भावनगर आये तब यह सूक्ष्म आया। जयन्तीभाई! आहाहा! यह तो पूरे शास्त्र का योगफल है। आहाहा!

निर्विकल्प निजानन्द ज्ञानकर ही मेरी प्राप्ति है,... क्या कहा? निर्विकल्प निजानन्द ज्ञान। राग बिना का आनन्दसहित वाला ज्ञान अतीन्द्रिय, उससे मेरी प्राप्ति है। आहाहा! है न सामने रखी है पुस्तक। और समयसार में भी यही आता है बन्ध अधिकार में आठ बोल। संस्कृत में आता है। यही शब्द है समयसार (में) जयसेनाचार्य की टीका में। इसमें है, वे वहाँ है। देखो, आया देखो। यही शब्द संस्कृत यही वह, समयसार में है। यह परमात्मप्रकाश। '**सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं, निजनिरञ्जनशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान ज्ञानानुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्प-समाधि संजातवीतरागसहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेधो गम्यः**' है न, यह शब्द है, यह शब्द है। शब्दशः शब्द है। '**प्राप्य भरितावस्थोऽहं**' आहाहा! अन्तर भगवान जैसे यह कलश भरे हों न अमृत से। कलश। वैसे यह कलश है, यह काशीघाट का। ऐसे भगवान अन्दर अमृत से भरपूर कलश है।

अतीन्द्रिय आनन्द के निजानन्दसुख से भरपूर प्रभु भगवान है। अरे! कैसे बैठे? रंक होकर भटके उसे यह प्रभुता का प्रेम प्रभुता का कैसे आवे? लो! आहाहा! यह समयसार है। बन्ध अधिकार में है। यह परमात्मप्रकाश है। दोनों एक ही भाषा है। आहाहा! **निर्विकल्प निजानन्द ज्ञानकर ही मेरी प्राप्ति है,... ज्ञानकर ही...** ऐसा कहा, देखा! एकान्त हो गया वहाँ। अनेकान्त नहीं आया। व्यवहार से भी होता है, निश्चय से भी होता है, ऐसा नहीं आया।

मुमुक्षु : व्यवहार से नहीं होता, ऐसा भी नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आया न, व्यवहार से नहीं होता। आहाहा! यह तो पहले आया न अन्य उपाय से गम्य नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग, बापू! वीतराग का। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर। आत्मा अन्दर शुद्धचैतन्यघन, वह तो अन्तर की निर्मल

ज्ञान विकल्प बिना की दशा द्वारा ही प्राप्त हो ऐसा है। जिसने प्राप्त किया उसने इस प्रकार से किया है। आहाहा! ऐसा यह भगवान आत्मा अन्दर विराजता है, परन्तु उसकी इसे कीमत नहीं। बाहर की चीज़ की अधिकता की कीमत में स्व की कीमत भूल गया। कुछ पैसा मिले, कुछ स्त्री अच्छी हो, कुछ पुत्र ठीक हो, इज्जत कुछ (ठीक), बँगला-बँगला ठीक मिला, बाहर का पूँछड़ा कुछ बढ़ाया, पदवी मिली, लो न! पाँच हजार और दस हजार का वेतन। उस बाहर की महत्ता में यह प्रभु की महत्ता भूल गया। मणिभाई! यह मिलमालिक है, फलाना मालिक है और ढींकणा। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! आहाहा!

निर्विकल्प निजानन्द ज्ञानकर ही मेरी प्राप्ति है, और मैं पूर्ण हूँ। '**भरितावस्था**' है न। '**भरितावस्था**' अवस्था, यहाँ पर्याय नहीं लेना। अवस्थ। पूर्ण भरपूर हूँ। जैसे ये कलश पानी से भरा हुआ, वैसे इस शरीररूपी कलश में भगवान आनन्द से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! अरेरे! ऐसी बातें सुनने को किसी दिन मिले। सूक्ष्म पड़े, क्या हो? मार्ग ऐसा, भाई! इसने अनन्त काल में यह किया नहीं इसने। अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी किया नहीं, उस अपूर्व की बात है। आहाहा!

कहते हैं कि मैं पूर्ण हूँ। अन्तर भगवान स्वरूपी प्रभु आत्मा अनन्त शक्तियों से पूर्ण भरपूर तत्त्व है। विकल्प नहीं और अपूर्ण नहीं, ऐसा मेरा पूर्ण स्वरूप है। ऐसी धर्मी को भावना करना चाहिए, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँचों इन्द्रियों के विषय व्यापार,...** से रहित है। भगवान तो पाँच इन्द्रिय के विषय और क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित है अन्दर। शक्तिवाला तत्त्व चैतन्यतत्त्व, वस्तुतत्त्व, वह तो विकार और इन्द्रिय के विषयरहित तत्त्व है। आहाहा! क्योंकि विकार तत्त्व तो पुण्य-पाप में जाता है। आहाहा! और अपूर्ण है, वह तो पर्याय में जाता है। वस्तु तो विकार बिना की और पूर्ण वस्तु है। समझ में आया? आहाहा! शरीर और कर्म, वे अजीव में जाते हैं। नव तत्त्व है न? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष। तो कर्म और शरीर अजीव में जाते हैं। पाप के हिसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना के परिणाम पाप में जाते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप और ऐसे भगवान का स्मरण, वह परिणाम पुण्य में जाते हैं। आहाहा! अर्थात् उस पुण्य-पाप के विकाररहित,

शरीर और कर्मरहित और एक समय की जो पर्याय है वर्तमान, वह अल्पज्ञ है, अल्प है। वह व्यवहार आत्मा है। उसे भी छोड़कर पूर्ण हूँ, उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? ऐसी व्याख्या अब। आहा! समाज को एक तो निवृत्ति नहीं मिलती धन्धे के कारण। जिसे जो धन्धा वह किया ही करे आठ, दस घण्टे पूरे दिन पाप का। पाप का न? लोहे का सब धन्धा। लोहे का है न? हिम्मतभाई को, प्रवीणभाई। आहाहा!

मुमुक्षु : लोहे में से तो सोना होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस लोहे में से सोना नहीं होता। आहाहा!

भगवान आत्मा... यहाँ क्या कहते हैं? भाई! यदि तुझे आत्मा की प्राप्ति करनी हो और मोक्ष करना हो, सुखी होना हो, दुःख का नाश करना हो तो मैं यह भरित अवस्थ पूर्ण स्वरूप हूँ—ऐसी भावना कर। मैं विकारी भी नहीं, अल्पज्ञ भी नहीं, शरीर भी नहीं और कर्म भी नहीं। आहाहा! है?

पूर्ण हूँ। राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँचों इन्द्रियों के विषय... से रहित हूँ। **मन-वचन-काय,...** उनसे रहित हूँ। यह मन, वाणी और देह से रहित हूँ। आहाहा! कब? अभी। अन्दर भिन्न चीज़ है, प्रभु! आहाहा! **द्रव्यकर्म,...** जड़ आठ कर्म से भिन्न हूँ। **भावकर्म...** पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभ योग, उससे भिन्न हूँ। **नोकर्म...** वाणी और शरीर से भिन्न हूँ। **ख्याति, पूजा, लाभ...** यह दुनिया की प्रसिद्धि। इस दुनिया में बड़ा पूज्य माने और लाभ मिले शिष्यों का या पैसे का या कीर्ति का, उस सब स्थिति से मैं तो रहित हूँ। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश पूरा होता है। कल से तो कलश टीका ली जाती है। श्रुतपंचमी है न कल? कलश टीका।

देखे, सुने और अनुभवे भोगों की वांछारूप... जितना देखा जगत की बाह्य चीज़ें। जगत को स्मरण किया सबका और अनुभव किया जगत के भाव राग को। ऐसे **भोगों की वांछारूप निदानबन्ध,...** उससे मैं रहित हूँ। **माया, मिथ्या ये तीन शल्यों इत्यादि विभाव परिणामों से रहित...** हूँ। तीन शल्य है न? तस्सउतरी में आता है विशल्ली करणेन। अर्थ कहाँ आवे परन्तु उसके। तस्सउतरी तस्सउतरी आवे न तस्सउतरी करणेणं, प्रायश्चित करणेणं, विसाहि करणेणं। विशली शल्य-शल्य। मिथ्याशल्य,

मायाशल्य और निदानशल्य, तीन से मैं रहित हूँ। अर्थ भी नहीं मिलता। ऐसी की ऐसी गाड़ियाँ हाँकी। आहाहा!

तीन शल्यों इत्यादि विभाव परिणामों से रहित सब प्रपंचों से रहित मैं हूँ। आहाहा! विकल्पमात्र की वृत्तियाँ मात्र प्रपंच, उनसे सबसे प्रभु मेरा स्वरूप भिन्न है। आहाहा! ऐसी श्रद्धावन्त समकिती को ऐसे आत्मा की भावना करना। आहाहा! चन्दुभाई ने यह सब मुखाग्र किया है, भाई! अभी बोल गये कहीं। ताराचन्द है न, डॉक्टर नहीं? डॉक्टर वहाँ राजकोट। बहुत वाँचन। बड़ी दुकान है। परन्तु वाँचन सख्त चार-चार घण्टे वाँचे। बहुत वाँचन। प्रश्न रात्रि का पौन घण्टे सूक्ष्म में सूक्ष्म बहुत सूक्ष्म। साधारण सभा समझे नहीं परन्तु ऐसे प्रश्न करे। बैठे सब रात को पौन घण्टे। वह यह वहाँ... आहाहा!

सब प्रपंचों से रहित मैं हूँ। तीन लोक, तीन काल... आहाहा! अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक, इन तीनों लोक से रहित मैं हूँ। तीन काल से रहित हूँ। भूतकाल-भविष्यकाल और वर्तमानकाल। वह लोक था क्षेत्र, यह काल, इनसे भी मैं रहित हूँ। आहाहा! **मन वचन कायाकर, कृतकारित अनुमोदनाकर,...** मन से, वचन से और काया से करना, कराना और अनुमोदन करना। यह **शुद्धनिश्चय से मैं आत्माराम ऐसा हूँ।** आहाहा! आत्माराम मन से भी अनुमोदन करनेयोग्य, वाणी से अनुमोदन करनेयोग्य, देह से अनुमोदन करनेयोग्य या करनेयोग्य वह हो तो यह चीज़ है। आहाहा! कैसे बैठे? यहाँ जरा उड़द की दाल एकरस न हो वहाँ ढींचणियुं उड़े। उड़द की दाल एकरस न हो एकरस। छाश,... पृथक् पड़े तो भाई को क्रोध आवे। अरे! किसने किया? बापू! सुन तो सही, भगवान! तू तीन लोक का नाथ। तुझे ऐसी चीज़ में किसका तुझे द्वेष आया? तेरा प्रभु अन्दर विराजता है आनन्द का नाथ। आहाहा! उसका खुराक / भोजन ले न! तेरा संसार तिर जायेगा और तू परमात्मा हो जायेगा। आहाहा! लो, है?

शुद्ध निश्चय से मैं आत्माराम... आतमराम रमता राम भगवान। प्रत्येक का आत्मा ऐसा है, ऐसा कहेंगे उसमें। सब भगवान ऐसे हैं। उसकी शक्ति और उसका स्वरूप ही परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! है? **तीन लोक, तीन काल में, मन-वचन-कायकर,... तथा सभी जीव ऐसे हैं।** है? सभी जीव ऐसे हैं। अभव्य हो या भव्य हो,

यह निगोद के जीव हों या नीम के जीव हों, परन्तु उनका स्वभाव है तो ऐसा परिपूर्ण प्रभु, उसकी दशा में पर्याय में भूल है। वस्तु तो वस्तु भगवान सब है। आहाहा! समझ में आया? है?

सभी जीव ऐसे हैं। आहाहा! **ऐसी सदैव भावना करनी चाहिए।** ठीक! यह लिखा है न, ऐसी भावना अन्दर। आहाहा! 'दान शील तप भावना' चार भावना, वह तो सब विकल्प है, राग है। सदा आत्माराम। त्रिकाल आनन्द का नाथ परिपूर्ण अवस्था अर्थात् शक्ति से भरपूर ऐसे सब जीव हैं। आहाहा! तुझे समभाव होगा। किसी जीव पर वैर और मैत्रीपना नहीं रहेगा। सभी जीव भगवान हैं। आहाहा! **सभी जीव ऐसे हैं। ऐसी सदैव भावना करनी चाहिए।** मन, वचन और काया; करना, कराना और अनुमोदन में यह आत्माराम ऐसा है, ऐसा जानना चाहिए। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि की ऐसी भावना होती है। सम्यक् अर्थात् वस्तु का स्वरूप क्या? चैतन्य निरंजन निराकार आनन्द की दृष्टि हुई, उसे ऐसी भावना होती है कि मैं तो परिपूर्ण हूँ। वर्तमान में भले अपूर्णता हो, परन्तु शक्ति से तो परिपूर्ण भरा हूँ। आहाहा!

ऐसी सदैव भावना करनी चाहिए। अब टीकाकार के अन्त के श्लोक का अर्थ कहते हैं—युधिष्ठिर राजा को आदि लेकर पाँच भाई पाण्डव... धर्मराजा, भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल पाँच भाई। **और श्री रामचन्द्र तथा अन्य भी विवेकी राजा हैं, उनसे अत्यन्त भक्तिकर यह जिनशासन पूजनीक है,...** ऐसा स्वरूप जो है, वह जैनशासन में है। अन्यत्र कहीं है नहीं। वीतराग परमात्मा के भाव में शासन में ऐसी चीज़ है कि आत्मा तो ऐसा है, ऐसी चीज़ सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। ऐसा जैनशासन। आहाहा! है?

युधिष्ठिर राजा को आदि लेकर पाँच भाई पाण्डव और रामचन्द्र तथा अन्य भी विवेकी राजा हैं, उनसे अत्यन्त भक्तिकर... यह भक्ति करनेवाले, ऐसे शास्त्र की इन्होंने भक्ति की है। रामचन्द्रजी ने, युधिष्ठिर ने, दूसरे विवेकी राजाओं ने। आहाहा! अकेले इसमें गरीब और साधारण ही थे, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। बड़े-बड़े राजा, भीम जैसे, अर्जुन जैसे, ऐसे जैनशासन की भक्ति करते थे। आहाहा! समझ में आया? यहाँ शत्रुंजय

से तीन मोक्ष गये हैं, दो सर्वार्थसिद्धि में गये हैं। पाँच पाण्डवों में तीन तो मोक्ष पधारे हैं शत्रुंजय से, ऊपर से उस समय ऊपर। जिस जगह से मोक्ष पधारे, उस जगह ही ऊपर है सिर पर। क्योंकि ऐसे सीधे जाते हैं। वे उन्हें दो नकुल और सहदेव अभी सर्वार्थसिद्धि में है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! यह पाँचों पाण्डवों ने ऐसे आत्मा के जैनशासन की भक्ति की है। ऐसा आत्मा, वह जैनशासन है। आहाहा! ऐसे आत्मा का अनुभव करना, उसे जैनशासन कहते हैं। आहाहा! कहो, भगवान ने यह शिक्षा दी है। आहाहा!

यह जिनशासन पूजनिक है, जिसको सूर नाग भी पूजते हैं,... भवनपति और नागदेव। आता है न असुरकुमार और नागकुमार नीचे व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक चार प्रकार के देव हैं। यह ज्योतिष चन्द्र, सूर्य, ऊपर स्वर्ग सौधर्म आदि, नीचे भवनपति और व्यन्तर। यह सुर और नाग भी भगवान को पूजते हैं। **ऐसा श्री जिनभाषित शासन सैंकड़ों सुखों के वृद्धि को प्राप्त होवे।** आहाहा! है न? **श्री जिनभाषित शासन सैंकड़ों सुखों के वृद्धि को प्राप्त होवे।** आहाहा! जैनशासन में ही आत्मा को परिपूर्ण आनन्द और सुख से भरपूर कहा है। यह भगवान को जो आनन्द प्राप्त होता है, केवलज्ञान (प्राप्त होता है) वह कहाँ से आता है? बाहर से आता है कहीं? आहाहा! ऐसा शक्ति से भरपूर भगवानस्वरूप सभी जीव। देह को न देखो, स्त्री का, पुरुष का, नपुंसक का, ढोर का, नारकी का। अब उसके राग को न देखो। आहाहा! तो सभी जीव भगवान ऐसे भरपूर हैं। आहाहा!

वह कहे एक ईश्वर ही है जगत का। यह तो कहे, सब परमात्मस्वरूप ही सब है। वह जैनशासन में तो ऐसा कहा है। वह कहे एक ईश्वर है और उसे हजार हाथ और उसने यह सब बनाया। यह सब कसाईखाने उसने बनाये गाय को काटनेवाले? वस्तु तो अनादि की ऐसी है। आत्मा अनादि का ऐसा परिपूर्ण भरपूर भगवान है। स्त्री का, पुरुष का, पशु का शरीर न देखो। उसे पुण्य-पाप की दशा में विकार है, उसे न देखो। वह उसकी शक्ति का सत्व है, उसे देखो तो परिपूर्ण भगवान भरपूर है। आहाहा! बहुत अच्छा अधिकार था। मौके से इस रविवार के दिन। आहाहा! रविवार। साथ में रविवार है आज। आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट के सम्बोधन के लिये... उनके शिष्य प्रभाकर भट्ट थे न शिष्य ? उन्होंने **योगीन्द्रदेव ने किया, उस पर श्रीब्रह्मदेव ने संस्कृत टीका की। श्री योगीन्द्रदेव ने प्रभाकर भट्ट को समझाने के लिये तीन सौ पैंतालीस दोहे रचे,** लो ! **उस पर ब्रह्मदेव ने संस्कृत टीका का पाँच हजार चार ५००४ प्रमाण की। और उस पर दौलतराम ने भाषावचनिका के श्लोक अड़सठिसौ नब्बे ६८९० संख्याप्रमाण बनाये।** इस प्रकार यह परमात्मप्रकाश पूरा होता है, लो। कल अब प्रकरण चलेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

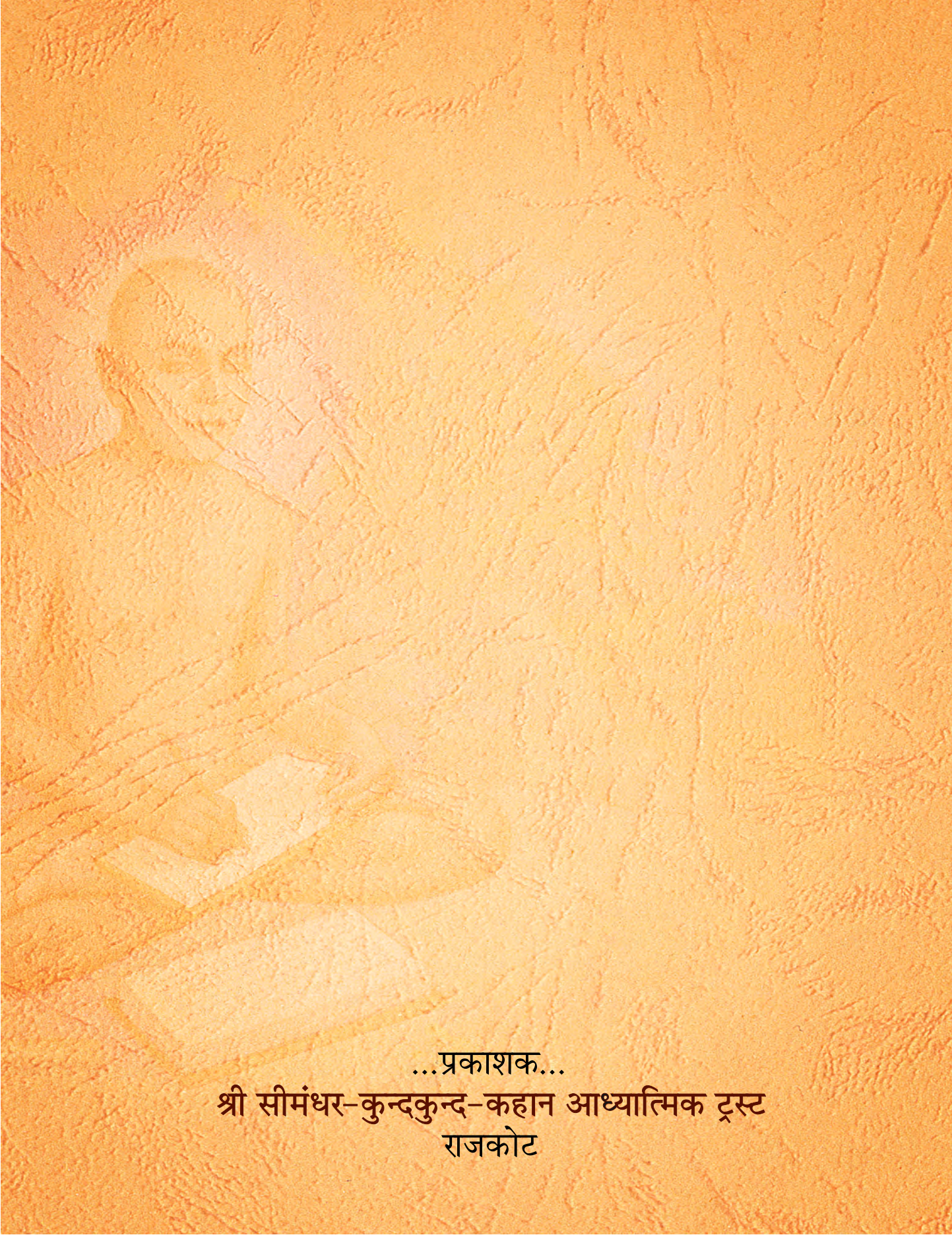

...प्रकाशक...
श्री सीमंधर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
राजकोट